श्री कबीर स्वामी की
अमृत वाणी



प्रकाशक: कबीर कीर्तिमंदिर संस्था, काशी

आद्य संस्थापक

महंत श्री शान्तिदासजी गुरु श्री पुरुषोत्तमदासजी

[श्री कबीर कीर्ति मंदिर काशी ग्रन्थमाला का प्रथम रत्न]

॥ सत्यनाम ॥

सद्गुरु भगवान

श्री कबीर स्वामी की अमृतवाणी

[हिन्दी अनुवाद सहित भाग १—२]



अनुवादक :

स्वामीश्री ब्रह्मलीनमुनि



प्रकाशक :

श्री कबीर कीर्तिमंदिर, काशी संस्था—वाराणसी

आद्यसंस्थापक महन्त श्री १०८

श्री शान्तिदासजी गुरु श्री पुरुषोत्तमदासजी

महाराजसाहेब, श्री कबीर आश्रम—जामनगर।



प्रकाशक :

श्री कबीर कीर्तिमंदिर, काशी संस्था—वाराणसी

आद्यसंस्थापक

महन्तश्री १०८ श्री शान्तिदासजी गुरुश्री पुरुषोत्तमदासजी

मूल्य रु० ७–२५

॥ सत्यनाम ॥

अत्र स्थाणु सुपत्तने हि पुरतः क्षोणीतले संस्थितः ।
लोकातीत–महोदयो गुणनिधिः शास्ति स्वशिष्यान्पुरा ॥
आर्यानार्यभिदामपास्य जनितो ह्येकात्मतत्त्वं परं
नानाऽऽडम्बरवारणैकमिहिरः श्रीमत्कबीरो गुरुः ॥

मुद्रक :

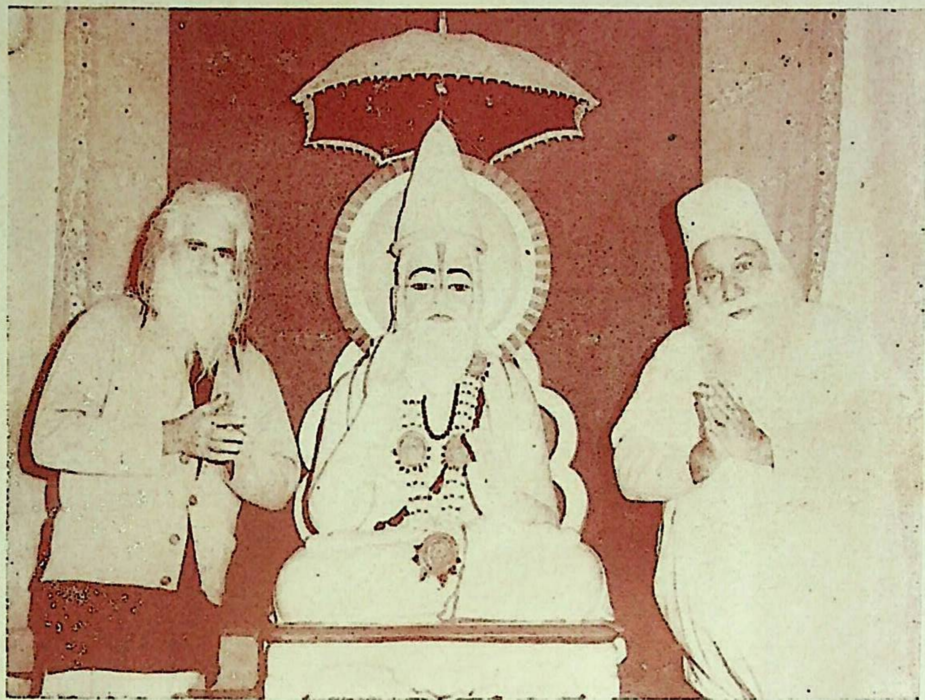
नरेन्द्र [illegible] र प्राणलाल आचार्य

आचार्य [illegible], गायघाट मछोदरी, वाराणसी

सत्यनाम



विश्ववंद्य भगवान सद्गुरु श्री कबीरस्वामी



महन्तश्री १०८	विश्ववंद्य भगवान	महन्तश्री १०८
श्री रामस्वरूपदासजी	श्री कबीरस्वामी	श्री शान्तिदासजी

* समर्पण *

❀ सत्यनाम ❀

श्री कबीर कीर्तिमंदिर काशीसंस्था–वाराणसी

मेरे द्वारा संगृहीत एवं अनुवादित यह ग्रंथ उपरोक्त
संस्था को सादर–सप्रेम समर्पित करता हुआ
मैं कृतार्थता का अनुभव कर रहा हूँ।

मैं ग्रन्थ प्रकाशन–मुद्रण इत्यादि सब अधिकार
सहर्ष सप्रेम उपरोक्त संस्था को
समर्पित करता हूँ।

हस्ताक्षर : स्वामीश्री ब्रह्मलीनमुनि
भगवान श्री कबीरस्वामी का मंदिर
दालमिया महोल्ला – महिधरपुरा
सुरत [गुजरात]

वि० सं० २०३० वै० शु० ८ मंगलवार ता० ३०–४–७४

यत् किञ्चित्

भाव—भूमिका

मेरे अभिन्न आत्मस्वरूप शास्त्री प्राणलाल भाई शंकर आचार्य को जब मैंने इस पुस्तक का संपादन कार्य करने को कहा तब से लेकर पुस्तक के प्रकाशन की पूर्णता तक उनका एक ही आग्रह रहा कि मुझे इस पुस्तक के प्रकाशक के रूप में 'यत किञ्चित्' लिखना चाहिये।

परंतु जो स्वयं यत्किञ्चित् हो वह भला 'यत्किञ्चित्' कैसे लिख सकता है और उसमें भी विश्ववन्द्य सद्गुरु भगवान् कबीर स्वामी की अमृत वाणी के सम्बन्ध में तो मेरे जैसा अल्पज्ञ कलम भी कैसे उठा सकता है।

अमृत कैसा है ? उसके गुण एवं स्वाद के सम्बन्ध में कोई लिखने बैठे तो अमृत को किसकी उपमा दी जाय ? 'अमृतं त्वमृतोपमम्' अमृत अमृत जैसा है इतना ही कहकर रूक जाना पड़ेगा या नहीं ?

सद्गुरु की वाणी के जादू से आज देश विदेश के अन्य धर्माव-लम्बी भी मुग्ध हो गये हैं। लोग समुदाय का एक बहुत बड़ा भाग भी सद्गुरु की वाणी का रसास्वादन लेता ही रहता है। वे लोग इतना तो जानते ही हैं—

कबीर कहे कमाल को दो बातां सिख ले।
कर साहेब की बन्दगी, भूखे को कुछ दें॥

साहेब परमात्मा की हार्दिक प्रार्थना एवं भूखे को भोजन देने का सद्गुरु के सीधे सादे शब्दों में दिया हुआ उपदेश एक छोटे से छोटे समुदाय के हृदय में कितना घर कर गया है। इससे यह निश्चित होता

है कि आज ५०० वर्ष के उपर व्यतीत होने पर भी भगवान कबीर लोक-जिह्वा पर जीवित हैं।

सद्गुरु श्री कबीर भगवान की वाणी में अपूर्व चमत्कार भरा हुआ है। उन्होंने कई जगह सीधे सादे शब्दों में, तो कई जगह आत्म विचार योग के अगम्य भूमिका एवं क्वचित् गूढातिगूढ वाणी का समावेश किया है। अधिकारी भेद से उपदेश देने में सद्गुरु ने एक मानसशास्त्री की भूमिका अदा की है ऐसा कहा जा सकता है। जब मन्दाधिकारी उनके सीधे सादे शब्दों से अपने ऐहिक पारलौकिक जीवन को सफल बना सकते हैं तो उत्तमाधिकारी लोग तत्वविचारमंथन द्वारा आत्मसिद्धि के लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं।

सत्संग, नामोपासना, गुरुभक्ति, निष्काम कर्म आदि साधनों की प्राथमिक भूमिकाएँ सर्व सामान्य जनता को उत्तम सद्बोध प्रदान करती हैं। और साथ साथ जाति कुलाभिमान, छूआ-छूत एवं धार्मिक विद्वेष आदि के परित्याग के लिए उन्होंने जो निरूपण किया है यह तो अभूतपूर्व ही कहा जा सकता है। ऐसी निर्भयता के साथ खुल्लम खुल्ला कहने वाला कोई दूसरा नहीं हुआ है। सद्गुरु श्री कबीर भगवान का मार्ग उलटा था। उनके समय की परिस्थिति ने उनको एक ऐसा सुयोग्य अवसर दिया कि वे अपनी बातों को स्पष्ट एवं निर्भीक रूप से रख सके थे। वे क्या थे और वे क्या न थे यह तो अनिर्वचनीय ब्रह्म के समान अनिर्वचनीय ही रहने योग्य है।

वे मुसलमान होने पर मुसलमान न थे, हिन्दू होने पर हिन्दू न थे, साधु होने पर साधु (अगृहस्थ) न थे, योगी होने पर वे योगी या वैरागी न थे, मानो वे किसी भिन्न मिट्टी से बने हुए एक अलक्ष्यस्वरूप थे। उनकी पहचान के लिए मात्र एक (कल्पनातीत–अलक्ष्य पुरुष) विशेषण देना उचित है। और ऐसा भी कहा जा सकता है कि समाज, धर्म, मतमतान्तर, बाह्याडम्बर और प्रमाद आदि दोषरूप हिरण्यकशिपु के

विनाश के लिए अमानव, निर्जीव पुष्पस्तम्भ से निकले हुए नृसिंहावतार समान थे। भिन्न-भिन्न असंभवित परिस्थितियों में मिलन बिन्दु पर अवतरित इस दिव्य आत्मा को नृसिंहावतार के साथ स्पष्टरूप से जोड़ा जा सकता है। हिरण्यकशिपु ने वर प्राप्त कर लिया था कि उसकी मृत्यु न देव से न मनुष्य से हो, न दिन में हो न रात में, न पृथ्वी पर हो न आकाश में, अस्त्र शस्त्र या धातु पत्थर से भी उसकी मृत्यु न हो, न घर में हो न घर से बाहर हो। इस प्रकार की वरप्राप्ति के कारण हिरण्यकशिपु को मारना एक समस्या थी। देवो के लिए भी यह एक कठिन काम था। नृसिंहावतार ने अनिर्वचनीय अलक्ष्य स्वरूप से मदांध हिरण्यकशिपुका वध किया।

सद्गुरु कबीर साहेब ने हिन्दू और मुसलमान, उच्च नीच, ज्ञानी अज्ञानी, गृहस्थ त्यागी, हिंसक अहिंसक, कर्म, ज्ञान एवं उपासना के साधन, सगुण निर्गुण इस प्रकार के विरोधाभास के युग में प्रगट हो कर उनके गुणदोष के विवेचन का भार अपने पर ले लिया और उस समय के आगन्तुक दोषों को निर्मूल करने में उन्होंने सफलता प्राप्त की। मध्य युग के ध्रुव तारक के समान सद्गुरु कबीर साहेब ने अपनी प्रतिभासम्पन्न वाणी से युग युग से चली आ रही रूढ़िवादिता को नष्ट कर दिया। अन्धविश्वासों के अन्धकार में भटकती हुई अज्ञान की शृङ्खलाओं में जकड़ी हुई प्रजा की लोह शृङ्खलाओं को क्षत विक्षत कर दिया। दुःख से पीडित जनता जब शासन, समाज एवं स्वजनों की सहानुभूति से शून्य हो रही थी एवं उस अन्धकारमय समय में एक प्रकाश किरण के अन्वेषण में लगी हुई थी उसी समय एक प्रकाशज्योति भारत की पूर्व दिशा में प्रगट हुई। उन्होने अपनी अनुभवसिद्ध वाणी से धर्मान्धता के विरुद्ध आवाज बुलन्द की। क्या हिन्दू क्या मुसलमान या प्रत्येक धर्म के मूल में सिञ्चित विष का परस्पर के मनोमालिन्य एवं वैरभाव का उन्होंने निर्भीकता के साथ सामना किया एवं समग्र प्रजा में उत्साह, धैर्य, साहस और सहनशीलता का बीजारोपण करके

प्रजा को सन्मार्ग पर लाने का उन्होंने अथक प्रयत्न किया। भारत ऐसे संत महात्माओं का हमेशा ऋणी है एवं रहेगा।

जिस देश की प्रजा धर्म का त्याग करके फेशन एवं बाह्याडम्बरों का अन्धानुकरण करती है। वह अपने देश के, धर्म एवं समाज के सत्यानाश को आमन्त्रित करती है। सद्गुरु श्री कबीर ने इसको लक्ष्य करके ज्ञान वैराग्य तप एवं त्याग का सीधी सादी भाषा में जैसे—

जात पाँत पूछे नहीं कोई। हरि को भजे सो हरिका होई ॥

उपदेश देकर वर्णाभिमान को दूर करने का प्रबल प्रयत्न किया है। छोटे छोटे जीव अनेक हैं वे जीना नहीं जानते जीया जाता है हृदय से, एवं हृदय जीता है समता से।

भगवान कबीर ने जीना जाना है। कौन कहता है कि कबीर का देहान्त हो गया? सुख में और दुःख में, लाभ में और हानि में, मान में और अपमान में समभाव रखने वाला जन्म और मृत्यु दोनों से परे हैं। यही इनका समर्पण है। जगत् की जाल में फसा हुआ मानव थोड़ा सा भौतिक सुख मिलने पर फुटबॉल के समान उछलने लगता है और थोड़ा सा भौतिक दुःख आते ही वह आकुल व्याकुल होकर रोने लगता है। जिसके हृदय का सुख दुःख का भार हलका भारी होता रहता है उसने हरि से प्रीत लगाई ही नहीं है। सुख में उछलनेवाला एवं दुःख में रोनेवाला व्यक्ति यदि योग, ज्ञान, भक्ति या सौजन्य का आडम्बर रखता है तभी वह दम्भी है। भगवान कबीर तो आनन्द सरोवर के हंस है और आनंदघर के निवासी को दुःख होगा ही कहां से? वे मानते है कि जीवन दुःख नहीं है, तपस्या है, तपस्वी की तपस्या ही उसका आनंद है। वह आनंद दुःख का दुःख नहीं गिनता। जीवन को सुखी दुःखी मानना ही संसार। है जीवन को जीवन समझ कर ही बिताना चाहिये। सुख दुःख समझ कर नहीं। जीवन को हमेशा जीवित रखने की महाविद्या को इस महासंत ने प्राप्त कर लिया था।

मुसलमानों का सुफीवाद और राम कृष्ण का अनन्य भक्तिवाद इन दोनों की नींव अनन्य प्रेम की मस्ती पर निर्भर है। प्रेम में विरह है, वेदना है और प्रियतम के मिलन की एक लालसा है। यह लालसा, उत्कट इच्छा ही उसके आनन्द का गुप्त रहस्य है। उस भक्त की प्रेम की लगन उस भक्त को अपने प्रियतम के मिलन का नित्य आनंद देती है।

व्याकरण की व्यवस्थित सीमा का तथा शब्दों की गूथी हुई नियमावली का अतिक्रमण करके भी संत कबीर ने जो कुछ कहा है उसका शतांश भी सीमा में एवं नियम से बद्ध विद्वान कवि कह नहीं सके हैं। बस, यही भगवान कबीर की प्रेममस्ती की विजय है।

भूल करनेवाला दुःख भोगता है। यह उसकी शिक्षा है। जबकि संत दुःख भोगता है यह उसकी परीक्षा है। संत कबीर साहेब ने स्वयं दुःख उठाकर दूसरों को दुःख से मुक्त किया है यही उनकी अनोखी आध्यात्मिक विजय रही है।

सद्गुरु महाविरक्त, नित्यमुक्त परमात्मा ही थे। वे अपने आचरण से ही दूसरे को उपदेश देते थे। वास्तविकरूप स देखा जाय तो उनका कुछ करना कराना था ही नहीं। उनकी अटूट आत्मनिष्ठाने एवं शौर्य ने उनके जीवन में अनेक चमत्कार उत्पन्न किये हैं। उनकी निर्भीक आत्मसम्मुखता का दर्शन उनकी साखीओं में एवं काव्यों में हमें देखने को मिलता है। उनकी कविता में आत्मश्रद्धा का स्वर सुस्पष्ट दिखाई पड़ता है। जीवन के सत्यको सिद्ध करने में एवं अहंपद के मिथ्याभिमान का विसर्जन करने की उनकी शैली आश्चर्यजनक प्रक्रियारूप है। उनको इस जन्म में जीते-जीते ही नया दिव्य जन्म लेना है। उनकी गहन गुहा में सामान्य प्रक्रिया द्वारा अलभ्य, अजर अमर रस का उनको पान करना है एवं नैतिक साधको के लिये उस रसपान के औत्सुक्य वढ़ाने का मार्गदर्शन करना है। इसलिए वे फरमाते हैं:—

रस गगनगुफा में अजर जरे,
बिन बाजा झनकार उठे, जहं समुझो परै जब ध्यान धरै,
बिना ताल जहां कंवल फुलाने, तेहि चढि हंसा केलि करै।
जुगन जुगनकी तृष्णा बुझानी, कर्म भर्म अघ व्याधि हरै,
कहै कबीर सुनो भाई साधो ! अमर होय कबहू न मरै।

जैसे-जैसे साधक साधना में आगे-आगे बढ़ता है वैसे-वैसे उनको नये-नये चमत्कार दृष्टिगोचर होने लगते हैं। जब वह ध्यान में आगे बढ़ता है तब उसकी हृदय गुहा में से अमृत रस झरने लगता है, वहाँ कोई साज-सामान के न रहने पर भी दिव्यनाद होने लगता है, हृदय के अगाध सरोवर में बिना पानी के कमल विकसित होते रहते हैं और उन कमलों पर आत्मारूपी हंस केलि करता रहता है और रातोंदिन सोऽहं सोऽहं नाम संस्मरण करते करते उस साधक को सहज समाधि सिद्ध होती है और इस समाधि को निर्विकल्पक समाधि कहते है। अभ्यास, तीव्र वैराग्य एवं गुरु कृपा से इस प्रकार की समाधि संभव होती है एवं भाग्यशाली संत को ही इस प्रकार की समाधि प्राप्त होती है। उसकी दृष्टि में भौतिक धन संपत्ति तुच्छ दिखलाई पड़ती है। उसको तो सत्यपुरुष परमात्मस्वरूप अलौकिक मोती प्राप्त हो गया है, वह मोती अमूल्य है। सद्गुरु स्वानुभव से समझाते हैं:—

मेरी नजरों में मोती आया है,
कोई कहे हलका कोई कहे भारो, दोनो भूल बताया है,
भंवर गुफा में सोऽहम् राजे, मुरली अधिक बजाया है,
सत्तलोक सत्पुरुष बिराजै, अलख—अगम दोउ माया है।

यह महामूल्य रत्न प्राप्त होने के बाद कोई उसको छोटा कहता है और कोई बड़ा कहता है, कोई हलका कहता है और कोई भारी। न यह रत्न हल्का है औ न भारी। इस सत्यस्वरूप हीरा का मूल्य तो अधिकारी के अनुरूप ही होता है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है। यह ऐसा सूक्ष्म तत्त्व है कि स्थूल दृष्टिवालों को तो नजर में ही नहीं आता। उपनिषद् कहता है।

तदेजति तन्नैजति तद दूरे तद्वन्तिके।

यत्न करने वाले को यह रत्न प्राप्त होता है प्रमादनिद्रा में सोनेवाले को नही। यह रत्न पास में हृदयगुहा में ही है फिर भी दूर है। अरे, यह भीतर बाहर सर्वत्र सुलभ है। हृदय की अतल गुहा में यह सोऽहं रूप से विद्यमान है। इस सोऽहं में ॐकार भी सूक्ष्मरूप से विद्यमान है। ॐकार स्थित अउम् ये तीनों अक्षर सूक्ष्मदृष्टि से देखने वाले को 'सोऽहं' में देखने को मिलता है। यह अलक्ष्य एवं अगम्य है। ज्ञानी लोग इस सत्य तत्त्व को, इस अमूल्य मोती को दो रूप में देखते हैं। एक सत्यस्वरूप ब्रह्माभिन्न आत्मा में और दूसरा ब्रह्मलोक में। इस दुर्लभ मोती को हृदयगुहा में प्राप्त करना, जानना और अनुभव करना यही सद्यामुक्ति है। ज्ञानी महात्मा लोग समाधि द्वारा त्रिपुटी प्रदेश में इस आत्मतत्त्व को, इस सत्यपुरुष को देखते हैं और निजानन्द प्राप्त करते हैं।

सद्गुरु कबीर की अमृतवाणी का रसास्वादन हिन्दीभाषी भाविक जनता को प्राप्त हो इस सद्भावना के साथ सुरत के भगवान कबीरस्वामी के मन्दिर के सुप्रसिद्ध संत श्री ब्रह्म मुनि जी द्वारा सद्गुरु के अमूल्य शब्दो एवं हिन्दी भाषा में विस्तृत विवेचना कराकर इस सद्गुरु कबीर साहेब की अमृतवाणीं ग्रन्थ प्रकाशित किया है। शुद्ध, सरल एवं भाव-वाही विवेचन के साथ इस ग्रन्थ को तैयार किया गया है इसके लिये यह संस्था संत श्री ब्रह्ममुनि का आभार व्यक्त करती है। इस ग्रन्थ का

आद्योपान्त संपादन एवं संशोधन हमारे अभिन्न आत्मस्वरूप शास्त्री प्राणलाल भाई शंकर आचार्य ने परिश्रमपूर्वक किया इसके लिए हम उनके हार्दिक अभ्युदयाकांक्षी है।

"श्री हरिवनविचरणकाव्य" और "संकलन" नाम के विषय हमने जिन जिन ग्रन्थों से लिया है उन उन ग्रन्थों के प्रकाशकों के हम ऋणी है।

वर्तमान समय कठिन समय है। कागज, छपाई तथा बाइन्डिग बहुत ही अधिक व्ययसाध्य हो गया है। असीम महँगाई एवं कभी के समय में इस प्रकार के धार्मिक प्रकाशन बहुत ही श्रम एवं अर्थसाध्य हो जाते हैं। फिर भी बाजार मे बिकनेवाले किसी धार्मिक ग्रन्थ की अपेक्षा इस मननीय ग्रन्थ को हम लागत भाव से दे सके हैं। इसके लिए विश्ववंद्य सद्गुरु श्री कबीर भगवान की महती कृपा के हम चिरऋणी हैं। यदि भाविक भक्तों एवं जिज्ञासु सज्जनों ने हमारे परिश्रम को विशेष बल दिया तो इससे भी विशेष सुंदर एवं भावपूर्ण सद्गुरु साहित्य का प्रकाशन करके सद्गुरु श्री कबीर भगवान के चरणों में पुष्परूप से समर्पित करते रहेंगे।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

श्री कबीर आश्रम
जामनगर
[सौराष्ट्र–गुजरात]
ता० २०–४–७४

श्री कबीरकीर्ति मंदिर काशी संस्था के
आद्यसंस्थापक महन्त श्री १०८
श्री शान्तिदास
गुरु श्री पुरुषोत्तमदासजी महाराज साहेब

परमपुरुष की प्रेमसाधना

[सम्पादकीय]

वर्तमान काल के बुद्धिमान पुरुष स्वयं अपने को उपदेष्टा मानते हैं उनको दूसरे के उपदेश की आवश्यकता नहीं है। उनकी दृष्टि में स्वयं के अतिरिक्त न कोई संत है न कोई महात्मा! वे जो आचरण करते हैं वही सदाचार है और जो कहते हैं वही प्रमाण है। सत्य, समानता, सहकार एवं सदाचार की पढ़ी हुई या सुनी हुई कथाओं का चर्वित-चर्वण ही रह गया है एवं व्यवहार में तो इन कथाओं से बहुत ही दूर सुदूर आज का समाज चला गया है। वे गये तो है पतन की ओर परंतु उसको उन्नति समझते हुवे फूले नहीं समाते। ढोल में तो पोल होता है और उससे वह बजता है। बज कर दूसरे को आनंद देता है परंतु मिथ्याभिमानी उपदेशक तो बजकर दूसरे के मस्तिष्क में जहर ही भरता है।

प्रायः ४० वर्ष पूर्व प्रकाशित बीजक ग्रन्थ मेरे सामने है और इसमें मैं सद्‌गुरु श्री कबीर साहेब के अक्षरदेह का प्रत्यक्ष दर्शन अनुभव कर रहा हूँ-मानो वे यही धीर गंभीर स्वर से कह रहे हैं :—

कहते का काह जानदे, गुरु की सीख तू लेय;
साकट जन अरु स्वान को फेर जवाब न देय।

जो बोलते हो उनको बोलने दो, तुम गुरु का उपदेश ग्रहण करो क्योंकि बहिर्मुख एवं श्वान को बोलने देना, परंतु उनको उत्तर देना नहीं।

यही है सद्गुरु कबीर का अक्षर–अविनाशी देह, जो आज भी उतना ही आवश्यक है, उनका सीधा सादा वेष, बिना आडम्बर की सद्बोधक वाणी और परब्रह्म का उद्बोधक अनुभव इस कठोर काल में पुनर्मूल्याङ्कन करने योग्य है। संतो के शब्द कभी पुराने होते हुवे जाना या सुना है किसी ने ?

उनकी एक एक साखी में, एक एक शब्द में जीवन की सत्यसाधना को सिद्ध करने की 'मैं' पद का विसर्जन कर प्रेम रसायन द्वारा नव जीवन प्राप्त करने की प्रक्रिया भरी पड़ी है। उनके प्रत्येक शब्द में प्रेम की मस्ती दिखाई पड़ती है और यही प्रेममस्ती ने उनको अपने जीवनसंग्राम में विजय माला प्रदान की है। उन्होंने जो कुछ कहा है मात्र पुस्तक पढ़कर पंडित बने हुवे पामर मनुष्य कह ही नहीं सकते। विद्या पढ़कर कागज एवं स्याही से कबीर की प्रेममस्ती को कोई कैद भी नहीं कर सकते। मस्त कबीर तो ऐसे पंडित को पंडित ही कहां मानते हैं ?

पोथी पढ़ी पढ़ी जगमुवा, पंडित भया न कोई,
ढाइ अच्छर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।

अनेक शब्दों एवं वाक्यों का इन पोथी पंडितो ने जिस प्रकार का अनर्थ किया है उसी प्रकार 'प्रेम' शब्द का भी अनर्थ हो गया है, प्रेम का सम्बन्ध आत्मा के साथ है। इसी अर्थ को लेकर ही सद्गुरु कबीर ने प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। मात्र प्रेम की भौतिक बातों का वड़ा वना बनाकर पेट भर भर कर खाने से संग्रहणी के रोग से ग्रस्त इस जगत् को 'प्रेम' शब्द के हार्द को बिना जाने सुख एवं शान्ति का दर्शन स्वप्न में भी दुर्लभ है यह निर्विवाद है।

सद्गुरु श्री कबीर की भक्तिसाधना का केन्द्रबिन्दु प्रेम है। भक्त तो भगवान की प्रतिमा है। पति-परमात्मा की आज्ञा लेकर प्रिया-जीव

अपने नैहर इस जगत में आई हुई है। प्रियतमने उसको 'लगन' की चुनरी देकर उसको सावधान करते हुवे कहा है :—

'अपनी शादी के स्मरण चिन्हरूप इस चुनरी में किसी प्रकार का धब्बा न लगे उसी प्रकार तुम्हें जगत् में चलना है। उसकी किनारी भी गन्दी होनी नहीं चाहिये। चुनरी के रंग में भी फरक न हो, आज जिस प्रकार की चुनरी (मानवदेह) लेकर तूं जगतरूपी पितृगृह जा रही हो वैसी ही चुनरी बिना धब्बे की लेकर तुम्हें अपने घर वापस आना है। यदि इसमें डाघ दिखाई पड़ा तो कहना पड़ेगा कि 'लगन' के स्मरण चिन्ह रूप चुनरी के प्रति तुमने सावधानी नहीं वर्ता है और ऐसा मानकर तुम्हें गृह प्रवेश करने नहीं दिया जायगा इसका तुम्हें ध्यान रखना है। गृह प्रवेश प्राप्त न होने से घर घर, योनि योनि भटकना पड़ेगा, कहीं ठौर नहीं लगे ।।

"परंतु मैं इस चुनरी का 'लग्न' के अवसर के अतिरिक्त उपयोग ही नहीं करूंगी कि उसमें धब्बा लग जाय इस प्रकार प्रियतमा ने हसते हुवे कहा और संसार की सफर करने के लिए वह चल पड़ी।

कैसी है यह चुनरी ? इसमें विविध रंग भरने वाला रंगरेज कौन है ? किस वस्तु से बनी हुई है यह चुनरी ? उसका वर्णन सद्गुरु ने स्वयं किया है :—

कोने रंगरेजवा रंगल मेरी चुनरी ।। टेक० ।। १ ।।

धागा पाँच पचीसो लागा, हाथ परी परमारथ दुलरी ।। २ ।।

चौकी चार प्रेम का खूटा, पहिरत या धन हो गयी पिउरी ।। ३ ।।

पहिरि ओढ़ि धन भई सतमारग ।

समुझ समुझ भई दिन दिन दुबरी ।। ४ ।।

कहँहिं कबीर अजब रंगरेजवा ।
साधु संगति गहि चरनन उबरी ॥ ५ ॥

भला, किस रंगरेज ने इस शरीर रूपी चुनरी को रंगा है ? चुनरी पहन कर आनेवाली प्रियतमा को इसका विचार करना चाहिये। सद्गुरु कहते हैं कि यह चुनरी पंचतत्त्वरूपी तागा एवं पचीस प्रकृति-रूपी वाणा से बनी हुई है। दो हाथ और दो पैर की सजावट भी है। प्रेम की बुट्टिओं से भरी हुई है। यह चुनरी पति की पत्नी को दी हुई अणमोल भेट है (अमूल्य उपहार है)। सांसारिक सुख, धन संपत्ति, मानप्रतिष्ठा और शारीरिक मानसिक संपत्ति इस मानवदेह को प्रभु की कृपा से ही प्राप्त होती हैं। इस चुनरी को पहन कर, मानवदेह धारण कर जीव सन्मार्ग पर चलने के लिए चल पड़ा है। उसका शरीर सुवर्णवर्णसा देदीप्यमान है।

पीला रंग सौभाग्य का चिन्ह है। और काला रंग दुर्भाग्य का लक्षण है। स्वरूप-सौभाग्य-संपत्ति जीव को परमात्मा देता है। परंतु यहां इस संसार में आकर जीव ऐसे समझने लगता है कि यह सब मैंने अपने पुरुषार्थ से प्राप्त किया है और इससे मदोन्मत्त होकर संसार के नाना प्रकार के रंगों में खेलने लगता है। दुर्लभ मानवदेह को सन्मार्ग से हटाकर कुमार्ग की ओर चलता है। उसमें कोई भाग्यशाली जीव संयम सत्य, भजन प्रेम और सदाचार का विचार करता रहता है ऐसे जीव को लक्ष्य करके सद्गुरु कहते हैं—पितृगृह (संसार) में आई हुई यह बिचारी प्रियतमा चुनरी का ख्याल रखते रखते दुर्बल हो गई है। कठिन साधनों के करने से उसका शरीर लकड़ी बन गया है। ऐसा जीव धन्यवाद के पात्र है जो हमेशा अपने 'लगन' का स्मरण चिन्ह चुनरी का ध्यान रखता रहता है। जो भाग्यशाली जीव संतो के समागम में रहेगा उसकी देह को डाघ लगेगा ही नहीं वह आध्यात्मिक तथा सांसारिक कलंकों से बच जायगा। जिसने इस चुनरी का सदुपयोग किया वह

प्रिय परमात्मा का प्रियपात्र बन जायगा। परन्तु······परन्तु······! जिस अभागिनी स्त्री को संसार का मोह लग गया। जो रागद्वेष और "मैं मेरा" के विकारों से व्याप्त हो गई उसने अपने प्रियतम को याद भी नहीं किया उसकी चुनरी में कुकर्मों का धब्बा लग गया जो धोने पर भी छूटना कठिन हो गया। उस चुनरी की चमक निकल गई। रंग बदल गया। ऐसी स्त्री को सद्गुरु कह रहे हैं कि—

चादर हो गई बहुत पुरानी।
अब तो सोच-समझ अभिमानी॥
अजब जुलाहे चादर बीनी, सूत करम के तानी।
सुरत निरति को भरना दीना, तब सबके मनमानी॥
मैले दाग परे पापन के, विषयन में लपटानी।
ज्ञान के साबुन लाय न धोयो, सत् संगति के पानी॥
भई खराब आँब गई सारी, लाभ-मोह में सानी।
ऐसे ही ओढ़त उमर गवाई, भली-बुरी नहीं जानी॥
शंका मानु जानि जीव अपुने, है यह वस्त्र पुरानी।
कहँहिं कबीर यहो राखु जतन से, नहिं फिर हाथ में आनी॥

अभिमानी जीव, बहुत देर हो गई अब तो कुछ विचार कर कि तुम्हारी शरीररूपी चुनरी बहुत पुरानी हो गई है, एक विलक्षण बुनकर ने उसको बनाया है, शुभाशुभ तानाबाना से गूथी गई है और प्रेम और वैराग्य की निकासी की गइ है और इससे वह बहुत ही सुन्दर दिखाई पड़ती है परन्तु तुम्हारी इस चुनरी में पाप रूपी मैल लगा हुआ है, विषयरूप मलीनता से भरा हुआ है, सद्गुरु कबीर कहते हैं ओ अभागी

जीव तुमने इस देहरूप चुनरी को सत्संगरूप पानी एवं ज्ञानरूप साबुन से कभी धोया नहीं है, और इससे उसकी इज्जत खराब हो चुकी है। लोभ और मोह से वह सड़ गई है। इस प्रकार की चुनरी को ओढ़कर तुमने सारी जिन्दगी गवा दी। क्या अच्छा और क्या बुरा उसका तुमने विचार तक नहीं किया, तुम्हें समझना चाहिये कि यह चुनरी तुम्हारी नहीं है। यह तो तुमसे बिछुड़े हुये तुम्हारे प्रियतम परमात्मा की है। इस चुनरी को बहुत सम्हाल कर रखना बार बार हाथ में आने योग्य नहीं है। बहुत परिश्रम के बाद ही यह चुनरी यह मानव देह प्राप्त होता है।

पति को भूलकर मैके में आयी हुई नवौढ़ा पत्नी की दशा का कबीर साहब वर्णन करते हैं।

खसम बिनु तेलीका बैल भयो ॥ टेक ॥

बैठत नाहिं साधुकी संगति, नाधे जनम गयो ॥ १ ॥

बहि बहि मरहु पचहु निज स्वारथ, जमको दंड सहो।

धन–दारा सुत राजकाजहित, माथे भार गह्यो ॥ २ ॥

खसमहिं छांडि विषयरंग राते, पापके बीज बयो।

झूठि मुकुति नल आस जीवनकी, प्रेतका जूठ पयो ॥ ३ ॥

लख चौरासी जीवजन्तु महं, सायर जात बह्यो।

कहहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, स्वानको पूँछ गह्यो ॥ ४ ॥

ओ अज्ञानी जीव तुमने अपने प्रिय परमात्मा का परिचय त्याग दिया तुम अपने मूल स्वरूप को भूल गया। तुमने संतसग नहीं किया और तेली के बेल के समान चक्कर काटने लगा। तुम अपने भौतिक

स्वार्थ के लिये जल मर रहे हो तुम बार २ यमयातना भोग रहे हो। तुम जरा देखो तो सही धन, स्त्री, पुत्र इत्यादि प्रपच में आसक्त होकर कुकर्मों के बीज बो रहे हो। इससे संसार सागर पार होना असंम्भव है।

जो महात्माओं की मंगलमयी कल्याणप्रद वाणी को मानता है वहीं मानव है। जो नहीं मानता उसको सद्गुरु क्या कहते हैं।

> चलहु का टेढो–टेढा–टेढो। ॥ टेक ॥
>
> दसहूं द्वार नरक भरि बूडे तू गंधीको बेडो ॥

ऐसे दुर्भागी जीव को जो उपमा दी जा सकती थी सद्गुरु साहेब ने दे दी। अब यह दुर्गन्ध से भरा हुआ घड़ा किसी काम में आनेवाला नहीं है, भविष्य में कोई इसको देखने वाला भी नहीं। अभी भी जीव जीतेजी चेत जाये तो अच्छा है। नहीं तो—

> फूटहिं नयन हृदया नहिं सूझे, मति एको नहिं जानी।
>
> काम-क्रोध त्रिस्नाके नाते, बूडि मुयहु बिन पानी ॥
>
> एति न देखु मुगुध नल बौरे, तोहि ते काल न दूरी।
>
> कोटिक जतन करहु यह तनकी, अन्त अवस्था धूरी ॥

अन्त में तुम्हारी भीतरी और बाहरी आँखे फूट जायेगी, कुछ सुझेगा नहीं, तुम्हारी कोई बुद्धि काम नहीं आयेगी और काम, क्रोध तृष्णा के साथ डूब मरोगे। अभी भी चेत जाओ तो अच्छा है नहीं तो काल दूर नहीं है। हराम का खा खाकर तुमने अपने शरीर को मोटा ताजा बनाया है। वह भी अन्त में एक दिन सुखी हुई लकड़ी के समान जल जायेगा या मिट्टी में मिल जायेगा।

प्रेमी पाठको, चलिये अब हम लोग इस चुनरी के सम्बन्ध में दूसरी ओर से सोचे। प्रियतम की दी हुई यह चुनरी जितनी सुन्दर है

उतनी ही महीन एवं मुलायम और सूक्ष्म भी है। उसको टूटने में या खराब होने में देर नहीं लगती। सद्गुरु कह रहे हैं—

झीनी-झीनी झीनी, झीनी झीनी चदरिया बीनी।

० ० ०

सो चादर सुरनरमुनि ओढे ओढिके मैली कीनी।

दास कबीर जतनसे ओढि, ज्योंकी त्यों धर दीनी ॥

ईश्वर रूपी जुलाहा ने इस सूक्ष्म और कोमल चद्दर को बुनकर जीव रूपी अपनी प्रियतमा को स्मरण चिन्ह के रूप में दी है। इस चद्दर को देवो ने मनुष्यों ने, और नामधारी मुनियों ने पहन २ कर गन्दी कर दिया है, परन्तु सद्गुरु कबीर कहते हैं कि प्रभु के भक्तों ने, सन्त महात्माओं ने उसको बहुत सम्हाल कर रखा है और उन भक्तों ने यही सोचा है कि प्रियतम के चरणों में उपस्थित होने पर उनकी दी गई धरोहर वैसी की वैसी सुरक्षित वापस कर देंगे, जिन्होंने इस धरोहर को, इस चुनरी या चद्दर को मैली कुचैली कर दिया है वे उन प्रियतम परमात्मा के समक्ष खड़े भी कैसे हो सकते हैं।

दूध में शक्कर मिलने से जैसे दूध का माधुर्य बढ़ जाता है वैसे ही सन्त कबीर के जीवन दर्शन में उनका प्रत्येक मानव के साथ का अस्खलित व्यवहार उनके ज्ञान में, तप में, योग बल में विशेष माधुर्य बढ़ा देता है उन्होंने मानव के ऐहिक एवं पारलौकिक जीवन को सुधारने का जो प्रयास किया है यह भारत के सन्त इतिहास में 'याबच्चन्द्रदिवाकरौ' अंकित रहेगा और यह परम गुरु सन्त कबीर भी जब तक भारत में एक भी सती या सन्त विद्यमान रहेगा तब तक अजर–अमर है और रहेगा।

इस ग्रन्थ के संशोधन व सम्पादन का समग्र भार मेरे जैसे एक सामान्य और कबीरसाहित्य से पूर्ण अनभिज्ञ के हाथ में विश्वास पूर्वक

देकर मेरे परम हितैषी महन्त श्री शान्तिदासजी महाराज साहेब ने एवं महन्त श्री रामस्वरूप दासजी महाराज साहेब ने मेरे पर जो अनुग्रह किया है इसके लिये मैं उन दोनों सन्तों का चिरऋणी हूँ। यदि यह अवसर मुझे प्राप्त नहीं हुआ होता तो सद्गुरु श्री कबीर साहेब के इस सन्त साहित्य में अवगाहन करने का सुअवसर ही प्राप्त नहीं होता। सन्त दया के सागर हैं। उनकी जो कृपा मुझे प्राप्त हुई है वह आजीवन मिलती रहेगी यहीं एक अभ्यर्थना है।

जब मुझे कबीर साहित्य का गन्ध भी नहीं था तब भगवान कबीर के सम्बन्ध में कलम उठाना, कुछ लिखना धाष्टर्य ही था अतः सम्पादकीय में क्या लिखू तब गुजराती 'श्री कबीर स्वामी ना अमृतवाणी ग्रन्थ जो अभी २ प्रकाशित हुआ है उसमें विद्वान लेखक पंडित मंगलजी उद्धवजी शास्त्री का 'परमपुरुषनी प्रेम साधना' सम्पादकीय पढ़ने को मिला और यही उचित समझा कि उसी को ही हिन्दी भाषा भाषी जनता के समक्ष रक्खा जाय अतः इस मननीय लेख का अनुवाद कर यहाँ दिया गया है और इसके लिये मैं पंडित मंगलजी उद्धवजी शास्त्री का आभारी हूँ।

ग्रन्थ में भूलों का रहना स्वाभाविक है इसके लिये पाठकगण मुझे क्षमा करेंगे और अमृततुल्य इस वाणी का रसास्वादन कर, उनको हृदयंगम कर अपने मानव जीवन को सफल बनायेंगे यहीं सद्गुरु के चरणों में नम्र प्रार्थना है।

के. २०/२०० — संतचरणरज

ब्रह्माघाट, वाराणसी – १ — प्राणलाल भाईशंकर आचार्य

* सत्यनाम *

* सत् सत् सोऽहम् गुरु *

* सोऽहं हंसः सत्यगुरुं शरणम् *

* ॐ श्रीराम सत्यराम सोऽहं गुरुराम *

* वन्दे सद्गुरुं सत्यकबीरगुरुदेवम् *

सद्गुरु श्रीकबीर स्वामी की अमृतवाणी

अथ प्रथम खण्ड

वैराग्यप्रद

(१)

राम न रमसि कवन डँड लागा, मरि जैबे का करबे अभागा ।।टे०।।१।।
कोइ तीरथ कोइ मुंडित केसा, पाखँड मंत्र भरम उपदेसा ।। २ ।।
विद्या वेद पढि करै हँकारा, अन्तकाल मुख फाकै छारा ।। ३ ।।
दुखित सुखित हो कुटुँब जेवावे, मरन बेर एकसर दुख पावे ।। ४ ।।
कहँहिं कबीर यह कलि है खोटी, जो रहै करवासो निकलै टोटी ।। ५ ।।

(बीजक शब्द २१ ।

हे अभागा जीव ! तुम राम में नहीं रमता है, तुमको कौन पाप का दण्ड लगा है ? अर्थात् पूर्व जन्म में तुमने कौन पाप किया था ? जिसका दण्ड तुमको मिला है, जो तुम राम का भजन नहीं करता है ।

जब तुम मर जाओगे तब, क्या कर सकोगे ? ॥ १ ॥ राम रमण रूप भजन को छोड़ कर जो अन्यान्य साधन करते हैं उनको कहते हैं— कोई तीर्थक्षेत्र में वास करते हैं, कोई केश कटा कर मुण्डित होकर फिरते हैं, कोई हिंसक पाखण्डियों से मन्त्र ग्रहण करते हैं और कोई भ्रम में डालने वाला मिथ्या उपदेश लेते हैं एवं दूसरों को देते रहते हैं। इन सब तुफानों को छोड़ कर राम का भजन क्यों नहीं करते हैं ॥ २ ॥ वेदविद्या पढकर उसका अहङ्कार करते हैं। उसके अनुसार आचरण नहीं करते हैं, प्रत्युत विपरीत व्यवहार करते हैं, इसका परिणाम यह होगा कि अन्तकाल के समय अर्थात् मरने के बाद ये लोग मुख में राख फांकेंगे अर्थात् नरक भोगेंगे ॥ ३ ॥ लोग दुःखी या सुखी होकर अर्थात् अन्याय अनीति से या न्यायनीति से द्रव्य उपार्जन कर अपने कुटुम्बियों को जिमाते हैं, खिलाते हैं। भरण पोषण करते हैं किन्तु मरते समय शरीर छुटने के बाद अकेले ही दुःख भोगते हैं। उक्त कर्म के फल दुःख भोगते समय कोई साथ नहीं देता है ॥ ४ ॥ कबीर स्वामी कहते हैं कि, इस कलियुग की प्रजा बड़ी खोटी है। ठीक ही है— जो करवा = चड़वा = बधना के अन्दर रहता है वही टोटी के द्वार से निकलता है। भाव यह है कि, मनुष्य के हृदय में जो कुछ भला बुरा रहता है वही इनके मुखसे निकलता है वैसा ही आचरण करता है। इस पद को वांचने विचारने के बाद वैराग्य होता है और उसके बाद भक्ति एवं भक्ति के बाद मुक्ति होती है ॥ ५ ॥

(२)

सुनु हंसा प्यारे सरोवर तजि कहाँ जाय ॥ टे०॥१ ॥

जेहि सरोवर बिच मोतिया चुगत होते, बहुविधि केलि कराय ॥ २ ॥

सूखे ताल पुरइनि जल छाँड़े, कंवल गइल कुंभिलाय ॥ ३ ॥
कहंहिं कबीर अबही के बिछुरे, बहुरि मिलहु कब आय ॥ ४ ॥
(बीजक शब्द ३३)

हे प्रिय विवेकी हंस ! (जीव) तुम हमारी बात को सुनो कि, शरीर-रूपी सरोवर को छोड़ कर कहाँ जा रहे हो ?॥१॥ जिस मनुष्य शरीर रूप सरोवर में तुम मनुष्य उचित विषय रूप मोती चुगते थे, उपभोग करते थे और बहुत प्रकार से क्रीडा विहार आदि आनन्द विनोद करते थे उसको त्याग कर कहाँ जा रहे हो जहाँ जाते हो उसका पता है ? ॥ २ ॥ जीवात्मारूप हंस के निकल जाने पर मनुष्य शरीर रूप तालाब सूख गया और नयन रूप कमल आंसू रूप जल छोड़ने लगे और मुख रूप कमल कुम्हला गया। जैसे सरोवर में से हंस पक्षी उड़ जाता है तब सरोवर की शोभा नष्ट हो जाती है वैसे ही शरीर में से जीवात्मा जब निकल जाता है तब शरीर की सब शोभा नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥ कबीर स्वामी कहते हैं कि, अबकी बार के बिछुड़ने पर फिर पीछे आ कर कब मिलोगे ? अर्थात् वर्तमान मनुष्य शरीर के छुट जाने पर फिर कब दूसरा मनुष्य शरीर मिलेगा ? जिसमें साधन करके आत्मकल्याण करोगे ? ॥ ४ ॥

---

(३)

मरि हो रे तन का ले करिहो, प्रान छुटे बाहर लै डरिहो ॥टे०॥१॥
काया बिगुरचनि अनिबनि भांती, कोई जारै कोई गाड़ै माटी ॥ २ ॥
हिन्दू जारैं तुरक ले गाड़ैं, यहि-विधि अंत दुनौ घर छांडैं ॥ ३ ॥
करम फांस जम जालपसारा, जस धीमर मछरी गहि मारा ॥ ४ ॥

राम विना नर होइहो कैसा, बाट मांझ गोबरौरा जैसा ।। ५ ।।
कहंहि कबीर पाछे पछितैहो, या घर से जब वा घर जैहो ।। ६ ।।

(बीजक शब्द ६१)

वैराग्य के लिये अन्तकालिक दशा का वर्णन करते हैं—हे जीव ! तुम जब मरोगे तब शरीर-रक्षा के लिये क्या उपाय करोगे ? प्राण छुटने पर तो बाहर ले जाकर डाल दिये जाओगे, बाहर फेंके जाओगे ।। १ ।। जीवात्मा के नहीं रहने पर तो शरीर का अनेक प्रकार से दुर्दशा पूर्वक विनाश ही होता है। कोई इसे जलाता है और कोई मिट्टी में गाड़ देता हैं अर्थात् हिन्दू जलाते है और मुसलमान गाड़ देते हैं ।। २ ।। इसी को स्पष्ट करते हैं--हिन्दू लोग मुर्दे को ले जा कर जलाते हैं और मुसलमान लोग गाड़ देते हैं। इस प्रकार अन्त में दोनों अपने-अपने घर को छोड़ देते हैं ।। ३ ।। जिस प्रकार मछली मारने वाले केवट मछलियों को पकड़ कर मारता है उसी प्रकार यमराज कर्मों की गांठ वाले जाल को फैला कर मारता है। धीमर जैसे मछली मारता है वैसे ही यमराज जीवों को मारता है। कर्मानुसार भला बुरा फल देता है ।। ४ ।। हे नर ! राम के विना अर्थात् राम के भजन के विना तथा राम के स्वरूप जाने विना तुम्हारी कैसी दशा होगी जैसी मार्ग में आए हुए गोबरौरा की दशा होती है। गोबरौरा एक प्रकार की भ्रमर के समान बड़ी मक्खी होती है। जो कि वर्षा ऋतु में गोबर की गोली बना कर लुड़काया करती है। यह अकस्मात् किसी के पांव के नीचे या गाड़ी आदि के चक्र के नीचे पड़ कर गोली सहित नष्ट हो जाती है ।। ५ ।। कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे नर ! तुम पीछे पछताओगे जिस समय इस शरीररूपी घर से उस घर में अर्थात् शरीरान्तर में जाओगे। अथवा इस लोक से जब परलोक जाओगे। अतः जब तक मनुष्य शरीर है तब तक जो कल्याण का साधन है उसको कर लेना चाहिये ।। ६ ।।

(४)

चलहु का टेढ़ा टेढ़ो टेढ़ो ।
दशहुँ द्वार नरक भरि बूड़े, तू गंधी को वेड़ो ॥ टे० ॥ १ ॥
फूटे नयन हृदय नहिं सूझै, मति एकौ नहिं जानी ।
काम क्रोध त्रिस्ना के माते, बुडि मुयहु बिनु पानी ॥ २ ॥
जो जारे तन होय भसम धुरि, गाड़े क्रिमि किट खाई ।
सूकर स्वान काग का भोजन, तन की इहै बड़ाई ॥ ३ ॥
चेति न देखु मुगुधनल बौरे, तोहिते काल न दूरी ।
कोटिक जतन करहुँ यह तन की, अन्त अवस्था धूरी ॥ ४ ॥
बालू के घरवा महँ बैठे, चेतत नाहिं अयाना ।
कहँहिं कबीर एक राम भजे बिनु, बूड़े बहुत सयाना ॥ ५ ॥
(बीजक शब्द ७२)

हे घमण्डी मनुष्य ! तुम अभिमान से अकड़ कर टेढा टेढा क्या चलता है ? तू शरीर के दशो द्वारों में भरे हुए नरक में डूबा हुआ है। अतः दुर्गन्ध का डबल घड़ा है। पनिहारिन स्त्रियों के—मस्तक पर छोटे बड़े दो घड़े होते हैं उनको वेड़ा कहते हैं। विष्ठा से भरे मद्घट के समान यह शरीर नरक से भरा है। इस पर सौन्दर्य आदि का अभिमान व्यर्थ है ॥ १ ॥ हे अभिमानी जीव ! तुम्हारे नेत्र फूट गये हैं। हृदय के विचार रूपी नेत्र से भी सूझता-नहीं है। एक भी प्रकार की बुद्धि को प्राप्त नहीं किया। काम-क्रोध तथा तृष्णा रूपी मद से माते हुए पानी विना के तालाव आदि जलाशय में डूब मरो। विना पदार्थ के मिथ्या संसार में आसक्ति कर डूब कर मर रहे हो ॥ २ ॥ यदि जलाया जाय

तब यह शरीर भस्म तथा धूलि हो जाता है और यदि गाड़ दिया जाय तो कृमि कीट खा जाता है। सियार, कुत्ता तथा काक का भोजन है। ऐसे शरीर की यही तो बड़ाई है ॥ ३ ॥ हे अज्ञानी प्रमादी नर! तुम चेतता क्यों नहीं है? तुम्हारे से काल=मृत्यु दूर नहीं है। तुम इस शरीर को बचाने के लिये करोड़ो यत्न करो किन्तु अन्त में तो इसकी अवस्था धूल ही है। अर्थात् अन्त में तो यह शरीर धूल में ही मिलने वाला है ॥ ४॥ हे नर! तुम बालू के घर में बैठे हुए हो। चेतते नहीं हो जैसे बालू की भीत पानी पड़ते ही गिर जाती है वैसे ही यह क्षणभङ्गुर शरीर गिर जाता है। कबीर स्वामी कहते हैं कि, एक राम को भजे विना चतुराई करने वाले असंख्य लोग संसार सागर में डूब मरे हैं ॥ ५ ॥

---

(५)

फिरहु का फूले फूले फूले।
जब दस मास अउँध मुख होते, सो दिन काहेको भूले ॥टे०॥१॥
जौं माखीं सहतें नहिं बिहुरे, सोंच सोंच धन कीन्हा।
मुये पिछे लेहुलेहु करैं सब, भूत रहनि कस दीन्हा ॥ २ ॥
जारे देह भसम होई जाई, गाड़े माँटी खाई।
कांचे कुंभ उदक जौं भरिया, तनकी इहै बड़ाई ॥ ३ ॥
देहरि लौं वर नारि संगि है, आगे संग सुहेला।
म्रितक थान लौं संग खटोला, फिरि पुनि हंस अकेला ॥ ४ ॥
नाम रमसि मोह के माते, परेहु काल वसि कूवा।
कहँहिं कबीर नल आपु बँधायो, जौं ललनी भ्रम-सूवा ॥ ५ ॥

(बीजक शब्द ७३)

हे नर ! तुम फूले-फूले क्या फिरते हो अर्थात् अपने शरीर के गर्व और सुन्दरता से प्रमत्त होकर तुम फूले-फूले क्या घूम रहे हो। जिस समय तुम माता के गर्भ में दस मास तक अउँधे मुख था उस दिन को किस कारण तुम भूल गये हो ॥ १ ॥ हे मोह मद मत्त जीव! जैसे मधुमखियां मधु=शहद से पृथक् नहीं होती हैं किन्तु लगे ही रहती हैं। परन्तु उसका उपभोग नहीं कर—पाती हैं। दूसरे ले जाते हैं। वे संग्रह करती है और दूसरे उसको खा जाते हैं वैसे ही तुम भी सञ्चय कर करके अर्थात् खाया नहीं और किसी को खिलाया भी नहीं किन्तु पेट काट काट कर धन का संग्रह किया है। मरने के बाद तुम्हारे संबन्धी सब कहेंगे कि इसका सब धन लेलो ऐसा कहेंगे अथवा इस मुर्दे को जल्दी उठाओ। भूत को अभी तक रहने कैसे दिया है ? 'मुर्दे को अधिक समय तक रहने देने से वह भूत हो जाता है' ऐसी लोक की मान्यता है ॥ २ ॥ इस देह को जला देने पर भस्म हो जाता है और गाड़ देने पर मिट्टी खा जाती है। जैसे कच्चे घड़े में जल भर देने पर वह गल जाता है और जल निकल जाता है वैसे ही शरीर की दशा है। क्षणभङ्गुर है ॥ ३ ॥ प्रिय से प्रिय सुन्दर स्त्री घर की देहली तक साथी है। उसके आगे इष्ट मित्र साथी है और श्मशान तक खटिया या ठठरी साथी है। उसके आगे इस जीव को अकेला ही जाना पड़ता है। जिन स्नेहियों पर राग है उनके प्रति वैराग्य के लिये यह वचन है ॥ ४ ॥ हे मोह मदिरा के मतवाले जीव! राम में रमण क्यों नहीं करते हो काल के वश में पड़ कर भंवकूप में पड़े हो। कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे नर! तुम अपने आप भवबन्धन में पड़ गये हो। जैसे शुकपक्षी भ्रम से वांस की नली में बन्ध जाता है ॥ ५ ॥

---

(६)

बन्दे करिले आप-निबेरा ।

आपु जियत लखु आपु ठवर करु, मुये कहाँ घर तेरा ।।टे०।।१।।

यहि अवसर नहिं चेतहु प्रानी, अन्त कोई नहीं तेरा ।

कहँहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, कठिन काल का घेरा ।। २ ।।

(बीजक शब्द ८०)

हे बंदे ! तुम अपना निबेर आप कर ले। अपने स्वरूप का साक्षात्कार आपकर ले । जीते जी अपने आप लख ले । भली-भाँति समझ ले और अपने आप के रहने की स्थिति कर ले। मरने के बाद तेरा रहने का स्थान कहाँ होगा ।। १ ।। हे प्राणी ! यदि तुम इस असूल्य अवसर प्राप्त कर नहीं चेतोगे तो अन्त समय तेरा रक्षक कोई नहीं होगा । स्त्री, पुत्र परिवार तथा धन सम्पत्ति आदि सब यहीं छुट जायेंगे । कबीर स्वामी कहते हैं—हे सन्तजन ! आप लोग सुनिये कि काल का आक्रमण बड़ा भयङ्कर है । ज्ञान द्वारा ईश्वर प्राप्ति किये बिना शरीर छोड़ने पर काल के गाल में जाना ही पड़ेगा ।। २ ।।



(७)

भूला-लोग कहैं घर मेरा ।

जा घरवा महँ भूला डोलै, सो घर नाहीं तेरा ।। टे०।। १ ।।

हाथी घोड़ा बैल वाहनो, संग्रह कियो घनेरा ।

बस्ती महँ से दियो खदेरा, जंगल कियो बसेरा ।। २ ।।

गाँठि बाँधि खरच नहिं पठयो, बहुरि कियो नहि फेरा ।
बीबी बाहर हरम महल में, बीच मियाँ का डेरा ॥ ३ ॥
नौ मन सूत अरुझि नहिं सुरझै, जनम जनम अरुझेरा ।
कहँहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, पद का करहु निबेरा ॥ ४ ॥
(बीजक शब्द ८५)

गृहादि में आसक्ति का त्याग करने का उपदेश देते हैं—अज्ञानी लोग कहते हैं कि यह घर मेरा है। परन्तु विचार किया जाय तो हे जीव ! जिस घर में तुम लोग भूले हुए डोलते फिरते हो वह घर तुम्हारा नहीं है। यहाँ घर शब्द से गृह और शरीर दोनों का ग्रहण है। क्योंकि, जीव दोनों में रह कर आसक्ति करता है मनुष्य ने सुख उपभोग के लिये हाथी, घोड़े तथा बैल आदि वाहनों का भारी संग्रह किया परन्तु मरने पर वह अकेला बस्ती में से खदेड़ दिया जाता है, निकाल दिया जाता है। तब उसने वन में जाकर निवास किया। हाथी आदि सब साधन यहीं रह गये ॥ २ ॥ मृत मनुष्य के निर्वाह के लिये पुत्रादि कों ने गठड़ी बाँध कर खर्चा नहीं भेजा और न वह फिर से पुरा ही किया। मर कर गया हुआ मनुष्य पीछे लौट कर नहीं आयेगा जैसे कोई मियाँ अपनी बीबी को बाहर रखे और वेश्या को महल में एवं स्वयं उन दोनों के बीच रहे तो उसको कभी सुख नहीं मिलता है। वैसे ही यह जीव रूप मियाँ ने सुमति रूप अपनी बीबी को अन्तःकरण से बाहर विषय की तरफ कर दिया है और कुमति रूप वेश्या को अन्तःकरण रूप महल में रखा है। उन सुमति और कुमति के बीच में जीव रूप मियाँ का डेरा है। ऐसी स्थिति में इसको भी कभी सुख नहीं मिल सकता है। अथवा भीतर अविद्या और बाहर माया उनके बीच में जीव का डेरा है। इसी लिये जीव कभी सुखी नहीं होता है ॥ ३ ॥ श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण, ये पांच ज्ञानेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, ये चार

अन्तःकरण सब मिलाकर नौ मन सूत का ताना बाना उरझ कर गठियां गया है। सुरझाये से भी नहीं सुरझता है। इतना ही नहीं किन्तु अनेक जन्मों से उरझता ही आया है। यथोक्त इन्द्रियाँ विषयों में उलझ गई हैं। कबीर स्वामी कहते हैं–हे सन्तजन! आप इस उलझने के सुलझाने का उपाय सुनिये और इस पद का निर्णय करिये ॥ ४ ॥

---

(८)

सुभागे काहि कारन लोभ लागे, रतन जन्म खोयो।
पुरब जन्म भूमि कारन, बीज काहे का बोंयो ॥ टे० ॥ १ ॥
बूंद से जिन्हि पिंड सँजोयो, अगिनि कुंड रहाया।
दसै मास माता के गरभे, बहुरी लागल माया ॥ २ ॥
बारहु ते पुनि बिरध हुआ है, होनि रहा सो हूआ।
जब जमु ऐहैं बांधि चलै हैं, नैन भरि भरि रोया ॥ ३ ॥
जीवन की जनि राखहु आसा, काल धरे हैं सांसा।
बाजी है संसार कबोरा, चित चेति ढारो पांसा ॥ ४ ॥

(बीजक शब्द ८९)

चेतावनी–हे भाग्यशाली जन! आप लोगों ने किस कारण लोभ में लग कर रत्न स्वरूप मनुष्य जन्म को खो दिया है। पूर्व जन्म के कर्म भूमि के कारण कर्मानुसार जन्म लेना पड़ा है। फिर उसी बीज को क्यों बो रहे हो ॥१॥ जिन पूर्व जन्मों के शुभाशुभ कर्मों ने माता पिता के रजोवीर्य से शरीर की रचना की, माता के गर्भाशय में जठराग्निकुण्ड में

रखा। दश मास तक माता के गर्भ में रहने के पश्चात् तुम बाहर आये और फिर भी तुम्हें माया लग गई ॥ २ ॥ बालक से फिर वृद्ध हो हो गया है। जो कुछ होना था सो हुआ। अन्त समय जब यमराज आवेंगे तुम्हें बाँध कर ले चलेंगे तब तुम नेत्रों में आंसु भर भर कर रोओगे ॥ ३ ॥ तुम अपने जीवन की कोई आशा न रखो, क्योंकि, तुम्हारी श्वास रूपी रस्सी को काल पकड़ कर खींच रहा है। हे जीव! यह संसार कर्मों की बाजी है। अर्थात् इस संसार में कर्म करना एक प्रकार का जूवा खेलना है। अतः मन में विचार कर पासा फेंको। जो कल्याण का हेतु हो उसी कर्म को करो ॥ ४ ॥

---

(६)

तन धरि सुखिया काहुँ न देखा, जो देखा सो दुखिया।
उदै अस्त की बात कहत हौं, ताकर करहु विवेका ॥टे०॥ १ ॥
बाटे बाटे सभ कोई दुखिया, का गिरही बैरागी।
शुकाचार्ज दुःख ही के कारन, गरभहिं माया त्यागी ॥ २ ॥
जोगी जंगम ते अति दुखिया, तपसी को दुख दूना।
आसा तृस्ना सभ घट व्यापै, कोई महल नहिं सूना ॥ ३ ॥
सांच कहौं तो सभ जग खीझै, झूठ कहा नहिं जाई।
कहँहिं कबीर तेई भौ दुखिया, जिन्हि यह राह चलाई ॥ ४ ॥

(बीजक शब्द ६१)

भजन की कर्तव्यता—इस संसार में शरीर धारण कर कहीं किसी को सुखी नहीं देखा। जो कोई प्राणी देखा गया वह दुःखी ही देखा

गया। यह मैं उदय से लेकर अस्त तक की बात कर रहा हूँ। उसका विचार आप लोग स्वयं करें। यद्यपि दुःख अमङ्गल रूप है, उसका विचार करना समुचित नहीं तथापि हेयरूप से दुःख का विचार दुःख-निवृत्ति का हेतु है। अतः परम मङ्गलरूप है ॥ १ ॥ प्रत्येक सकाम कर्म-मार्ग में चलने वाले सब कोई दुःखी हैं। वे चाहे गृहस्थी हों या गृह-त्यागी संन्यासी। माया और अविद्या दोनों एक ही पदार्थ हैं। अविद्या का कार्य कर्म है। और कर्म दुःख का हेतु है। अत एव ब्रह्मविद्या के आचार्य शुकदेवजी ने गर्भ ही से माया का त्याग किया था ॥ २ ॥ जो योगी लोग और जङ्गम शैव लिङ्गायत हैं, वे अत्यन्त दुःखी हैं। और तपस्वियों को तो एक शारीरिक रोगादिजन्य और दूसरा तपोजन्य इस प्रकार दूना दुःख है। क्योंकि, इनके हृदय में दुःख के हेतु आशातृष्णा व्याप्त हो रही है। इससे कोई हृदयरूप महल खाली नहीं है ॥ ३ ॥ यदि मैं सत्य कहता हूँ तो सर्व संसार खीज जाता है=क्रोधित हो जाता है और मुझसे झूठ तो कहा नहीं जाता है। कबीर स्वामी कहते हैं कि, वे ही दुःखी हो गये हैं—जिन सृष्टिकर्ता ब्रह्मादिकों ने संसार के हेतुभूत इस सकाम कर्ममार्ग को चलाया है। अर्थात् सकाम कर्म का विधान करने वाला और सकाम कर्म करने वाला ये दोनों संसार बन्धन में पड़कर दुःखी हैं। अतः सकाम कर्म का त्याग कर निष्काम कर्म द्वारा चित्त शुद्ध कर गुरु से ज्ञान प्राप्त कर आत्मा का कल्याण करना चाहिये ॥ ४ ॥



(१०)

अब कहँ चलेहु अकेले मीता, उठहु न करहु घरहु की चिंता ॥टे० ॥१॥

खीरि खांड घ्रित पिंड सँवारा, सो तन लै बाहरि करि डारा ॥२॥

जिहि-सिर रचि रचि बांधेउ पागा, सो सिर-रतन बिडारत कागा ॥३॥

हाड़ जरैं जस लकरी झूरी, केस जरैं जस घास की पूरी ॥४॥
आवत संग न जात संगाती, काह भये दल बांधल हाथी ॥५॥
माया के रस लेन न पाया, अंतर जम्रु बिलारि होय धाया ॥६॥
कहँहिं कबीर नल अजहु न जागा, जम का मुदगर मँझ-सिर लागा ।७।

(बीजक शब्द ९९)

वैराग्य के लिये अन्तिम अवस्था का वर्णन है— प्रपञ्ची मित्र ! अब अकेले कहाँ जा रहे हो। उठो न। असली घर की चिन्ता करो। तुम्हारा घर यहाँ नहीं किन्तु सत्यलोक में है। अतः सत्यलोक–जाने का साधन करो। शरीर को त्यागकर अकेले कहां जा रहे हो। जिन स्त्री पुत्र धनादि को अपना साथी समझते थे उनको साथ लिये बिना अकेले कहां जा रहे हो ? ॥ १ ॥ हे अज्ञानी नर ! जिस शरीर को तुमने खीर खांड़ और घृत से मोटा ताजा बनाया था, वही तेरा शरीर तुम्हारे सम्बन्धियों द्वारा बाहर डाल दिया गया। भाव यह है कि, जिस दिन तुम मरोगे उस दिन यह शरीर साथ नहीं आयगा। घर में भी रहने नहीं पायगा। बाहर फेंका जायगा ॥ २ ॥ जिस सिर पर तू संवार-संवार कर पगड़ी बांधता है उसी सिर रूप रत्न को काग विदारण करेगा ॥ ३ ॥ मृत शरीर की हड्डियाँ जैसे लकड़ी झूरी जलती है वैसे ही जलेगी और केश जैसे घास की पूली जलती है वैसे ही जलेगा ॥ ४ ॥ जीवात्मा के पूर्व शरीर को त्याग कर इस शरीर में आते समय किसी का संग नहीं होता है। और इस शरीर को त्यागकर उत्तर शरीर में जाते समय कोई संघाती नहीं होता है। कोई साथ नहीं जाता है तो हाथियों के समूह अर्थात् झूण्ड के झूण्ड बांधने से क्या हुआ ? जब कोई साथ नहीं जाता है तो हाथी घोड़े के दल बांधने से क्या लाभ ?। कुछ नहीं ॥ ५ ॥ इस जीव ने जिस माया का संग्रह किया, आसक्ति किया उसका आनन्द लेने नहीं पाया और बीच ही में जीव रूप चूहे को

पकड़ने के लिये यमराज बिलाड़ा होकर दौड़ पड़ा। प्रारब्ध से अधिक भोग नहीं मिलता है और प्रारब्ध समाप्तहोने पर शरीर छूट जाता है ॥६॥ कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे नर, तुम अज्ञान निद्रा से अभी भी अर्थात् वृद्ध अवस्था हो गई तो भी नहीं जगे हो। विषयों का त्याग नहीं किये हो। इससे तुम यह निश्चित समझो कि, यमराज का मुद्गर तुम्हारे बीच सिर में लग गया है। अर्थात् शरीर छूटने पर यमराज तुम्हारे सिर पर गदा का प्रहार करेगा ॥ ७ ॥

---

(११)

पानी बीच बतासा सन्तो, तन का यही तमासा है ॥टे०॥ १ ॥
कही से आया कहां जायगा, क्यों बैठे पछताता है।
मूठी बांधे आया बन्दे, हाथ पसारे जाता है ॥ २ ॥
किसकी नारी कौन पुरुष, कहां से नाता लाता है।
बड़े बिहाल खबर नहिं तनकी, बिरही लहर बुझाता है॥ ३ ॥
एक दिन जीना दो दिन जीना, जीना बरस पचासा है।
अन्तकाल बीसा सौ जीना, फिर मरने की आसा है ॥ ४ ॥
ज्यों ज्यों पांव धरो-धरनी में, त्यों त्यों काल नियराता है।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधु, गाफिल गोता खाता है ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

हे सन्तजन! जैसे जल में बतासा क्षण मात्र में गल जाता है वैसे ही यह शरीर क्षणमात्र में गल जाता है। नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

हे वन्दा जीव ! तू कहाँ से आया है और कहाँ जायगा, इसका भान तुझे है ? अर्थात् नहीं। तू बैठे बैठे पश्चात्ताप क्या करता है ? जीव गर्भ से मूठी वांधकर आता है और जब जाता है तब हाथ पसार कर जाता है। खाली हाथ जाता है। कोई वस्तु इसके साथ नहीं जाती है ॥ २ ॥ परमार्थ से न कोई किसी की स्त्री है और न कोई किसी का पुरुष। तू कहाँ से ये सब सम्बन्ध जोड़ कर आया है ? तू ऐसे बड़े वेहाल हो कि, तुझे शरीर की भी खबर नहीं है। भगवद् विषयक विरहाग्नि की लहर को बुझा रहे हो ॥ ३ ॥ एक दिन जीना है, दो दिन जीना है, पचास वर्ष जीना है, यहाँ तक कि, एक सौ बीस वर्ष तक जीना है, आखीर एक दिन तो मरना ही है ॥ ४ ॥ जैसे-जैसे पृथिवी पर पांव बढ़ाते हो वैसे वैसे काल भगवान् निकट आता जाता है। कवीर स्वामी कहते हैं कि, हे साधुवन्धुओ ! आप सुनिये कि, ये संसारी जीव गाफिल हैं, बेभान हैं। अतः संसार सागर में गोता लगा रहे हैं जनमते मरते रहते हैं ॥५॥

---

(१२)

इस तन धन की कौन बड़ाई, देखत नैनों से माटी मिलाई ॥टे०॥ १ ॥
कंकड़ चुनि चुनि महल बनाया, आप जाय जंगल बिच सोया ॥ २ ॥
हाड़ जरे जस लकरी झूरी, केस जरे जस घास के पूरी ॥ ३ ॥
यह तन धन कछु काम न आई, ताते नाम जपो लौ लाई ॥ ४ ॥
कहहिं कबीर सुनो मोरे मुनियाँ, आप मुये पिछे डूब गई दुनियाँ ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

सद्गुरु कहते हैं कि, हे संसारी जीव ! इस शरीर और धनादिपदार्थों की क्या प्रशंसा है ? ये स्थायी तो है नहीं। क्योंकि नेत्र से देखते देखते

शरीर मिट्टी में मिल जाता है। धन भी चला जाता है, क्योंकि, लक्ष्मी चला है ॥ १ ॥ बहुत परिश्रम से कंकड़ इटे चुना आदि को चुन चुन कर इकट्ठा करके महल (मकान) बनाया जाता है। परन्तु एक दिन ऐसा आता है कि जंगल में जाकर सोना पड़ता है। लोग श्मशान में ले जाकर जला देते हैं ॥ २ ॥ जब मृत शरीर चिता पर धर कर अग्नि लगा दी जाती है, तब अस्थि लकड़ी की भूरी के समान और केश घास की पुली के समान जलने लगता है एक क्षण में सब जल कर भस्म हो जाते हैं ॥ ३ ॥ उक्त तन तथा धन आत्मा के किसी काम नहीं आते हैं। इस लिये हे जीव ! भगवान् के नाम का जप क्षण क्षण चित्त लगाकर करो ॥ ४ ॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं हे मेरे मन ! तू सुन. मेरे मरने पर मेरे सम्बन्धियों की तथा गृह पशु धनादि की क्या दशा होगी ? इस प्रकार की चिन्ता तू क्यों करता है। अपने मर जाने पर सारी दुनिया डूब गई ऐसा समझ। जब तक तुम हो तभी तक सब कुछ है, तुम नहीं तो कुछ नहीं। जब सृष्टिदृष्टि नहीं तो सृष्टि भी नहीं। दृष्टि-सृष्टि वाद अद्वैत वेदान्त का परम सिद्धान्त है ॥ ५ ॥

---

(१३)

करो रे बन्दे वा दिन की ततबीर ॥ टेक ॥ १ ॥

लाल खम्भ पर देत ताड़ना, सहि नहिं सके शरीर ।
मार मार मुगदर प्रान निकासै, नैनन भर आये नीर ॥ २ ॥

रंग महल में कामिनि बैठी, कर सिंगार गंभीर ।
दौलत दुनिया महल खजाना, संग न जात शरीर ॥ ३

भवसागर के राह कठिन है, नदिया अति गंभीर ।
नाव न बेड़ा लोग घनेरा, खेवनहार बेपीर ॥ ४ ॥
जब यमराजा पकरि मंगवे, पांव में परे जंजीर ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधु, अब न करब तकसीर ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

हे बन्दा जीव ! तुम उस दिन होने वाले दुःख की निवृत्ति का उपाय करो ॥ १ ॥ यमराज के दूत अग्नि में तपा कर लाल किये हुए स्तम्भ में बांध कर तुम्हे ताड़ना देगा, यमयातना देगा तब तुम्हारा शरीर उसको सह नहीं सकेगा । अन्त समय मुदगर मार मार कर तुम्हारे प्राण निकाले जायंगे तब तुम्हारे नेत्रों में जल भर आयगा ॥ २ ॥ तुम्हारे विलास के महल में सुन्दर शृङ्गार करके कामुकी स्त्री बैठी है । तुम्हारे पास दुनिया की दौलत पड़ी है, महल है और खजाना है, इन सबकी तो बात क्या तुम्हारा शरीर भी तुम्हारे साथ नहीं जाने वाला है ॥ ३ ॥ संसार सागर का रास्ता बड़ा कठिन है । भवनदी बहुत गंभीर गहिरी है । पार जाने के लिये नाव बेड़ा आदि कुछ भी साधन नहीं है । बहुत लोगों की भीड़ लगी रहती है । कदाचित् कोई नाव मिल भी जाय तो उसके खेवने वाला केवट बड़ा बेदर्दी है । किसी प्रकार यमयातना सहते हुए यमपुरी पहुंच भी जाओगे तो जब यमराज अपने दरबार में पकड़ मंगायेगा तब तुम्हारे पैर में बेड़ी डाल दी जायगी । कबीर स्वामी कहते है कि, हे साधुभाई ! आप लोग सुनो । अब फिर ऐसा कर्म न करें जिससे यमपुरी जाकर यमयातना भोगना पड़े ॥ ५ ॥

(१४)

रहना है होशियार नगर में, एक दिन चोरवा आवेगा ॥ टे०॥ १ ॥
तोप तीर तलवार न बरछा, नाहीं बन्दूक चलावेगा ।
आयत जात लखे नहिं कोई, घर में धूम मचावेगा ॥ २ ॥
ना गढ़ तोड़े ना गढ़ फोड़े, ना वह रूप दिखावेगा ।
नगरी से कुछ काम नहीं है, तुझे पकड़ ले जावेगा ॥ ३ ॥
नहिं फिरि याद सुनेगा तेरी, तुझे न कोई बचावेगा ।
लोग कुटुम्ब परिवार घनेरे, एक भी काम न आवेगा ॥ ४ ॥
सुख सम्पत्ति धन धाम बड़ाई, त्याग सकल तू जावेगा।
ढूंढे पता लगे नहीं तेरा; खोजी खोज न पावेगा ॥ ५ ॥
है कोई ऐसा सन्त विवेकी; हरि गुण आय सुनावेगा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधु; खोल किंवारी जावेगा ॥ ६ ॥
(भवसागर तरी जावेगा) (शब्दावलि)

सद्गुरु कहते हैं कि, हे मुमुक्षुओ ! आप को इस मनुष्य शरीर रूपी नगर में सचेत होकर रहना है। क्योंकि, एक दिन यमराज रूप चोर आत्म धन चुराने के लिये अवश्य आवेगा ॥ १ ॥ वह तोप, तीर, तलवार और बरछी नहीं चलावेगा और न बन्दूक ही चलावेगा। उसको आते जाते कोई देख नहीं सकता है। यह शरीर रूपी घर में घुस कर बड़ी भारी धूम उपद्रव मचावेगा ॥ २ ॥ वह न तो शरीर रूपी गढ को तोड़ेगा, न फाड़ेगा और न वह अपना रूप ही दिखावेगा। अलक्ष्य रह कर अपना सब काम करेगा। उसको शरीर रूप नगरी से कोई मतलब नहीं। केवल तुम्हें पकड़ कर ले जायगा ॥ ३ ॥ तुम्हारी फिर याद

(प्रार्थना) को वह नहीं सुनेगा। उस समय कोई तुम्हे बचावेगा नहीं। तुम्हारे कुटुम्ब परिवार के लोग बहुत हैं, परन्तु उनमें से एक भी तुम्हारे काम में नहीं आयेगा ॥ ४ ॥ तुम सुख-सम्पत्ति, धन-धाम आदि सकल पदार्थ को त्याग कर यहां से जायेगा। किसी को साथ लेकर नहीं जायेगा। बहुत अन्वेषण (खोज) करने पर भी तुम्हारा पता नहीं चलेगा कि, तुम कहा हो। खोजने वाला खोज नहीं सकेगा ॥ ५ ॥ जब ऐसा कोई विवेकी सन्त आवे और आकर हरि के गुणानुवाद को सुनावे सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, तब तुम द्वार खोलकर जायेगा और संसार सागर से पार हो जायेगा ॥ ६ ॥

---

(१५)

खबर नहिं या जुग में पलकी—
सुकृत करले नाम सुमर ले, को जाने कलकी ॥टे०॥ १ ॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, बात करे छलकी ।
पाप गठरिया है सिर ऊपर, कैसे होय हलकी ॥ २ ॥
तारा मण्डल रवि चन्द्रमा, जोति झलामलकी ।
जब ही हंसा करत पयाना, माटी जंगलकी ॥ ३ ॥
मात पिता परिवार भाईबंद, तिरिया मतलबकी ।
माया लोभी नगर बसत है, ये अपने कबकी ॥ ४ ॥
यह संसार रैन का सपना, ओसबुन्द झलकी ।
कहैं कबीर भवजल तरने में, ताकत गुरुवर की ॥ ५ ॥
(शब्दावलि)

इस युग में एक पल की खबर नहीं है कि, पल के बाद क्या होने वाला है। अतः हे सज्जनो! आप लोग जैसे वैसे शीघ्रातिशीघ्र सुकृत कर्म कर लो और भगवन्नाम स्मरण कर लो, क्योंकि क्या खबर कि, कल क्या होने वाला है?॥ १ ॥ संसारी लोगों ने कोड़ी-कोड़ी करके माया जोड़ रखी है, छल कपट की बात करते हैं, पाप की गठड़ी बहुत वजनदार इनके सिर पर रखी है, वह हलकी कैसे होगी॥ २ ॥ सूर्य, चन्द्र तथा तारा आदि ज्योतिर्मयपदार्थ के समान ये लोग झलमल झलमल चमकते हुए दिखाई देते हैं, परन्तु जब आत्मा इस शरीर से निकल कर शरीरान्तर में जायगी तब वही चमकने वाला शरीर जंगल मिट्टी हो जायगा॥ ३ ॥ परिवार के सब माता पिता भाई बन्धु तथा स्त्री आदि अपने मतलब के साथी हैं। सब स्वार्थी हैं तो अन्य सब लोभी लोग जो नगर में वास करते हैं वे अपना कब होने वाले हैं॥ ४ ॥ यह संसार रात्रि के स्वप्न समान है. ओस के बुन्द के समान स्वल्पकाल के लिये झलकता है। सद्गुरु कहते हैं कि, संसार सागर से पार उतरने में श्रेष्ठ गुरु का बल चाहिये। गुरु विना भवनिधि से कोई तर नहीं सकता है॥ ५ ॥

---

(१६)

कैसी कुमति कमाई रामा, हीरा तन पाई॥ टे० ॥ १ ॥
जो दश मास उदर में राखी, नरक योनि भुगताई रामा।
नरक योनि से बाहर काढ़ी, सोई माता की तुम सुधी बिसराई॥ २ ॥
बालापन तो खेल में खोई, पीछे जवानो आई रामा।
काम देव नैनो में छायो, मातपित पर लात चलाई रे॥ ३ ॥

वृद्ध भये कफ वात ने घेरे, बाहर खाट बिछाई रामा।
पाड़ पड़ोसिनि देखन आवे, घर के कहत तोको मौत न आई ॥ ४ ॥
भवसागर की अगम बात है, वा से पार न पाई रामा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधु, अब छाड़ि चले सबरी ठकुराई ॥ ५ ॥
(शब्दावलि)

हे जीव ! तुम ने हीरा समान मनुष्य शरीर प्राप्त कर दुष्ट बुद्धि कैसी कमाई है ॥ १ ॥ जिसने दश महिना पेट में रखकर नरक योनी भुक्ताई और नरक योनी से बाहर किया उस माता को तुम भूल गये ॥२॥ तुमने बालपन खेल में खो दिया। बाद जवानी आई, तुम्हारे नेत्रों में काम व्याप्त हुआ तब तुमने माता पिता पर लात चलाई ॥ ३ ॥ जब तु वृद्ध हुआ, तुमको वात पीत कफने घेर लिया, विशेष प्रमाण में कफ निकलने लगा तब घर के लोगों ने तुम्हारी टूटी खटिया को घर से बाहर बिछा दिया. अड़ोस पड़ोस के लोग दुखी हालत में तुमको देखने को आने लगे और घर के लोग कहने लगे कि, तुम्हारे लिये मौत भी नहीं आती है ॥४॥ संसार सागर की बात अगम है। उसको कोई जान नहीं सकता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे साधु-बन्धुओ ! आप लोग सुनिये वह पुरुष सब मालिकी हक को त्याग कर सदा के लिये चला जाता है। अतः अमूल्य रत्न-मनुष्य शरीर का प्राप्त कर ऐसा साधन करना चाहिये जिससे पुनः शरीर धारण कर जन्म मरण में न आना पड़े ॥५॥

---

(१७)

कब भजिहो सतनाम मेरे मन कब भजिहो सतनाम ॥ टे० ॥ १ ॥
बालापन तो खेल में खोयो ज्वानि में व्याप्यो काम।
विरिध भयो तन कांपन लाग्यो लटकन लाग्यो चाम ॥ २ ॥

घर की नारि विमुख हो बैठी पूत करत बदनाम।
बड़ बडात है निसदिन बुढ़वा अटपट आठो जाम ॥ ३ ॥
लाठी टेकि चलत मारग में सह्यो जात नहिं धाम।
कानन बहिर नैन नहिं सूझे, दाँत भयो बेकाम ॥ ४ ॥
खटिया से भूमी पर धरि हैं, छूटि जात धन धाम।
कहैं कबीर तब का तुम करिहो (जब) परिहैं जमसे काम ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

हे मन! तू परमात्मा का भजन कब करेगा ? ॥ १ ॥ तूने बाल अवस्था खेल कूद में व्यतीत किया, युवावस्था में तुमको काम व्याप्त हुआ, और वृद्ध अवस्था में शरीर कंपने लगा तथा चमड़ी सब लटक गई। अब भगवान् का भजन कब करोगे ? ॥ २ ॥ तुम्हारी घरनी तुमसे विमुख होकर बैठी है। तुम्हारा पुत्र तुम को अपमानित = बार-बार तिरस्कार करता है और कहता है कि, यह बूढा दिन रात आठो पहर अटपट बोलता रहता है। अपमानित होकर भी भजन नहीं करता है, कब करोगे ? ॥ ३ ॥ तू मार्ग में लकड़ी के सहारे चलता है, तुमको धूप सहन नहीं होती है, कान से बहिरे, आंख से अन्धे हो चुके हो और तुम्हारे सब दाँत बेकाम हो चुके हैं। अब भजन कब करोगे ? ॥४॥ जब शरीर छूटने को होगा तब लोग खटिया से पृथ्वी पर धर देंगे, तुम्हारे धन धाम सब छूट जायेंगे, सद्गुरु कबीर कहते हैं कि उस दिन तू क्या करेगा जिस दिन यमराज से काम पड़ेगा ?। यम यातना भोग कर फिर जन्ममरण रूप संसार में आयगा। अतः इस दुःख से मुक्त होने के लिये तू कब श्रीराम को भजोगे ? ॥ ५ ॥

---

(१८)

जा दिन मनपंछी उड़ि जैहैं ।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सभे पात झरि जैहैं ॥ टे० ॥ १ ॥
यह देहिया के गर्व न करिये स्यार काग गिध खैहैं ।
तन गति तीन विष्ठा कृमी हैं, नातर खाक उड़ैहैं ॥ २ ॥
कहाँ यह नैन कहाँ यह शोभा, कहाँ यह रूप देखैहैं ।
चमक चांदनी कहाँ रहेगो, केहि देखि मन ललचैहैं ॥ ३ ॥
जेहि लोगन से नेह करत है, सोई देखि घिनैहैं ।
घर के कहे सबेरे काढ़ो, भूत होय धरि खैहैं ॥ ४ ॥
जेहि पुत्रन को बहु प्रतिपाल्यो, देवी देव मनैहैं ।
सो ले बांस दिये खोपड़ी में, सिर फोरि कै बिखरैहैं ॥ ५ ॥
अजहूँ मूढ करै संत संगति, (तो) सन्तन में कछु पैहैं ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधु, आवा गँवन नसैहैं ॥ ६ ॥

(शब्दावलि)

हे मनुष्य शरीर धारी जीव ! जिस दिन मन रूपी पक्षी इस शरीर में से उड़ कर चला जायगा उस दिन इस शरीर रूपी वृक्ष के इन्द्रिय प्राणादि सभी पत्र झर जायेंगे। जैसे ग्रीष्म ऋतु में जब वृक्षों के सभी पत्ते गिर जाते हैं तब वृक्षों की शोभा नष्ट हो जाती है। वैसे ही शरीर में से मन इन्द्रिय प्राणादि के निकल जाने पर शरीर की शोभा भी नष्ट हो जाती है॥ १ ॥ इस शरीर को देख कर अभिमान नहीं करना चाहिये क्योंकि, इसको तो उस दिन सियार, काक तथा गिद्ध आदि खा जाने

वाले हैं। इस शरीर की तीन ही तो गति हैं, विष्ठा, कृमि या राख ॥२॥ उस दिन यह नेत्र कहां, यह शोभा कहां और यह रूप कहां दिखाओगे? यह चमक दमक रूप सुन्दरता भी कहां रहेगी?। जब तुम्हीं नहीं रहोगे तब किस को (स्त्री आदि को) देखकर मन ललचाओगे? ॥ ३ ॥ जिन लोगों से तुम प्रेम करते हो वे ही तुमको देख कर घृणा करेंगे और तुम्हारे घर के लोग तो यह कहेंगे कि, शीघ्र इसको बाहर निकालो नहीं तो भूत होकर सबको पकड़ पकड़ कर खा जायगा ॥ ४ ॥ जिन पुत्रों को तुमने बहुत परिश्रम से पाला पोषा है, उनके जीने के लिये देवी देवादि को मनाया है वे ही बांस लेकर तुम्हारी खोपड़ी को दे मारेंगे और शीघ्र जलने के लिये सिर को फोड़ कर बिखेर देंगे ॥ ५ ॥ इनसे तुमको कोई लाभ नहीं। हे मूढ़! तुम अभी भी यदि सत्संगति करे तो सन्तों से कुछ अवश्य पायेगा उपदेश मिलेगा, + ज्ञान होगा और तुम्हारा जन्ममरण नष्ट हो जायगा ॥ ६ ॥

---

(१९)

नर सुमिरहु सिरजनहार, मानुष तन पायके ॥टे०॥ १ ॥
कैसे रहत अचेत, कबे फिर अवसर पैहो;
फिर न मिलै अस दाव, बहुरि पीछे पछतैहो।
लख चौरासी जीव-योनि में, मानुष जन्म अनूप;
ताहि पाय चतत नहीं, कहाँ रंक कहँ भूप ॥ २ ।
गर्भ वास में कौल किया, मैं भजिहौं तोही;
निशदिन सुमिरों नाम, कष्ट से काढ़ो मोही।

एक राम को जानि के, रहौं नाम लवलाय;
नेक न तोहि विसारिहौं, यह तन रहे कि जाय॥ ३ ॥

इतना किया करार, काढि प्रभु बाहर कीन्हा;
भूल गई यह बात, भये माया आधीना।
भूली बतिया वा दिन की जब आगई मतिया आन;
बारह बरस तो ऐसहि बीते खेलत फिरत नादान॥ ४ ॥

तरुनापन जब आय, देह यौवन मद माता;
चलत निहार छाँह, तमकि के बोले बाता।
चोवा चन्दन लायके, पहिरे वसन बनाय;
गलियों में झाँकत फिरे, परतिय देखि मुसुकाय॥ ५ ॥

तरुनापन गौ बीति, बुढ़ापा आय तुलाने;
काँपन लागे शीश चलत दुई चरन पिराने।
नैन नासिका चूवन लागे, मुख से निकसे श्वास;
वात कफ ने घेर लिया है, छुट गइ तन की आस॥ ६ ॥

मात पिता सुत नारि, कहो काके संग लागी;
जब यह तन जरि जाय, कामिनी होत सोभागी।
एक दिन काल गरासिहैं, परिहो जम के दाव;
विन सतगुरु नहिं बांचिहैं, कोटिन करो उपाय॥ ७ ॥

सुफल होय यह देह, नेह साहेब सो कीजे;
सतगुरु दाता आहिं, मुक्तिपद उनसों लीजे।

सुफल होइ मनकामना, सुमरन लागे पीर;
यही राह है मुक्ति की, यह पद गावैं कबीर ॥ ८ ॥

(सप्तपदी । शब्दावलि)

हे नर ! तुम मनुष्य शरीर प्राप्तकर सृष्टिकर्ता परमात्मा का स्मरण=भजन कर ॥ १ ॥ तुम अचेत = बेखबर क्यों रहते हो, ऐसा सुअवसर फिर तुमको कब मिलेगा ? फिर ऐसा मोका नहीं मिलेगा, फिर पीछे पछताओगे। चौरासी लक्ष जीवयोनि में मनुष्य का जन्म अनुपम है। उसे प्राप्तकर रंक से लेकर राजा तक कोई नहीं चेतता है ॥२॥ हे मनुष्य शरीरधारी जीव ! जब तू गर्भ में था तब कौल किया था कि, हे ईश्वर ! जब मैं यहाँ से बाहर निकलूंगा तब तुम्हारा भजन करुँगा। तुम्हारा नाम स्मरण रात्रिदिन करुँगा। तुम इस संकट से मुझे निकालो। एक ईश्वर को जान के उसके नाम में लवलीन रहूँगा। स्वल्प काल के लिये भी तुम्हें नहीं भुलूँगा। चाहे यह शरीर रहे या न रहे ॥ ३ ॥ जब इस प्रकार का कौल करार किया तब परमात्मा ने तुमको निकालकर बाहर किया। बाहर आने पर वह सब भूल गया और माया के अधीन हो गया। उस बात को भूल जाने से कुछ और ही मति हो गई। इसी प्रकार अज्ञान अवस्था में खेलते कूदते बारह वर्ष बीत गये ॥ ४ ॥ जब युवा अवस्था आई तब शरीर यौवन मद से मतवाला हो गया, चलते समय अपनी छाया को देखकर अभिमान बढ़ गया और तमककर बात बोलने लगा। शरीर में चन्दनादि सुगन्धि द्रव्य लगाने लगा। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र आभूषण पहनने लगा। गलियों में फुलकते हुए चलने लगा और दूसरे की स्त्रियों को देखकर मुसकाने लगा। हँसी-मजाक करने लगा ॥ ५ ॥ जब जुवानी बीत गई और बुढ़ापा = वृद्धावस्था आ गई तब शिर कंपने लगा। चलते समय दोनों पैर दुःखने लगा। नेत्र और नासिका से पानी गिरने लगा। मुख से ऊर्ध्व श्वास निकलने लगा। वात-पीत कफ ने घेर लिया। और शरीर के रहने की आशा छूट गई ॥ ६ ॥ हे जीव ! तुम

कहो तो सही कि माता-पिता पुत्र और स्त्री आदि सम्बन्धीजन किसके साथ गये हैं जो तुम्हारे साथ जायेंगे ? जब यह शरीर जल जायगा तब तुम्हारी कामिनी स्त्री दूसरा पति करके सौभाग्यवती हो जायगी या हो जाती है। एक दिन तुमको काल ग्रासकर जायगा = खा जायगा। यमराज के दाव-पेंच में आ जाओगे। तुम करोड़ो उपाय करो सद्गुरु के बिना बच नहीं सकते हो ॥ ७ ॥ हे जीव ! तुम्हारा यह देह सुफल हो जायगा = सार्थक हो जायगा। तुम साहेब = परमात्मा से नेह = स्नेह प्रेम = भक्ति करो। सद्गुरु दाता है। उनसे मुक्तिपद मांग लो। तुम्हारी मनःकामना सुफल हो जायगी। सद्गुरु का स्मरण करने लगोगे। मुक्ति का मार्ग यही है। इस पद को कबीर ने गाया है = बनाया है। यह (टेक छोड़कर) सप्तपदी पद कहा जाता है। इसको गाने से मुक्तिपद प्राप्त होता है। ऐसी मान्यता है ॥ ८ ॥



(२०)

एक दिन जाना होगा जरूर ॥ टे० ॥ १ ॥
राम लखन अमर जो होते, रहते हाल हजूर।
वे भी जग में रहन नपाये, समुझ चेत नर क्रूर ॥ २ ॥
कुम्भकरण रावण बड़ योधा, कहत हते हम शूर।
कठिन काल ने उनहूँ खाया, हो गये चकना चूर ॥ ३ ॥
अर्जुन से क्षत्रिय नहिं जगमें, कर्ण दान भरपूर।
भीम युधिष्ठिर पाँचो पाण्डव मिल गये माटी धूर ॥ ४ ॥

पानी पवन अकाशो जैहैं, जैहैं चन्दा सूर ।
कहैं कबीर भजन कब करिहो, ठाढ़े काल हजूर ।। ५ ।।

(शब्दावलि)

हे भाइयो ! एक दिन इस शरीर को त्याग कर अवश्य जाना होगा, यह निश्चित है ।। १ ।। भगवान् राम के भ्राता लक्ष्मण जी जो शेषावतार होने से अमर थे। सदा राम जी की सेवा में उपस्थित रहते थे। वे भी इस संसार में रहने न पाये तो हे क्रूर नर प्राणी ! तू सदा के लिये यहां कैसे रह पायगा ?। इस बात को समझकर चेत जा ।। २ ।। कुम्भकरण और रावण बड़े प्रसिद्ध योधा थे। वे अपने को सबसे अधिक शूरवीर कहते थे। इस कठिन विकराल काल ने उनको भी ग्रस लिया। राम के बाण से चूर-चूर हो गये ।। ३ ।। अर्जुन के समान शूरवीर क्षत्रिय संसार में कोई नहीं था। राजा कर्ण बड़ा भारी दानी था। भीम तथा युधिष्ठिर आदि पाँचो पाण्डव आदि महाभारत युद्ध के विजयी थे। वे सब एक दिन धूर और मिट्टी में मिल गये ।। ४ ।। पानी पवन आकाश आदि पञ्च भूत चले जायेंगे। चन्द्र सूर्य भी चले जायेंगे। सबको ले जाने के लिये काल सम्मुख उपस्थित है। कबीर कहते हैं कि हे प्राणी ! तुम इससे बचने के लिये भगवद् भजन कब करोगे ? ।। ५ ।।

---

(२१)

हंसा यह पिंजरा नहिं तेरा ।। टे० ।। १ ।।

कंकड़ चुनि चुनि महल बनाया, लोग कहै घर मेरा ।
ना घर तेरा ना घर मेरा, चिड़िया रैन बसेरा ।। २ ।।

बाबा दादा भाई भतीजा, कोइ न चले संग तेरा।
हाथी घोड़ा माल खजाना, पड़ा रहे धन घेरा ॥ ३ ॥
मात पिता स्वारथ के लोभी, करते मेरा मेरा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, इक दिन जंगल डेरा ॥ ४ ॥

(शब्दावलि)

हे हंस जीवात्मन्! यह शरीर रूपी पिजरा तुम्हारा नहीं है किन्तु पञ्चभूत का बना हुआ पञ्चभूत में मिल जाने वाला है! 'मेरा है' यह कहना तेरी भूल है। हंस पक्षी फंस कर पिंजरा में आता है। बहुत काल उसमें रहने से कहता है—पिंजरा मेरा है। परन्तु वह उसका नहीं है वैसे ही जीव कर्मपाश में फंस कर शरीर रूपी पिंजरा में आया है। बहुत काल से इसमें रहने से यह कहता है शरीर मेरा है। परन्तु यह उसका नहीं है ॥ १ ॥ लोग ईंट चूना आदि कंकड़ चुन-चुन कर महल बनाते हैं और कहते हैं यह घर मेरा है। वस्तुतः विचार करो तो न यह घर तेरा है और न मेरा ही। किन्तु रात्रिभर का निवास है। जैसे चिड़ियाँ वृक्ष पर रात्रि भर रह कर सवेरे चली जाती है वैसे ही जीव रूपी हंस=चिड़ियाँ जब तक प्रारब्ध रहता है तब तक इस शरीर रूपी घर में रह कर चला जाता है ॥ २ ॥ पिता, पितामह, भाई, भतीजा आदि सम्बन्धी जन कोई तुम्हारे साथ जाने वाला नहीं है। हाथी घोड़ा माल खजाना आदि धन जिन्हों ने तुमको घेर रखा है वे सब यहीं पड़े रहेंगे ॥ ३ ॥ माता पिता आदि सब सम्बन्धी लोग स्वार्थ के लोभी हैं। वे मेरा मेरा कहते हैं। वस्तुतः कोई किसी का नहीं है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे साधु भाइयो! सबको एक दिन जंगल में डेरा जमाना पड़ेगा ॥ ४ ॥

(२२)

जियरा जाओगे हम जानी ॥ टे० ॥ १ ॥

राज करन्ते राजा जैहैं, रूप धरन्ते रानी।
चान्द भी जैहैं सूरज भी जैहैं, जैहैं पवन अरु पानी ॥ २ ॥
मानुष जन्म अहै अति दुर्लभ, तुम समझो अभिमानी।
लोभ मोह की नदी बहत है, बूड़ोगे बिन पानी ॥ ३ ॥
जोगी जैहैं जंगम जैहैं, और जैहैं बड़ ज्ञानी।
कहैं कबीर एक सन्त न जैहैं, जाकी चित ठहरानी ॥ ४ ॥

(शब्दावलि)

हे जीव! हम जानते हैं कि तु एक दिन अवश्य जायगा ॥ १ ॥ राज्य करते राजा जायगा, रूप धारण करने वाली रानी जायगी, चन्द्र जायगा, सूर्य जायगा, पवन जायगा, पानी जायगा, महाप्रलय काल में सब जायगा ॥ २ ॥ मनुष्य जन्म अति दुर्लभ है। हे अभिमानी! तुम समझो। विना पानी की लोभ मोह रूप नदी बहती है उसमें तुम डूबोगे ॥ ३ ॥ योग जंगम और बड़े-बड़े ज्ञानी जन भी जायेंगे। कबीर स्वामी कहते हैं कि, जिनका चित्तं स्थिर है ऐसे सन्त ही एक नहीं जायेंगे ॥ ४ ॥

---

(२३)

रहना नहिं देश बिरना है, बिराना है हो बिराना है ॥टे०॥१॥
यह संसार कागद का पुतला, बुन्द परे गली जाना है ॥ २ ॥
यह संसार कांटे की वाडी, उलझि पुलझि मर जाना है ॥ ३ ॥

यह संसार घास की पूली, अगिनी लगे जरि जाना है ।। ४ ।।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधु, गुरु के चरण ठिकाना है ।। ५ ।।
(शब्दावलि)

यह देश अपना नहीं किन्तु दूसरे का है। अतः यहाँ रहना नहीं है। अपना देश सत्यलोक है। सत्यपुरुष परमात्मा की भक्ति करके वहीं जाना चाहिये ।। १ ।। यह संसार कागज के पुतला समान है। क्षणभङ्गूर है। जैसे कागज का पुतला जल के बून्द पड़ने पर गल जाता है वैसे ही संसार=शरीररूप कागज का पुतला व्याधि आदिरूप जलबून्द पड़ने पर गल जाने वाला है ।। २ ।। यह संसार कांटे की बाड़ी समान है। एक दिन इसमें उलझ कर मर जाना है। प्रवृत्ति रूपी उलझन एक पीछे दूसरी आया ही करती है। इसी में रह कर एक दिन मर जाना पड़ता है ।। ३ ।। यह संसार सूके घास की पूली समान है। जो अग्नि लगने पर जल जाने वाला है। जैसे सूके घास की पूली अग्नि लगने पर जल जाती है वैसे ही यह संसार भी विषयाग्नि, कामाग्नि, क्रोधाग्नि के लगने से जल जाता है। उक्त अग्नि से संसार सदा जलता रहता है ।। ४ ।। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे भाई साधुओ ! आप लोग सुनें कि, इस जीव को गुरु के चरण में ही ठिकाना है। अर्थात् जब यह मनुष्य शरीरधारी जीव गुरु की शरण में जायगा, उपदेश द्वारा भक्ति तथा ज्ञान प्राप्त करेगा तभी यथोक्त संसार से मुक्त हो सकेगा। अन्यथा नहीं ।। ५ ।।

---

(२४)

सुमिरन बिन गोता, खाओगे ।। टे० ।। १ ।।
मुट्ठी बाँधि गर्भ से आए, हाथ पसारे जाओगे ।। २ ।।

जैसे मोती फरत ओस के, बेर भये झर जाओगे ॥ ३ ॥
जैसे हाट लगाये हटवा, सौदा बिन पछताओगे ॥ ४ ॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, सौदा लेकर जाओगे ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

हे जीव ! तुम भगवान् के स्मरण विना संसार-सागर में गोता खाओगे। जैसे प्राणी समुद्र में डूबते उतरते रहते हैं वैसे ही तुम भी भवसागर में जन्मते मरते रहोगे ॥ १ ॥ तुम माता के गर्भ से मुठ्ठी बाँध कर बाहर आये हो। प्रारब्ध लेकर आये हो। परन्तु जाते समय हाथ पसारे जाओगे। खाली हाथ जाओगे। कुछ भी तुम्हारे साथ नहीं जायगा ॥ २ ॥ जैसे ओस के मोती तण पर फलते हैं, थोड़ी देर होने पर झर जाते हैं वैसे ही क्षणभङ्गुर शरीर थोड़ी देर के बाद झर जायगा ॥ ३ ॥ जैसे सब व्यापारी हाट लगाते हैं। अच्छी अच्छी वस्तुयें बेचने के लिये फैलाते हैं। जो सौदा करता है वह तो उन वस्तुओं को प्राप्त कर भोगता है और जो सौदा नहीं करता है वह हाट ऊठ जाने के बाद पश्चात्ताप करता है वैसे ही इस संसाररूप हाट में मुक्तिरूप सौदा जो करता है वह तो सुखी होता है और मुक्ति के साधनरूप सौदा नहीं करता है वह शरीर छूट जाने के बाद मुक्तिरूपी सौदा के विना पश्चात्ताप करता है ॥ ४ ॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे साधुजन ! आप लोग सुनिये, इस संसाररूपी हाट से शुभ कर्मजन्य सुख रूप सौदा लेकर जाओगे। इस संसार रूप हाट में शुभाशुभ कर्म करके सुख दुःख प्राप्त करना सौदा करना है। अज्ञानी जन अशुभ कर्म करके दुःखरूप सौदा लेकर जाते हैं ॥ ५ ॥

---

(२५)

तम्बुवा गिराय कहां जाओगे, करिलो अपना ठिकान ॥टे०॥१॥
काहे बोवो बबुरवा हो, बोते तुम आम ।
अमरित भोजन करते हो, जपते हरिनाम ॥ २ ॥
प्रेम नगर के हटिया हो, जहाँ लाल बिकाय ।
चतुर चतुर सौदा करिले हो, मूरख पछताय ॥ ३ ॥
प्रेम बाग नहिं उपजे हो, नहिं हाट विकाय ।
बिना प्रेम के मनुवाँ हो, बँधि यमपुर जाय ॥ ४ ॥
दास कबीर यह गाया हो, सन्तो लेहु बिचारि ।
बहुरि न यहि जग आवत हो, मानुष अवतार ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

हे मनुष्य शरीरधारी जीव ! तुम इस शरीर रूपी तम्बू को गिरा कर, देह त्याग कर कहां जाओगे ? पहले अपना ठिकाना तो कर लो। पहले जहां जाओगे वहां का निश्चय तो कर लो बाद तम्बू गिराना ॥१॥ दुष्कर्म रूपी बबूर का बीज क्यों बोते हो। तुम सत्कर्म रूपी आम्र का बीज बोते तो सुखरूप अमृत भोजन करते। अथवा हरि नाम स्मरणजप रूपी आम का बीज बोते तो मोक्ष रूपी अमृत भोजन करते ॥ २ ॥ संसार के प्रेमभक्ति रूप नगर में सत्संगरूप हाट लगा है। जहां— विवेक, वैराग्य, भक्ति तथा ज्ञान आदि रत्न बिकते हैं। मनुष्यों में जो चतुर हैं वे उक्त रत्नों का सौदा कर लेवें। और जो मूर्ख हैं वे पीछे पश्चात्ताप करेंगे। हाट जब ऊठ जायगा, शरीर जब छूट जायगा तब यह सौदा नहीं हो सकेगा। अतः पछताना पड़ेगा ॥३॥ प्रेम बाग में उत्पन्न नहीं

होता है और न हाट में ही विकता है। प्रेम विना का मनुष्य अपराधी के समान बँधा हुआ यमपुरी को चला जाता है। प्रश्न होता है कि, प्रेम विना चलता नहीं है और कहीं मिलता नहीं है तो इसको लाया कहां से जाय ?। इसका उत्तर यह है कि, प्रेम हृदय में प्रकट होता है। वाहर कहीं मिलता नहीं है ॥ ४ ॥ सद्गुरु कहते हैं कि, कवीरदास ने इसको गाया है। सन्तजन विचार कर इसको ग्रहण करें। क्योंकि, इस संसार में फिर मनुष्य शरीर नहीं मिलेगा। देव-दुर्लभ मनुष्य शरीर बार-बार नहीं मिलता है। अथवा हे मनुष्यो ! इस पद का विचार कर उसके अनुसार चलने से फिर जन्म मरण में नहीं आना पड़ता ॥ ५ ॥

---

(२६)

कवन ठगवा नगरिया लूटल हो ॥ टे० ॥ १ ॥
चन्दन काठ कै बनल खटोलना, तापर दुलहन सूतल हो ॥ २ ॥
उठो सखी मोर माँग सँवारो, दुलहा मोसे रूठल हो ॥ ३ ॥
आए जमराज पलँग चढ़ि बैठे, नैनन आँसू टूटल हो ॥ ४ ॥
चारि जने मिलि खाट उठाइन, चहुँ दिसि धूधू ऊठल हो ॥ ५ ॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, जग से नाता टूटल हो ॥ ६ ॥

(शब्दावलि)

ऐसा कौन ठग है, जिसने शरीर रूपी नगरी को लूट लिया है। इसके भीतर के ज्ञान वैराग्यादि धन को लूट रहा है ॥ १ ॥ शरीररूपी चन्दन काठ की खटिया वनी है। उस पर ईश्वररूपी दुलहा की जीवरूपी दुलहिनी सो रही है ॥ २ ॥ जीवरूप एक सखी दूसरी सखी से कहती है

कि, हे सखि! उठो और हमारा माँग सँवार दो, केशवेश कर दो। मेरे दुलहा मुझसे रुष्ट हो गया है। मैं अज्ञानरूपी निद्रा में सो गई हूँ, जाग्रत रहकर भक्ति नहीं करती हूँ। अतः ईश्वर मुझसे रुष्ट है ॥ ३ ॥ शुभकर्म नहीं किया, प्रत्युत अशुभ ही किया। अतः अन्त समय यमराज आकर पलँग पर चढ़ बैठता है। तब नेत्रों से आँसू टूट पड़ता है। अश्रूपात होने लगता है ॥ ४ ॥ शरीर छूट जाता है। श्मशान ले जाने के लिये चार जने मिलकर खटिया उठाते हैं तब चारों तरफ से सम्बन्धी जन का 'धूधू' ऐसा रुदन शब्द उठने लगता है। कबीर स्वामी कहते हैं कि हे साधु भाई! सुनो, उस समय सारे संसार से नाता = सम्बन्ध टूट जाता है ॥ ६ ॥

---

(२७)

हमकाँ ओढ़ावे चदरिया, चलती बेरियाँ ॥ टे० ॥ १ ॥
प्रान राम जब निकसन लागे, उलट गई दोउ नैन पुतरिया ॥ २ ॥
भीतर से जब बाहर लाए, छूट गई सब महल अटरिया ॥ ३ ॥
चार जने मिलि खाट उठाइन, रोवत ले चले डगर डगरिया ॥ ४ ॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, संग चली एक सूखी लकरिया ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

चलते समय हमें लोग चद्दर ओढाते हैं ॥ १ ॥ प्राणराम जब शरीर में से निकलने लगते हैं तब दोनों नेत्रों की पुतलियाँ उलट जाती हैं ॥ २ ॥ लोग मृत शरीर को भीतर से जब बाहर लाते हैं तब महल अटारी सब छूट जाती हैं ॥ ३ ॥ चार जने मिलकर खटिया उठाते है और रोते हुए श्मशान के रास्ते से ले चलते हैं ॥ ४ ॥ कबीर स्वामी

कहते हैं कि, हे साधु वन्धुओ! आप लोग सुनिये, मृत शरीर के साथ केवल एक सुखी लकड़ी ही जाती है। आत्मा के साथ तो कोई जाता ही नहीं। यह जीव मोहवश सबको अपना साथी मानता है ॥ ५ ॥

पाठक! सद्गुरु श्रीकवीर स्वामी की वैराग्यप्रद वाणी वहुत हैं। यथोक्त इतने पद केवल दिग्दर्शन मात्र है। पाठकों को अधिक देखना हो तो सम्पूर्ण कबीर साहित्य का अवलोकन करना चाहिये। आगे मन के विषय में कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

मन

(२८)

मन रे तू कर साहब से प्रीत ॥ टे० ॥ १

सरन आये से सबहि उबारे, ऐसी उनकी रीत ॥ २ ॥

सुन्दर देह देखि मत भूलो, जैसे तृण पर सीत ॥ ३ ॥

काची देह अखिर गिर परिहैं, जौं बालू की भीत ॥ ४ ॥

मानुष जन्म बहुति नहिं पैहो, जात जन्म सब वीत ॥ ५ ॥

साहेब कबीर चढ़े गढ़ ऊपर, दिये नगारा जीत ॥ ६ ॥

(शब्दावलि)

हे मन! तू साहेब=परमात्मा से प्रीति कर ईश्वर की भक्ति कर॥१॥ परमात्मा का ऐसा स्वभाव है कि शरण में आने पर सबका उद्धार कर देते हैं। अपना लेते हैं। मुक्त कर देते हैं॥ २॥ जैसे तृण के नोक पर ओस पड़ने पर वह मोती जैसा प्रतीत होता है। परन्तु थोड़ी देर के बाद

गिर जाता है,—वैसे ही इस सुन्दर शरीर को देखकर तू भूलना नहीं, यह सदा ऐसा ही रहेगा ऐसा न समझना किन्तु यह भी थोड़ी देर के बाद गिर पड़ेगा ॥ ३ ॥ जैसे बालू की भीत गिर पड़ती है वैसे ही यह कच्चा शरीर अन्त में गिर पड़ेगा ॥ ४ ॥ मनुष्य जन्म जो बीत रहा है यह फिर नहीं मिलेगा। जिस कर्म से मनुष्य जन्म मिला था वह तो भुक्त हो गया। दूसरा कोई तदुचित कर्म हुआ नहीं तो फिर मनुष्य जन्म कैसे होगा ? ॥ ५ ॥ सद्गुरु कबीर साहेब ने गढ़ ऊपर = ऊँचे पद पर चढ़कर जीत = विजय का नगाड़ा बजा दिया है ॥ ६ ॥

---

(२९)

मन रे तू अबकी बेर सम्भारो।

जन्म अनेक दगा में खोयो, बिन गुरु बाजी हारो ॥ टे०॥१॥

बालापन में ज्ञान न तन में, जब जनमे तब बारो।

तरुनापन तामस में खोयो, कीजे कूच नगारो ॥ २ ॥

सुत दारा मतलब के साथी, ताको कहत हमारो।

तीनलोक औ भुवन चतुरदश, सबहि काल को चारो ॥ ३ ॥

पूर रह्यो जगदीश जगत में, मील रह्यो औ न्यारो।

कहँहिं कबीर सुनों भाई साधो, सब घट देखनहारो ॥ ४ ॥

(शब्दावलि)

रे मन ! तू अबकी बेर = वर्तमान समय को सम्हार = सार्थक कर। क्योंकि, तूने अनेक जन्म धोखा में = भ्रम में खो दिये। गुरु विना बाजी

हार गये हो। जैसे जुआ खेलने वाले अनेक वार बाजी हारकर दुःखी होता है वैसे ही तू भी अनेक वार मनुष्य जन्म हार कर दुःखी हो चुके हो ॥ १ ॥ वाल अवस्था में तुम्हारे शरीर में ज्ञान नहीं था। क्योंकि, जब जन्मा था तब बालक था। युवावस्था तामस कार्य विषय भोग में खो दिया। अब तो सत्यपुरुष परमात्मा के यहा सत्यलोक जाने के लिये कूच का नगाड़ा बजाओ। राजा जब एक देश से दूसरे देश में जाता है तब नगाड़ा बजाकर जाता है। उसको कूच का नगाड़ा कहते हैं। वैसे ही तू भी इस लोक से सत्यलोक जाने के लिये कूच का नगाड़ा बजा ॥ २॥ यह बात निश्चित है कि, स्त्री-पुत्रादि सम्बन्धी सब स्वार्थ के साथी हैं फिर तू उनको अपना कहता है। तीन लोक और—चतुर्दश भुवन सब काल के चारा (आहार) हैं। एक दिन सबको काल खा जाता है। पक्षी जिसको खाता है उसको चारा कहते हैं। (पक्षी चारा चूगता है)। वैसे ही काल जिसको खाता है उसको चारा कहते हैं ॥ ३ ॥ कबीर स्वामी कहते हैं—हे साधु भाइयो! आप सुनिये कि, जगदीश्वर सत्यपुरुष परमात्मा संसार में सर्वत्र पूर्ण हो कर रहा हुआ है। सर्वत्र व्याप्त है। सब में मिला है और सब से न्यारा भी है। भक्तों को प्राप्त है और—अभक्तों से दूर है। जिसके हृदय में जो कुछ है उसको देखने वाला है। अन्तर्यामी है। अतः उसके भजन द्वारा मुक्ति प्राप्त करके मनुष्य शरीर को इस वार तो सार्थक कर ॥ ४ ॥



(३०)

मन रे तू समुझि के लाद लदनियाँ ॥ टे० ॥ १ ॥

पीना होय तो यहीं तू पीले, आगे देश न पनियाँ।

सौदा होय तो यहीं कर लेना, आगे हाट न बनियाँ ॥ २ ॥

बड़े-बड़े नायक लाद गये हैं, तेरी बात कितनियाँ।
जमराजा के दूत फिरत हैं, तोड़ डाले गरदनियाँ ॥ ३ ॥
घर के लोग जगाती होके, छीन लेत करधनियाँ।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, शब्द में सुरति समनियाँ ॥ ४ ॥
(शब्दावलि)

रे मन ! तू बनजारा है विचार करके शुभ कर्म जन्य पुण्य को ही अपने लदना पर लाद ॥ १ ॥ पीना हो तो यहीं पीले। क्योंकि, आगे न तो देश है और न तो पानी है ॥ २ ॥ सौदा करना हो तो यहीं कर ले। क्योंकि, आगे न तो हाट है और न व्यापारी बनियां ही। मनुष्यशरीर ही कर्मशरीर है ॥ २ ॥ बड़े-बड़े नायक सब अपने पुण्यपाप को लाद कर चले गये। तेरी बात कितनी है। तू किस गिनती है यमराजा के दूत सब फिर रहे हैं। वे यमयातना देते हुए गर्दन तोड़ डालते हैं। जो अशुभ कर्मजन्य पाप को लाद कर यहां से जाता है उसको यम का दिया हुआ दण्ड भोगना पड़ता है ॥ ३ ॥ तेरे घर के सब लोग जगात (चूंगी) लेने वाले जगाती होकर जगात में कमर की करधनी (कमर की डोरी) तोड़कर ले लेंगे। जैसे बनजारा लोग लदना पर लाद कर माल सामान ले जाते है तब चूंगी घर के राजकर्मचारी जगाती लोग जगात लेते हैं। वैसे ही तू जब पुण्यपाप रूप माल सामान को लादकर यहां से जायगा तब तेरे घर के सम्बन्धी लोग जगाती बनकर जगात के रूप में तेरी कमर की डोरी तोड़कर ले लेंगे। क्योंकि, उस समय तेरे पास और कोई चीज तो रहेगी नहीं। कमर की डोरी करधनी ही सही उसको तोड़कर ले लेंगे। अर्थात् और तो धन सम्पत्ति तेरी लेही लेंगे कमर की डोरी भी तेरे पास नहीं रहने देंगे। याद राख ॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे साधु बन्धुओ ! सुनिये। आप लोग शब्द में अर्थात

गुरु उपदेश रूप शब्द में सुरति = ध्यान को समा दो = लगा दो। उपदेश की तरफ ध्यान दो। अथवा उपदेशरूप शब्द के अर्थ परमात्मा में सुरति लगा दो ॥ ४ ॥

---

(३१)

मन रे तू मनही में उलट समाता ॥ टे० ॥ १ ॥
या मन हस्ती जंगल वासा, खोज सकल फल खाता।
जो बस परे महावत केरे, दै अंकुश मुरकाता ॥ २ ॥
या मन जोगी या मन भोगी, या मन देवी देवा।
या मन उलट होत वैरागी, करै गुरु की सेवा ॥ ३ ॥
मन की खोज कोई नहिं पावे, शिव सनकादिक ब्रह्मा।
अपरम पार पार नहिं पावे, अगम अगोचर महिमा ॥ ४ ॥
नियरे के दूर दूर के नियरे, जिन जैसा अनुमाना।
ओरवतिया से चढ़े बड़ेरी, जिन पकड़ा तिन जाना ॥ ५ ॥
अनुभव कथा कौन से कहिये, है कोई सन्त विवेकी।
कहँहिं कबीर गुरु दिये पलीता, वा घर विरला पेखी ॥ ६ ॥
(शब्दावलि)

मन चञ्चल है। विषयों की तरफ दौड़-दौड़ कर जाया करता है। विषयो उन्मुख है। अतः सद्गुरु कहते हैं कि, रे मन यदि तुम विषयों की ओर से उलट कर मन में ही अर्थात् अपने आप में समा जाता तो विरुद्ध हो जाता, सुखी हो जाता तो कितना अच्छा होता ? ॥ १ ॥ यह मन हस्थी समान है। संसार रूपी जंगल में वास करता है और विषय रूपी

फल को खोज खोज कर खाता है। यदि साधक योगी के वस में पड़ता तो ज्ञान वैराग्य रूप अङ्कुश देखर मुरकाता=विषयों की तरफ से मौड़कर सत्यपुरुष की परमात्मा तरफ हो जाता। तब यह मन परमात्म-चिन्तन करता ज्ञान द्वारा मुक्त हो जाता ॥ २ ॥ मन अनेक रूपों को धारण करता रहता है। कभी यह (मन) योगी बन जाता है और कभी भोगी। कभी यह (मन) देवी बन जाता है और कभी देव। कभी यह (मन) विषयों की ओर से विमुख होकर वैरागी हो जाता है और गुरु की सेवा करने लगता है। मन का सदुपयोग करने वाला होना चाहिये॥३॥ मन की खोज कोई नहीं कर पाता है। अन्य की तो बात क्या, शिव, ब्रह्मा तथा सनकादि भी हार गये हैं, यह अपरम्पार है। इसको कोई पहुँच नहीं पाता है। इसकी महिमा अगम अगोचर है ॥ ४ ॥ पास के मनुष्य से दूर चला जाता है और दूर के मनुष्य से पास चला आता है। जिसने जैसी कल्पना की है उसको यह वैसा ही प्रतीत होता है। यह मन ओर = अगरी से बतिया के द्वारा बड़ेरी पर चढ़ जाता है। निरालम्ब होकर नीचे ऊपर होता रहता है। समाधि अभ्यास के द्वारा जिसने इसको पकड़ पाया है उसी ने इसको जाना है ॥ ५ ॥ मन विरुद्ध होने पर आत्म अनुभव की कथा किससे कही जाय? जो कोई विवेकी सन्त हैं, वे ही समझ सकते हैं। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, जिनको गुरु ने पलिता = प्रज्वलित ज्ञानरूपी दीपक दिया है यही कोई विरल पुरुष उस मुक्ति घर को देख सकता है ॥ ६ ॥

---

(३२)

मन रे तू धीरज क्यों न धरे ॥ टे० ॥ १ ॥
शुभ अरु अशुभ कर्म पुर्वले ते, रतिय न घटे बढ़ेरे।
होनहार सो होत जगत में, चिन्ता काहे को करे रे ॥ २ ॥

पशु पंछी अरु कीट पतंगिया, सबकी खबर करे रे ।
गर्भवास में रक्षा कीन्हीं, सो बाहर क्यों बिसरे रे ॥ ३ ॥
तुम तो हंसा वही साहेब के, भटकत काहेको फिरे रे ।
सतगुरु छोड़ और को धरवे, कारज नाहिं सरे रे ॥ ४ ॥
मात पिता सुत बन्धु तिरिया, मोह के जार जरे रे ।
समुझ देख मन कोइ नहिं अपना, धोखा में काहेको परे रे ॥ ५ ॥
सन्त की सरन गहो मोरे मन, कोटिक व्याधि हरे रे ।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, सहजे जीव तरे रे ॥ ६ ॥
(शब्दावलि)

रे मन। तू धैर्य क्यों नहीं धरता है ॥ १ ॥ पूर्व जन्म में जो शुभाशुभ कर्म तुमने किया है, उसमें से एक रती भर भी घटने बढ़ने वाला नहीं है। संसार में होने वाला जो है वह अवश्य होता है। तु चिन्ता क्यों करता है ॥ २ ॥ वह परमात्मा पशु पक्षी और कीट पतंग आदि सभी प्राणी की खबर लेता है। तू विचार कर कि, जिसने भीतर गर्भवास में रक्षा की है वह प्रभु बाहर कैसे भूल जायगा ? ॥ ३ ॥ हे हंस ! तुम तो उसी साहेब परमात्मा का अङ्ग हो इधर उधर भटकते क्यों फिरते हो ? एक सद्‌गुरु को छोड़ कर दूसरे के यहाँ दौड़ोगे तो एक भी कार्य सिद्ध नहीं होगा ॥ ४ ॥ माता पिता स्त्री पुत्र परिवार सब मोह ज्वाला में जल रहे हैं। हे मन ! तू समझ देख, कोई तेरा अपना नहीं है, तू धोखा में क्यों पड़े हो ? ॥ ५ ॥ हे मेरा मन ! तू सन्त की शरण ग्रहण कर, वे करोड़ों व्याधि को हरण करते हैं। कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे साधु भाई ? आप सुनिये । जो सन्त की शरणागति को ग्रहण करता है उसका जीव सहज में = स्वल्प साधन करने पर संसार सागर से तर जाता है।

भाव यह है कि, एक तो कोई साधन नहीं करता है और कोई करता है तो असाधन में साधन बुद्धि करके उसका अनुष्ठान करता है। क्योंकि साधन का ज्ञान सत्सङ्ग से प्राप्त होता है। सत्सङ्ग उसको प्राप्त नहीं है। फिर साधन के विना साध्य की सिद्धि हो तो कैसे हो ?। अतः सद्गुरु कहते हैं कि, हे मन ! तू सन्त की शरणागति ग्रहण करे तो तुम्हारी करोड़ो जन्ममरणादि व्याधियाँ दूर हो जायगी। सब दुःख दूर हो जायगा और सहज में जीव संसार सागर से पार उतर जायगा ॥ ६ ॥

---

(३२)

अजहुँ समझ मन अजहुँ समझ ले, अजुह समझ मन भँवरा रे ॥टे० ॥१॥
काया फुलवारि कुशल मत जानो, दो दिन फुल कर गजरा रे ॥२॥
अष्ट पहर की घड़ी विचारो, शिर पर काल केरा रगरा रे ॥३॥
जल में मीन करत सुख चैना, खैचत धीमर जमरा रे ॥४॥
गुरु की भक्ति विना भये नर अंधा, योंहिं कहावत सगुरा रे ॥५॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, शब्द न माने सो तो निगुरा रे ॥६॥

(शब्दावलि)

हे भ्रमर मन ! अभी भी तो समझ ॥ १ ॥ इस शरीर रूपी फुलवाड़ी को कुसल है ऐसा न जान। क्योंकि, यह तो दो दिन का फूल का गजरा है ॥ २ ॥ आठ पहर में जितनी घड़ी होती हैं उस प्रत्येक घड़ी में तू आत्मविचार ही करते रहना क्योंकि तेरे शिर पर काल का रगड़ा लगा है। काल भगवान चोटी पकड़ कर खड़ा है। किस समय ले जायगा, कह नहीं सकते ॥ ३ ॥ भवजल में जीव मीन सुख चैन कर रहा है

बेसूध होकर विषयों में मौज मार रहा है। उसको यह खबर नहीं कि, यमराज धीमर उसको कर्मवंशी के द्वारा खीच रहा है ॥ ४ ॥ गुरु की भक्ति बिना मनुष्य ज्ञानहीन अन्धा है। व्यर्थ ही वह गुरु का शिष्य कहलाता है ॥ ५ ॥ सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि हे भाई साधो! आप लोग सुनिये। जो गुरु के उपदेशरूप शब्द को नहीं मानता है। उपदेश के अनुसार नहीं चलता है वह गुरुमुख होते हुए भी निगुरा है ॥ ६ ॥



(३४)

मन तोहि किस विधि कर समुझाऊँ ॥टे०॥१॥

सोना होय तो सोहागा मंगाऊँ, बंक नाल रस लाऊँ।
ज्ञान शब्द की फूँक लगा कर, पानी कर पिघलाऊँ ॥ २ ॥
घोड़ा होय तो लगाम लगाऊँ, ऊपर जीन कसाऊँ।
होय सवार तेरे पर बैठूँ, चाबुक दै धुरकाऊँ ॥ ३ ॥
हाथी होय तो जंजीर लगाऊँ, चारो पैर बँधाऊँ।
होय महावत शिर पर बैठूँ, अंकुश देई चलाऊँ ॥ ४ ॥
ज्ञान चाहिये ज्ञान शिखाऊँ, सत्य की राह बताऊँ।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, अमरा पुर पहुँचाऊँ ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

हे मन! मैं तुमको किस प्रकार समझाऊँ ॥ १ ॥ यदि तू सोना होता तो सोहागा मंगाकर तुझे द्रवीभूत कर देता। केवल इतना ही नहीं किन्तु ज्ञान-प्रद उपदेश रूप शब्द की फूंक दे कर पिघला अर्थात् पानी कर

देता ॥ २ ॥ यदि तू घोड़ा होता तो तुझे लगाम लगाता। ऊपर जीन कसाता। तुझ पर सवार हो कर बैठता और चाबूक मार कर विषय विमुख करके आत्म उन्मुख कर देता ॥ ३ ॥ यदि तू हाथी होता तो जंजीर लगा कर तेरे चारो पैरों को बाँध देता महावत होकर तेरे शिर पर बैठता और अंकुश देकर तुझे चलाता। जिस से तू कहीं अन्यत्र जा नहीं सकता ॥ ४ ॥ हे मन ! तू विषयों की ओर जाना छोड़ दे। तुझे ज्ञान चाहिये तो ज्ञान देता हूँ। सत्य पुरुष परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग बताता हूं और अमर पुर सत्यलोक पहुँचा देता हूँ। अथवा कबीर कहते हैं कि हे साधु भाई ! आप सुनिये। आप मन को वश करिये। आप को ज्ञान चाहिये तो ज्ञान देता हूं। ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग बताता हूं। जिसके द्वारा अमरलोक ब्रह्मलोक सत्यलोक पहुँचा देता हूं ॥ ५ ॥

मुमुक्षुजन ! कबीर साहित्य को देखने से सद्गुरु की आधी वाणी मन को समझाने के लिये है यह प्रतीत होता है। यहां इतना दिग्दर्शन-मात्र समझना चाहिये। मैं समझता हूं कि. स्थालीपुलाकन्याय से पाठकों को इस विषय की शेष वाणी समझने के लिये इतना ही उद्धरण पर्याप्त होगा। आगे माया के विषय में कतिपय पद दिखाये जाते हैं—

माया

(३५)

राम तेरि माया दुंद मचावै।

गति मति वाकी समुझि परै नहिं, सुर नर मुनिहिं नचावै ॥ टे०॥ १ ॥

का सेमर के साखा वढाये, फूल अनुपम मानी।

केतिक चात्रिक लागि रहे हैं, चाखत रुवा उड़ानी ॥ २ ॥

काह खजूर बड़ाई तेरी, फल कोई नहिं पावै।
ग्रीषम रितु जब आय तुलानी, छाया काम न आवै ॥ ३ ॥
अपने चतुर अवर को सिखवै, कनक कामिनि सयानी।
कहँहिं कबीर सुनहु हो सन्तो, राम चरन रति मानी ॥ ४ ॥

(बीजक शब्द १३)

हे राम ! तुम्हारी माया काम-क्रोध, लोभ-मोह, ईर्ष्याद्वेष, तथा सुख दुःख आदि द्वन्द्व मचाती रहती है। उसकी गतिवृद्धि समझ नहीं पड़ती है। सुर नर मुनियों को भी नचाती रहती है ॥ १ ॥ सीमर वृक्ष के शाखा बढ़ाने से और उसके फूल को अनुपम मानने से क्या लाभ ? क्योंकि, उसमें जितने चातक के समान शुक आदि पक्षी उसके फल खाने के लिये लग रहे हैं। उसके फल को चाखते समय उसमें से रुई उड़ती है। तब शुकपक्षी निराश हो जाता है ॥ २ ॥ हे खजूर वृक्ष ! तेरी ऊँचाई क्या काम की ? क्योंकि तेरे फल को तो कोई ले नहीं सकता है। और जिस समय ग्रीष्म ऋतु आकर खड़ी होती है तब तो तेरी छाया भी काम में नहीं आती है ॥ ३ ॥ सुवर्ण आदि धन सम्पति और स्त्री ये दोनों बड़े चतुर हैं। ये दोनों अपने तो चतुर हैं ही औरों को सिखलाती हैं। कबीर स्वामी कहते हैं कि हे सन्तमहात्माओ ! इनसे बचने का उपाय बताता हूँ, आप सुनिये। और वह यह है कि, आप लोग परमात्मा राम के चरण में प्रेम करिये तभी आपलोग उस कनक कामिनी से बच सकते हैं ॥ ४ ॥

---

(३६)

बूझहु पंडित करहु विचारा, पुरुष है की नारी ॥ टे० ॥१॥
ब्राह्मन के घर ब्राह्मनी होती, जोगी के घर चेली।
कलमा पढ़ि-पढि भई तुरुकनी, कलिमहँ रहति अकेली ॥ २ ॥
वर ना वरैं व्याह ना करई, पुत जनमावनिहारी।
कारे मूड़ को एक न छाँड़, अजहुँ आदि कुँवारी ॥ ३ ॥
मैके रहै जाय नहिं ससुरे, सांई संग न सोवे।
कहँहिं कबीर वे जुगजुग जीवैं, जाति पांति कुल खोवैं ॥ ४ ॥

(बोजक शब्द ४४)

हे पण्डितो ! आप लोग समझिये और विचार करिये कि यह माया पुरुष है या स्त्री ॥१॥ यह माया ब्राह्मणों के घरों में ब्राह्मणी हो जाती है। योगियों के घरों में शिष्या हो जाती है। कलमा अर्थात् मुसलमानी मन्त्र पढ़ पढ़ कर तुर्कनी हो जाती है। कलियुग में तो अकेली ही रहती है। अर्थात् अन्य युगों में तो किसी के साथ मिल कर अपना अपना कपट आदि कार्य करती थी। परन्तु कलियुग में तो किसी के साथ मिले विना ही अकिली ही सब कुछ कर लेती है ॥ २ ॥ यह माया रूपिणी स्त्री ऐसी है कि, वर नहीं वरती है अर्थात् किसी को पति रूप से स्वीकार नहीं करती है और किसी के साथ विवाह भी नहीं करती है। फिर भी प्रपञ्च = संसार रूपी पुत्र को जन्माने वाली है अर्थात् जीव ईश्वर से लेकर समस्त प्रपञ्च को उत्पन्न करने वाली है। इस माया ने काले मस्तक वाले एक पुरुष को भी नहीं छोड़ा। सबको फंसा लिया है। इतना करने पर भी आज तक आदि काल से कुमारी ही बनी हुई है। अर्थात् प्रथम से आज तक कुमारी कन्या ही बनी हुई है ॥ ३ ॥ यह माया-

रूपीणी स्त्री अपनी माता के यहां नैहर में ही रहती है। संसार में ही रहती है। ससुराल नहीं जाती=अपने पति ब्रह्म के घर नहीं जाती और अपने पति ब्रह्म चेतन के साथी सोती नहीं है। अर्थात् यह माया सदा संसार में ही रहती है। ब्रह्म के पास नहीं जाती है। कदाचित् जाती है तो उसमें लीन नहीं होती है। ज्ञान के विना अज्ञान का नाश नहीं होता है। माया से मुक्त होने का साधन बताते हैं—कबीर स्वामी कहते हैं कि वे पुरुष युग युग जीते हैं जो ब्राह्मणत्वादि जाति पांति के अभिमान को और उच्च कुल के अभिमान को छोड़ देते है। जात्यादि अभिमान माया से होता है। माया और अविद्या एक ही वस्तु है। जात्यादि अभिमान से छूटना माया से मुक्त होना है ॥ ४ ॥



(३७)

माया महाठगिनि हम जानी।

तिरिगुन फाँस लिये कर डोलै, बोलै मधुरी-बानी ॥टे०॥१॥
केसो के कमला होय बैठी, शिव के भवन-भवानी।
पंडा के मूरति होय बैठी, तीरथहू महँ पानी ॥ २ ॥
जोगी के जोगिनी होय बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होय बैठी, काहू के कौड़ी कानी ॥ ३ ॥
भगता के भगतिनि होय बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहँहिं कबीर सुनहु हे सन्तो, ई सब अकथ-कहानी ॥ ४ ॥

(बीजक शब्द ५९)

सद्गुरु कहते हैं कि, परमात्मा की माया महा ठगिनी है। यह हमने जान लिया है। यह सत्त्वरजस्तम रूप त्रिगुण की फाँसी को हाथ में लेकर सब जीवों को फँसाने के लिये डोलती रहती है अर्थात् सर्वत्र घूमती रहती है। और मधुर मधुर वाणी बोलती रहती है ॥१॥ यह माया केशव अर्थात् विष्णु के यहां लक्ष्मी होकर बैठी है शिव जी के भवन में भवानी = पार्वती होकर बैठी है। तीर्थ के पण्डा के यहाँ मूर्ति होकर बैठी है। तीर्थों में भी पानी होकर बैठी है ॥ २ ॥ यह माया योगियों के यहाँ योगिनी होकर बैठी है। राजा के घर में रानी बन बैठी है। किसी के यहाँ हीरा होकर बैठी है अर्थात् धनवान के यहाँ हीरा आदि रत्न बनकर बैठी है और किसी के यहाँ फूटी कौड़ी होकर बैठी है ॥३॥ यह माया पुरुष भक्तों के यहाँ स्त्री भक्त होकर बैठी है और ब्रह्मा के यहाँ ब्रह्माणी बनी बैठी है। कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे सन्तजन! आप लोग सुनिये कि, माया की ये सब वञ्चना कथा अकथ कहानी है अर्थात् माया की यह कपट कथा पूरी तरह कही नहीं जा सकती ॥ ४ ॥



(३८)

माया तजी न जाई, सन्तो माया तजी न जाई।
जैसे बेल विरिछ लपटाई ॥ टे० १ ॥
काम तजे तो क्रोध न छुटे, क्रोध तजे तो लोभा।
लोभ तजे तो आशा मोरे, मान बड़ाई शोभा ॥ २ ॥
जो घर तजे तो मढ़ी छवावे, उद्यम तजे तो फेरी।
लड़का तजे तो चेला मूड़े, मति माया ने घेरी ॥ ३ ॥

मोटी माया सब कोई त्यागे, झीणी तजी न जाई ।
स्वामी अपने शिष्य को तक कर, सो योजन चलि जाई ।। ४ ।।
हाथ से पैसा छूवत नाहीं, पट यों पामर ताके ।
नजर तमासा देखन चाहे, रसना रसों में जाके ।। ५ ।।
माया त्यागी मन वैरागी, तन में मनहिं समाई ।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधु, विरले झूठि जनाई ।। ६ ।।
(शब्दावलि)

सद्गुरु कहते हैं कि, हे सन्तजन ! किसी से माया त्यागी—नहीं जाती है । माया का त्याग कोई नहीं करता है । किसी न किसी रूप में माया ने सबको फंसा रखा है । जैसे लता वृक्ष को लपेट लेती है वैसे ही माया ने सबको लपेट रखा है जिस वृक्ष को वेला घेर लेती है वह हरा भरा नहीं रह सकता है । एवं फूल-फल नहीं सकता है । वैसे ही जिस पुरुष को माया घेर लेती है वह कल्याण का साधन नहीं कर सकता है ।। १ ।। देखिये काम का त्याग करे तो क्रोध नहीं छूटता है । वह रह ही जाता है । क्रोध का त्याग करे तो लोभ नहीं छूटता है । वह भी रह ही जाता है । और यदि लोभ का त्याग करे तो आशा आकर मारती है । मान बड़ाई और शोभा की आशा तो लगी ही रहती है । काम क्रोधादि माया का ही रूप हैं । इनके विषय तो मायिक है ही ।। २ ।। जो (साधु) घर को त्याग करता है वह यहां आकर कुटी बनाता है । जो गृह कार्य उद्यम को त्याग करता है यह फेरी फेरता है, अलख जगाता है, भीक्षा मांगने जाता है । पुत्र को त्याग कर साधु बनता है वह शिष्य बनाता है । इस प्रकार माया ने सब की बुद्धि को घेर रखा है । कुटी बनाना, भीक्षा मांगना, चेला शिष्य बनाना आदि माया का काय है । इस-इस रूप से माया ने सबको फँसा रखा है ।। ३ ।।

स्थूल माया का त्याग तो प्रायः सब कोई करते हैं। परन्तु वासना रूप सूक्ष्ममाया का त्याग होना कठिन है। गुरु अपने शिष्य सेवक को देख कर कुछ लेने के लिये सौ योजन चले जाते हैं। यह माया ही तो है ॥ ४ ॥ कितने साधु हाथ से पैसा छूते नहीं। फिर भी कपड़े में बाँध देने के लिये इसारा करते हैं। नेत्र से तमासा = नाटक आदि देखना चाहते हैं। रसना = जिह्वा इन्द्रिय जिनका मधुरादि रसों में ही रहा करती है। यह क्या है? माया ही तो है ॥ ५ ॥ अब सिद्धान्त बताते हैं—सद्गुरु कबीर कहते है कि, हे साधुजन सुनिये। मायात्यागी मन वह है जो वैरागी = विरक्त है। जिसका मन शरीर में समा जाता है। विषयों की तरफ नहीं जाता है। निरुद्ध हो जाता है वही माया और उसके कार्य को मिथ्या जान सकता है। दोषदृष्टि विना वैराग्य नहीं, वैराग्य विना भक्ति तथा ज्ञान नहीं और ज्ञान विना मुक्ति नहीं होती है।

जैसे मरणहेतु सर्पादि विष के प्रति दोष-दृष्टि होती है वैसे ही जन्म मरण हेतु माया और तत्कार्य विषय पदार्थों के प्रति दोषदृष्टि होनी चाहिये। तभी मन वैराग्ययुक्त हो सकता है। विरक्त मन स्थिर होने पर विवेक होता है। विवेक होनेपर माया और तत्कार्य विषयों को झूठ अर्थात् मिथ्या समझाता है। स्वप्न के स्त्री आदि—विषय मिथ्या है। उसकी इच्छा नहीं होती है। उस में प्रवृत्ति भी नहीं होती है। वैसे ही जाग्रत् के विषय मिथ्या समझने पर उसकी इच्छा नहीं हाती है एवं उसमें प्रवृत्ति भी नहीं होती है। इससे जीव मायामुक्त हो जाता है ॥ ६ ॥

---

(३९)

रमैया तेरी दुलहिनि लुटल बजार ॥ टे० ॥ १ ॥

सुरपुर लूटल, नरपुर लूटल, तीन लोक में (मचा) हाहाकार ॥२॥

ब्रह्मा को लूटल, शिव को लूटल, नारद मुनि को लूटल पछार ॥३॥

भृङ्गी की भिङ्गी करि डारी, पराशर के उदर विदार ।।४।।
कनफुंकवा चिद काशी लूटल, लुटल योगेशर करत विचार ।।५।।
सन्त बचे कोई गुरु की दया से, शब्द डोरि गहि उतरे पार ।।६।।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, इस ठगिनी से रहु हुशियार ।।७।।

(शब्दावलि)

हे विषयों में रमण करने वाला रमैया दुलहा जीव ! तेरी माया दुलहिनी ने सारे संसार रूप बाजार को लूट लिया है। उसने सब के ज्ञान वैराग्य आदि धन को लूट लिया है ।। १ ।। देवलोक स्वर्ग को लूट लिया है। नरपुर मृत्युलोक को लूट लिया है। जिस से तीनों लोक में हाहाकार मच गया है ।। २ ।। उसने ब्रह्मा को लूटा, शिव जी को लूटा और नारद मुनि को तो पछाड़ कर गिरा दिया और लूट लिया ।। ३ ।। तुम्हारी दुलहिनी माया ने शृङ्गी ऋषि को भिङ्गी = चूर्ण कर डाला है एवं पराशर ऋषि का पेट फाड़ दिया है ।।४।। काशी आदि तीर्थ स्थल में रहने वाले ज्ञानहीन कनफुंकवा गुरु की चिद = बुद्धि को लूट लिया है। औरों की तो बात क्या ? योगेश्वरों को विचार करते समय लूट लिया ।। ५ ।। गुरु की कृपा से कोई विरल सन्तजन ही इस से बचे हैं और गुरु उपदेश रूपी डोरी पकड़ कर संसार सागर से पार उतर गये हैं ।। ६ ।। कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे भाई साधो ? सुनिये। इस ठगिनी माया से सावधान रहना।

'ब्रह्मा आदि देवों को तथा नारदादि ऋषियों को माया ने लूटा' इस कथन से ब्रह्मा आदि की निन्दा में तात्पर्य नहीं। किन्तु माया की प्रबलता में तात्पर्य समझना चाहिये ।। ७ ।।



(४०)

माया मोह मोहित कीन्हा, ताते ज्ञान–रतन हरि लीन्हा ॥टे०॥१॥
जीवन ऐसो सपना जैसो, जीवन सपन समाना ।
शब्द गुरु उपदेश दीन्हौं, (तैं) छाँड्यो परम–निधाना ॥ २ ॥
जोति देखि पतंग हुलसै, पसु ना पेखै आगी ।
काल फाँस नल मुगुध न चेतै, कनक-कामिनी लागी ॥ ३ ॥
सेख सैयद कितेब निरखै, सुम्रिति सास्त्र विचारी ।
सतगुरु उपदेश बिनु तैं, जानि के जिव मारी ॥ ४ ॥
करु विचार विकार परिहरु, तरन तारन सोय ।
कहँहिं कबीर भगवन्त भजु नल, दुतिया अवर न कोय ॥ ५ ॥

(बीजक शब्द ६०)

माया ने मोह से सब को मोहित कर लिया है। इस कारण से सब के ज्ञान-रत्न को उसने हरण कर लिया है ॥ १ ॥ हे जीव! तुम जीवन को ऐसा समझो जैसा कि स्वप्न। वस्तुतः जीवन स्वप्न के समान ही है। तुमको गुरु ने सार शब्द का उपदेश दिया। परन्तु तुम ने उपदेश रूप परमनिधि को छोड़ दिया ॥ २ ॥ जिस प्रकार दीपकादि ज्योति पदार्थ को देखकर पतंग हुलसने लगता है। आह्लादित होकर नाचने लगता है। वह पशु अग्नि को नहीं देखता है अर्थात् यह दीपशिखा सुखकर रूप नहीं किन्तु अग्नि है ऐसा विचार नहीं करता है और उसमें पड़ कर जल मरता है। इसी प्रकार अज्ञानी विषयी पुरुष कनक और कामिनी में संलग्न होकर काल बंधन से चेतता नहीं है। अर्थात् यह कनक कामिनी रूप विषय सुख का हेतु नहीं किन्तु काल का

फाँस है जन्मादि बन्धन का हेतु है ऐसा नहीं जानता है ॥ ३ ॥ शेख और सैयद जाति के मुसल्मान लोग कुरान और हदीश आदि किताबों को देखते रहते हैं। और पण्डित लोग स्मृति तथा अन्य शास्त्रों का विचार करते रहते हैं। परन्तु सद्‌गुरु के उपदेश के बिना वे लोग जान बूझ कर जीवों को मारते हैं ॥ ४ ॥ विचार करो और अपने हृदय से हिंसा आदि विकारों को दूर करो। ऐसा जो करता है, वह महात्मा तरण तारण हो जाता है। अर्थात् संसार सागर से स्वयं तरता है और अन्य को भी पार कर देता है। कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे नर! भगवान् को भजो। भजने के लिये दूसरा अन्य कोई नहीं है। भाव यह है कि, ईश्वर एक ही है उसी का भजन करना चाहिये। अन्य देवी देव ईश्वर नहीं हैं। उनको बकरा आदि जीवों को वध कर बलि चढ़ाना नहीं चाहिये ॥ ५ ॥

---

(४१)

कुमतिया दारुणि रोजे लड़े रे ॥ टे० ॥ १ ॥

सुमति कुमतिया दोनों बहिनियाँ, कुमति को देखिके सुमति डरेरे ।२।

नित उठि रारि करै सबहीसे, मारे मरै नहिं जारै जरेरे ॥ ३ ॥

चाल चलै जस मैगर हाथी, घुमरि घुमरि जस बीछी चढेरे । ४ ॥

देखो कुमतिया की चतुराई, अमरित में विष घोरि पियैरे ॥ ५ ॥

कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, यह विष सन्तन से ही झरैरे॥ ६ ॥

(शब्दावलि)

अरे! यह भयंकर कलहप्रिय दुष्टमति माया प्रतिदिन विना कारण लड़ा करती है ॥ १ ॥ सुमति और कुमति वे दोनों माया के कार्य होने

से माया है और सहोदर बहन हैं। फिर भी कुमति सुमति से लड़ा करती है। इस लिये कुमति को देखकर सुमती डरा करती है ॥२॥ कुमति प्रतिदिन उठ कर सबसे झगड़ा करती है। वह मारने से न मरती है और न जलाने से जलती ही है ॥३॥ वह चाल तो ऐसी चलती है जैसे मतवाली हाथी चलती है। वह घुमर घुमर कर ऐसी चलती है जैसे बीछी चढ़ती हो अर्थात् बीछी का विष जैसे रह रहकर चढता है वैसे यह कुमति भी रह रहकर विष वमन करती रहती है ॥ ४ ॥ इस कुमति की चतुराई तो देखो। अमृत में विष घोल कर पीती है। शान्ति में अशान्ति करती हैं ॥ ५ ॥ सद्गुरु श्रीकबीर स्वामी कहते हैं कि, हे भाई साधुओ! आप लोग सुनिये कि, यह कुमति का विष सन्तों से ही झर सकता है। कुमति की की हुई अशान्ति सन्तों से ही दूर हो सकती है ॥ ६ ॥

माया के विषय में बहुत पद हैं। अन्यत्र भी देखना चाहिये। आगे कर्म के विषय में देखिये—



कर्म

(४२)

अपनो करम न मेटो जाई।

करमक लिखल मिटै धौं कैसे, जो जुग कोटि सिराई ॥टे०॥१॥

गुरु-वसिष्ठ मिलि लगन सुधायो, सुरज-मन्त्र एक दीन्हा।

जो सीता रघुनाथ विआही, पल एक संचु न कीन्हा ॥ २ ॥

तीनि लोक के करता कहिये, बालि बध्यो बरियाई।

एक समय ऐसी बनिआई, उनहूँ अवसर पाई ॥ ३ ॥

नारद-मुनि को वदन छिपायो, कीन्हों कपि को रूपा ।
सिसुपाल को भुजा उपारी, आप भयो हरि ठूठा ॥ ४ ॥
पारबती को बाँझ न कहिये, इसर न कहिये भिखारी ।
कहँहिं कबीर करता की बातें, करम कि बात निनारी ॥ ५ ॥
(बीजक शब्द १११)

अपना किया हुआ कर्म मिटाया नहीं जा सकता है। यदि करोड़ों युग बीत जांय तो भी कर्म का लिखा हुआ भला कैसे मिट सकता है?॥१॥ सूर्यवंश के क्षत्रिय कुल के गुरु वशिष्ठ मुनि ने अन्य ऋषियों से मिलकर परामर्श करके भगवान् राम के विवाह के लिये लग्न शुद्ध किया और विघ्नों को दूर करने के लिये रामचन्द्र जी को एक "ॐनमो भगवते आदित्याय" यह सूर्य देवताक मन्त्र दिया और उसका जप भी करवाया। पश्चात् सीताजी के साथ रघुनाथ श्रीराम ने विवाह किया। परन्तु एक पल भी सुख का अनुभव नहीं कर पाया। यौवराज्य सुख न भोगकर बन में जाना पड़ा। ऐसे अवतारी महापुरुषों का भी कर्म भोग बिना नष्ट नहीं हुआ तो अन्य का न हो इसमें कहना ही क्या ? ॥ २ ॥ भगवान् राम तीन लोक अर्थात् पृथ्वीलोक अन्तरीक्षलोक ओर द्युलोक के कर्ता कहलाते थे उन्होंने छल पूर्वक बालि का वध किया। परन्तु एक समय ऐसी घटना घटी कि, उस बालि ने भी बदला लेने का मौका प्राप्त किया। अर्थात् द्वापर युग के अन्त आने पर कृष्णावतार में जरा नामक भील रूप से कृष्ण रूप राम का वध किया। इस प्रकार भगवान राम को अपने कर्म का फल भोगना पड़ा तो इतर को भोगना पड़े इसमें कहना ही क्या ? ॥ ३ ॥ विष्णु भगवान् ने नारद मुनि को अपना परम सौन्दर्य रूप दिया। किन्तु मुख छिपा लिया। बानर का मुख कर दिया। इसके फल स्वरूप राजकन्या ने नारद को वरा नहीं। स्त्री के न मिलने से नारद बहुत दुःखी हुए और विष्णुभगवान् को श्राप दिया कि, तुम भी स्त्री के

वियोग से दुःखी होओगे फलतः विष्णुको रामावतार में सीताहरण होने पर स्त्री के वियोग से दुःखी होना पड़ा था। अतः विष्णु भगवान् को भी अपने कर्म का फल भोगना पड़ा था। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने शिशुपाल की भुजाओं को उखाड़ दिया था। इस कारण स्वयं हरि जगन्नाथपुरी में ठूठे हुए हैं। अतः भगवान् को भी कर्म का फल भोगना पड़ा है॥ ४॥ जगदम्बा पार्वतीजी को वन्ध्या नहीं कहा जाता है यह बात दूसरी है। किन्तु पूर्व कर्मवश सन्तान न होने से वह वन्ध्या ही है। ईश्वर महादेव भिखारी नहीं कहे जाते हैं यह बात भी दूसरी है। किन्तु पूर्व कर्मानुसार भिक्षा मांगने से भिखारी तो है ही। विश्वम्भर फिर भी स्वयं भिखारी हैं। कबीर स्वामी कहते हैं कि, पूर्वोक्त ये सब कर्ता की बातें हैं। वस्तुतः कर्म की बात तो न्यारी ही है अर्थात् गहन तथा विचित्र है॥ ५॥



(४३)

करम गति टारे नाहि टरे॥ टे०॥ १॥

गुरु वसिष्ठ महामुनि ज्ञानी, लिख लिख लगन धरे।
सीता हरन मरन दशरथ को, वन वन विपति परे॥ २॥
कहाँ वे राहु कहाँ वे रवि शसि, आन संजोग परे।
सतवादी हरिचन्द राजा, नीच घर नीर भरे॥ ३॥
दुरवासा ऋषि श्राप दियो है, जदुकुल नाश करे।
पंडवन के हरि सदा सहाई, बे भी वन विचरे॥ ४॥

तीनो लोक कर्मगति के बश, जीव से काह सरे।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, भूला भटकि मरे ॥ ५ ॥
(शब्दावलि)

कर्म की गति इतनी गहन है कि, मिटाने से नहीं मिटती है उसको अवश्य भोगना पड़ता है। (यह कथन अज्ञानियों के लिये है। ज्ञानियों के कर्म ज्ञान से नष्ट हो जाते हैं) ॥ १ ॥ राम के गुरु वसिष्ठ मुनि महाज्ञानी थे। राम और सीता का लग्न ज्योतिष शास्त्र के आधार से लिख कर ही निश्चित किया था। फिर भी विवाह के पश्चात् ही दशरथ का मरण और सीता जी का हरण हुआ था। प्रत्येक वन में विपत्ति पड़ी थी। यह पूर्वकृत् कर्म का फल था। (यह कर्म की प्रबलता दिखाने के लिये अत्युक्ति अलङ्कार है। क्योंकि, ईश्वर अपने सुखदुःख के लिये न तो कर्म करते हैं और न फल ही भोगते हैं) ॥ २ ॥ यह राहुग्रह कहां ? और वे सूर्य तथा चन्द्र कहां ?। परन्तु एक राशि पर इनका संयोग हो जाने पर ग्रहण लगता है। यह सूर्य और चन्द्र के पूर्वकृत कर्म का ही फल है। राजा हरिश्चन्द्र बड़े सत्यवादी थे। फिर नीच चाण्डाल भङ्गी के घर उनको पानी भरना पड़ा था। यह उनके किसी जन्म के कर्म का ही फल था ॥ ३ ॥ दुर्वासा ऋषि ने शाप देकर यदुवंशियों का नाश किया था। यह कर्म का फल था। पाण्डवों के हरि भगवान् श्रीकृष्ण सदा सहायक थे। वे भी (पांचो पाण्डव भी) वन में विचरे थे = वनवास काल में उनको कर्मफल वन का कष्ट अनुभव करना पड़ा था ॥ ४ ॥ तीनों लोक कर्मगति के वश में हैं। ऐसी स्थिति में कर्मपरतन्त्र जीव से क्या हो सकता है ? दुःखनिवृत्ति का साधन क्या कर सकता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं। कबीर स्वामी कहते हैं—हे साधु बन्धुओ ! सुनो भूला प्राणी संसार में भटक भटक कर मरते हैं। यहाँ भूलना मिथ्या संसार को सत्य समझना है। दुःख-

रूप विषयों को सुखरूप समझना है। परमसुखरूप आत्मा को दुःखरूप समझना है। नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वरूप आत्मा को अनित्य मलिन अज्ञानी बद्ध समझता है।

पूर्वोक्त दोनों पदों में कर्म का वर्णन है। जीवों को उपदेश दिया गया है कि, शुभाशुभ कर्म का फल सुखदुःख होता है। जो अवश्य भोगना पड़ता है। शास्त्र में भी कहा है—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाफलं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥

अर्थात् यह जीव जो कुछ शुभाशुभ कर्म करता है उसका फल सुखदुःख अवश्य इसको भोगना पड़ता है। फल दिये विना कर्म सौ करोड़ कल्प बीतने पर भी नष्ट नहीं होता है। इसमें मनुष्यों को उपदेश दिया गया है कि, तुम कर्म न करो। यदि करो तो शुभ कर्म ही करो, अशुभ नहीं। वह भी निष्काम करो, सकाम नहीं। नहीं तो उसके फल भोगने के लिये गर्भ में तथा जन्म मरण में आना पड़ेगा। निष्काम कर्म से चित्तशुद्धि द्वारा ज्ञान होकर मोक्ष प्राप्त होता है। जन्मादि संसार में नहीं आना पड़ता है।

यथोक्त दोनों पदों में विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, सूर्य, चन्द्र, सीता, पार्वती, राजा हरिश्चन्द्र, तथा पाण्डव आदि वड़े वड़े महापुरुषों को कर्म के फल भोगने पड़े हैं यह कहा गया है। इसी बात को भर्तृहरि ने भी कहा है—

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे॥

अर्थात् जिस कर्म ने ब्रह्मा को कुम्भार के समान निरन्तर ब्रह्माण्ड रचना का हेतु बनाया, विष्णु को वारम्वार दश अवतारग्रहण करने के सङ्कट में डाला, रुद्र को कपाल हाथ में लेकर भिक्षा मांगने के कष्ट में रखा, और सूर्य को आकाश में नित्य भ्रमणचक्र में डाला उस कर्म को नमस्कार है। जैसे इस भर्तृहरि के कथन का कर्म की गहनता में तात्पर्य है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और सूर्य की निन्दा में नहीं। वैसे ही सद्‌गुरु श्रीकबीर के कथन का कर्म की गहनता में तात्पर्य है। विष्णु शिवादि की निन्दा में नहीं। इसी प्रकार सद्‌गुरु की अन्य वाणी को आपाततः देखने से निन्दा प्रतीत होती है। परन्तु विचार करने पर वहाँ भी निन्दा नहीं ऐसा समझना चाहिये ॥ ५ ॥



ईश्वर–निरूपण

(४४)

रमैनी

तिहि-साहब के लागहु साथा, दुई–दुःख मेटि के होहु सनाथा।
दसरथ-कुलअवतरि नहिं आया, नहिं लँकाके राव सताया ॥ १ ॥
नहिं देवकी के गर्भहि आया, नहीं जसोदा गोद खेलाया।
प्रिथिमी रमन दमन नहिं करिया, पैठि पताल नहीं बलि छलिया ॥२॥
नहिं बलिराज से मांडल रारी, नहिं हिरनाकुस वधल पछारी।
होय वराह धरनि नहिं धरिया, छत्री मारि निछत्रि न करिया ॥ ३ ॥

नहिं गोवरधन कर गहि धरिया, नहिं ग्वालन संग वन-वन फिरिया।
गंडक-सालिगराम न सीला, मच्छ कच्छ होय नहिं जल हीला ॥ ४ ॥
द्वारावती सरीर न छांडा, लै जगनाथ पिंड नहिं गाड़ा ॥ ४½ ॥
साखी—कहँहिं कबीर पुकारिके, वा पथ मति कोइ भूला।
जिहि राखे अनुमान कै, (सो) थूल नहीं अस्थूल ॥ ७५ ॥
(बीजक रमैनी ७५)

उस शुद्ध ब्रह्म सत्यपुरुष परमात्मा के साथ में लगो जिससे जन्म और मरण रूप दोनों दुःखों को मिटाकर सनाथ होओगे जिसके साथ लगने से सनाथ होगा उस शुद्ध ब्रह्म ने दशरथ राजा के कुल में अवतार नहीं लिया है और लङ्का के राजा रावण को नहीं सताया है ॥ १ ॥

वह शुद्ध ब्रह्म देवकी के गर्भ में नहीं आया। उस ब्रह्म को यशोदा ने गोद में लेकर नहीं खेलाया है। उस ब्रह्म ने पृथ्वी पर रमण और शत्रुओं पर दमन नहीं किया है। उस ब्रह्म ने पाताल में पैठकर बलि राजा को नहीं छला है ॥ २ ॥

बलि से युद्ध नहीं किया। हिरण्यकशिपु दैत्य को नृसिंह रूप से पछाड़ कर बध नहीं किया। वराह रूप होकर भूमि को धारण नहीं किया। परशुराम होकर क्षत्रियों को मारकर पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन नहीं किया॥३॥

उस परमात्मा ने गोवर्द्धन पर्वत को हाथ में पकड़ कर नहीं धारण किया। गोपी गोपालों के साथ एक वन से दूसरे वन में नहीं घूमा। गण्डक नदी में शीलारूप शालिग्राम नहीं बने। मत्स्यावतार और कच्छपावतार होकर जल में चलना फिरना भी नहीं किया ॥ ४ ॥

उस निर्गुण विशुद्ध ब्रह्म ने द्वारिका पुरी में अर्थात् प्रभास में शरीर नहीं छोड़ा और जगन्नाथपुरी में लेजा कर उनका शरीर भी नहीं गाड़ा गया है ॥ ४—½ ॥

श्री कबीर स्वामी पुकार पुकार कर कहते हैं कि, हे मुमुक्षुओ ! तुम लोग उस माया = मार्ग में मत भूलो। क्योंकि, तुम लोग जिसकी कल्पना करके समझ रखे हो वह शुद्ध ब्रह्म नहीं है। यह स्थूल = साकार नहीं किन्तु अस्थूल सूक्ष्म निर्गुण निराकार रूप है। ईश्वर के दो स्वरूप है। निरुपाधिक और सोपाधिक। उनमें यहाँ निरुपाधिक शुद्ध स्वरूप का निरूपण है उसकी उपासना और ज्ञान कराने में तात्पर्य है। निर्गुणविधि में सगुण मायिक का निषेध है ॥ ७५ ॥

---

(४५)

सब का साखी मेरा साईं।

ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर लौं औ अव्याकृत नाहीं ॥टे० ॥ १ ॥

सुमति पचीस पाँच से कर ले यह सब जग भरमाया।

अकार उकार मकार मात्रा इनके परे बताया ॥ २ ॥

जाग्रत सुपन सुषोपत तुरिया इनते न्यारा होई।

राजस तामस सात्त्विक निर्गुन इनते आगे सोई ॥ ३ ॥

सूछम थूल कारन महाकारन इन मिल भोग बखाना।

तैजस विस्व पराग आतमा इनमें सार न जाना ॥ ४ ॥

परा पसंती मधमा बैखरि चौवानी ना मानी।

पाँच कोस नीचे कर देखो इनमें सार न जानी ॥ ५ ॥

पाँच ज्ञान औ पाँच कर्म की यह दस इन्द्री जानो।

चित सोइ अन्तःकरन बखानो इनमें सार न मानो ॥ ६ ॥

कुरम सेस किरकल धनंजय देवदत्त कहँ देखो।
चौदह इन्द्री चौदह इन्द्रा इनमें अलख न पेखो ॥ ७ ॥
तत् पद त्वं पद और असि पद बाच लच्छ पहिचाने।
जहद लच्छना अजहद कहते अजहद जहद बखाने ॥ ८ ॥
सतगुरु मिले सत सब्द लखावै सार सब्द बिलगावै।
कहँहिं कबीर सोई जन पूरा जो न्यारा कर गावै ॥ ९ ॥

(कबीर वचनावलि)

सद्गुरु कहते हैं कि, मेरा स्वामी सत्पुरुष परमात्मा सबका साक्षी है। सबका जानने वाला प्रत्यक्ष द्रष्टा है। ईश्वर नाम से प्रसिद्ध जो ब्रह्मा विष्णु रुद्र और अव्याकृत = माया हैं वे ईश्वर नहीं है। शुद्ध ब्रह्म नहीं है ॥ १ ॥

हे सुमति शिष्य! पाँच तत्त्व और पचीस प्रकृति को लेकर सभी जगत् भ्रम में पड़ा है। अनात्म जड़ अनीश्वर जगत् को अज्ञानी लोग ईश्वर मान रहे हैं। 'ॐ' पद में तीन मात्रा = अक्षर हैं, अ, उ और म्। उनमें 'अ' का अर्थ विष्णु, 'उ' का अर्थ शिव और म् का अर्थ ब्रह्मा है। पुराणों ने इन्हीं तीनों को ईश्वर कहा है। परन्तु वेद ने इनसे परे निर्गुण शुद्ध ब्रह्म को ईश्वर कहा है। अथवा माण्डूक्य उपनिषद् ने 'अ' 'उ' म्' इन तीनों मात्रा के वाच्यार्थ क्रमशः विश्व वैश्वानर, तैजस हिरण्यगर्भ, और प्राज्ञ अन्तर्यामी से पर अमात्र से अभिन्न तुरीय जीव साक्षी ईश्वर साक्षी निर्गुण विशुद्ध सत्पुरुष परमात्मा को ईश्वर बताया है ॥ २ ॥

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय इन चारों अवस्थाओं से वह ईश्वर भिन्न है। राजस तामस और सात्त्विक माया से आगे जो निर्गुण तत्त्व है

वही ईश्वर है। अथवा विश्व तैजस प्राज्ञ इन तीन की अपेक्षा तुरीय कहा जाता है। जब ये तीनों जहाँ नहीं है वहाँ तुरीय भी कैसे कहा जा जा सकता है ? अतः वाणी का व्यवहार न होने से वह ईश्वर तुरीय भी नहीं। एवं सगुण की अपेक्षा निर्गुण कहा जाता है। जब सगुण है नहीं, मिथ्या है तब उसको निर्गुण भी कैसे कह सकते हैं ?। अतः वह ईश्वर निर्गुण से भी आगे = परे है ॥ ३ ॥

स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारण और विश्व तैजस प्राज्ञ आत्मा इनका जो संहात उसको भोग होता है ऐसा कहा गया है। इनमें सार = तत्त्व जनाने में नहीं आया है। अतः ये ईश्वर नहीं। इनमें महाकारण शरीर और तुरीय आत्मा भी आया है। जो शुद्ध आत्मतत्त्व है। फिर भी यह पूर्वोक्त प्रकार से अपेक्षाकृत है। अतः निरपेक्ष शुद्ध ब्रह्म चेतन ही ईश्वर है ॥ ४ ॥

परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी ये चार प्रकार की वाणी हैं। ये भी ईश्वर नहीं मानी गई हैं। अन्नमय आदि पञ्चकोषों को निश्चय करके देखो तो इनमें भी सार नहीं जाना गया है। अर्थात् इन में से कोई भी ईश्वर नहीं है ॥ ५ ॥

पाँच ज्ञान इन्द्रिय और पाँच कर्म इन्द्रिय ये दश इन्द्रियाँ समझो और जो चित्त है उसको अन्तःकरण कहो। इनमें कोई सार है ऐसा न मानो अर्थात् ये भी ईश्वर नहीं ऐसा समझो ॥ ६ ॥

प्राण अपान समान व्यान और उदान ये पाँच प्राण है और कर्म शेष = नाग, कृकल धनञ्जय और देवदत्त इन पाँचों को देखो तो चतुर्दश इन्द्रियां और चतुर्दश इन्द्र = इनके देवता इनमें से कोई अलक्ष्य ईश्वर नहीं है ऐसा समझो। अर्थात् अन्तर बाह्य मिलकर चौदह इन्द्रियाँ अध्यात्म, इनके चौदह विषय अधिभूत तथा इनके चौदह देवता— अधिदेव कहलाते हैं। इन में से कोई ईश्वर नहीं है। ईश्वर अलक्ष्य इस लिये है कि, वह सकल प्रमाणागम्य है ॥ ७ ॥

"तत्त्वमसि" इस महावाक्य में तत् पद त्वम् पद एवं असि पद के वाच्य अर्थ और लक्ष्य अर्थ को पहचानो। जहत् लक्षणा, अजहत् लक्षणा और जहत् अजहत् उभय लक्षणा अर्थात् भाग त्याग लक्षणा कहते हैं उसको समझो। इसे जब समझोगे तब आत्मा और परमात्मा में कहीं भेद नहीं रह जायगा ॥ ८ ॥

जब सद्गुरु मिले, सत्य शब्द को लखावे और सार शब्द को पृथक् करे तब अभेद ज्ञान होता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, जो वाच्यार्थ में से लक्ष्यार्थ अलग करके उपदेश करते हैं वे ही सन्त जन पूरे ज्ञानी हैं ऐसा समझना चाहिये।

नोट—तत्त्वमस्यादि महावाक्यों में लक्षणा मानी गई है। लक्षणा क्यों मानी गई है। लक्षणा कितने प्रकार की होती है। उक्त महावाक्यों में कौन सी लक्षणा है। दोनों पदों में लक्षणा है या एक पद में। यदि एक में है तो आदि पद में है या—अन्त पद में। जीव बोधक पद में लक्षणा है या ईश्वर बोधक में। दोनों पदों में लक्षणा करने पर क्या अर्थ होता है। लक्षणा न करने पर क्या हानि है। लक्षणा कब होती है। लक्षणा कहां होती है ?। इत्यादि विषयों को जानना हो तो वेदान्त के प्रक्रिया ग्रन्थ को देखना चाहिये। ग्रन्थ बढ़ने के भय से यहां दिग्दर्शनमात्र कराया गया है ॥ ९ ॥



(४६)

मेरी नजरों में मोती आया है।

कोइ कहे हलका कोइ कहे भारी, दोनों भूल भुलाया है ॥टे०॥१॥
ब्रह्मा विष्णु महेसर थाके, तिनहु खोज न पाया है।
सेस सारदा संकर हारे, पढ़ रट बहु गुन गाया है ॥ २ ॥

है तिलके तिलके तिल भीतर, विरले साधु पाया है।
चहुँ दल कमल तिरकुटी साजे, ओंकार दरसाया है ॥ ३ ॥
ररंकार पद सेत सून्न पद, षट्दल कमल बताया है।
पर ब्रह्म महासून्न मँझारा, सोइ निःअच्छर गाया है ॥ ४ ॥
भँवर गुफा में सोहं राजे, मुरली अधिक बजाया है।
सत्त लोक सत्त पुरुष बिराजे, अलख अगम दोउ भाया है ॥ ५ ॥
पुरुष अनामी सब पर स्वामी, ब्रह्मउँ पार न पाया है।
यह सब बातें देही माहीं, प्रतिबिंब अण्ड जु पाया है ॥ ६ ॥
प्रतिबिंब पिंड ब्रह्माण्ड है नकली, असली पार बताया है।
कह कबीर सतलोक सार है, पुरुष नियारा पाया है ॥ ७ ॥

(शब्दावलि)

सद्गुरु कहते हैं कि, मेरी नजरों में सत्पुरुष परमात्मा ईश्वर के स्वरूप रूप मोती आया है। ईश्वर का साक्षात्कार हो गया है। ईश्वर के स्वरूप को मोती का रूपक देकर वर्णन करते हैं—मोती कोई छोटा होता है और कोई बड़ा। जो छोटा होता है वह हलका और जो बड़ा होता है वह भारी होता है। ईश्वर मोती रूप होने से उसको कोई हलका और कोई भारी कहता है। इनका भाव यह है कि, मोती को तौलने से जो छोटा होता है वह हलका और जो बड़ा होता है वह भारी होता है। एक कहता है ईश्वर मोती रूप होने से हलका है और दूसरा कहता है भारी है। परन्तु दोनों भूलभुलैया में पड़े हैं। ईश्वर विषय में दोनों को भ्रम हो गया है। क्योंकि, वह (ईश्वर) न तो हलका है और न भारी ही। मोती जैसे चमकीला होता है वैसे ही ईश्वर स्वरूप चमकीला प्रकाशस्वरूप होता है। अतः उसको मोती कहा गया है ॥ १ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर खोजते खोजते थक गये पर ईश्वर को जान न सके। शेष भगवान्, शारदा देवी और शङ्कर भगवान् हार गये। कुछ लोगों ने वेदादि शास्त्रों को पढ़ा, रटा=घोख कर कण्ठस्थ किया और उसके (ईश्वर के) गुणों का बहुत ज्ञान किया। परन्तु उनको ईश्वर का परोक्ष ज्ञान तो हुआ पर अपरोक्ष साक्षात्कार अनुभव नहीं हुआ। इस कथन से यथोक्त ब्रह्मा विष्णु आदि अल्पज्ञ हैं ऐसा नहीं समझना चाहिये। क्योंकि, ईश्वर सकल प्रमाणागम्य है। अतः किसी प्रमाण से उसको कोई जान नहीं सकता है। दूसरे कोई जाने और ब्रह्मा विष्णु आदि न जान सके तब उनमें अल्पज्ञता आ सकती है। 'ईश्वर को जानना दुर्गम है' इस कथन में तात्पर्य है निन्दा में नहीं ॥२॥

तिल के भीतर तिल, उसके भीतर भी तिल, उसके भीतर भी ईश्वर है। अर्थात् सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म ईश्वर है। इससे अधिक सूक्ष्म कोई पदार्थ नहीं है। इसको कोई विरले साधु ने ही प्राप्त किया है। उन महात्माओं को समाधि काल में त्रिपुटी प्रदेश में चतुर्दल कमल के भीतर ईश्वर का नाम ओङ्कार पद से ईश्वर का साक्षात्कार हुआ है ॥३॥

ॐकार के जप करनेवाले योगियों का अनुभव दिखा कर अब 'राम' शब्द के जप करने वाले योगियों का अनुभव दिखाते हैं—'रा' अक्षर घटित 'राम' पद से श्वेत वर्ण के शून्य प्रदेश ब्रह्माण्ड (दशम द्वार) में षड्दल कमल बताया है। उस महाशून्य के भीतर परब्रह्म परमात्मा ईश्वर है। वही निःअक्षर है ऐसा उन लोगों ने गाया है=कहा है। निःअक्षर=शब्द का अविषय ॥ ४ ॥ वही ईश्वर हठयोगियों की समाधि में सोऽहं रूप से विराजता है, अधिक बंशी बजाता है और सत्यलोक में सत्यपुरुष परमात्मारूप से विराजता है। एवं अलक्ष्य (स्वयंप्रकाश) तथा अगम दो रूप से भासता है ॥ ५ ॥

वह पुरुष ईश्वर नाम रहित सबसे श्रेष्ठ स्वामी है। जिसका पार ब्रह्मा ने भी नहीं पाया है। परन्तु यह सब स्वरूप देह में ही है। ब्रह्मा का

प्रतिबिम्ब हिरण्यगर्भ ने प्राप्त किया है। अर्थात् बिम्ब का पतातो ब्रह्मा को भी नहीं लगा। उसने प्रतिबिम्ब का साक्षात्कार किया है॥ ६॥

पिण्ड = व्यष्टि शरीर में और ब्रह्माण्ड = समष्टि शरीर में जो ईश्वर साक्षी ब्रह्मा का प्रतिबिम्ब है वह नकली तत्त्व है। सत्यतत्त्व उससे पार बताया गया है। कबीर कहते हैं—सत्यलोक सार है। जहां महात्माओं ने सत्यपुरुष परमात्मा को माया और तत्कार्य संसार से न्यारा = भिन्नरूप से प्राप्त किया है। सत्यलोक पद के दो अर्थ हैं। एक सत्यरूप ब्रह्माभिन्न आत्मा और दूसरा ब्रह्मलोक। ज्ञानी ईश्वर को यहीं प्राप्त करते हैं और उपासक ब्रह्मलोक में। यहां सद्योमुक्ति होती है और ब्रह्मलोक में क्रममुक्ति॥ ७॥

ईश्वर-महत्त्व

(४७)

अवधू ! कुदरति की गति न्यारी।

रंक निवाजि करै वह राजा, भूपति करै भिखारी ॥टे०॥१॥

ये ते लवँगहिं फल नहिं लागै, चंदन फूल न फूला।

मच्छ सिकारी रमै जंगल मँह, सिंघ समुद्रहिं झूला ॥ २ ॥

रेंड़ा-रुख भये मलयागिर, चहुँ दिसि फूटी वासा।

तीनि लोक ब्रह्मंड खंड मँह, देखै अंध तमासा ॥ ३ ॥

पंगा मेर सुमेर उलंघै, त्रिभुवन मुकतां डोलै।

गुंगा ज्ञान विज्ञान प्रगासै, अनहद वानी बोलै ॥ ४ ॥

अकासहिं बाँधि पताल पठावै, सेस सरग पर राजै।
कहँहिं कबीर राम हैं राजा, जो किछु करैं सो छाजै ॥ ५ ॥
(बीजक शब्द २३)

हे अवधूत महात्माओ ! ईश्वर की रचना आदि गतिविधि निराली है। वह दरिद्रों पर दया कर राजा बना दे सकते हैं और राजाओं को भिखारी बना दे सकते हैं ॥ १ ॥

परमात्मा की सृष्टि में वैपरीत्य देखिये कि, इन लवंग के वृक्षों में पुष्प तो लगाते हैं परन्तु फल नहीं लगते हैं और चन्दन के वृक्षो में न तो फूल और न फल ही लगते हैं। जीव रूपी—मत्स्य का शिकार करने वाला कालरूपी शिकारी संसार रूपी वन में भ्रमण करता है और सिंह रहता तो है जंगल में। उसके शिकारी को जंगल में जाना चाहिये। किन्तु वह यहां न जाकर जीव रूपी सिंह का शिकार करने वाली माया या मन संसार रूपी समुद्र में भूलता है ॥ २ ॥

एरण्ड के वृक्ष के समान कितने साधक पुरुष सुयशरूप सुगन्धी-युक्त मलयगिरि चन्दन के समान सिद्ध हो गये। जिनकी सुयश रूप सुगन्धी चारो दिशाओं में फैल गई है। जो असम्भव था वह भी सम्भव हो गया। अज्ञानी अन्ध पुरुष ज्ञानरूपी अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर तीनों लोक के खण्ड ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के कौतुक देखते हैं। ईश्वर की कृपा से अशक्य भी शक्य हो जाता है। क्योंकि, ईश्वर कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा-कर्तुम् समर्थ है। अर्थात् वह करने में, नहीं करने में और अन्यथा करने में समर्थ है ॥ ३ ॥

भगवत्कृपा होने पर पंगू पुरुष भी सुमेरु पर्वत और उसके शिखर को उल्लङ्घन करता है। वह पंगुरोग से मुक्त हो कर तीनों भुवनों में विचरण करता है। परमेश्वर की कृपा होनेपर वाक् शक्ति रहित गुंगा पुरुष भी ज्ञान विज्ञान का प्रकाश करता है। अर्थात् ज्ञान विज्ञान विषयक

बातें करनें लगता है। और बेहद—वाणी बोलने लगता है। ब्रह्मतत्त्व का उपदेश करने लगता है। ईश्वर असमर्थ को भी सर्व प्रकार से समर्थ कर देता है ॥ ४ ॥

राम = ईश्वर चाहे तो आकाश को बाँध कर पाताल में भेज सकता है और पाताल निवासी शेष नाग को स्वर्ग में कर सकता है। कबीर स्वामी कहते हैं कि, राम अर्थात् ईश्वर राजा अर्थात् स्वतन्त्र है वह जो कुछ करना चाहे कर सकता है। वही उनके लिये शोभा है ॥५॥

---

(४८)

राम-गुन न्यारा न्यारो न्यारा ।

अबुझा-लोग कहांलौं बूझे, बुझनिहार विचारा ॥ टे० ॥ १ ॥

केते रामचन्द्र तपसी से, जिन यह जग विट माया ।

केते कान्ह भये मुरलीधर, तिन भी अंत न पाया ॥ २ ॥

मच्छ कच्छ औ ब्राह सरूपी, वामन नाम धराया ।

केते बौध (नि) कलंकी केते, तिन भी अंत न पाया ॥ ३ ॥

केते सिध साधक संन्यासी, जिन वनवास बसाया ।

केते मुनिजन गोरख कहिये, तिन भी अंत न पाया ॥ ४ ॥

जाकी गति ब्रह्मौं नहिं जानै, सिव सनकादिक हारे ।

ताके गुन नल कैसे पैहौ, कहँहिं कबीर पुकारे ॥ ५ ॥

(बीजक शब्द १८)

राम अर्थात् ईश्वर के दया दाक्षिण्य आदि तथा जगत्—स्रष्टृत्व आदि गुण न्यारा न्यारा अर्थात् एक दूसरे से विलक्षण हैं। ईश्वर में जो गुण हैं वे जीव—गुण से भिन्न दिव्य हैं। इस बात को अज्ञानी लोग कहां तक समझ सकते हैं। इन गुणों को समझने वाले ज्ञानी जन इसका विचार करें। अर्थात् परमात्मा के गुणों में इयत्ता और जीव—गुणों के साथ समानता नहीं है। किन्तु इनके गुण दिव्य, अनन्त एवं असंख्य हैं ॥ १ ॥

भगवान् रामचन्द्र तपस्वी जैसे कितने महापुरुष हो गये। जिन्हों ने इस संसार को अवतारिक अलौकिक दिव्य गुणों से समस्त जगत् को बिडम्बना में डाल दिया है। मुरलीधारी श्रीकृष्ण जैसे कितने हो गये उन्होंने भी उस राम के गुणों का अंत नहीं पाया है। इससे इनमें असामर्थ्य नहीं किन्तु शुद्ध ब्रह्म रूप ईश्वर के गुणों में आनन्त्य है। इनका अन्त होता और वे लोग अन्त न कर पाते तो असमर्थ समझे जाते 'कहूं कहां लौं नाम बड़ाइ। राम न सकहि नाम गुण गाई।' (तुलसी)॥२॥

मत्स्यावतार, कच्छपावतार, वराह स्वरूप वराहावतार, वामन नाम को धारण करने वाले वामनावतार, बुद्धावतार और—कल्कि अवतार आदि कितने अवतार हो गये। किन्तु उन्होंने भी उस परमात्मा के गुणों का अन्त नहीं पाया। अतः उनके गुण अनन्त हैं ॥ ३ ॥

सिद्ध, कल्याण की साधना करने वाले साधक संन्यासी आदि कितने हो गये। जिन्होंने वन में वास किया था और कितने ऋषि मुनि कहे जाते हैं, उन्होंने भी उस ईश्वर के गुणों का अन्त नहीं पाया। अनन्त होने से ही ॥ ४ ॥

जिस ईश्वर की गति अर्थात् गुणों को (महत्त्व को) ब्रह्मा जी भी नहीं जानते हैं और शिव सनकादि भी हार गये हैं। अर्थात् ईश्वर के गुणों को गिन कर अन्त न कर पाये। कबीर पुकार कर कहते हैं कि, हे नर ! उसके गुणों को अल्पज्ञ तुम लोग किस प्रकार पा सकोगे ?

अर्थात् तुम लोग उस ईश्वर के गुणों की गणना कर के अन्त कैसे कर सकोगे ? ॥ ५ ॥



(४६)

वरनहुँ कवन रूप औ रेखा, दूसर कवन आहि जो देखा ।
वोओंकार आदि नहिं वेदा, ताकर कहहु कवन कुल भेदा ॥१॥
नहिं तारागन नहिं रवि चंदा, नहिं कछु होत पिता बिंदा ।
नहिं जल नहिं थल नहिं थिर पवना, को धरे नाम हुकुम को वरना ।२।
नहिं कछु होत दिवस अरु राती, ताकर कहहु कवन कुल जाती ।३॥
साखी-सुन्न सहज मन सुमिरते, प्रगट भई एक जोति ।
ताहि पुरुष बलिहारि मैं, निरालंब जो होत ॥६॥
(बीजक रमैनी ६)

ईश्वर की निःसङ्गता का वर्णन—हे मुमुक्षुगण ! सृष्टि के आदि काल में ईश्वर की रूप रेखा का अर्थात् आकार प्रकार का वर्णन मैं आप के समक्ष क्या करूं ? उस समय दूसरा कौन था जिसने उसको देखा हो। उस समय वेद तो क्या ? वेदों का आदि मूल ओंकार भी नहीं था। ऐसी स्थिति में आप लोग कहो तो सही कि, उस समय उसका भेद क्या कहा जाय ? ॥ १ ॥

उस समय तारागण नहीं था। सूर्य चन्द्र नहीं थे। पिता का वीर्य आदि कुछ भी नहीं था। जल नहीं था। पृथिवी नहीं थी। आकाश और वायु भी नहीं थे। इस अवस्था में उसका नाम कौन रखे ? एवं उसकी आज्ञा को कौन कहे ? ॥ २ ॥

उस समय दिन तथा रात्रि नहीं थी तो भला कहो तो सही कि, उसका कुल और जाति क्या कहा जाय ? ॥ २ ½ ॥

जो पुरुष गुरुमुख से शास्त्र श्रवण कर मनन निदिध्यासन करता है अर्थात् निदिध्यासन के अवस्थाविशेष सहज समाधि के बल से मन को शून्यरूप हृदयाकाश में स्थिर करता है। अनन्तर स्थिर मन से भगवत्स्मरण करता है। उनको ज्योतिस्वरूप ईश्वर का साक्षात्कार होता है। उस पुरुष को धन्यवाद है। क्योंकि यह निरालम्ब हैं ॥ ६ ॥

---

(५०)

एकै—काल सकल-संसारा, एक नाम है जगत पियारा।
तिया पुरुष किछु कथो न जाई, सरब रूप जग रहासमाई ॥ १ ॥
रूप निरूप जाय नहिं बोली, हलुका गरुवा जाय न तोली।
भूख न त्रिषा धूपनहिं छाहीं, दुख सुख रहित रहै तिमि माहीं ॥ २ ॥
साखी—अपरम परम रूप मगु, नहिं तेहि संख्या आहि।
कहँहिं कबीर पुकारि कै, अद्भुत कहिए ताहि ॥ ३ ॥

(बीजक रमैनी ७७)

एक काल सारा संसार में व्याप्त है। जीवों को खा रहा है। जन्म मरण में डाल रहा है। इसके मुख से छूटने के लिये एक राम नाम जगत में प्रिय है। दुःख से छुड़ाकर सुख प्राप्त करावे वह प्रिय होता है। संसार में स्त्री और पुरुष कितने हैं यह कहा नहीं जा सकता है। ईश्वर इन सब रूपों में व्यापक रूप से समाया हुआ है ॥ १ ॥ यह (ईश्वर) सरूप है या निरूप यह कहा नहीं जा सकता है। वह हलका है या

भारी यह तोला नहीं जा सकता है। उसको भूख प्यास नहीं लगती है। उसमें धूप और छाया नहीं है। वह दुःख सुख से रहित है। जैसे रज्जु में कल्पित सर्प अधिष्ठान रज्जु में रहता है वैसे ही ईश्वर में कल्पित जगत अधिष्ठान ईश्वर में रहता है। परमार्थ से ईश्वर के सिवाय दूसरा कुछ है नहीं ॥ २ ॥ ईश्वर प्राप्ति का मार्ग अपरम्पार है। उसमें रूपभाव निरूपभाव नहीं है। उसमें एकत्व द्वित्व आदि संख्या नहीं है। कबीर स्वामी पुकार कर कहते हैं कि, वेदादि शास्त्र तथा महात्माओं की वाणी अद्भुत रहती हैं ॥ ३ ॥



समस्त कबीर साहित्य ईश्वर के महत्त्व वर्णन करने में व्यग्र है। अस्तव्यस्त है इसके पदों की संख्या हम नहीं कर पाते हैं। इतना केवल दिग्दर्शन है। आगे भजन प्रतिपादक कुछ पदों का उल्लेख किया जाता है—

भजन—महत्ता

(५१)

भजन

भजन कब करिहो जन्म सिरान ॥ टे० ॥ १ ॥

गर्भवास में भक्ति कबूले, बाहर आये के गये भुलान ॥ २ ॥

बाला पन तो खेल में खोयो, तरुना में अभिमान गुमान ॥ ३ ॥

वृद्ध भये तन काँपन लागे, सिर धुनि धुनि मनुवाँ पछतान ॥ ४ ॥

कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, जमराजा के हाथ बिकान ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे मनुष्यो ! तुम लोग ईश्वर का भजन कब करोगे। तुम्हारा मनुष्य जन्म अर्थात् मनुष्य शरीर व्यतीत हो रहा है। इस शरीर के छुट जाने के बाद फिर मनुष्य शरीर मिलेगा या नहीं इसको कौन जानता है ॥ १ ॥ हे जीव ! जब तु माता के गर्भ में था तब परमात्मा से करार किया था कि, मुझे इस कष्ट से बाहर करिये। बाहर होने पर मैं आप का भजन करूँगा। परन्तु यहाँ आकर भूल गया है। इस कौल को स्मरण कर और भगवान् का भजन कर ॥ २ ॥ तुमने बालपन खेल में खो दिया। तरुणपन अभिमान अर्थात् जुवानी के गुमान में खो दिया ॥ ३ ॥ अब वृद्ध हो गया, शरीर काँपने लगा है। मार्ग में चलते समय माथा हिलता जाता है। गोया तेरा मन सिर धुन-धुनकर पश्चात्ताप कर रहा है कि, जब शरीर में भजन करने की शक्ति थी तब तो किया नहीं। अब क्या होगा ? ॥ ४ ॥ कबीर स्वामी कहते हैं हे साधु भाई ! सुनो। अब वे लोग यमराज के हाथ में बिकेंगे। जैसा कर्म किये हैं वैसा फल भोगने के लिये यमपुरी को जायेंगे। यमयातना भोगेंगे ॥ ५ ॥

---

(५२)

भजन बिन दिन रे बीता जात ॥ टे० ॥ १ ॥

करिले भजन भला तन पायके, भजन बिना सुख पाया किनरे ॥ २ ॥

उपजत बिनसत जुग चारो गये, वेद विचारत गये मुनि गनरे ॥ ३ ॥

पल माहीं परलै हो जैहैं, बिनसत लागे घरी नहिं छिनरे ॥ ४ ॥

कहँहिं कबीर भजन कर हरिके, पानी से पिण्ड सँवारा जिनरे ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

रे जीव ! भजन किये विना तेरे सब दिन व्यर्थ बीते जा रहे हैं ।।१।। सुन्दर मनुष्य शरीर प्राप्त कर ईश्वर । का भजन कर ले । क्योंकि, भजन के विना किसने सुख पाया है ? कि तू पायगा ? ।। २ ।। जन्मते मरते चारो युग व्यतीत हो गये । तेरी तो बात ही क्या वेद को विचारते विचारते मननशील पण्डित गण भी चले गये ।। ३ ।। जब प्रारब्ध भुक्त हो जायगा तब एक पल में प्रलय हो जायेगा, शरीर छुट जायगा । इसका नाश होते एक घड़ी या एक क्षण भी नहीं लगेगा ।। ४ ।। कबीर कहते हैं कि, हे जीव ! तू हरि का भजन कर जिसने पानी में पिण्ड रचा है । रजोवीर्य से तुम्हारे शरीर की रचना की है । यहाँ 'मुनिगण' शब्द से ऋषि मुनियों का ग्रहण नहीं है किन्तु वेद विचारने वाले वाचक ज्ञानी पण्डितों का ग्रहण है । ऋषिमुनि तो ज्ञानी तथा मुक्त हैं । अथवा वेद विचारते हुए जब मुनिगण चले गये तो तू जायगा इसमें कहना ही क्या है ? । वेद विचारने वाले जब चले गये तब अपठित मूढ़ तू जायगा । इसमें कहना ही क्या है ? ।। ५ ।।

---

(५३)

भजन कर निसदिन टूटे न तार ।। टे० ।। १ ।।

एक ब्रह्म का सकल पसारा, धरि-धरि पल-पल लेहु सँभार ।। २ ।।

या मन मीले साधन सोरे, सोहं शब्द की लगि रहे तार ।। ३ ।।

निसदिन भजन करो साहब के, काया मध्ये है तत् सार ।। ४ ।।

कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, बिन सतगुरु नहिं होय उधार ।। ५ ।।

(शब्दावलि)

सद्गुरु कहते हैं कि, हे साधुजन! आप लोग रात्रिदिन परमात्मा का भजन करो। तार टूटने न पावे। भगवदाकार अन्तःकरण की वृत्ति विच्छिन्न होने न पावे। अखण्डाकार ध्यानवृत्ति प्रवाह चालू रहे। ईश्वरात्म चिन्तन करते-करते अनात्म चिन्तन न हो जाय ऐसा भजन रात्रिदिन करते रहो॥ १॥ एक ही ब्रह्म परमात्मा का यह सकल पसारा है। ब्रह्म ही संसार रूप में विस्तृत हो गया है। घड़ी-घड़ी, पल-पल उसका स्मरण करते रहो। विस्मृत होने न पावें॥ २॥ ऐसा करो कि, यह मन साधन से मिल जाय। शम-दम आदि कल्याण का साधन करने लग जाय। 'सोहं' शब्द की धारा लगी रहे। 'सोहं-सोहं' इस प्रकार अर्थात् वह परमात्मा ही मैं हूँ इस प्रकार की धारा लगी रहे। भावना चालू रहे॥ ३॥ इस प्रकार साहेब = परमात्मा का भजन करते रहो। इस शरीर के बीच में ही सबका सार आत्म तत्त्व है। बाहर खोजने जाने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि, यह परमात्मा हृदय देश में (भीतर) ही अन्तर्यामी रूप से स्थित है॥ ४॥ कबीर कहते हैं कि, हे भाई साधुजन! सद्गुरु के बिना संसार सागर से उद्धार होने का नहीं है। भाव यह है कि, जब सद्गुरु प्राप्त हों, सेवा भक्ति से प्रसन्न होकर उपदेश करें, ईश्वर का महत्व समझावें तब भक्ति किया जाय। बाद में कल्याण हो सकता है॥ ५॥

---

(५४)

भजन कर जगमें जीवन सार॥ टे०॥ १॥

नर देहियाका गर्ब न करिये, जर बर होवे छिन में छार॥ २॥

पाँचो मार पचीसो बस कर, जमराजा की चोट संभार॥ ३॥

नदिया गहिरी नाव पुरानी, बिन सतगुरु कैसे उतरे पार ॥ ४ ॥
कहँहिं कबीर सतगुरु के भजनकर, भवसागर से उतरो पार ॥ ५ ॥
(शब्दावलि)

जीव ! तू परमेश्वर का भजन कर। क्योंकि, संसार में मनुष्य जीवन का सार भजन ही है ॥ १ ॥ मनुष्य शरीर को सुन्दर देखकर अभिमान न कर। क्योंकि, यह तो एक क्षण में जर बर कर (जलकर) भस्म हो जाने वाला है ॥ २ ॥ पांच तत्त्व को या पांच तत्त्व से उत्पन्न शब्दादि विषयों की ओर जाने वाली पांच ज्ञान इन्द्रियों को मार = दमन कर और पचीस प्रकृतियों को अपने वश में कर एवं यमराज की चोट को संभार। अशुभ कर्म का फल यमयातना मिलेगी इसका स्मरण कर ॥ ३ ॥ भव नदी बहुत गहरी है। शरीर रूपी नाव पुरानी हो चुकी है। नाव को खेवने वाले सद्गुरु के बिना इससे पार कैसे उतरोगे ? जैसे बाहर की नाव खेवने वाले केवट के बिना नदी पार नहीं जा सकता है वैसे ही शरीर रूपी नाव खेवने वाले = उपदेश द्वारा कल्याण मार्ग में लगाने वाले सद्गुरु के बिना भव नदी से पार नहीं जा सकता है ॥ ४ ॥ कबीर कहते हैं कि, हे मनुष्य ! तू सद्गुरु परमात्मा का भजन करके उक्त भवसागर पार उतर जा। जन्म मरणरूपी दुःख से छूट कर परम पद मोक्ष प्राप्तकर ॥ ५ ॥



(५५)

तूँ तो राम सुमर, जग लड़ने दे ॥ टे० ॥ १ ॥
कोरा कागज काली स्याही, लिखत पढ़त वाको पढ़ने दे ॥ २ ॥
हाथी चलत है अपने मारग, कुक्कुर भूकत वाको भूकने दे ॥ ३ ॥

देवी देवा भूत भवानी, पत्थर पूजत वाको पूजने दे ॥ ४ ॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, नरक पड़त वाको पड़ने दे ॥ ५ ॥
(शब्दावलि)

हे जीव ! तू राम का अर्थात् सत्पुरुष परमात्मा का स्मरण भजन कर। संसार लड़ता हो तो उसको लड़ने दे। तुझे बिरानी क्या पड़ी तू अपना आप निबेर' अर्थात् तुमको दूसरे की क्या पड़ी है तुम अपना कार्य करो ॥ १ ॥ कोरा कागज पर काली स्याही से कोई लिखता हो और उसको पढ़ता हो तो उसको लिखने पढ़ने दो। उसके साथ वाद विवाद न करो ॥ २ ॥ हाथी अपने मार्ग में चलता है। उसको देखकर कुत्ते भूकते हैं हाथी क्या उसको कुछ कहता है ? अर्थात् नहीं। वैसे ही तू अपने राम को याद करते रहो, भजन करते रहो। कुत्ते के समान कोई निन्दा आदि करते हों तो उसको करने दो। उसके साथ कुछ न बोलो ॥ ३ ॥ देवी देव भूत तथा भवानी आदि की मूर्त्तियों को कोई पूजता हो उसको पूजने दो। तू उसके साथ शास्त्रार्थ न कर कोई कुछ भी करे, करने दे। तू तो राम का ही स्मरण कर ॥ ४ ॥ कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे साधु भाइयों ! सुनो। कोई नरक पड़ता हो, नरक के हेतु अशुभ कर्म करता हो तो उसको करने दो। मना न करो। क्योंकि. वह मानेगा नहीं। तुम्हारा समय व्यर्थ जायगा। अपने समय का सदुपयोग राम स्मरण में करो ॥ ५ ॥

---

(५६)

राम भजा सो जीता जग में, राम भजा सो जीता ॥टे०॥१॥
हाथ सुमरनी पेट कतरनी, पढत भागवत गीता।
हृदया शुद्ध किया नहिं बौरे, कहत सुनत दिन बीता ॥ २ ॥

आन देव की पूजा कीन्ही, गुरु से रहा अतीता।
धन यौवन सब यहीं रहेगा, अन्त समय चले रीता ॥ ३ ॥
बावरिया ने बाबर डारो, मोह जाल सब कीता।
कहँहिं कबीर काल धरि खैहैं, जैसे मृग को चीता ॥ ४ ॥
(शब्दावलि)

इस संसार में मनुष्य शरीर प्राप्तकर जिसने राम भगवान् का भजन किया वही जीता है। उसी ने जीत प्राप्त की है। वही विजयी है ॥ १ ॥ भजन निष्कपट भाव से करना चाहिये। आज प्रायः सभी लोग हाथ में सुमरनी रखते है। राम नाम की माला फेरते हैं और पेट में (हृदय में) दूसरे का गला काटने के लिये कपट की कतरनी रखते हैं। भागवत और गीता को पढ़ते हैं। कथा करते हैं। दूसरे को सुनाते हैं। हे बौरे! हे पागल! तू ने अपना हृदय तो शुद्ध किया नहीं दूसरे को कहते = कथा सुनाते और दूसरे से सुनते = कथा सुनते तुम्हारे सब दिन बीत गये। परन्तु स्वयं सुधरे नहीं ॥ २ ॥ परमात्मा से भिन्न अन्य देवादि की पूजा करते हो और आज तक गुरु से रहित निगुरुरे रहे हो। तुमको ईश्वर का उपदेश कौन करेगा? तुम्हारे धन तथा यौवन आदि सब यहीं रह जायगा। अन्त समय खाली हाथ चला जायगा। तेरे साथ कुछ भी नहीं जायगा ॥ ३ ॥ मायावी लोगों ने तुम्हारे ऊपर माया डाल दी है एवं मोहजाल सब कर दिया है। जिससे तुम मोहित हो गये हो। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, जैसे चीता (व्याघ्रादि) मृगों को खा जाता है वैसे ही काल तुमको खा जायेगा। तू सदा रहने का जो अभिमान करता है सो मिथ्या है। जिस दिन तू सब कुछ छोड़ जायगा उस दिन तुझे कैसा लगेगा उसका अनुमान कर ॥ ४ ॥

---

(५७)

भजन को परमान एसो हरि भजन को परमान ॥टे०॥१॥
अधम जाति मलिन गणिका, चढ़ी जात विमान।
नीच कुलकी ऊँच पदवी, बाजत तबला निशान ॥ २ ॥
चलत तारा चलत मण्डल, चलत शशि औ भान।
दास ध्रुव को अटल पदवी, राम के दीवान ॥ ३ ॥
रावण के दश मस्तक छेदे, कर गहे धनु बान।
विभीषण को राज दीन्ही, भक्त आपनो जान ॥ ४ ॥
निगम जाकी साख बोले, सुनहु सन्त सुजान।
कहैं कबीर जो शरण आये, राखे आपन जान ॥ ५ ॥
(शब्दावलि)

किसी पुस्तक में हरि के स्थान पर गुरु पाठ है। अर्थ दोनों का एक ही है। क्योंकि, गुरु हरिरूप हैं। हरि भजन का ऐसा प्रमाण है कि—॥ १ ॥ मलिन अधम जाति की गणिका = वेश्या थी जो विमान पर चढ़कर भगवान के धाम चली गई। नीच कुल की थी किन्तु भजन के प्रताप से उसने ऊँची पदवी को प्राप्त किया। इस आश्चर्य को देख कर उस समय के लोगों ने डंका निशान वजाया था। यह भजन से ऊँची पदवी प्राप्त होने में प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ २ ॥ आकाश में सब तारा गण गतिमान है। सूर्यचन्द्र भी गतिमान हैं परन्तु भगवान् के दास ध्रुव जी को गति रहित अटल पदवी प्राप्त हुई है। जैसे राम का दीवान अर्थात् मन्त्री ने हो ? ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रने हाथ में धनुष वाण लेकर रावण के दशो मस्तक का छेदन किया था। परन्तु उसी के भाई विभीषण को

लङ्का का राज दे दिया था। इसका कारण केवल यहीं था कि, रावण भजन नहीं करता था और विभीषण भगवान का भजन करता था। भजन से राज मिलता है इसमें यह प्रमाण है ॥ ४ ॥ कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे सुजान सन्तजन ! सुनिये—जो भगवान् की शरण में आते हैं उनको अपना जानकर भगवान उनकी रक्षा करते हैं इसमें निगम अर्थात् चारों वेद साक्षी हैं। क्योंकि, भगवान् शरणागतवत्सल हैं। इसमें विभीषण कीं शरणागति की कथा प्रमाण है ॥ ५ ॥



(५८)

हरि को या विधि ध्यान धरै ॥ टे० ॥ १ ॥

जैसे अमली अमल को चाहै, छिन छिन सुरति करै ।
जब गल अमली अमल न पावै, तब लग तलफ मरै ॥ २ ॥
फणि मणि को भुंई काढ धरत है, फैल के ओस चरै ।
कछु चरै कछु मणि तन चितवै, बिछुरत तलफि मरै ॥ ३ ॥
जैसे सती जरै पिय के संग, नेक न सोच करै ।
आपन क्रोड पिया को लेकर, विहसत जाय जरै ॥ ४ ॥
जैसे सुरति गगन को दौड़ै, महलन खोज करै ।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, भूला भटक मरै ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

हरि=ईश्वर का ध्यान इस प्रकार धरना चाहिये ॥ १ ॥ जैसे तमाकु, भांग, गांजा तथा दारु आदि का अमली पुरुष अमल को चाहता है।

वह क्षण-क्षण उसका चिन्तन करता है। उसी तरफ उसका ध्यान रहता है। जब तक उसको अमल नहीं मिलता है तब तक वह बेचैन रहता है ॥ २ ॥ जैसे मणियुक्त सर्प (जिसके मस्तक में मणि रहता है) मणि को निकालकर पृथिवी पर रख देता है और उससे फैले हुए प्रकाश में जन्तुओं को तथा ओस को चरता है। क्षण में चरता है और क्षण में मणि की तरफ घुम-घुम कर देखता है। मणि के वियोग होने पर तड़प-तड़प कर = पछाड़ खा-खा कर मर जाता है ॥ ३ ॥ जैसे सती स्त्री मृत पति के साथ जल जाती है। वह जरा भी शोक या विचार नहीं करती है और अपनी गोद में पति को लेकर हसती हुई जल जाती है। वैसे ही ईश्वर के ध्यान धरने में अर्थात् भक्ति करने में चाहे जितनी कठिनाइयाँ आ पड़े सबको हंसते हुए सहन करना चाहिये ॥ ४ ॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे भाई साधो! सुनिये। जैसे सुरति = मनोवृत्ति आकाश की तरफ दौड़ती है। महलों में स्त्रियादि विषयों की खोज करती है वैसे ही यह जीव ईश्वर भजन को छोड़कर, भ्रम में पड़कर एवं संसार में भटक-भटक कर मर जाता है ॥ ५ ॥

भक्ति

(५६)

संतो भक्ति सतगुरु आनी।

नारी एक पुरुष दुइ जाया, बूझहु पंडित ज्ञानी ॥टे०॥ १ ॥

पाहन फोरि गंग एक निकरी, चहुँ दिसि पानी पानी।

तिहि-पानी दुइ परवत बूड़े, दरिय लहर समानी ॥ २ ॥

उड़ि मांखी तरुवर ते लागी, बोलैं एकै बानी।
वहि मांखी के माँखा नाहीं, गरभ रहा बिनु पानी ॥ ३ ॥
नारी सकल-पुरुषवहि खायो, ताते रहउ अकेला।
कहँहिं कबीर जो अबकी समुझै, सोई गुरु हम चेला ॥ ४ ॥
(बीजक शब्द १)

सद्गुरु श्रीकबीर स्वामी कहते हैं कि, हे मुमुक्षुओं ! भगवान की भक्ति को सद्गुरु श्रीरामानन्द स्वामी लाये है। अतः आपलोग उसको अपने हृदय में धारण करिये। हे ज्ञानी पण्डितो ! एक माया-रूप नारी ने एक जीव और दूसरा ईश्वर रूप दो पुरुषों को उत्पन्न किया है। इसको आपलोग समझिये ॥ १ ॥ पाहन रूप पत्थर तुल्य आनन्द घन ब्रह्मको फोड़कर अर्थात् उपाधि बनकर, पृथक्करण कर एक शुद्ध सत्त्व प्रधान माया रूप गङ्गा निकली है। जिसका चारों दिशाओं में प्रपञ्च रूप पानी ही पानी फैल गया है। उसमें सबसे बड़े पर्वत के समान जीव और ईश्वर डूब गये। संसार में पड़ गये। यह मायारूप गङ्गा समस्त संसार को प्लावित करती हुई अन्त में लहर के रूप में ब्रह्मरूप समुद्र में जाकर समा जाती है ॥२॥ मिथ्याज्ञानाभिमानी योगियों की वृत्तिरूप मक्खी उड़कर संसार रूपी वृक्ष से लगी हुई है। और वह एकही 'अहं ब्रह्मास्मि' इस प्रकार अभेद बोधक वाणी बोलती है। परन्तु उस वृत्तिरूप मक्खी का परमात्मा ब्रह्मरूप माखा नहीं है। अर्थात् उस वृत्ति का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध नहीं हुआ है। उक्त वृत्ति को—वीर्य विना ही गर्भ रह गया। यह असम्भव है ॥ ३ ॥ माया से छुटने का उपाय हैं—पूर्वोक्त माया रूप नारी ने जीव रूप सर्व पुरुषों को खा डाला है। जीव ! तू उससे अकेले रहो। श्रीकबीर स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य शरीर प्राप्तकर अवकी वार समझेगा वही गुरु और मैं उसका चेला हूँ। (यह कथन निरभिमानता का सूचक है) ॥ ४ ॥



(६०)

भक्ति के वश भाई हरि, मेरा भक्ति के वश भाई ।
जाति वरण कुल रीक्षत नाहीं, ना रीझे चतुराई ।। टे०।। १ ।।
करमा कवन अचार किये है, कब काशी कर आई ।
छप्पन भोग को पीछे अरये, पहिले खीचड़ पाई ।। २ ।।
शबरी कवन ऊँच कुल कहिये, जूठे बेर लै आई ।
प्रीति जानि वाके फल खाये, तीनों लोक बड़ाई ।। ३ ।।
त्रिलोचन अरु नामदेव पीपा, हरि से हेत लगाई ।
सेन रूप होय मरदन कीन्हां, आप भये हरि नाई ।। ४ ।।
सहस्र अठासिमुनि यज्ञ में जीमे, तबहु न घन्टा बाजे ।
कहँहिं कबीर श्वपच के जीमे, घण्टा अधर पर बाजे ।। ५ ।।

(शब्दावलि)

हे भाई सन्तो ! मेरे श्रीहरि तो भक्ति के वश में हैं। जो भक्ति करता है उसके अधीन प्रभु हो जाते हैं। ऊँच जाति, ऊँच वर्ण, तथा ऊँच कुल को देखकर वे रीझते नहीं। प्रसन्न नहीं होते हैं और न किसी की चतुराई को देखकर उस पर रीझते हैं ।। १ ।। देखिये—कर्माबाई ने कब उत्तम आचरण किया था और कब वह काशी जाकर तीर्थकर आई थी ? फिर भी जगन्नाथजी छप्पन भोग को पीछे पाते थे और सर्वप्रथम उसकी (कर्माबाई की) खीचड़ी प्रतिदिन प्रातःकाल पाया करते थे। भक्ताधीन भगवान् हैं ।। २ ।। और देखिये—शबरीबाई कौन से ऊँच कुल में उत्पन्न हुई थी। जाति की भील थी। वह उच्छिष्ट बदरीफल (बेर) लेकर आई थी। भगवान ने प्रीति अर्थात् उसकी भक्ति को

जानकर उसके फल खाये थे। जिससे तीनों लोक में उसकी आज भी प्रशंसा हो रही है। भक्तिपरवश भगवान् हैं। वे भक्त के महत्त्व को बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥ भक्त त्रिलोचन, नामदेव और पीपा ने हरि से प्रेम किया था। भक्ति की थी। सेनने भक्त का रूप धारण कर राजा को तेल-मर्दन किया था। उसके लिये स्वयं श्रीहरि नाई बने थे। भक्ति के वश में है तब न ॥ ४ ॥ कबीर कहते हैं—महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में अट्ठासी हजार ऋषिमुनियो ने भोजन किया था किन्तु घण्टा नहीं बजा था और जब श्वपच भक्त ने भोजन किया था तब अधर अर्थात् आकाश में घण्टा बजा था। तब युधिष्ठिर को निश्चय हुआ था कि, अब मैं पाप से मुक्त हुआ। इस पद में जितनी कथायें आई हैं वे सब लोक में प्रसिद्ध हैं ॥ ५ ॥

---

(६१)

मोही भावेल भक्ति भिलनियाँ के ॥ टे० ॥ १ ॥

बड़े बड़े ऋषि मुनि गंगा नहावे।
कंगना पाये चमैनियाँ के ॥ २ ॥

राजा भी आये महाराजा भी आये।
घंटा बजाये डोमिनियाँ के ॥ ३ ॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो।
तरि गये बेटवा कसैंनियाँ के ॥ ४ ॥

(शब्दावलि)

सद्गुरु कहते हैं कि मुझे भीलनी की भक्ति अच्छी लगती है। क्योंकि उसकी भक्ति के वश में होकर भगवान् श्रीराम ने उसके अर्पण किये जूठे बेर खाये थे ॥ १ ॥ बड़े बड़े ऋषि मुनि गङ्गा जी में स्नान किये थे। उनको गङ्गा जी ने कुछ भी नहीं दिया था। परन्तु चमारिन के पुत्र रविदास भक्त ने गङ्गा जी से कङ्कण प्राप्त किया था। उनको भगवान के अनन्य भक्त जान कर गङ्गा ने प्रसाद के रूप में सुवर्ण-कङ्कण दिया था ॥ २ ॥ युधिष्ठिर के यज्ञ में बड़े बड़े राजा, महाराजा तथा ऋषिराज, मुनिराज आदि सब आये थे। भोजन भी किये थे। परन्तु डोमिन के श्वपच भक्त ने घण्टा बजाया था। अर्थात् श्वपच भक्त के भोजन करने से आकाश में घण्टा बजा था। जिससे युधिष्ठिर को निश्चय हुआ था कि अब मेरे सब पाप नष्ट हुए ॥ ३ ॥ सद्गुरु कहते हैं कि, हे साधु भाइयो सुनिये—कसाइन के पुत्र सदना भक्त संसार सागर से तर गये। भक्ति के प्रभाव से उनका उद्धार हो गया। इन सब की कथा भक्तमाल आदि ग्रन्थों में प्रख्यात है ॥ ४ ॥

समाधि

(६२)

सन्तो सहज समाधि भली है।

जब से दया भई सतगुरुकी, सुरति न अनत चली है ॥ टे० ॥ १ ॥

जहाँ जहाँ जाऊँ सोइ परिकरमा, जो कछु करूँ सोइ पूजा।

गृह उद्यान दोउ सम करि लेखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा ॥ २ ॥

आँख न मूँदूं कान न रूंधु, काया कष्ट न धारूं।

उघरे नयन से साहिब देखूँ, हसि हसि वदन निहारूं ॥ ३ ॥

शब्द निरन्तर मनुवां रांचे, मलिन वासना त्यागी।
जागत सोवत ऊठत बैठत, ऐसी तारी लागी ॥ ४ ॥
कहँहिं कबीर यह उन मुनि रहनी, जो प्रगटे कर गाई।
सुख दुख से वह परे परमपद, सोई सकल सुखदाई ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

सद्‌गुरु कहते हैं कि, हे सन्तजन ! सहज समाधि अच्छी है। जब से सद्‌गुरु की दया हुई और सहज समाधि सिखाया तब से सुरती दूसरी तरफ नहीं जाती है। ब्रह्माकार वृत्ति अखण्ड रूप से विद्यमान रहती है। चित्तवृत्ति विषयों की तरफ नहीं जाती है ॥ १ ॥ जहाँ जहाँ जाता हूँ वही परिक्रमा और जो कुछ करता हूँ वही पूजा यही मेरी पूजा है। गृह और वन दोनों को समान दृष्टि से देखता हूँ। द्वैतभाव नष्ट हो गया है। मेरीदृष्टि में घर और वन दोनों समान हैं। अब इस भूमिका पर पहुँचने के पश्चात् समाधि लगाने के लिये वन में जाने की आवश्यकता नहीं ॥ २ ॥ अब आँख और कान बंद नहीं करता हूँ। और किसी प्रकार का समाधि के लिये शरीर कष्ट उठाना नहीं पड़ता है खुले नेत्र से जहाँ देखो वहाँ ईश्वर ही नजर आते हैं, हस हस कर उनके मनोहर मुख को देखता हूँ। सर्वत्र ब्रह्मदृष्टि प्राप्त हो गई है ॥ ३ ॥ परमेश्वर के नाम रूप शब्द के उच्चारण (जप) करने में मन निरन्तर अनुरक्त हो गया है। मन में जो मलिन विषयवासना थी उसको त्याग दिया है। वासना का क्षय हो गया है। जागते सोते ऊठते बैठते ऐसी एकाकार ध्यान वृत्ति भगवान में लग गई है जो दूसरी तरफ जाती ही नहीं ॥ ४ ॥ सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि, यह योगियों की रहनी उन्मुनी रहनी कही जाती है। जिसको मैंने इस पद में प्रगट गाकर सुनाई है। इस अवस्था में योगियों को परम पद प्राप्त होता है। जो विषय जन्म सुख दुःख से पर है और सकल सुख को देने वाला है।

आत्मसुख में सब सुख आ जाता है। 'सर्वं पदं हस्तिपदे निमग्नम्'। जैसे हाथी के पैर में सबके पैर आ जाते हैं वैसे ही ब्रह्म सुख में सब सुख आ जाते हैं। इसी बात को भगवान् ने भी गीता में कहा है—

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥गी०२-४६॥

अर्थात् जैसे बड़े जलाशय के प्राप्त हो जाने पर जल के लिये छोटे जलाशयों की आवश्यकता नहीं रहती, वैसे ही ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होने पर आनन्द के लिये वेदों की आवश्यकता नहीं रहती।

भाव यह है कि, समाधि दो प्रकार की होती है। सविकल्प और निर्विकल्प। सविकल्प का दृढ अभ्यास होने पर निर्विकल्प समाधि प्राप्त होती है। नेती, धोती, वस्ती उडियान, नौली, वज्रौली आदि क्रियायें समाधि के साधन हैं। जहाँ तक इन + योगक्रियाओं की आवश्यकता रहती है तहाँ तक समाधि हठयोग कही जाती है। योग और समाधि पर्याय शब्द हैं। जब समाधि लगाने के लिये किसी साधन की आवश्यकता नहीं रहती है, अपने आप जब चाहे तब समाधि लग जाती है उस समाधि को राजयोग कहते हैं। उसी को सद्गुरु ने इस पद में सहज समाधि कहा है। यह समाधि की पराकाष्ठा है। शास्त्र में भी कहा है—

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥

अर्थात् हिम के गलित होने के समान देहाभिमान के गलित होने पर और करतल आमलक के साक्षात्कार के समान परमात्मा के साक्षात्कार होने पर जिस जिस विषय पर मन जाता है वहीं वहीं समाधि ही है। इस श्लोक का और यथोक्त पद का एक ही भाव है।

आज बहुत से प्रतिष्ठालोलुप साधु ऐसे देखे जाते हैं जो यह कहते हैं कि—योग की दो पद्धतियाँ हैं। एक हठयोगपद्धति और दूसरी

राजयोगपद्धति। उनमें मैं राजयोग पद्धति से योग करता हूँ। हठयोग पद्धति से नहीं। अतः मैं राजयोगी हूँ। इत्यादि। यह समीचीन नहीं। क्योंकि, हठयोग बिना राजयोग आ ही नहीं सकता है। योग की दो पद्धति नहीं किन्तु एक ही है। सोपान आरोहण न्याय से हठयोग ही क्रमशः राजयोग को प्राप्त होता है। जो योग नहीं जानते हैं। योगी-पने का ढोंग रचते हैं। वेही ऐसा कहते हैं कि, हठयोग से राजयोग भिन्न है। वस्तुतः हठयोग की अन्तिम अवस्था राजयोग है। जिसको सिद्धावस्था तथा सहजावस्था भी कहते हैं। वही सहजसमाधि है।

कबीर पर लेख लिखने वाले कतिपय हिन्दी के विद्वानों ने इस पद से प्रतिपादित सहजसमाधि का अर्थ व्यावहारिक योग माना है और कहा है कि, कबीर ने योग को योग नहीं माना है। उसको ढोंग कहा है। इत्यादि। सो समुचित नहीं। क्योंकि, पूर्व की योगभूमियों को प्राप्त किये विना सर्वत्र ब्रह्मदृष्टिरूप सहजसमाधि प्राप्त होना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है॥ ५॥

---

(६३)

रस गगन गुफा में अझर झरे।

विन बाजा झनकार उठे जहँ, समुझि परै जब ध्यान धरै ॥टे०॥१॥
बिना ताल जहँ कवल फुलाने, तेहि चढि हंसा केलि करै।
विन चंदा उजियारी दरसै, जहँ तहँ हंसा नजर परै॥ २॥
दसवें द्वारे तारी लागी, अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहिं आवे, काम क्रोध मद लोभ जरै॥ ३॥

जुगन जुगन की तृषा बुझानो, करम भरम अघ व्याधि टरै ।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूँ मरै ।। ४ ।।

(शब्दावलि)

समाधि के समय दशम द्वार ब्रह्माण्ड में अझर रस झरता है। ब्रह्मानन्द का अनुभव होता है। बाजा के विना झन झन शब्द जहाँ सुनाई देते हैं। दिव्य रस तथा शब्द का साक्षात्कार जब होता है तब ध्यान धरा जाता है। नोट—समाधि में जो कुछ भासता है—उसका वर्णन है ।। १ ।। विना तालाब के जहां कमल खिले हुए हैं। उस पर हंस केलि कर रहे हैं। विना चन्द्रमा के जहां प्रकाश दिखाई देता है। जहां तहां हंस नजर आते हैं। समाधि में योगियों को इस प्रकार के दृश्य देखने में आते हैं ।।२।। योगी लोग बंद दशम द्वार में अलक्ष्य सत्यपुरुष परमात्मा का ध्यान धरते हैं। विकराल काल उनके पास नहीं आने पाते हैं। काम क्रोध मद लोभ आदि जो समाधि के विरोधी हैं वे सब योगाग्नि से जल कर भस्म हो जाते हैं ।। ३ ।। अनन्त युगों की तृषा बूझ जाती है। कर्म भ्रम और अघ अर्थात् पापरूप व्याधियाँ वहां से हट जाती हैं। नष्ट हो जाती हैं। कबीर कहते हैं कि, हे भाई साधुओं ! आप लोग सुनिये कि, इस भूमिका पर पहुँचे हुए योगी अमर हो जाते हैं। फिर कभी मरते नहीं हैं ।। ४ ।।



(६४)

गगन बिच मन को रमाना है ।। टे० ।। १ ।।
राखत नाद बिन्दु को वश कर, बंक नाल चढ चलना है ।। २ ।।
बाँधत मूल त्रिराजत आसन, बीच की धार सुषमना है ।। ३ ।।

आबे न जाय रहे न अस्थिर, उलट वही घट जमुना है ॥ ४ ॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, योग युक्ति से मिलना है ॥ ५ ॥
(शब्दावलि)

गगन बिच = दशम द्वार ब्रह्माण्ड में प्राण का निरोध कर परमात्मा के ध्यान में मन को रमाना है। मन से ब्रह्मानन्द का अनुभव करना है ॥ १ ॥ नाद और विन्दु को वश में रखकर बंकनाल के मार्ग से चढ़कर चलना है ॥२॥ सिद्धासन में विराजमान होकर मूलबन्ध करना है उसके बीच में प्राण की धारा अर्थात् प्रवाहरूप सुषुम्ना को सिद्ध करना है ॥ ३ ॥ प्राण को ब्रह्माण्ड में खींचने से यदि भयङ्कर स्वरूप दिखाई देंवे तब इडा को उलट कर पिङ्गला कर देना है। उस समय श्वास का आना जाना बँध होकर स्थिर हो जाता है। उस समय मन क्रमशः एकाग्र तथा निरुद्ध होकर ईश्वर का साक्षात्कार करने लगता है। यही करना है ॥ ४ ॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे भाई साधुओ! सुनिये कि, इस प्रकार की योगयुक्ति के द्वारा ईश्वर से मिलना है। योगजलक्षणा प्रत्यासत्ति से ईश्वर का साक्षात्कार करना है ॥ ५ ॥



(६५)

जोगिया से मेरा मन लागा ॥ टे० ॥ १ ॥
जब से प्रीति लगी जोगिया से, भया हंस नहिं कागा ॥ २ ॥
जोगिया कारण जोग करत हूँ, आठ पहर रहूँ जागा ॥ ३ ॥
जब जब जोगिया मौज करत है, पाय अमरपद धागा ॥ ४ ॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, जरा मरण भ्रम भागा ॥ ५ ॥
(शब्दावलि)

सद्गुरु कहते हैं कि, जोगिया अर्थात् परमात्मा से मेरा मन लग गया है ॥ १ ॥ जब से परमात्मा में प्रेम लगा तब से यह जीव हंस हो गया। काक नहीं रहा ॥ २ ॥ परमेश्वर की प्राप्ति के लिये योग करता हूँ। आठो प्रहर जगता ही रहता हूँ ॥ ३ ॥ जब जब परमेश्वर दया करते हैं तब तब अमरपद प्राप्त करने का सुरतिरूपी सूत्र प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ कबीर कहते हैं कि, हे भाई साधुजन! सुनिये—जरा मरण का जो भ्रम था वह इस योग से भंग हो गया। जन्ममरण से मुक्त हो गया। भ्रम शब्द से यह व्यक्त किया गया है कि—परमार्थ से आत्मा को जन्म जरा और मरण नहीं होता है। भ्रम से इसको जन्मादि भासता है ॥ ५ ॥



गुरु

(६६)

गुरु बिनु कौन बतावै बाट, महा बिकट यम घाट ॥ टे०॥ १ ॥
भ्रान्ति पहाड़ी नदिया बिच में, अहंकार का ठाट।
काम क्रोध दो पर्वत ठाढे, लोभ मोह संघात ॥ २ ॥
मद मत्सर का मेघा बरषत, माया पवन उचाट।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, क्यों तरना यह घाट ॥ ३ ॥

(शब्दावलि)

जन्म-मरण रूप संसार से परमात्मा के यहाँ जाने के लिये अर्थात् मोक्षप्राप्ति के लिये जो मार्ग है उसको गुरु बिना कौन बता सकता है। वहाँ जाते समय मार्ग में यमराज रूप महाविकट घाट है ॥ १ ॥ बीच में भ्रान्ति रूपी पहाड़ी नदी है। अहंकार का हाट लगा है।

काम क्रोध दो पर्वत खड़े हैं। लोभ मोह का समूह है, जो सब वहाँ जाने में अन्तराय रूप हैं ॥ २ ॥ जाते समय मद मत्सर रूप मेघ वर्षता है। माया रूपी पवन उचटता है। वेग से बहता है। कबीर कहते हैं कि, हे भाई साधुओं ! सुनिये। इस घाट से कैसे तरा जायगा, इसको विचारिये ॥ ३ ॥



(६७)

गुरु दरिया में नहाना हो, जासों दुर्मति भागे ॥ टे०॥ १ ॥
गुरु दरिया में सदा जल निर्मल, पैठत उपजत ज्ञाना हो ॥ २ ॥
जब लग गुरु दरिया न नहावे, तब लग फिरत भुलाना हो ॥ ३ ॥
कोटिन तीरथ गुरुके चरनन, श्रीमुख आप बखाना हो ॥ ४ ॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, अजर अमर घर पाना हो ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

सज्जन गण ! आपको गुरु रूपी समुद्र में स्नान करना चाहिये। गुरु करना चाहिये। गुरु को सेवा आदि करना चाहिये। जिससे (गुरु दरिया में नहाने से) दुर्मति भग जाती है। अन्तःकरण शुद्ध होता है ॥ १ ॥ गुरु दरियाव में सदा ही निर्मल जल रहता है। डुबकी लगाते ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। बाह्य दरियाव में स्नान करने से पाप नष्ट होता है और गुरु दरियाव में स्नान करने से ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ २ ॥ जब तक यह जीव गुरुरूपी समुद्र में स्नान नहीं करता है तब तक संसार में भूला फिरता है। अज्ञान प्रयुक्त जन्म-मरण में रहता है ॥३॥ गुरु के चरण करोड़ों तीर्थ समान है इस बात की प्रशंसा स्वयं भगवान्

श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीमुख से किया है कबीर स्वामी कहते हैं—हे सन्तो ! सुनिये । गुरु रूपी दरियाव में नहाना अजर-अमर घर पाना है। गुरु के उपदेशजन्य ज्ञान से संसार दुःख से मुक्त होना है। मनुष्य शरीर धारण करने का फल मोक्ष प्राप्त करना है।

'गुरु से ही ज्ञान प्राप्त होता है' इस बात को भगवान् कहते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ गी. ४–३४ ॥

अर्थात् तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषों से भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम तथा सेवा और निष्कपट भाव से किये हुए प्रश्न द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है ऐसा समझो।

श्रीमुखवचन—

मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् ।
श्रीमद्भागवत स्कं० ११–१०–५ ॥

अर्थात् मुमुक्षु को चाहिये कि, ज्ञान के लिये मुझे जानने वाले, मेरे स्वरूप, शान्त, गुरु की उपासना करनी चाहिये। श्रीमुखवचन अन्यत्र भी बहुत है ॥ ५ ॥



(६८)

ऐसी गुरु मूरति की बलिहारी ॥ टे० ॥ १ ॥

गुरु दाता गुरु आप बिधाता परमारथ उपकारी।
आनन्दरूप स्वरूप दयानिधि, पतित अनेकन तारी ॥ २ ॥

गुरुमहिमा नहि कहे शारदा, शेष सहस मुख हारी ।
सो महिमा मैं केहि विधि वरणों, शक नहि चलत हमारी ॥ ३ ॥
चकमक पथरी रहे एक संग, उठै नहीं चिनगारी ।
विनुदाया संयोग गुरुविनु, होत नहीं उजियारी ॥ ४ ॥
जो माया परचण्ड चहुँ दिशि, दश अवतार धरारी ।
सो माया गुरुमूरति आगे, युग युग आज्ञाकारी ॥ ५ ॥
सनमुख लड़े सो सूर कहावे, अगम पंथ पगु धारी ।
कायर भये बचाव नहीं है, काल कबहु नहि छारी ॥ ६ ॥
जीती बाजी क्यों तुम हारे, यह तो अवसर भारी ।
कबीर नाद घट भीतर खेले, सोई सुघर खेलारी ॥ ७ ॥

(शब्दावलि)

गुरुमूर्ति की इस प्रकार बलिहारी है। धन्यवाद है ॥ १ ॥ गुरु दाता हैं। गुरु स्वयं विधाता हैं। गुरु परमार्थ कार्य करने में उपकार करने वाले हैं। उपदेश देकर मोक्ष के साधन कराने वाले हैं। गुरु आनन्दरूप हैं। गुरु दया के समुद्र स्वरूप हैं। गुरु असंख्य पतितों को संसार सागर से तारने वाले हैं ॥ २ ॥ गुरु की महिमा को शारदा = सरस्वती कह नहीं सकती है। गुरुमहिमा वर्णन करने में हजार मुख वाले शेष भगवान् भी हार गये हैं। उस महिमा का मैं किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ ? उसका वर्णन करने में हमारी शक्ति काम नहीं कर सकती है ॥३॥ जैसे चकमक पथरी अकेली रहे तो उसमें से अग्नि प्रगट नहीं होती है वैसे ही गुरु की दया के विना संपर्क चिनगारी प्रगट नहीं होती है। गुरु विना ज्ञान रूप प्रकाश उत्पन्न नहीं होता है ॥ ४ ॥

जो प्रचण्डमाया दशो दिशाओं में फैली हुई है और दश अवतार को धारण करती है (अवतारिक शरीर मायिक है) वह माया गुरुमूर्ति के आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती है। आज ही नहीं किन्तु प्रत्येक युग से आज्ञाकारिणी है ॥ ५ ॥ जो योधा युद्ध में सम्मुख होकर लड़ता है वह शूरवीर कहा जाता है और दुर्गम मार्ग में पैर धरने वाला होता है। और जो कायर होता है उसका बचाव नहीं होता है। शत्रु उसको छोड़ते नहीं हैं मार देते हैं वैसे ही जो साधक कल्याण साधन करने में कायर है। काम क्रोधादि शत्रुओं को मारने में असमर्थ है उसको काल कभी छोड़ता नहीं है। मार देता है ॥ ६ ॥ हे मुमुक्षुओं ! जीती हुई बाजी को तुम लोग क्यों हार रहे हो ? यह तुम्हारे लिये भारी अवसर प्राप्त है। कबीर कहते हैं—जो शरीर के भीतर नाद खेल खेलता है = समाधि लगाता है वही सुघड़ = चतुर खेलाड़ी है। अनन्त जन्मों के पुण्य उदय होने से मनुष्यशरीर प्राप्त होना बाजी जीतना है और मनुष्य शरीर प्राप्त होने के बाद कल्याण का साधन न करना बाजी हारना है ॥ ७ ॥



सद्गुरु

(६९)

साधो सो सतगुरु मोहि भावै।

सत्यनाम का भरि भरि प्याला, आप पिवे और पावै ॥टे०॥१॥

मेले जाय न महन्त कहावै, पूजा भेट न लावै।

परदा दूर करै आंखिन का, निज दरशन दिखलावै ॥ २ ॥

जाके दर्शन साहिब दरशे, अनहद शब्द सुनावै।
माया के सुख दुःख करि जानै, संग न सपन चलावै ॥ ३ ॥
निशिदिन सत्सङ्गति में रांचै, शब्द में सुरति समावै।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, निरभय पद दरशावै ॥ ४ ॥
(शब्दावलि)

हे साधुजन! वे ही सद्गुरु मुझे अच्छे लगते हैं जो सत्यनाम रूप ईश्वर के नाम रस का प्याला भर भर कर स्वयं पीवें और दूसरे सत्सङ्गियों को भी पिलावें स्वयं नामजप करे और दूसरों को भी करावे ॥ १ ॥ जो न तो मेला भण्डारा में जाँय और न पूजा भेंट की आशा रखें, ज्ञान चक्षु के अविद्या आवरण रूप परदे को दूर करें और आत्मा के निज स्वरूप का साक्षात्कार करावे वे ही सद्गुरु हैं ॥ २ ॥ जिनके दर्शन करने से परमात्मा का दर्शन हो और समाधि में अनहद शब्द सुनने में आवे, मायिक विषय सुख को दुःखरूप समझें और उनका संग स्वप्न में भी न करें वे ही सद्गुरु हैं ॥ ३ ॥ जो प्रतिदिन सत्सङ्ग में रत रहें और गुरु उपदेश रूप शब्दगम्य ईश्वर के ध्यान में लगे रहें, सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे साधु भाई! सुनिये, वे ही निर्भय पद=भय रहित ब्रह्म पद दिखा सकते हैं। वे ही सद्गुरु हैं और वे ही मुझे अच्छे लगते हैं ॥ ४ ॥

---

(७०)

बिनु सतगुरु नर फिरत भुलाना ॥ टे० ॥ १ ॥

इक के हरीसुत लाय गड़ेरिया, पालपोस के कियो सयाना।
रहत अचेत फिरत अजयन संग, अपना हाल कछू नहिं जाना ॥ २ ॥

इक के हरी सुत आय जंगल से, ताहि देखि वह बहुत डेराना ।
पकरि भेद ताने समुझायो, अपनि दशा देखि मुसुकाना ॥ ३ ॥
मिरगा नाभि बसे कस्तूरी, खोजत मूढ़ फिरे चौगाना ।
व्याकुल होय मनहि मन सोचे, यह सुगन्ध कहां से आना ॥ ४ ॥
गुरु प्रताप निज रूप दिखायो, सो आनन्द नहिं जात बखाना ।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, उलटि के आप में आप समाना ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

सद्गुरु की प्राप्ति न होने से मनुष्य संसार में भूला-भूला सा रहता है । जन्म मरण रूप दुःख का अनुभव करता है ॥ १ ॥ जैसे गड़ेरिया एक सिंह के बच्चे को लाया और उसको पाल पोस कर बड़ा किया । वह सदा अचेत रह कर बकरों के साथ घुमता रहा । अपना हाल कुछ भी नहीं जानता था । जंगल से एक दूसरा सिंह आया । उसको देख कर वह बहुत भयभीत हुआ । डरा ॥ २ ॥ सिंह ने उसको डर कर भागते देखा । तब कहा कि, हे भाई ! ये सब तो बकरे हैं । इसलिये सिंह को (मुझे) देखकर भागते हैं । तू तो सिंह है । तू क्यों भागता है ? । उसने कहा कि, मैं सिंह नहीं हूँ । मैं तो बकरा हूँ । सिंह तो तू है । सिंह ने कहा कि, तू अपने शरीर की आकृति को देख, बकरों के शरीर की आकृति के साथ मिलती है या मेरे शरीर की आकृति के साथ ? । जब सिंह के कहने से उसको ज्ञान हुआ कि. मैं सिंह हूँ तब वह अपनी बकरे की दशा देखकर हसने लगा । वैसे ही यह जीव स्वरूप को भूल कर अपने को कर्ता भोक्ता आदि कहने लगा है । जब इसको सद्गुरु मिले और भेद बतावे तब इसको स्वरूप का परिचय हो सकता है ॥ ३ ॥ जैसे कस्तूरिया मृग के नाभि में कस्तूरी है । उसको उसका ज्ञान नहीं है । उसकी खोज में वह इधर उधर दौड़ता है और विचार करता है

कि यह सुगन्धी कहाँ से आती है जब वह किसी प्रकार यह जान जाता है कि, यह सुगन्धी मेरे ही अन्दर है तब स्थिर होकर संकुचित होता है ॥ ४ ॥ वैसे ही सद्गुरु के उपदेश से इस जीव को जब ज्ञान हो तब चौरासी लक्ष योनियों में दौड़ना छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो सकता है। उस समय जो आनन्द का अनुभव होता है कहा नहीं जा सकता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे साधुओं ? आप लोग सुनिये कि उस समय ज्ञानी पुरुष संसार से उलट कर ब्रह्म स्वरूप में समा जाता है। क्योंकि, इसका स्वरूप ही ब्रह्मरूप है। अतः अपने आप में समा जाता है ॥ ५ ॥



(७१)

लखे कोई विरला पद निरवान ॥ टे० ॥ १ ॥

तीन लोक में है जमराजा, चौथे लोक में नाम निशान ॥ २ ॥

याही लखत इन्द्रादिक थक गये, ब्रह्मा थक गये पढ़त पुरान ॥ ३ ॥

गोरख दत्त बसिष्ठ व्यास मुनि, शंभू थक गये धर धर ध्यान ॥ ४ ॥

कहँहिं कबीर लखे कोई विरला, सतगुरु लग गये जिनके कान ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

निर्वाणपद को कोई विरल पुरुष ही लख सकते हैं। शान्ति स्वरूप शुद्ध ब्रह्मपद को निर्वाणपद कहते हैं। इसको सब कोई नहीं जान सकते हैं। किन्तु कोई विरल ज्ञानी पुरुष ही जानते हैं ॥ १ ॥ तीन लोक में यमराज का साम्राज्य है। अर्थात् पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक और द्युलोक में गया प्राणी निर्वाण = मोक्ष पद प्राप्त नहीं कर सकता है। इनमें तो कर्मानुसार फल भोगने के लिये लोग जाते हैं। चौथे लोक

में इसका कुछ नाम निशान देखने में आता है ॥२॥ इसको लखते लखते इन्द्रादि देवगण भी थक गये हैं। ब्रह्माजी तो इसको जानने के लिये पुराणों को पढ़ते पढ़ते थक गये ॥ ३ ॥ महात्मा गोरखनाथजी, दत्त-भगवान्, महर्षि वसिष्ठजी, व्यासमुनि और महादेवजी इसको जानने के लिये ध्यान धर धर कर थक गये ॥ ४ ॥ सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि, जिनके कान में सद्‌गुरु लगे हैं ऐसे कोई विरल पुरुष ही इसको लख सके हैं। शुद्ध ब्रह्म का ज्ञान सद्‌गुरु बिना नहीं होता है ॥ ५ ॥

---

(७२)

सतगुरु चारो वरण विचारी ॥ टे० ॥ १ ॥

ब्राह्मण सोई जो ब्रह्म का जानै, पहिरे जनेउ विचारी।
साधु में सौ गुण जनेउ नौगुण, सो पहिरे ब्रह्मचारी ॥ २ ॥
क्षत्रिय सोई जो पाप क्षय करई, बाँधि ज्ञान तलवारी।
अन्तर दिल में दाया राखै, कबहु न आवै हारी ॥ ३ ॥
वैश्य सोई जो विषया त्यागै, त्याग देइ पर नारी।
ममता मारि के मंजन लावे, प्राण दान दै डारी ॥ ४ ॥
शूद्र सोई जो सूधो रहई, छोड़ देइ अपकारी।
गुरु की दया साधु की संगति, तब पावै पद भारी ॥ ५ ॥
जो जन भजै सोइ जन उबरे, का पुरुषा का नारी।
जहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, नाम गहो सम्भारी ॥ ६ ॥

(शब्दावलि)

सद्गुरु ने अर्थात् महात्माओं ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों का विचार किया है और वह इस प्रकार कि—॥ १ ॥ ब्राह्मण वही है जो ब्रह्म को जानता हो और जनेउ अर्थात् यज्ञोपवीत को विचार करके पहनता हो। क्योंकि, साधु में सौ गुण होते हैं और जनेउ में नौ। उसको ब्रह्मचारी लोग पहनते हैं। नौ गुण अर्थात् नव तार ॥ २ ॥ क्षत्रिय वही है जो धर्माचरण से पाप का नाश करता हो या ज्ञानरूपी तलवार को बाँध कर पाप का नाश करता हो। अर्थात् जो ज्ञानरूपी तलवार से पाप रूपी शत्रु को क्षय करता हो अन्तर में जीव दया रखता हो वह कभी पराजित नहीं होता है ॥ ३ ॥ वैश्य वही है जो विषय तथा पर स्त्री को त्याग देता है। ममता को मार कर मंजन अर्थात् शुद्ध हो जाता है और बाह्य प्राण समान विषयों का दान कर देता है ॥ ४ ॥ शूद्र वह है जो शुद्ध रहता हो और दूसरे का अपकार करना छोड़ देता हो। गुरु की दया से साधुओं की सङ्गति करता हो। इन उत्तम साधनों से वह बड़ा पद प्राप्त करता है। शूद्रपद नीचपद है। जब यथोक्त उत्तम साधन करता है तब उसको भारी पद प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ जो जन ईश्वर का भजन करता है उसी का संसार सागर से उद्धार होता है। वह चाहे पुरुष हो या स्त्री। कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे साधुजन ! आपलोग सुनिये और परमेश्वर के नाम को सावधानी से ग्रहण करिये। तब कल्याण होगा ॥ ६ ॥

सन्त लक्षण

(७३)

सन्त सोइ आला जाके, मन हां में माला है ॥ टे० ॥ १ ॥

नाच राग गावे काहा, वेदहुँ के गावे काहा।

जो पै हिये साँच नहीं, शब्द न रसाला है ॥ २ ॥

तीरथ को दौड़े काहा, तीरथ तो हिये माहीं ।
समुझ विचार देखो, संग रक्षपाला है ॥ ३ ॥
देस देस धावे काहा, कन्द मूल खाये काहा ।
गंगा के नहाये काहा, मिले न गोपाला है ॥ ४ ॥
मुक्तिहुँ को मान करे, भक्ति सीढ़ी पाँव धरे ।
कहँहिं कबीर इमी, मिटे भ्रम जाला है ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

वही सन्त सर्वोत्तम है जिनके मन में ही माला फिरती है, नैसर्गिक रूप से हृदय में भगवन्नाम का जप होता रहता है। हाथ में माला लेकर मुख से नाम जप का सतत अभ्यास होने पर एक अवस्था ऐसी प्राप्त होती है कि जिस में मन ही मन आयास विना जप हुआ करता है। इस भूमिका पर जो सन्त पहुँचता है वही सर्वश्रेष्ठ है ॥ १ ॥ सुन्दर राग से गाकर नाचने से क्या ? एवं ऋचा पर रखकर स्वर सहित साम वेद के गान करने से क्या ? जब कि हृदय में साँच नहीं है और मुख रसाल शब्द (मधुर शब्द) नहीं है ॥२॥ बाह्य तीर्थ की तरफ दौड़ने से क्या ? तीर्थ तो हृदय में है। समझ और विचार कर देखो तो रक्षपाल= परमेश्वर साथ ही है। जहाँ जाने से पुरुष तर जाता है वह तीर्थ कहा जाता है। परमात्मा हृदय देश में है वहाँ जाने से पुरुष अवश्य संसार सागर से तर जाता है। अतः हृदय ही उत्तम तीर्थ है ॥ ३ ॥ रमता राम होकर एक देश से दूसरे देश दौड़ने से क्या ?। अन्न को त्यागकर कन्द मूल फल खाने से क्या ? और गङ्गा नहाने से क्या ? इससे गोपाल परमात्मा मिलने का तो है नहीं क्योंकि, परमात्मा ज्ञान से प्राप्त होता है। उक्त साधन सब चित्तशुद्धि के हेतु हैं, मोक्ष का नहीं। गोपाल का मिलना मोक्ष प्राप्त करना है ॥ ४ ॥ मुक्ति को माने अथवा मुक्त

महात्माओं का सन्मान करे और भक्ति-सोपान पर पाँव धरे, सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, तब भ्रम जाल अर्थात् सर्व प्रकार की संसार-भ्रान्ति मिट सकती है। आत्मा में संसारभ्रान्ति बंध है और संसार-भ्रान्ति की निवृत्ति मोक्ष है।

'तीरथ को दौड़े कहा' तथा 'गंगा के नहाये कहा' इत्यादि कथन से तीर्थ तथा गङ्गा स्नान का खण्डन में तात्पर्य नहीं किन्तु ये सब मोक्ष का साक्षात् साधन नहीं, अपितु परम्परा है इस अर्थ में तात्पर्य समझना चाहिये। 'भक्ति सीढ़ी पाँव धरे' इस कथन से भक्ति की भूमिकाओं का निदर्शन समझना चाहिये। भक्ति भूमिका—

प्रथमं महतां सेवा तद्दयापात्रता ततः।
श्रद्धाथ तेषां धर्मेषु ततो हरिगुणश्रुतिः॥ १॥
ततो रत्यङ्कुरोत्पत्तिः स्वरूपाधिगतिस्ततः।
प्रेमवृद्धिः परानन्दे तस्याथ स्फुरणं ततः॥ २॥
भगवद्धर्मनिष्ठातः स्वस्मिंस्तद्गुणशालिता।
प्रेम्णोऽथ परमा काष्ठेत्युदिता भक्तिभूमिका॥ ३॥

अर्थात् १—प्रथम महापुरुषों की सेवा, २—द्वितीय उनकी दयापात्रता ३—तृतीय इनके धर्मों पर श्रद्धा, ४—चतुर्थ हरिगुण का श्रवण, ५—पञ्चम प्रेम के अङ्कुर की उत्पत्ति, ६—षष्ठ स्वरूप प्राप्ति, ७—सप्तम परानन्द स्वरूप में प्रेमवृद्धि, ८—अष्टम परमानन्द का स्फुरण ९—नवम भागवतधर्म में निष्ठा, १०—दशम अपने में उन गुणों का प्राकट्य, और ११—एकादश प्रेम की पराकाष्ठा। स्वामी श्रीमधुसूदन सरस्वती ने श्रीभगवद्भक्ति रसायन नामक ग्रन्थ में इस प्रकार भक्ति की भूमिकाएँ कही हैं॥ ५॥

---

(७४)

साधुघट शील सन्तोष विराजै ।

दया स्वरूप सकल जीवन पर, शब्द सरोत्तर गाजे ।। टे० ।। १ ।।
जहवाँ मनका मनोरथ जावै, ताहि संग नहिं जावे ।
सतवादी सतगुरु पहिचानै, आतम दृष्टि दिखावै ।। २ ।।
निर्मल दशा सर्व सुखदाई, आनन्द घर रह वासा ।
शुद्ध सुचाल सदा शीतल गति, निस दिन शब्द निवासा ।। ३ ।।
सतगुरु सत्य गहे निशिवासर, सत्यनाम परकासा ।
कहँहि कबीर कोइ सन्त विवेकी, तहाँ हमारो वासा ।। ४ ।।

(शब्दावलि)

साधु नाम उसका है जिसके हृदय में शील सन्तोषादि साधुगुण रहते हैं। जो सब जीवों पर दया रखते हों। जिसके श्रोत्र में गुरुवाक्य निरन्तर गाजते रहते हों ।। १ ।। जहाँ मन के मनोरथ जावे वहाँ स्वयं न जावे। जिस विषय पर मन जावे उस विषय को त्याग दे। मन को रोके। सत्यवादी बने। सद्गुरु से परिचय प्राप्त करे। स्वयं आत्मदर्शी होते हुए शिष्यों को भी आत्मदृष्टि प्राप्त करावे ।। २ ।। साधु की दशा सबको सुख देने वाली निर्मल होनी चाहिये। सदा आनन्द के घर में रहे अर्थात् सदा आनन्द स्वरूप परमात्मा के ध्यान में मग्न रहे। चाल चलगत अर्थात् आचरण शुद्ध होना चाहिये। शीतल स्वभाव होना चाहिये। रात्रि दिन शास्त्र का स्वाध्याय करते रहना चाहिये ।। ३ ।। सद्गुरु से सत्य को ग्रहण कर रात दिन उसके नाम सत्यनाम का प्रकाश करता रहे यह साधु है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, ऐसे विवेकी सन्त जहाँ रहते हैं वही हमारा वास होता है ।। ४ ।।

(७५)

हरिजन हंसदशा लिये डोलैं, निरमल नाम चुनी चुनि बोलैं॥टे०॥१॥
मुकतहल लिये चोंच लभावे, मौन रहैं की हरि-जस गावैं ॥ २ ॥
मानसरोवर-तट के वासी, रामचरन चित्त अन्त उदासी ॥ ३ ॥
कागा कुबुधि निकट नहिं आवैं, प्रतिदिन हंसा दरसन पावैं ॥ ४ ॥
नीर-छीर का करैं निवेरा, कहँहिं कबीर सोई जन मेरा ॥ ५ ॥

(बीजक शब्द ३४)

हरि के भक्त सन्त हंस स्थिति को धारण करके अर्थात् जीवनमुक्त दशा को प्राप्त होकर संसार में विचरते हैं और हरि के निर्मल नामों को चुन-चुन कर बोलते हैं ॥ १ ॥ हंस पक्षी के समान भक्ति ज्ञान आदि सद्गुण रूप मोतियों की प्राप्ति के लिये अपनी भगवद् आकार वृत्ति रूप चोंच को फैलाते हैं और या तो वे मौन रहते हैं या हरि के यश का गान करते हैं ॥ २ ॥ हरिजन ज्ञानी भक्त मन रूप मानसरोवर के तट के निवासी होते हैं। उनका चित्त राम परमात्मा के चरण में सदा रहता है और दुसरी तरफ से वे उदासीन रहते हैं अर्थात् भूलकर भी अनात्म विषय चिन्तन नहीं करते हैं ॥ ३ ॥ प्रतिदिन हंस दशा को प्राप्त जीवन्मुक्त महात्माओं का दर्शन पाते हैं तो भी कुबुद्धि रूपी काक उनके पास नहीं आते हैं। अर्थात् जैसे हंस के दर्शन होने पर भी कौवे उनके पास नहीं आते हैं वैसे ही महात्माओं के दर्शन होने पर दुष्ट बुद्धि वाले पुरुष उनके पास नहीं आते हैं। तो उनका उद्धार कैसे होगा ॥ ४ ॥ पानी और दूध के पृथक्करण के समान अर्थात् सत्य का और असत्य का जो निर्णय करे कबीर स्वामी कहते हैं कि वे विवेकी पुरुष मेरा आत्मीय है ॥ ५ ॥



(७६)

यों साधु संसार में कँवला जल माहीं।
सदा सरबदा संग रहै जल परसत नाहीं ॥ १ ॥
जल केरी ज्यों कूकही जल माहीं रहानी।
पंख पानी वेधै नहीं कछु असर न जानी ॥ २ ॥
मीन तरै जल ऊपरै जल लागै न भारा।
आड़ अटक मानैं नहीं पैरे जल धारा ॥ ३ ॥
जैसे सीप समुद्र में चित देत आकासा।
कुम्भ कला ह्वै खेलहीं तस साहेब दासा ॥ ४ ॥
जुगति जमूरा पाइकै सरपे लपटाना।
विष वाके वेधे नहीं गुरु गंम समाना ॥ ५ ॥
दूध पाक घृतभोजना बहु पाक मिठाई।
जिभ्या में लागे नहीं रंचक चिकनाई ॥ ६ ॥
बांबी में विषधर बसै काइ पकरि न पावै।
कहँहि कबीर गुरु मन्त्र से सहजै चलि आवै ॥ ७ ॥

(शब्दावलि)

संसार में सन्त ऐसे रहते हैं जैसे जल में कमल। वह सदा सर्वदा साथ ही रहता है फिर भी उसको जल स्पर्श नहीं करता है। सन्त संसार में जल कमलवत् निर्लेप रहते हैं ॥ १ ॥ जल की कूकही अर्थात् जलमुर्गी पक्षी विशेष जेसे जल में रहती है। परन्तु उसकी पांख पानी

में भींजती नहीं। पानी की कुछ असर हुई हो ऐसा वह नहीं जानती है। वैसे ही संसार की असर साधु पर कुछ भी नहीं पड़ती है ॥ २॥ मछली तल में नीचे रहती है और जल ऊपर रहता है। जल में गुरुत्व है फिर भी मछली को उसका भार (वजन) नहीं लगता है। केवल इतना ही नहीं किन्तु जल की रुकावट के बिना जल की बीच धारा में वह तैरती है। वह उपर से नीचे और नीचे से ऊपर जाती है। जल का वेग उसको रोकता नहीं है। भाव यह कि, जल में मछली का जैसा व्यवहार होता है वैसा ही संसार में साधु का व्यवहार होना चाहिये। इस प्रकार के व्यवहार को मीनमार्ग कहते हैं॥ ३ ॥ जैसे सीप=शुक्ति समुद्र में रहती है और उसका चित्त आकाश में रहता है वैसे ही साहेब = ईश्वर के दास सन्तजन कुम्भ कला अर्थात् पूरक, कुम्भक और रेचक रूप प्राणायाम निष्ठ होकर खेलते हैं। योगक्रिया में रमण करते हैं। समाधि का अभ्यास करते हैं॥ ४॥ सर्प पकड़ने वाले मदारी के छोकड़ा को जमूरा कहते हैं। जैसे जमूरा युक्ति प्राप्तकर सर्प को लपेट लेता है फिर भी विष उसको वेधता नहीं है। क्योंकि, वह गुरुगुण प्राप्त किया हुआ होता है। वैसे ही सन्तजन शरीर निर्वाहक विषय पदार्थ को पकड़ते हैं तो भी वासना रूपी विष उनको वेधता नहीं है। क्योंकि, ये भी गुरुगम्य भेद प्राप्त किया हुआ होता है॥ ५॥ खीर खाण्ड घृत आदि बहुत पाक मिठाई का भोजन लोग करते है। परन्तु जिह्वा पर उनकी रञ्चक (जरा) भी चिकास लगती नहीं है। वैसे ही वेद्य विषयों का उपयोग सन्त करते हैं तो भी उनकी वासना उनको स्पर्श नहीं कर पाती है॥ ६॥ विषधर सर्प विल में रहता है। उसको कोई पकड़ नहीं पाता है। कबीर स्वामी कहते हैं कि साँप पकड़ने वाले के गुरु मन्त्र से आयास बिना सहज में ही बाहर चला आता है। सदा के लिये पराधीन हो जाता है। वैसे ही सन्तजन गुरुगम्य ज्ञान से सर्प के समान विषय विषधर संसारियों को अपने अधीन कर लेते हैं॥ ७॥



(७७)

जाकी रहनी अपार जगत में सो सतनाम पियारा हो ।।टे०।।१।।
जल में पुरइनी जन्म लियो है जलहि में करत पसारा हो।
वाके पत्र नीर नहिं अटके ढलकि परत जस पारा हो।। २ ।।
जैसे सती चढे सत ऊपर, पिया के वचन नहीं टारा हो।
आप तरे औरन को तारे, तारति कुल परिवारा हो ।। ३ ।।
जैसे सूर चढे रण ऊपर, पीछे पग नहीं धारा हो ।
वाको सुरति रहे लड़ने की, प्रेम मगन ललकारा हो।। ४ ।।
भवसागर इक नदिया बहत है, लख चौरासी धारा हो ।
कहँहिं कबीर बूड़े पापी सबा सन्त उत्तरि गये पारा हो ।। ५ ।।

संसार में जिसकी रहनी करनी अपार अर्थात् सबसे विलक्षण असङ्ग होती है उसको सत्यनाम = परमात्मा नाम अत्यन्त प्रिय होता है ।। १ ।। जैसे कमल जल में उत्पन्न होता है और जल में ही उसका विस्तार होता है फिर भी उसके पात्र में जल ठहरता नहीं किन्तु छलक कर पारे के समान गिर जाता है। वैसे ही सन्त संसार में उत्पन्न होते हैं यहीं बढ़ते हैं, वही सर्वप्रकार के व्यवहार करते हैं परन्तु सबसे असङ्ग रहते हैं।। २।। जैसे सती स्त्री सत्य पर चलती है। अपने पति के वचन का उल्लङ्घन नहीं करती है। चिता पर पति के साथ जल मरती है। संसार सागर से आप तरती है, औरों को तारती है और कुल परिवार के सभी लोगों को तार देती है। वैसे ही सन्त भक्ति पथ पर चढ़ते हैं। गुरु के वचन का उल्लङ्घन नहीं करते हैं। संसार में चाहे जितने कष्ट आ पड़े पर भक्ति को छोड़ते नहीं हैं। ऐसा करने से आप

तरते हैं और अन्य को भी तार देते हैं ॥ ३ ॥ जैसे शूर रण पर चढ़ते हैं। युद्ध में लड़ने जाते हैं। वे पीछे पैर नही देते हैं। पीठ नहीं दिखाते हैं। उनकी सुरति = (ध्यान) लड़ने में रहती है। वे प्रेम में मग्न होकर योधाओं को लड़ने के लिये ललकारते हैं वैसे ही सन्त काम क्रोधादि शत्रुओं के साथ लड़ने जाते है। कितना ही कष्ट पड़े लड़ते रहते हैं। दूसरों को लड़ने के लिये प्रोत्साहन देते हैं। भक्तों के उत्साह को बढ़ाते हैं ॥ ४ ॥ भव नदी एक नदी बह रही है। चौरासी लक्ष्य योनि उसकी धारायें हैं। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि इस नदी में पापी लोग डूब जाते हैं। एक सन्त ही पार उतरते हैं। भाव यह है कि सन्त को संसार में असङ्ग रहना चाहिये। कितना ही कष्ट पड़े भक्ति नहीं छोड़नी चाहिये। भगवन्नाम लेते-लेते शरीर छोड़ना चाहिये ॥ ५ ॥



नाम-स्मरण

(७८)

नाम सुमर मेरे भाई, सकल तजि नाम सुमर मेरे भाई।
माटी के तन माटी मिलि हैं, पवन में पवन समाई ॥टे०॥ १ ॥
बहुत जतन करि सुत को पाले, कांचा दूध पिलाई।
सोइ पुत्र तेरे काल होइ बैठे, बाबा कहत लजाई ॥ २ ॥
जो तिरिया मुख बिड़ा खवाती, सोवति अंग लगाई।
सो तिरिया मुख मोड़ के बैठी, छुट गइ सकल सगाई ॥ ३ ॥

जिहि देहिया पर नीर पखारे, चोवा चन्दन लगाई।
वहि देहिया पर काक उड़तु है, देखत लोग घिनाई ॥ ४ ॥
झूठी काया झूठी माया, झूठे लोग लोगाई।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, झूठे जग पतियाई ॥ ५ ॥
(शब्दावलि)

हे भाइयो! आपलोग नामस्मरण करिये। क्योंकि, यह शरीर माटी अर्थात् पञ्चभूतों का बना हुआ है। एक दिन मिट्टी में मिल जाने वाला है। और पवन में पवन समा जाने वाला है। शरीर के पांचो तत्त्व अपने अपने कारण में समा जाने वाले हैं ॥ १ ॥ बहुत परिश्रम से पुत्र को पाला पोषा जाता है। उसको कच्चा अर्थात् धारोष्ण दूध पिलाया जाता है। वही पुत्र काल होकर बैठता है। पिता को मारता है और पिता कहने में भी लज्जा मानता है। इस व्यवहार से वैराग्य होना चाहिये और नाम-स्मरण करना चाहिये ॥ २ ॥ जो स्त्री पान का बिड़ा बनाकर खिलाती है और अङ्ग से अङ्ग मिलाकर सोती है वही (स्त्री) जिस दिन शरीर छूट जाता है उस दिन मुख फिराकर बैठ जाती है और विचार करती है कि, आज पतिपत्नी भाव आदि जो सम्बन्ध था सो छूट गया ॥ ३ ॥ जिस शरीर को पानी से पखारा जाता है। जिसमें चन्दनादि सुगन्धित पदार्थ लगाये जाते हैं। उसी शरीर पर एक दिन काक उड़ता है। जिसे देखकर लोग घृणा करते हैं ॥ ४ ॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे सन्तो! सुनिये। काया = शरीर मिथ्या, माया = संसार के कारण प्रकृति मिथ्या, लोग = सब पुरुष मिथ्या, लोगाई = सब स्त्रियाँ मिथ्या और यहां तक कि सारा संसार मिथ्याभूत जगत् पर विश्वास कर रहा है। मिथ्याभूत का सत्य मान रहा है। यहां झूठा शब्द का मिथ्या अर्थ है। आकाश कुसुम के समान अलीक नहीं। क्योंकि, वेदान्त कार्यकारणात्मक समस्त जगत् को मिथ्या मानता है।

अलीक अर्थात् शून्य नहीं। इस कारण कि इसकी प्रतीति होती है। शशश्रृङ्ग समान अलीक अर्थात् शून्य पदार्थ की तीनों काल में प्रतीति नहीं होती है। इससे यह प्रतीत होता है कि, सद्गुरु श्रीकबीर का मत और वेदान्त का मत एक है। वेदान्त के सिवाय संसारतत्कारण माया को मिथ्या कोई नहीं मानता है। बौध तो वेदबाह्य है। नामस्मरण के प्रसंग में स्त्री पुत्रादि सकल संसार का मिथ्याकथन वैराग्य के लिये है। सबको दुःखरूप मिथ्या समझे विना वैराग्य नहीं और वैराग्य विना नामस्मरण नहीं हो सकता है ॥ ५ ॥

---

(७६)

नाम अमल उतरै ना भाई।

और अमल छिन छिन चढ़ि उतरै, नाम अमल दिन बढ़ै सवाई ।टे०।१।
देखत चढ़ै सुनत हिय लागै, सुरत किए तन देत घुमाई ।।२।।
पियत पियाला भए मतवाला, पायो नाम मिटी दुचिताई ।।३।।
जो जन नाम अमल रस चाखा, तर गइ गनिका सदन कसाई ।।४।।
कहँहिं कबीर गूँगे गुड़ खाया, बिन रसना का करै बड़ाई ।।५।।

(कबीर वचनावलि)

हे भाइयो ! नाम-अमल उतरता नहीं है। अन्य अमल (नशा) दारू, ताड़ी, गाँजा, भाँग, तमाकू आदि का अमल तो क्षण क्षण में चढ़कर उतर जाता है। परन्तु नाम अमल दिन प्रतिदिन सवाई बढ़ जाता है ।। १ ।। देखने से चढ़ जाता है और सुनने से हृदय में लग जाता है एवं सुरति करने से शरीर को घुमा देता है। विषयों की ओर

पीछे फिरा कर नाम मस्ती में विभोर कर देता है ॥ २ ॥ नाम-रस का प्याला पीने से पीने वाला भक्त मद्यप के समान मतवाला हो जाता है। नाम से उपलक्षित नामी परमात्मा प्राप्त हो जाते हैं और दुचिताई = दोचित = दुविधा = संशय अथवा द्वैत मिट जाता है ॥ ३ ॥ जिन महात्माओं ने नाम अमल रस को चाखा है, वे संसार समुद्र से तर गये हैं। जैसे गणिका और सदना कसाई आदि ॥ ४ ॥ कबीर कहते हैं कि, नाम अमल रस का स्वाद जैसा है वैसा बखान कोई नहीं कर सकता है। जैसे काई गूँगे=मूक पुरुष गुड़ खाया हो और उसको कोई पूछे कि, गुड़ का स्वाद कैसा है ?। तो वह रसना के बिना उसकी बड़ाई (प्रशंसा) क्या कर सकता है वैसे ही नाम अमल रस किसी इन्द्रिय का विषय न होने से उसकी बड़ाई लोग क्या कर सकता है ? ॥ ५ ॥



ज्ञान

(८०)

पानी में मीन पियासी, मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी ॥टे०॥१॥

आतम ज्ञान बिना नर भटकै, कोइ मथुरा कोइ काशी ।

जैसे मृगा नाभि कस्तूरी, वन वन फिरत उदासी ॥ २ ॥

जल बिच कमल कमल बिच कलिया, तापर भँवर निवासी ।

सो मनवश तिहुँ लोक भये सब, यती सती संन्यासी ॥ ३ ॥

जाको ध्यान धरैं विधि हरि हर, मुनि जन सहस अठासी ।
सो सबके घट माहिं बिराजै, परम पुरुष अविनाशी ॥ ४ ॥
है हजिर तिहिं दूर बतावै, दूर की बात निराशी ।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, गुरु विना भरम न जासी ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

इस बात को सुन सुन कर मुझे हसी आती है कि, पानी में रहती हुई मछली प्यासी है । पानी पीकर अपनी प्यास को नहीं बुझा रही है । मनुष्य शरीर प्राप्त करके भी जीव दुःखी ही है । कल्याण का साधन करके दुःख का नाश नहीं कर रहा है ॥ १ ॥ देखिये, आत्मज्ञान के विना मनुष्य इधर उधर भटक रहे हैं । कोई कल्याण के लिये मथुरा जाता है और कोई काशी । जैसे कस्तूरिया मृग के नाभि में ही कस्तूरी है किन्तु उसको खोजने के लिये वह एक वन से दूसरे वन में उदासीन हो कर फिरता है वैसे ही आत्मा अभिन्न परमात्मा सबके हृदय देश में अन्तर्यामी रूप से स्थित है । यहाँ उनकी खोज नहीं करते है और बाहर तीर्थादि में खोजने जाते हैं । इसका तीर्थ के खण्डन में नहीं किन्तु आन्तर साधन कराने में तात्पर्य है ॥ २ ॥ जैसे जलकमल की कली ऊपर भ्रमर आकर निवास करता है, वैसे ही हृदय कमल ऊपर मनरूपी भ्रमर निवास करता है । उस मन के वश में तीनों लोक के यति, सती और संन्यासी आदि सब हो गये अतः ज्ञानपिपासु सब प्यासे ही रह जाते हैं ॥ ३ ॥ जिस (परमात्मा) का ध्यान ब्रह्मा विष्णु और शिव एवं अठासी हजार ऋषि मुनि धरते हैं वह परम पुरुष अविनाशी परमात्मा सबके हृदय में विराजमान है । भाव यह है कि, अन्तर में ही परमात्मा है तो भी उसको प्राप्त किये विना लोग पिपासित देखे जाते हैं उसको साधन द्वारा प्राप्त कर अपनी प्यास नहीं बुझाते हैं ॥ ४ ॥ वह परमात्मा अन्तर्यामी रूप से सर्व के हृदय देश में रहने से हाजर है । उसे लोग

दूर बताते हैं और बाहर खोजने जाते हैं उनको अदूर में दूर भ्रान्ति है। कबीर कहते हैं—हे साधुजन ! आप सुनिये कि, दूर की बात सब निराशी। इससे परमात्मा प्राप्ति की आशा निष्फल है और गुरु बिना यह भ्रम जाने वाला नहीं है ॥ ५ ॥

---

(८१)

अपन पौ आपुही बिसरो (रे) ॥ टे० ॥ १ ॥

जैसे सुनहा कांच मँदिल महँ, भरमत भूँकि मरो (रे) ॥ २ ॥

जौं केहरि वपु निरखि कूप-जल, प्रतिम देखिपरो (रे) ॥ ३ ॥

वैसे ही गज फटिक सिला पर, दसनन्हि आनि अरो (रे) ॥ ४ ॥

मरकट मूँठि स्वाद नहिं बिहुरै, घर घर रटत फिरो (रे) ॥ ५ ॥

कहँहिं कबीर ललनी के सुगन, तोहि कवने पकरो (रे) ॥ ६ ॥

(बीजक शब्द ७६)

यह जीव अपने स्वरूप को आप ही विस्मृत हो गया है। (सर्वत्र 'रे' शब्द 'राग' के लिये है) ॥ १ ॥ जिस प्रकार श्वान कांच के मन्दिर में (घर में) अपने असंख्य प्रतिबिम्बों का सच्चे श्वान समझ कर अपने एक स्वरूप में अनेक की भ्रान्ति होने से भूक भूक कर मर जाता है वैसे ही जीव भी अपने एक स्वस्वरूप में अनेक भ्रान्ति से जन्म मरण में पड़ता है ॥ २ ॥ दूसरा उदाहरण देते हैं—जैसे केसरी सिंह अपने ही शरीर को कूप के जल में देखकर अर्थात् प्रतिबिम्ब को देखकर कूप में गिर कर मर जाता है वैसे ही जीव अपने ही स्वरूप में आभास-

रूप अनेक जीव की कल्पना कर भवकूप में गिर कर मरता है। एक दूसरे से लड़ता झगड़ता रहता है। अनेक संसार व्यवहार करता है और जन्म मरणादि दुःख को प्राप्त होता है॥ ३॥ उसी प्रकार जैसे हाथी स्फटिक पत्थर पर दाँतो से आक्रमण करने से आकर अड जाता है अर्थात् जैसे—हस्ती स्फटिक पास आता है। तब उसका प्रतिबिम्ब स्फटिक में पड़ता है। उसको देखकर वह भ्रमवश अपना प्रतिद्वन्दी दूसरा हस्ती समझ कर उससे दाँतो से दाँत मिलाकर लड़ता है। परिणाम में पराहत होकर मर जाता है। वैसे ही जीव भी अपने स्वरूप में दूसरे की कल्पना करके जन्मता मरता रहता है। जब तक अद्वैत में द्वैतदर्शन है तब तक जन्म मरण है॥ ४॥ जैसे बन्दर स्वाद के मारे मूठी को नहीं छोड़ता है। परिणाम में बन्दर को नचाने वाले कलन्दर के बन्धन में पड़कर प्रत्येक घर में रटन करते फिरता है। वैसे ही जीव विषयों के लोभ में पड़ कर चौरासी लक्ष्य योनियों में फिरता है॥ ५॥ कबीर स्वामी कहते हैं कि, नालिका के सुग्गे तुझे किसने पकड़ा है ?। जीव को किसी ने नहीं पकड़ा है। उलटा जीव ने ही स्त्रियादि विषय को पकड़ रखा है॥ ६॥



सामान्य

(८२)

कोइ बोले अधर पर बोलवा हो॥ टे०॥ १॥

यह बोलवा के सकल पसारा, घट घट करत किलोलवा हो॥ २॥

यह बोलवा से तीन देव भये, ब्रह्मा विष्णु महेसवा हो॥ ३॥

यह बोलवा से तीन लोक भये, चंद सूर तारागनवा हो ।। ४ ।।
कहँहिं कबीर बोलवा के चीन्हे, उतर जाय भवपारवा हो ।। ५ ।।

(शब्दावलि)

इस पद में सर्वत्र 'हो' शब्द राग के लिये जोड़ा गया है। कोई अन्तर्हित शक्ति आकाश में अधर बोली बोल रही है। सत्य पुरुष परमात्मा ने सृष्टि के आदि काल में 'एकोऽहं बहु स्याम्' अर्थात् 'मैं एक हूँ, बहुत= अनेक हो जाऊँ' इस प्रकार के शब्द से संकल्प किया ।। १ ।। उसी बोली के यह समस्त पसारा है। उक्त संकल्प के पश्चात् सकल संसार उत्पन्न हुआ। फिर विचार किया कि 'कथं मद् ऋते स्यात्' अर्थात् यह संसार मेरे विना कैसे रहेगा ? पुनः संकल्प किया—'अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' अर्थात् इस जीवात्मा के रूप से प्रत्येक शरीर में प्रवेश करके नाम रूपात्मक जगत् का व्याकरण (पृथक् पृथक् व्यवहार) करूँ। ऐसे संकल्प करके 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्, अर्थात् उसी ने सृष्टि की और वही सर्व के भीतर प्रविष्ट हो गया और सर्व के घट घट में किलोल कर रहा है ।। २ ।। उसी एक बोली से तीन देव प्रगट हुए—ब्रह्मा विष्णु और महेश। रजोगुणमाया विशिष्ट ईश्वर ब्रह्मा, सत्त्वगुणमाया विशिष्ट ईश्वर विष्णु और तमोगुण माया विशिष्ट ईश्वर महेश हुए ।। ३ ।। उसी एक बोली से तीन लोक प्रगट हुए चन्द्र लोक, सूर्य लोक अर्थात् द्युलोक और तारागण ।। ४ ।। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, जो इस बोली को जाने अर्थात् 'एकोऽहं बहु स्याम्' इस संकल्प रूप बोली के बोलने वाले सत्य पुरुष परमात्मा ब्रह्म को साक्षात्कार करे तो संसार सागर से पार हो जाय। ईश्वर साक्षात्कार होने पर ही मोक्ष होता है। अन्यथा नहीं। 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' अर्थात् ज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त होता है ।। ५ ।।

(८३)

पढ़ो मन ॐ नामा सिद्धम् ॥ टे० ॥ १ ॥
ॐ कार सबही को सिरजै, शब्द स्वरूपी अंग ।
वह तो पुरुष सब ही ते न्यारा, कर वाही का संग ॥ २ ॥
नाम निरञ्जन नैनन मध्ये, नाना रूप धरन्त ।
निराकार निर्गुण अविनाशी, निरखै एकै अंग ॥ ३ ॥
माया मोह मगन होय नाचै, उपजै अंग तरंग ।
माटी के तन थिर न रहत है, मोह ममता के संग ॥ ४ ॥
शील सन्तोष दया के दरपन, सदा स्वरूप अंग ।
साधु के वचन सत्य करि मानो, सिरजनहारा संग ॥ ५ ॥
ध्याता ध्यान धरो उर अन्दर, नाम तत्त्व गहन्त ।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, आदि अंत पर्यन्त ॥ ६ ॥

(शब्दावलि)

हे मन तू ॐ नामक सिद्ध सत्यपुरुष परमात्मा के प्रतिपादक मोक्ष शास्त्रों को पढ । अथवा भजन चिन्तनादि कर । या उसका साधन द्वारा साक्षात्कार कर ॥ १ ॥ शब्द स्वरूप बोधजनक ॐ कार ने सब की सृष्टि की है । ॐकार पद ईश्वर का वाचक है । ईश्वर उसका वाच्य है । ॐ कार से संसार के सभी पद उत्पन्न हुए हैं । सभी पदार्थ उनके वाच्य हैं । वाच्य वाचक का अभेद होने से 'ॐकार ने सब की सृष्टि की है' यह कहा गया है । यह सत्यपुरूष परमात्मा तो सबसे न्याहा = पृथक है । ॐ कार की चतुर्थ अमात्रा से बोध्य तुरीय चेतन शुद्ध ब्रह्म

है। उसी का सङ्ग कर। निर्गुण शुद्ध ब्रह्म की उपासना कर ॥ २ ॥ निरञ्जन नामक स्थूलभुक विराट् नाना रूप धारण करके नेत्रादि इन्द्रियों के मध्य में है। इन्द्रियों के विषय होते हैं। जो निराकार निर्गुण अविनाशी शुद्ध ब्रह्म के एक पाद हैं अर्थात् ॐ कार की प्रथम मात्रा अकार का वाच्य है। तुरीय मात्रा बोध्य शुद्ध चेतन नहीं है। उसी को लोग निरखे = देखते हैं। सो समीचीन नहीं। अतः शुद्ध का सङ्ग करना चाहिये ॥ ३ ॥ लोग माया मोह में मग्न होकर नाच रहे हैं। इनके शरीर के अङ्गों में कामादि तरङ्ग उत्पन्न होते रहते हैं। यह माटी का शरीर अर्थात् पार्थिव शरीर स्थिर नहीं रहता है। क्योंकि, इस ने मोह तथा ममता आदि के साथ सङ्ग किये हुए हैं ॥ ४ ॥ शील, सन्तोष तथा दया के दर्पण में स्वरूप को देखते रहना चाहिये। सन्तों के उपदेश को सत्य मानना चाहिये और सृष्टिकर्ता परमात्मा को सदा साथ रखना चाहिये। सदा उनका ध्यान भजन आदि करते रहना चाहिये ॥५॥ ध्याता बन कर हृदय में परमात्मा का ध्यान धरना चाहिये। नाम अर्थात् परमात्म ब्रह्म तत्त्व का गहन्त = साक्षात्कार करना चाहिये। कबीर कहते हैं कि, हे सज्जनो ! सुनिये कि, आदि से अन्त पर्यन्त उसी तत्त्व की भावना करते रहना चाहिये। कुछ लोग यह कहते हैं कि, सद्गुरु कबीर ॐ कार को नहीं मानते थे। सो समीचीन नहीं। क्योंकि, इस पद से सद्गुरु ॐ कार उपासना का विधान कर रहे हैं। जो माण्डूक्य आदि सभी—उपनिषदों में प्रसिद्ध है। बीजक में भी सद्गुरु ने कहा है—"ओंकार आदि जो जाने" इत्यादि। मेरे पास नयी पुरानी सब मिला कर शब्दावलि की चार प्रतियाँ हैं। सब में इसके पाठ भिन्न-भिन्न मिलते हैं। आपाततः देखने से प्रतीत होता है कि, यह पद सद्गुरु कबीरकृत नहीं है। परन्तु विचार करने पर लेखकों के प्रमाद ने इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न कर दिया है। केवल यहीं नहीं किन्तु सम्पूर्ण शब्दावलि और साखी ग्रन्थ में ऐसा ही भ्रम होता है। पाठकों को पाठ शुद्ध करके अर्थ समझना चाहिये। "ये सब

पद कबीरकृत नहीं हैं" ऐसा सहसा नहीं कह देना चाहिये। मैंने इस में जो पाठ रखे हैं वे मेरे हैं ऐसा नहीं समझना चाहिये। किन्तु प्रामाणिक पाठ न मिलने से जैसा मिला वैसा ही रख दिया गया है ॥ ६ ॥



(८४)

जिनको लगी शब्द की चोट ॥ टे ॥ १ ॥

का बरछी का छुरी कटारी, का ढालों की ओट ॥ २ ॥

का नदिया का कुँवा बावड़ी, का खाई का कोट ॥ ३ ॥

का भाई का बाप महतारी, का तिरिया का सोच ॥ ४ ॥

कहँहि कबीर सुनो भाई साधो, बचे गुरु की ओट ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

शब्द की चोट बहुत भारी होती है। जिनको लग जाती है वह उसी क्षण गृह त्याग कर साधु बन जाता है ॥ १ ॥ बरछी क्या ? छूरी क्या ? कटारी क्या ? और ढालों की ओट क्या ? उनको कोई रोक नहीं सकता है ॥ २ ॥ नदी क्या ? कुँवा क्या ? बावड़ी क्या ? खाई= खाड़ी क्या ? और कोट क्या ?। कोई भी उनको रोक नहीं सकता है ॥ ३ ॥ भ्राता क्या ? पिता क्या ? माता क्या ! और स्त्री क्या ? किसी की चिन्ता उनको नहीं होती है। वैराग्य का स्वभाव ऐसा होता है जो किसी का स्मरण होने नहीं देता है ॥ ४ ॥ प्रश्न होगा कि, जब वह सबको त्याग देता है तब बचता कैसे है ?। इसका उत्तर सद्गुरु कबीर देते हैं—हे भाई साधो ! सुनो वह गुरु की ओट में अर्थात्

आश्रय में बचता है। सारांश यह है कि, जिसको गुरु उपदेश से वैराग्य होता है उसको कोई रोक नहीं सकता है। वह स्त्री पुत्रादि को त्याग कर सच्चा संन्यासी बन जाता है। यह गुरु के आश्रित रहता है। ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। उसका मनुष्यशरीर सार्थक हो जाता है ॥ ५ ॥



(८५)

रस भँवर गुफा में अझर झरै ॥ टे० ॥ १ ॥
गंगा यमुना मध्य सरस्वती, नाद बिन्दु से गाँठ जुरै ॥ २ ॥
आसन मारि अमृतरस चाखै, दिल की दुविधा दूर करै ॥ ३ ॥
दस दरवाजे तारी लागी, कोइ-कोइ हंसा ध्यान धरै ॥ ४ ॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, अजर अमर कबहूँ मरै ॥ ५ ॥
(शब्दावलि)

भँवर गुफा में = समाधिकालिक सहस्रदल कमल में, रस = योगानन्दरूप रस, अझर = निर्विकार अविनाशी रूप से, भरै = झरता हुआ प्राप्त होता है। समाधि में योगियों को ब्रह्माभिन्न आत्मानन्द का अनुभव होता है ॥ १ ॥ गंगा यमुना = सूर्यचन्द्र अर्थात् पिङ्गला तथा ईडा नाड़ी के, मध्य = में, सरस्वती = सरस्वती अर्थात् सुष्मणा नाड़ी रहती है। नाद बिन्दु से = अनहद नाद = शब्द और पूर्वोक्त आनन्द रूप रस बिन्दु से गाँठ जुर जाती है = सम्बन्ध हो जाता है। पूरक कुम्भक रेचक रूप प्राणायाम करने से समाधि लगती है और समाधि में यथोक्त समाधिसुख का अनुभव होता है ॥ २ ॥ आसनमारि=योगी

लोग योगासन लगा कर, अमृत रस = उक्त आनन्द का, चाखै = अनुभव करते हैं। दिल की दुविधा = उनके मन में जो द्विविधा अर्थात् आत्मविषयक संशय था उसको, दूर कर = दूर कर देता है। आत्मा का निश्चयात्मक साक्षात्कार होने पर संशय दूर हो जाता है ॥३॥ कोई कोई हंस अर्थात् योगी शरीर के दशो दरवाजों को बँद कर के ध्यान धरते हैं। समाधि लगाते हैं ॥ ४ ॥ सद्गुरु श्रीकबीर स्वामी कहते हैं कि, हे साधुजन ! आप लोग सुनिये कि, जो उपर्युक्त समाधि लगाते हैं वे अजर अमर हो जाते हैं। कभी मरते नहीं हैं। जन्म मरण रूप संसार बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥



(८६)

कोई कछु कहै दिल लागा है ॥ टे० ॥ १ ॥

तन भी लागा मन भी लागा, जौं सूई बिच धागा है ॥ २ ॥

तन मन लागा राम भजन में, हटकत लोग अभागा है ॥ ३ ॥

बरत अगिनि में कंचन डारे, सोना मिलत सोहागा है ॥ ४ ॥

हंस की बानी हंस पहिचाने, का जानेगा कागा है ॥ ५ ॥

कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, जीव ब्रह्म है जागा है ॥ ६ ॥

(शब्दावलि)

कोई कुछ भी क्यों न कहैं, मन लग गया है। जब भक्त का मन भगवान् में लग जाता है तब भले कोई कुछ क्यों न कहैं, परवाह नहीं ॥ १ ॥ जैसे सूई में धागा लग जाता है वैसे ही भगवान में तन और मन लग गया है ॥ २ ॥ तन और मन भगवान् राम के भजन में

लग गया है। जो मना करता है वह अभागी है। उनको भी भजन करना चाहिये। सो न कर दूसरे को मना करते हैं उनके जैसा भाग्यहीन दूसरा कौन होगा ? ॥ ३ ॥ जैसे जलती हुई अग्नि में सुवर्ण डाल देते हैं। उसमें सोहागा मिल जाता है। सुवर्ण शुद्ध हो जाता है। वैसे ही भजन करने वाला आत्मा में परमात्मा मिल जाता है। आत्मा शुद्ध हो जाता है ॥४॥ हंस की वाणी को जो हंस होता है वही पहचान सकता है। काक (कौवा) क्या जानेगा ?। क्या जान सकता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं। वैसे ही सन्त की वाणी को जो सन्त होता है वही पहचान सकता है। असन्त शाक्त क्या जानेगा क्या जान सकता है। अर्थात् कुछ भी नहीं ॥ ५ ॥ कबीर कहते हैं कि, हे साधो ! सुनो, भजन करने वाला जीव ब्रह्म होकर जग गया है। अज्ञान निद्रा में सोया हुआ जीव ब्रह्म हो गया है। गुरु के उपदेश से जग गया है। यह ब्रह्म ही था, परन्तु अविद्या के आवरण से स्वरूप से विस्मृत हो गया था। स्मरण होने पर अर्थात् स्वरूप साक्षात्कार होने पर 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा कहने लगा है ॥ ६ ॥

---

(८७)

मन मगन हुवा जब को बोले ॥ टे० ॥ १ ॥

हंसा पाये मानसरोवर, ताल तलैया को डोले ॥ २ ॥

मेरा साहब है मुझ ही में, बाहर नैना को खोले ॥ ३ ॥

सुरति कलाली मन मतवाली, प्याला पीवे अनतोले ॥ ४ ॥

कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, साहेब पाये तिल ओले ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

जीवनमुक्तदशा—जब स्वरूप सुख को अनुभव करके मन मगन हो गया। स्वरूपानन्द सागर में डूब गया तब कौन किससे बोले ?। अभेद ज्ञान से भेद की निवृत्ति होने पर कौन किससे बोले ?॥ १ ॥ हंस रूप आत्मा ने ब्रह्मानन्द सागररूप मानसरोवर को पा लिया है तो अब छोटे छोटे जलाशयरूप ताल तलैया में कौन डोले ?। भगवान् ने कहा है—

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ भ. गी. २-४६।

अर्थात् मनुष्य का सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त होने पर छोटे जलाशय में जितना प्रयोजन रहता है, अच्छी प्रकार ब्रह्म को जानने वाले ब्राह्मण का भी सब वेदों में उतना ही प्रयोजन रहता है।॥ २॥ मेरा साहब = परमात्मा मेरे ही अन्दर है ऐसा बोध होने पर बाहर नेत्र कौन खोले ? बाहर देखने कौन जावे॥ ३॥ मन की सुरतिरूपी मतवालिन कलालिन (दारू चुवानेवाली) है वह बिना तोले अमृत प्याला पी रही है। जैसे कलालिन मद्यप्याला पीती है वैसे ही सुरति = ध्यानवृत्ति तोले बिना अधिक प्रमाण में आनन्दामृत प्याला पीती है॥४॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे साधु भाइयो! साहेब = सत्यपुरुष परमात्मा तिल भर परदा की ओट में प्राप्त हो चुके हैं।

आधुनिक मुद्रित पुस्तकों में "धर्मदास के अरज गोसाँइय" इस प्रकार छाप है। परन्तु प्राचीन लिखित पुस्तकों में यथोक्त सद्गुरु कबीर की छाप होने से वही पाठ पसन्द किया गया है॥ ५॥



(८८)

उस दरजी का मरम न पाया, जिन यह चोला अजब बनाया।टे०॥१॥

पानी की सूई पवन के धागा, साँई के सीवत नव मास लागा॥२॥

पाँच तत्त्व की गुदरी बनाई, चाँद सूरज दोउ थिगड़ी लगाई ॥३॥
जतन जतन करि मुकुट बनाया, ता बिच हीरा लाल लगाया ॥४॥
आपहि सीवें आप बनावे, प्राण पुरुष को लै पहिरावे ॥५॥
कहँहिं कबीर सोई जन मेरा, जो चोले का करे निवेरा ॥६॥

(शब्दावलि)

उस दर्जी का भेद किसी ने नहीं जान पाया है। जिसने इस विचित्र शरीर रूप चोला को बनाया है। मनुष्य शरीर प्राप्त करके सृष्टिकर्ता परमात्मा को नहीं जान पाया है ॥ १ ॥ उसने रजोवीर्यरूप सूई और श्वास = पवन = प्राण के धागा बनाया। साँई = स्वामी परमात्मा को इस शरीररूप चोला को सीते नव मास लगा है ॥ २ ॥ उसने पाँच तत्त्व की शरीर रूपी गुदड़ी बनाई है। वाम दक्षिण दोनों श्वास के पेवन्त लगाया है ॥ ३ ॥ बहुत प्रयत्न कर उसने शिर बनाया है और नेत्रादि हीरा लगाया है ॥ ४ ॥ किसी की सहायता लिये विना स्वयं बनाया है। इस चोला को लेकर प्राण पुरुष को पहना दिया है। इससे यह बताया गया है कि, शरीरधारी परमार्थ से आत्मा नहीं किन्तु प्राण है। अत एव प्राण के निकल जाने से ही शरीर में मृत व्यवहार होता है ॥ ५ ॥ कबीर कहते हैं कि, वही पुरुष मेरा अपना है जो इस शरीर रूप चोले का निवेरा करता है। शरीर से आत्मा को पृथक समझता है। उपक्रम में दर्जी शब्द से परमात्मा और उपसंहार में जन शब्द से जीवात्मा लिया गया है। इससे यह सिद्ध है कि जीवात्मा और परमात्मा दोनो एक ही पदार्थ है। इस मर्म को जानने से मोक्ष होता है ॥ ६ ॥



(६)

रे मन नेकी करले दो दिन का मिजमान रे मन. ।।टे०।। १ ।।
जोरू लड़का कुटुम्ब कबीला, दो दिन का तन मन का मेला।
अन्तकाल उठ चला अकेला, तजि माया मण्डान रे मन.।। २ ।।
कहां से आया कहाँ जायगा, तन छूटे मन कहाँ रहेगा।
आखिर तुझको कौन कहेगा, गुरु विना आतम ज्ञान रे मन.।। ३ ।।
रहट माल पनघट में फिरता, आता जाता भरा औ रीता।
जुगन-जुगन तू मरता जीता, क्यों करता अभिमान रे मन. ।। ४ ।।
हिल मिल रहना देकर खाना, बदी छोड़कर नेकी करना।
कहैं कबीर निर्गुन को जपना, करना गुरु सनमान रे मन.।। ५ ।।

(शब्दावलि)

रे मन! तू इस संसार में दो दिन का पहुना होकर आया है। तुझे यहाँ सदा रहना नहीं है। अतः कल्याण का साधन शुभ कर्म करके जा।। १।। स्त्री, पुत्र तथा अन्य कुटुम्बीजन के तन मन का मेला दो दिन का है। अन्त समय में इस माया विस्तार को त्यागकर तू अकेला चला जायगा।। २।। हे मन! तू यहाँ कहां से आया है? यहाँ से कहां जायगा? और शरीर छूट जाने के पश्चात् तू कहां रहेगा। उस समय तुझे गुरु के विना मुक्ति का हेतु आत्मज्ञान का उपदेश कौन करेगा? जिससे तेरा कल्याण होगा! ।। ३।। जैसे कूँआ में रहटमाला फिरती है। भरकर आती है और खाली होकर जाती है वैसे ही तू प्रारब्ध लेकर आता है और उसे भोगकर खाली होकर जाता है। प्रत्येक युग में तू मरता जीता रहता है, अभिमान क्यों करता है? ।।४।।

सबसे हिल-मिल कर रहना। गरीबों को देकर खाना। कबीर कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म परमात्मा के नाम का जप करना और गुरु का सन्मान करना ॥ ५ ॥



(६०)

रे मन मौला जाने गुजर गयी गुजरान रे मन. ॥टे०॥ १ ॥
कोइ दिन रूखा सूखा गँधा, कोइ दिन दूध मलीदा छांधा।
कोइ दिन पत्र औ परवल कांदा, कोइ दिन रहे हैरान रे मन. ॥ २ ॥
कोइ दिन शाल दुशाला अंगे, कोइ दिन फाटे टूटे नंगे।
कोइ दिन खासे रंगे चंगे, कोइ दिन तोरे तान रे मन. ॥ ३ ॥
कोइ दिन महजिद कोइ दिन देवल, कोइ दिन बाग बगीच सेवल।
कोइ दिन वृक्ष की छाया केवल, कोइ दिन रहे मैदान रे मन. ॥ ४ ॥
चौरासी का देख तमासा, ऊँच नीच घर लेवे वासा।
कहैं कबीर तब नाता कैसा, जपना हरि का नाम रे मन. ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

हे मन ! ईश्वर जाने, सत्य कहता हूँ कि, जैसा बनता है वैसा ही गुजर कर लेता हूँ। यथा प्राप्त स्थिति में आनन्द में रहता हूँ ॥ १ ॥ किसी दिन रूखा-सूखा राँधकर खा लेता हूँ। किसी दिन दूध मलीदा छान लेता हूँ। मिष्टान मिल जाता है तो खा लेता हूँ। किसी दिन परबल, कन्द-मूल आदि या वृक्ष के पत्ते ही खा कर दिन बिता देता हूँ।

एवं किसी दिन तो हैरान अर्थात् भूखे ही रह जाता हूँ ॥ २ ॥ किसी दिन शरीर के अंगों पर शाल-दुशाला डाल देता हूँ। किसी दिन फटे टूटे कपड़े पहनकर नंगे रह जाता हूँ। किसी दिन पर्याप्त रूप से रंगे-चंगे रहता हूँ और किसी दिन तान तोड़ता हूँ अर्थात् उघाड़े उत्तान होकर सोये रहता हूँ ॥ ३ ॥ किसी दिन मन्दिर में, किसी दिन मसजिद में किसी दिन बाग बगीचा में, किसी दिन वृक्ष की छाया ही में और किसी दिन मैदान में ही रह जाता हूँ ॥ ४ ॥ सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि, रे मन ! चौरासी लक्षय योनि एक प्रकार का खेल है। उसकी देख तो सही। ऊँच-नीच के घर में जन्म लेना पड़ता है। तो फिर इसके साथ सम्बन्ध ही कैसा। हरि के नाम का जप करो और संसार को छोड़ो।

सद्‌गुरु महान् विरक्त थे। नित्य मुक्त परमात्मा ही थे। जीवों को आचरण से उपदेश देते थे। इस पद में जीवन्मुक्त महात्माओं की दशा का वर्णन किया है।

उक्त दोनों पदों के पाठ मिलाने में बहुत कठिनाइयाँ पड़ी हैं। फिर भी सन्तोषजनक नहीं है। पाठक सुधार कर पढ़ेंगे ॥ ५ ॥



(९१)

करो रे बन्दे वा दिन की तदबीर ॥ टे० ॥ १ ॥

लाल खम्भ पर देत ताड़ना, सहि ना सके सरीर।
मार मार मुगदर प्रान निकारे नैनन भर आवे नीर ॥ २ ॥

रंग महल एक कामिनि बैठी, कर सिंगार गंभीर।
दौलत दुनिया माल खजाना, संग न जात सरीर ॥ ३ ॥

भौसागर के राह कठिन है, नदिया गहिर गम्भीर।
नाव न बेरा लोग घनेरा, खेवनहार बेपीर ॥ ४ ॥
जब जमराजा पकरि मंगावे, पाँवन परे जंजीर।
कहँहि कबीर सुनो भाई साधो, अब ना करो तकसीर॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

हे बन्दा जीव ! तुम उस दिन के बचने का उपाय कर ॥ १ ॥ जिस दिन यमराज के दूत गण अग्नि में सन्तप्त लाल स्तम्भ में बाँधकर ताड़ना देगा। यमयातना देगा। मारेगा। जिसको शरीर सहन न कर सकेगा। मुद्गर मार मार कर तुम्हारा प्राण निकालेगा उस दिन नेत्रों में जल भर आयगा तुम रोओगे ॥ २ ॥ तुम्हारे रंग महल अर्थात् घर में एक तुम्हारी काम की स्त्री शृङ्गार करके गम्भीर भाव से बैठी रहेगी। दौलत दुनिया माल खजाना धन-सम्पत्ति सब पड़ी रहेगी। यहाँ तक कि, तुम्हारा शरीर भी तुम्हारे साथ नहीं जायगा ॥ ३ ॥ संसार का मार्ग बहुत कठिन है। यह नदी बहुत गहिरी और गम्भार है। इससे पार जाने के लिये न तो नाव है और न बेड़ा ही। पार जाने के लिये बहुत लोग घाट पर खड़े हैं। भीड़ लगी हुई है। कदाचित नाव मिल भी जाय तो उसके खेवने वाला बड़ा बेपीर है। निर्दय है। क्रूर प्रकृति के यमदूत मार-मार कर पार करते हैं ॥ ४ ॥ यमराज के दूत तुमको यमपुरी में ले जायगा जब यमराज तुमको पकड़ कर मंगवायेगा तब तुम्हारे हाथ में हथकड़ी और पाँव में बेड़ी डाल देगा। सद्गुरु कबीर कहते हैं— हे साधुभाई ! सुनो और अब ऐसा कर्म न करो। जिससे पुनः संसार में आना पड़े और यमयातना भोगना पड़े ॥ ५ ॥

(६२)

नाम को या विधि ध्यान धरै ॥ टे० ॥ १ ॥

जैसे अमली अमल को चाहै, छिन छिन सुरति करै ।
जों लग अमली अमल न पावै, तों लग तलफ मरै ॥ २ ॥
फनि मनि को भुंई काढ़ धरत है, फैल के ओस चरै ।
कछु चरै कछु मनि तन चितवै, बिछुरत तलफ मरै ॥ ३ ॥
जैसे सती जरै पिय के संग, नेकन सोच करै ।
अपने गोद पिया को लेके, विहसत जाय जरै ॥ ४ ॥
जैसे कामी कामिनी के हित, इत उत खोज करै ।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, भूला भटकि मरै ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

यहां नाम शब्द नामी ईश्वर परक है। ईश्वर का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये ॥ १ ॥ जैसे अमली पुरुष अमल को चाहता है। क्षण क्षण उसी का चिन्तन करता रहता है। जब तक उसको अमल नहीं मिलता है तब तक वह बेचैन रहता है। जैसे फणी मणियार सर्प मणि को पृथिवी पर धर कर आगे बढकर ओस को चाटता है। क्षण में चाटता है और क्षण में मणि की ओर देखता है। मणि का वियोग होने पर तलफ तलफ कर मर जाता है ॥ ३ ॥ जैसे सती पति के साथ जलती है स्वल्प भी सोच = दूसरा विचार नहीं करती है। अपने गोद में पति को लेकर हसती-हसती जल जाती है ॥ ४ ॥ और जैसे कामी पुरुष कामिनी को प्राप्त करने के लिये इधर उधर दृष्टि करता रहता है। इसी प्रकार परमात्मा का ध्यान धरते रहना चाहिये। कबीर कहते हैं

कि, हे साधु भाई ! सुनो भूला लोग इधर उधर भटक-भटक कर मर जाते हैं। भगवद् विषयक भ्रम होने के कारण चौरासी लक्ष योनियों में भटकते रहते हैं। जन्मते मरते रहते हैं ॥ ५ ॥



(६३)

रहना है हुसियार नगर में, एक दिन चोरवा आवेगा ।टे०।१।
तलब तीर तलवार न बरछी, नां बन्दूक चलावेगा ।
आवत जात लखे नां कोई, घर में धूम मचावेगा ॥ २ ॥
नां गढ़ तोरे नां गढ़ फोरे, नां कछु रूप दिखावेगा ।
नगरी से कुछ काम नहीं है, तुझे पकड़ ले जावेगा ॥ ३ ॥
नां सुने फिरियाद तुम्हारी, ऐसा तस्कर आवेगा ।
लोग कुटुम परिवार घनेरे, खोजी खोंज नां पावेगा ॥ ४ ॥
ऐसा है कोई सन्त विवेकी, नाम भजन गुन गावेगा ।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, खोल किंवारी जावेगा ॥ ५ ॥

हे जिज्ञासुओं ! आप को इस शरीररूपी नगर में हुशियार होकर रहना है। क्यों कि, एक दिन यम रूपी चोर आत्मधन चुराने के लिये आवेगा ॥ १ ॥ वह तलब (शस्त्र विशेष) तीर (बाण) तलवार और बरछी नहीं चलावेगा और न बन्दूक ही चलावेगा। आते जाते उसको कोई जान नहीं सकेगा। शरीर रूपी घर में आत्मा को ले जाने के लिये बहुत उपद्रव करेगा ॥ २ ॥ वह शरीर रूप गृह को न तोड़ेगा और न

फोड़ेगा ही। एवं न कुछ रूप ही दिखावेगा। उसको शरीर रूप नगरी से कुछ काम नहीं है। केवल तुमको ही पकड़ कर ले जायगा ॥ ३ ॥ यह ऐसा तस्कर (चोर) आवेगा जो तुम्हारी फरीयाद (प्रार्थना आदि) भी नहीं सुनेगा। तुमको खोजने वाले तुम्हारे कुटुम्ब परिवार के लोग बहुत हैं। परन्तु वे तुमको खोज नहीं सकेंगे ॥ ४ ॥ ऐसा कोई विवेकी सन्त है ? जो इस उपदेश को सुनने के बाद परमात्मा का भजन तथा गुणगान गावेगा ?। कबीर कहते हैं, हे साधु भाई ! सुनो, वह शरीर के दरवाजे को खोल कर सत्यलोक चला जायगा। भजन के प्रताप से मुक्त हो जायगा ॥ ५ ॥



(६४)

सन्तो सन्त विलग कब कीन्हा।

लोक लाज कुल की मर्यादा, सबहि त्याग जिन दीन्हा ॥टे०॥१॥

जाति पाँति का भर्म लिया है, सो तो काल अधीना।

अपने रूप को चीन्हत नाहीं, ताते दुविधा कीन्हा ॥ २ ॥

तुलसी ब्राह्मण बड़े कुलीना, सब कोई कहे प्रवीना।

नाभा जी भंगी के बालक, तासु प्रसादी लीन्हा ॥ ३ ॥

ना मानो तो साख बताऊं, अजहूँ चेत कमीना।

सुपच भक्त रविदास चमारा, आप बराबर कीन्हा ॥ ४ ॥

शबरी जात कौन कुल कहिये, सो हरि आप अधीना।

भाव भक्ति सन्तन के कारण, राम प्रसादी लीन्हा ॥ ५ ॥

कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, इतनी सांख कह दीन्हा।
गुरु मुख होय साधु को चीन्हे, निगुरा मन के हीना ॥ ६ ॥

(शब्दावलि)

हे सन्तजन! सन्त का विलग कहो कब किसी ने किया है?। (विलग = जुदाई = पंगति से बाहर)। लोक लाज कुल की मर्यादा आदि सब को जिस ने त्याग दिया है उस से जुदाई कैसी ॥ १ ॥ जिसने जाति पाँति का भ्रम ले रखा है वह काल के अधीन है। उसने अपने स्वरूप को पहचाना नहीं है इस लिये दुविधा में पड़ा है। पंगत भेद करता है ॥ २ ॥ महात्मा तुलसी दास जी बड़े कुलीन ब्राह्मण थे। सब कोई उनको बड़े प्रवीण कहते थे। परन्तु सन्त नाभा जी भंगी के बालक थे। फिर भी उनकी सीत प्रसादी तुलसी दास जी ने ली थी ॥ ३ ॥ इतने पर भी यदि न मानो तो उदाहरण देता हूं, सुनिये। हे कमीना! दिल के दरिद्र! अभी भी समझो। श्वपच भक्त अन्त्यज थे और रविदास भक्त चमार थे। जिनको भगवान् ने अपने बराबर किया था ॥ ४ ॥ शबरी = भीलनी जाति की कौन ऊँची थी? स्वयं भगवान् राम उसके अधीन हो गये थे। सन्तो पर उसका (सबरी का) भाव था। वह भक्ति करती थी। इस लिये भगवान् ने उसकी प्रसादी जूठे बेर खाये थे ॥५॥ कबीर स्वामी कहते हैं—हे साधु भाई! सुनो, इतनी साख कह दी गई। जो गुरुमुख होगा वही सन्तों को समझेगा = पहचानेगा। और जो निगुरा होगा वह मन का नीच होगा ॥ ६ ॥

नोट—यह पद सद्गुरु कबीर का बनाया हुआ नहीं है। किसी महात्मा ने बनाया है क्योंकि, इसमें नाभाजी तथा तुलसी दास जी आदि महात्माओं के नाम आये हैं। जो सद्गुरु कबीर से बहुत पीछे हुए हैं।



(६५)

मेरे सैंयां निकसि गये मैं ना लड़ी ॥ टे० ॥ १ ॥
मैं ना बोली मैं ना चाली, ओढ़ी चदरिया अकेली पड़ी । २॥
इस नगरी में दस दरवाजा, न जाने कौन सी खिड़की खुली ॥३॥
पांच देवरनियाँ पचीस जेठनियाँ, न जाने इन में से कौन लड़ी । ४॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, इस व्याही से कुमारी भली ।।५॥

(शब्दावलि)

रूपक। जैसे किसी स्त्री के पति कहीं चले जाने पर वह उसके वियोग में रुदन करती है वैसे ही आत्मा रूपी पति के चले जाने पर तनु (शरीर) रूपी स्त्री रुदन करती है—मैंने लड़ाई नहीं की थी। फिर भी मेरे पति निकल कर चले गये ॥ १ ॥ मैं कुछ बोली चाली नहीं, एक चद्दर ओढ कर अकेली पड़ी थी ॥ २ ॥ इस शरीर रूपी नगरी में दश द्वार हैं। न मालूम इनमें से कौन सी खिड़की खुली थी। जहां से वे निकल कर चले गये ॥ ३ ॥ हमारी पांच (तत्त्व) तो देवरानियाँ और पचीस (प्रकृति) जेठानियाँ। उनमें से न मालूम किसने झगड़ा किया, जिससे नाराज होकर वे चले गये ? ॥ ४ ॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, साधु बन्धुओ ! सुनिये—इस व्याही से तो कुमारी रहना ही अच्छा था। सादी होने के बाद ही यदि उसको छोड़कर उसका पति कहीं चला गया तो बेहतर था कि, इस व्याही से वह कुमारी ही रहती। जड़ चेतन का सम्बन्ध होना सादी होना है। शरीर छोड़ कर आत्मा को चला जाना वियोग होना है ॥ ५ ॥

(९६)

जोगावे कोइ जोगिया जोग जती ॥ टे० ॥ १ ॥

जैसे ब्रह्मा वेद जोगावे, शिव को जोगावै पारवती ॥ २ ॥

जैसे सोनरा सोना जोगावे, घटन न पावे तोला एक रती ॥ ३ ॥

जैसे नारी पुरुष जोगावै, जरत अगिनि में होत सती ॥ ४ ॥

कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, क्या राजा क्या छत्रपती ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

कोइ = कोई कोई, जती = यति = संयमी, जोगिया = योगी जन, जोग = योग को, जोगावे = रक्षा करते हैं ॥ १ ॥ जैसे ब्रह्मा = ब्रह्मा जी अथवा ब्राह्मण लोग पठन पाठन द्वारा वेद की रक्षा करते हैं। जैसे— पार्वतीजी सेवा द्वारा शिवजी की रक्षा करती हैं ॥ २ ॥ जैसे सुवर्णकार सुवर्ण की रक्षा करते हैं, जिससे तोल। में एक रत्ती भी सुवर्ण घटने नहीं पाता है अग्नि में जलने नहीं पाता है ॥ ३ ॥ जैसे सती स्त्री अपने पति की रक्षा करती है, प्रज्वलित अग्नि में सती हो जाती है। जिससे परलोक में पुनः पति को प्राप्त होती है ॥४॥ कबीर कहते हैं कि, हे भाई साधुओ ! सुनिये, और जैसे चाहे साधारण राजा हो या विशेष छत्रपति राजा क्यों न हो सब अपने राज्य की रक्षा करते हैं। चौथेपन में तप करके शरीर त्याग करते हैं। जिससे दूसरे जन्म में पुनः राजा होते हैं वैसे ही योगी लोग योग की रक्षा करते हैं जिससे ज्ञान द्वारा मुक्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥

(६७)

चेतो सबेरा चलना बाट, यह जग देखा झूठा ठाट ।। टे० ।। १ ।।
चलने की तजबीज न कीन्हा, मँजलों की खरची ना लीन्हा ।
अच्छी राह ताहि ना चीन्हा, अब का सोता सुन्दर खाट ।। २ ।।
चञ्चल मन का घोड़ा कीन्हा, ज्ञान लगाम ताहि दै दीन्हा ।
हो होशियार वेगि गहि लीन्हा, भवसागर के चौड़ा पार ।। ३ ।।
मित्र कुटुम्ब कोइ नहिं तेरा, ये सब हैं स्वारथ के बेरा ।
यहाँ नहिं तेरा निश्चल डेरा, इनसे चलना वेग उचाट ।। ४ ।।
मन माली तन बाग लगाया, चलत मुसाफिर को बिलमाया ।
विष के लडुआ आन खिलाया, लूट लिया मारग में हाट ।। ५ ।।
तन सराय में मन अरुझाना, भठियारी के रूप लुभाना ।
निशदिन वा से बच के रहना, सौदा कर सदगुरु के हाट ।। ६ ।।
जलदी चेतो साहेब सुमिरो, दशो द्वार यमराजा घुमिरो ।
कहैं कबिर अब सूरज उदिरो, अब का सोवे उत्ताने खाट ।। ७ ।।

(शब्दावलि)

हे मनुष्य शरीरधारी जीवो ! तुम लोग शीघ्र चेतो। तुमको यहां से परमात्मा के यहां (सत्यलोक) जाने के मार्ग पर चलना है। ज्ञान मार्ग पर चलकर मुक्त होना है। यह संसार (जहां तुम हो) माया का मिथ्या ठाट बाट (सजावट) देखा गया है। अतः यहां रहना नहीं है ।।१।। तुमने अभी तक यहां से चलने की तजबीज अर्थात् विचार नहीं

किया है। जाना अवश्य है। परन्तु कब जाओगे, कहां जाओगे इसका निर्णय अभी तक तुमने नहीं किया है। यहां से बहुत दूर जाना है। अभी तक मार्ग में खाने की खर्ची तुमने नहीं ली है। यहां से जाने का जो सुलभ मार्ग है, उसको तुमने अभी तक जाना नहीं है। कल्याण=साधन का तुम्हें ज्ञान नहीं है। अब तुम सुन्दर खाट पर क्या सोया है ?॥२॥ तुमने चञ्चल मन को घोड़ा बनाया है। उसमें मिथ्या ज्ञान का लगाम लगाया है। बहुत चतुर होकर उसको जल्दी से पकड़ लिया है। परन्तु यह नहीं जानता है कि, संसारसागर का विस्तार बहुत चौड़ा है। इस प्रवाह से कैसे पार जायेंगे इसका तुमको परिज्ञान नहीं है॥ ३॥ मित्र और कुटुम्ब के लोगों में स कोई भी तेरा नहीं है। ये सब स्वार्थ के बेरा अर्थात् समय में हैं, आगे पीछे नहीं। यहाँ तेरा डेरा अर्थात् मुकाम निश्चल नहीं है। इन सम्बन्धियों से शीघ्र उदासीन = विरक्त होकर चलना चाहिये॥ ४॥ मनरूपी माली ने तनरूपी बाग लगाया है। रास्ते में चलते हुए मुशाफिर बिलमा लेता है। रोक लेता है। विषयरूपी विष के लड्डू को लाकर खिलाता है। मार्ग में ही हाट लगा कर विवेक वैराग्य आदि रत्नों को लूट लिया है॥ ५॥ शरीररूपी धर्मशाला में मन अरुझ गया है। सराय की भटियारिन स्त्री के रूप में लुब्ध हो गया है। हे जीव! तुम रात्रि दिन उससे बचकर रहना। सद्गुरु के हाट में तुम यही सौदा कर॥ ६॥ जल्दी चेतो। सद्गुरु परमात्मा का स्मरण करो। यमराजा ने शरीर के दशो द्वार को घुमर अर्थात् घेर रखा है। कबीर कहते हैं कि, अब सूर्य उदय हो गया है। अब उत्तान होकर खटिया पर क्या सोया है ? जल्दी चेतो। रास्ते में चलना है। मुक्ति का साधन करना है। मुक्त होना है॥ ७॥



(९८)

मन न रंगाए रंगाए जोगी कपरा ॥ १ ॥
आसन मारि मन्दिर में वैठे, नाम छाँड़ि पूजन लगै पथरा ॥ २ ॥
कनवां फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौलैं, दढ़िया बढ़ाय जोगी होइगैलैं बकरा।
जङ्गल जाय जोगी धुनियाँ रमौलैं, काम जराय जोगी बनिगैलैं हिजरा।
मथवा मुँड़ाय जोगी कपड़ा रंगौलैं, गीता बाँच के होइगैलैं लबरा ॥५॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, जम दरबजवाँ बाँधल जैबे पकरा ॥६॥

(शब्दावलि)

हे योगिन्! तुमने मन को तो रंगा नहीं कपड़े रंगा लिये ॥ १ ॥ आसन मारकर मन्दिर में बैठ कर भगवान् के नाम का जप करना छोड़कर पत्थर पूजने लगे ॥ २ ॥ हे योगी जी! आप ने कान फड़ाकर जटा बढ़ाये हैं और दाढ़ी बढ़ाकर बकरा बन गये हैं ॥ ३ ॥ योगी जी! जंगल में जाकर धुनी रमाये हैं और कामदेव को जलाकर हिजड़े बन गये हो ॥ ४ ॥ योगी जी! मस्तक मुँड़ाकर कपड़ा रंगाये हैं और गीता बाँचते-बाँचते लवार हो गये हैं ॥ ५ ॥ कबीर कहते हैं कि, हे साधुजन! सुनो,—यमराजा के दरवाजा पर पकड़कर बाँधे हुए जावोगे। अतः मनको शुद्ध करो और भगवान् के नाम का जप करो एवं ज्ञान द्वारा परमपद प्राप्त करो ॥ ६ ॥



(६६)

रे मन फूला-फूला फिरे, जगत में कैसा नाता रे ॥टे०॥ १ ॥
माता कहै यह पुत्र हमारा, वहिन कहै बिर मेरा।
कहै भाइ यह भुजा हमारी, नारि कहै नर मेरा ॥ २ ॥
पेट पकरि के माता रोवै, बाँह पकरि के भाई।
लपटि झपटि के तिरिया रोवै, हंस अकेला जाई ॥ ३ ॥
जब लग जीवै माता रोवै, बहिन रोवै दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै, फेर करै घर बासा ॥ ४ ॥
चार गजी चरगजी मँगया, चढ़ा काठ की घोरी।
चारों कोने आग लगाया, फूँक दिया जस होरी ॥ ५ ॥
हाड़ जरै जस लकड़ी रे, केश जरै जस घासा।
सोना ऐसी काया जरि गइ, कोई न आया पासा ॥ ६ ॥
घर की तिरिया रोवन लागी, ढूँढ फिरी चहुँ पासा।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, छाँड़ो जग की आसा ॥ ७ ॥

(कबीर वचनावलि)

हे मन! तू संसार में फूला-फूला फिरता है। सबके साथ नाता (सम्बन्ध) जोड़ता रहता है। सबको अपना सम्बन्धी समझता है। परन्तु तू कह तो सही कि, यह कैसा सम्बन्ध है? ॥ १ ॥ माता कहती है कि, यह मेरा पुत्र है। बहिन कहती है कि, यह मेरा वीर अर्थात् भाई है। भाई कहता है कि, यह मेरी भुजा है और स्त्री कहती है कि

यह मेरा पति है ॥ २ ॥ पेट पकड़कर माता रोती है। बाँह पकड़कर भाई रोता है। और लपट-झपट कर अर्थात् आलिङ्गन कर स्त्री रोती है। सब रोते रह जाते हैं। परन्तु हंस = जीवात्मा अकेला चला जाता है। संसार में यही तो नाता है। इतना ही तो सम्बन्ध है ॥ ३ ॥ जब तक जीती है तब तक माता रोती रहती है। दश मास तक बहिन रोती है। तेरह दिन तक स्त्री रोती है। बाद दूसरे घर में वास करती है। दूसरा पति कर लेती है ॥ ४ ॥ जिस दिन शरीर में से जीव निकल जाता है उस दिन लोग चार गज की चरगजी (कफ्न) मँगाते हैं। शरीर रूपी जीवात्मा काठ की घोड़ी पर चढ़ता है। चिता के चारो कोने में आग लगा दी जाती है और शरीर को फूँक देते हैं जैसे होली को फूँक देते हैं ॥ ५ ॥ जैसे लकड़ी जले वैसे हड्डी जलती है। जैसे घास जले वैसे केश जलते हैं। सोना की जैसी काया जल गई परन्तु साथ चलना तो दूर रहा कोई पास भी नहीं आता है ॥ ६ ॥ श्मशान की क्रिया पूरी होने के बाद घर स्त्री पागल के समान चारो तरफ ढूंढती फिरती है। पति को कहीं न मिलने पर रोने लगती है। संसार का यही स्वरूप है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे साधु भाइयो ! सुनिये, आप लोग अब जगत की आशा छोड़िये। संसार के सम्बन्धी जन से सुख की आशा को त्याग दीजिये। रे मन ! कैसा नाता रे ॥ ७ ॥

---

(१००)

झीनी झीनी झीनी, झीनी झीनो चदरिया बीनी ॥टे०॥ १ ॥

काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी ॥ २ ॥

इङ्गला पिङ्गला ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी ॥ ३ ॥

आठ कमलदल चरखा डोले, पांच तत्त गुन तीनी ॥ ४ ॥
साँईं को बीनत नव मास लागै, दसवाँ बाहर कीनी ॥ ५ ॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ि के मैली कीनी ॥ ६ ॥
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी ॥ ७ ॥

(शब्दावलि)

ईश्वर रूपी जुलाहे ने एक झीनी से झीनी उससे भी झीनी अत्यन्त बारीक शरीर रूपी चद्दर बीनी है ॥ १ ॥ प्रश्न होता है—इस चद्दर में ताना किसका और भरनी किसकी है एवं किस तार से उसने चद्दर बीनी है ? ॥ २ ॥ उत्तर—इङ्गला = ईड़ा वाम श्वास के ताना और पिङ्गला = दक्षिण श्वास की भरनी एवं सुषमन = सुष्मणा श्वास के तार से यह चद्दर बीनी गई है ॥ ३ ॥ पिता माता के अष्ट अङ्ग रूपी आठ कमलदल के चरखा डोलता है। पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश में पाँच तत्त्व और सत्त्व रजस्तमरूप तीन' गुण से यह शरीर रूपी चद्दर बनी है ॥ ४ ॥ साँईं परमात्मा को इस चद्दर को बीनते नव मास लगे हैं। दशवें मास में उसने माता के उदर से इस शरीर रूपी चद्दर को बाहर किया है ॥ ५ ॥ शरीर रूपी चद्दर सुर = देवता नर = मनुष्य मुनि = ऋषि मुनियों ने ओढी है। किन्तु सबने इसको ओढ़कर मैली कर दी है ॥ ६ ॥ कबीर कहते हैं कि, भगवान के दास महात्मा लोगों ने इसको बहुत यत्न से ओढ़ी है और जैसी थी वैसी ही इसको धर दी है। दाग लगने नहीं दिया है ॥ ७ ॥

(१०१)

चादर हो गइ बहुत पुरानी, अब तो सोच समुझ अभिमानी ॥टे०॥१॥
अजब जुलाहे चादर बीनी, सूत करम को तानी।
सुरति निरति को भरना दीना, तब सबके मनमानी ॥ २ ॥
मैले दाग परे पापन के, विषयन में लपटानी।
ज्ञान को साबुन लाय न धोयो, सतसंगति के पानी ॥ ३ ॥
भई खराब आब गई सारी, लोभ मोह में सानी।
ऐसहि ओढत उमर गमाई, भली बुरी नहिं जानी ॥ ४ ॥
शंका मानि जानु जिय अपने, है यह वस्त बिरानी।
कहैं कबीर येहि राखु जतन से, नहिं फिर हाथ में आनी ॥ ५ ॥

(कबीर भजन माला)

हे अभिमानी जीव! तू अब तो सोच और विचार कर कि, यह शरीर रूपी चादर तेरी बहुत पुरानी हो चुकी है ॥ १ ॥ विलक्षण जुलाहे ने इस चद्दर को बीनी है। शुभाशुभ कर्म रूपी तानी और सुरति निरती (निरन्तर ध्यान) की भरनी दिया है। तब यह चद्दर सब को अच्छी लग रही है ॥ २ ॥ इस चद्दर में पाप रूप मैल लगे हैं। यह विषयों में लपटा गई है। ज्ञान रूपी साबुन लेकर सत्सङ्गति रूपी पानी से इसको धोया नहीं है ॥ ३ ॥ यह चद्दर खराब हो चुकी है। इसकी सारी इज्जत चली गई है। यह लोभ मोह में सन गई है। इसी प्रकार इसको ओढते ओढते तूने अपनी सारी उम्र खो दी है। कौन बात भली है और कौन बुरी इसको तूने नहीं जाना है ॥४॥ तू अपने मन में शङ्का कर बैठा है कि यह शरीर रूप चद्दर दूसरे (परमात्मा) की है। अपनी

नहीं। कबीर कहते हैं कि इस चदर को बहुत यत्न से रखो। क्योंकि, यह फिर तुरन्त हाथ में आने वाली नहीं है अर्थात्, कभी पुनः पुण्योदय होगा तब मनुष्य शरीर प्राप्त होगा ॥ ५ ॥

---

(१०२)

चुनरिया पचरंग, मोहि न सोहाय ॥ टे० ॥ १ ॥
पांच तत्त की बनी है चुनरिया, नाम बिना रंग फीको दिखाय ॥२॥
यह चुनरी मोरे मइके से आई, अपने गुरु से लियो बदलाय ॥३॥
चुनरी पहिरी धनि गइ है बजरवा, काल निगोड़ा लियो पछवाय ॥४॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, को मोरे आवै को मोरे जाय ॥५॥

(शब्दावलि)

पांच रंग से (पंच विषय की वासना से) रंगी हुई यह चुनरी मुझे सोहाती नहीं है। अर्थात् पृथिव्यादि पांच तत्त्व का बना हुआ यह स्थूल शरीर मुझे भाता नहीं है ॥ १ ॥ इसमें कारण बताते हैं—यद्यपि पांच तत्त्व की बनी हुई यह शरीर रूपी चुनरी=साड़ी बहुत सुन्दर है तथापि नाम के विना इसका रंग (सुन्दरता) फीका दीखता है। इस पर ईश्वर के नाम का रंग नहीं चढ़ा है। प्रत्युत विषय का रंग (वासना) बहुत चढ़ा हुआ है। इस शरीर से सत्यपुरुष परमात्मा का नाम नहीं लिया गया है। अतः इस पर नाम का रंग नहीं चढ़ा है। अत एव यह चुनरी मुझे अच्छी नहीं लगती है ॥ २ ॥ यह शरीर रूपी चुनरी मेरे मइके से=मीहर से=नैहर से आई है। माता के पेट से बाहर आई है। परन्तु अपने गुरु से दूसरा रंग चढ़वा लिया है। विषय रंग को धोकर

नाम रंग चढवा लिया है ॥ ३ ॥ जीव रूप स्त्री शरीर रूप चुनरी को पहन कर संसार रूप बाज़ार में गई है। परन्तु निगोड़ा (मीठी गाली) काल ने इसका पीछा कर लिया है। लोक में जैसे कोई स्त्री सुन्दर रंगीन चुनरी को पहन कर बाजार जाती है। तब उसका कोई कामी पुरुष पीछा करता है। वैसे ही जीव रूप स्त्री शरीर रूप चुनरी को पहन कर संसार रूप बाज़ार में आई है। काल भगवान ने इसका पीछा किया है। यह जीव किस क्षण काल का भोग बनेगा यह कह नहीं सकते हैं ॥ ४ ॥ कबीर कहते हैं कि, हे भाई साधुओं! सुनो, अब इस संसार रूप बाजार में शरीर रूप चुनरी पहन कर कौन मेरा आता है ? और कौन मेरा जाता है ? शरीर से साधन होने पर जीव ज्ञान द्वारा मुक्त हो जाता है। फिर कौन आता है और कौन जाता है ?। आवागमन मिट जाता है ॥ ५ ॥



(१०३)

कौन रंगरेजवाँ रंगल मेरी चुनरी ॥ टे० ॥ १ ॥
धागा पांच पचीसों लागे, हाथ परी परमारथ दुलरी ॥ २ ॥
चौकी चार प्रेम का बूटा, पहिरत या धनि हो गई पिउरी ॥ ३ ॥
पहिरि ओढि धनि भइ सतमारग, समुझि समुझि भई दिन दिन दुबरी।
कहँहिं कबीर अजब रंगरेजवा, साधु संगति गहि चरनन उबरी॥५॥

(शब्दावलि)

किस रंगरेज ने मेरी शरीर रूपी चुनरी रंगी है ? भक्ति के रंग में रंग दी है ॥ १ ॥ इस चुनरी में पांच तत्त्व और पचीस प्रकृति रूप

धागे (सूत) लगे है। इसके हाथ परमार्थ लगने से यह प्रिय हो गई है ॥ २ ॥ इसमें दो हाथ और दो पैर रूपी चार चौकी है। अतः यह चरखानी है और इसमें प्रेम के बुटे लगे हैं, झालर लगे है। इसको पहिरते ही यह जीव रूपी स्त्री पीली अर्थात् सुशोभित हो गई। जैसे कोई स्त्री पिली चुनरी पहिर कर पीली हो जाती है वैसे ही यह जीव रूपी स्त्री भक्ति रंग से रंगी हुई शरीर रूपी पीली चुनरी पहिन कर पीली हो गई है ॥ ३ ॥ जीव रूपी स्त्री इस चुनरी को पहिन ओढकर सत्य मार्ग में गई है। जीव मनुष्य शरीर से सत्यपुरुष परमात्मा की प्राप्ति के साधन करता है। समझ समझ कर दिन प्रतिदिन दुबली पतली हो गई है। ज्ञान के कठिन साधन शमदमादि करने से शरीर कृश हो गया है ॥४॥ सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, इस शरीर रूप चुनरी के रंगने वाला रंगरेज अजब है। शरीर रूपी चुनरी के भक्ति रूपी रंग से रंगने वाला गुरु रूपी रंगरेज आश्चय है कि, जिनके रंगने से रंगित शरीर सत्सङ्ग करके एवं गुरु तथा सन्त के चरणों को पकड़ कर संसार से उबर गया। जीव रूपी स्त्री का संसार सागर से उद्धार हो गया। गुरु के उपदेश से अन्तः करण में संस्कार प्राप्त होता है। संस्कार से ससाधन भक्ति प्राप्त होती है। भक्ति से ज्ञान होता है और ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। यही उबरी शब्द का अर्थ है ॥ ५ ॥



(१०४)

गोसइयाँ बिना भटकत कौन फिरे ॥ टे० ॥ १ ॥

घटहि में देवा घटहि में देवल, घटहि में ध्यान धरे ॥ २ ॥

घटहि में गंगा घटहि में जमुना, घटहि में नीर भरे ॥ ३ ॥

घटहि में चन्दा घटहि में सूरज, घटहि में जोत जरे ॥ ४ ॥

घटहि में लोहरा घटहि में एरन, घटहि में घाट घरे ॥ ५ ॥
घटहि में पूजा घटहि में पाती, घटहि में फूल चढे ॥ ६ ॥
कहँहिं कबीर सुनों भाई साधो, खोजत खबर परे ॥ ७ ॥

(शब्दावली)

परमात्मा के विना जहाँ तहाँ भटकते कौन फिरे ? हृदय में अन्तर्यामी रूप से परमात्मा विराजमान हैं। उनको खोजने के लिये बाहर कौन भटके ? ॥ १ ॥ परमात्मा सर्वस्वरूप हैं। उनमें सब कुछ आ गया। अन्तःकरण देवल अर्थात् देवमन्दिर और उसमें रहे हुए परमात्मा देव हैं। उसमें उनका ध्यान धरना चाहिये। तो फिर बाहर भटकने का क्या प्रयोजन ? ॥ २ ॥ परमात्मा जब सर्वस्वरूप हैं तब गङ्गा यमुना और उनमें भरे जल सर्व स्वरूप परमात्मा है और वे घट में ही हैं तो बाहरी तीर्थ स्नान करने की क्या आवश्यकता ?। ईश्वर का ध्यान भजन करना ये ही तीर्थ स्नान है। इसी से सर्व पाप नष्ट हो जाते हैं॥ ३ ॥ ईश्वर स्वयं प्रकाश रूप हैं। चन्द्र सूर्य तथा ज्योति स्वरूप तारा आदि स्वरूप वे ही हैं। अतः भीतर ही है। बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं ॥ ४ ॥ लोहार तथा एरन स्वरूप परमात्मा भीतर हैं। घाट गढना भी भीतर ही है ॥ ५ ॥ पूजापाती सब घट में ही हैं और घट में ही फूल चढते हैं अर्थात् घट में ही ईश्वर को पुष्प चढाओ बाहर कुछ नहीं है ॥ ६ ॥ कबीर कहते हैं—अरे साधु भाइयो ! आप लोग सुनिये। यदि ईश्वर को खोजा जाय तब खबर पड़ सकती है कि परमात्मा भीतर है। अतः भीतर खोजने से वे मिल सकते है। बाहर खोजने से नहीं ॥ ७ ॥



(१०५)

आज मेरे भाग जागे सन्त आये पाहुना ॥ टे० ॥ १ ॥
बन्दगी करूँ परनामा, तन मन वारूँ प्राना ।
सतगुरु लागे काना, सबद सोहावना ॥ २ ॥
अंग अंग फूल रही, दिल की तो दुविधा गई ।
प्रेम के फुहारा छूटे, भवन सोहावना ॥ ३ ॥
आतमा भया परकास, कोटि भानु को उजास ।
कहँहिं कबीर दास, आनन्द बधावना ॥ ४ ॥

(शब्दावलि)

आज मेरा भाग्य उदय हुआ है कि, आज हमारे घर साधु सन्त पहुना बनकर आये हैं। पुण्य उदय हुए विना सन्त का दर्शन होना कठिन है तो पुण्य विना उनका घर में आना न हो इस में कहना ही क्या है ? ॥ १ ॥ सन्त को वंदगी अर्थात् प्रणाम करूं। तन, मन तथा प्राण अर्पण करूं। तब सद्गुरु कान में लगे और श्रुतिमधुर शब्द रूप मन्त्र प्रदान करे उसके बाद ही कल्याण हो सकता है ॥ २ ॥ सन्त आये। उपदेश दिया। अङ्ग-प्रत्यङ्ग के रोम हर्षित हुए। हृदय की द्विविधा = द्वैतभाव या संशय मिट गया। प्रेम जल के फुहारे छूटने लगे। हमारा भवन = घर शोभायमान हो गया ॥ ३ ॥ करोड़ो सूर्य के प्रकाश के समान आत्मा प्रकाशित हुआ। आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। कबीर कहते हैं कि, ऐसे दास का आनन्द की बधाई है। अभिनन्दन है। प्रशंसा है, जो सन्तसेवी है ॥ ४ ॥



(१०६)

मन लगि गया राम फकीरी में ॥ टे० ॥ १ ॥
भलो बुरी सबकी सुन लेना, कर गुजरान गरीबी में ॥ २ ॥
आखिर यह तन राख मिलेगा, क्या भूले मगरूरी में ॥ ३ ॥
प्रेम नगर में रहनि हमारी, पाई भक्ति जगीरी में ॥ ४ ॥
जो सुख बंदे राम भजन में, सो सुख नहि अमीरी में ॥ ५ ॥
कहँहिं कबीर दया सतगुरु की, भली बनी है सबूरी में ॥ ६ ॥

(शब्दावलि)

मन राम की फकीरी में लग गया है। राम की प्राप्ति के लिये मन भिक्षुक=संन्यासी बन गया है ॥ १ ॥ सबकी भली बुरी सब सुन लेना। मान अपमान सहन कर लेना। गरीबी अवस्था में सकल व्यवहार करना। वडप्पन का भाव अन्तर से त्याग देना ॥ २ ॥ बड़ापन भाव देहाभिमान से होता है। अन्त में यह शरीर भस्म होकर मिट्टी में मिल जायगा तो अभिमान में क्या फूले फिरते हो ?। अतः किसी प्रकार का अभिमान नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥ प्रेम नगर में हमारा रहना होता है अर्थात् भगवान् की प्रेमलक्षणा भक्ति मुझे प्राप्त हुई है। सदा भगवदाकार चित्तवृत्ति बनी रहती है। यह मुझे भगवान् की तरफ से भक्तिरूपी जागीरी प्राप्त हुई है ॥ ४ ॥ हे बन्दा ! जो सुख गरीबी अवस्थाक राम भजन में है वह सुख अमीरी में नहीं है। अभिमान भक्ति का विरोधि है। गरीबी भक्ति का हेतु है। भक्ति ज्ञान का हेतु है और ज्ञान स्वरूप सुख का कारण है ॥ ५ ॥ कबीर कहते हैं कि सद्‌गुरु की दया से सन्तोष प्राप्त होने पर सब कुछ अच्छा बन जाता है। सन्तोष सुख का हेतु है ॥ ६ ॥

(१०७)

सजनी रजनी बीती जाय ॥ टे० ॥ १ ॥
पल-पल अवधि घटे दिन आवे, अपनो लाल मनाय ।
यह तन छूटे बहुरि नहिं पैहो, फिर पीछे पछताय ॥ २ ॥
प्राणपति जागे सुन्दरि का सोवे, उठ आतुर गहु पाय ।
सभी सोहागिनी सेज भल साजे, प्रीतम प्रेम बँधाय ॥ ३ ॥
दीन वचन कह कर जोरी, नख सिख रहु लपटाय ।
साहेब कबीर पीव भल मिलिया, सकल शिरोमणि राय ॥ ४ ॥

(शब्दावलि)

जैसे लोक में एक सखी दूसरी सखी को समझाती है वैसे ही एक सत्सङ्गी गुरु दूसरे सत्सङ्गी शिष्य को समझाते हैं—हे सजनी! हे सखि! रजनी = रात्रि बीत जा रही है। अज्ञान अवस्था में ही शरीर छूटने जा रहा है ॥ १ ॥ ज्यों-ज्यों दिन आता जा रहा है त्यों-त्यों पल पल शरीर की अवधि = आयुष घटती जा रही है। यह मनुष्य शरीर छूट जायगा तब फिर नहीं मिलेगा। पीछे पश्चात्ताप करना पड़ेगा। अतः अपना लाल = पति परमात्मा को भक्ति द्वारा मना लो, प्रसन्न करलो। जैसे प्रातःकाल होने के प्रथम ही स्त्री नाराज पति को सेवा द्वारा मना लेती है वैसे ही शरीर छूटे उसके पहले परमात्मा को भक्ति द्वारा मना लो ॥ २ ॥ हे सुन्दरि! प्राणपति परमात्मा जग गये हैं। तू क्या सो रही है? ऊठ, आतुर होकर दीनभाव से उनके चरण ग्रहण कर। प्रणाम कर। सभी सोहागिनी स्त्रियों ने प्रियतम पति के प्रेम में बँधकर सुन्दर सेज बिछाया है। तू क्यों सो रही है ॥ ३ ॥ हाथ जोड़ कर

नम्र वचन उनसे कहो। नख से शिखा पर्यन्त उनके अङ्ग में लिपट रहो। भगवत्स्वरूपध्यान में मग्न हो जा। कबीर साहेब कहते हैं कि, सुन्दर प्रियतम पति परमात्मा प्राप्त हो गये हैं जो सबसे शिरोमणि और सबके राजा हैं ॥ ४ ॥



(१०८)

यह जिन्दगानी सपनवाँ जानी ॥ टे० ॥ १ ॥
जैसे बन्दे ओस की मोती, पवन लगे झरि जानी ॥ २ ॥
मूठी बाँधि के आयो गर्भ से, हाथ पसारि के जानी ॥ ३ ॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, रही गई नाम निशानी ॥ ४ ॥
(शब्दावलि)

सद्गुरु कहते हैं कि, मनुष्य ! तुम यह जिन्दगानी अर्थात् जीवन स्वप्न समान मिथ्या समझो। जैसे स्वप्न अवस्था में गिरि नदी समुद्रादि सभी पदार्थ सत्य प्रतीत होते हैं। जाग्रत अवस्था आने पर मिथ्या निश्चित हो जाते हैं, वैसे ही अज्ञान—अवस्था में जिन्दगी से लेकर सभी पदार्थ सत्य प्रतीत होते हैं। ज्ञान होने पर मिथ्या निश्चित हो जाते हैं। अतः संसार स्वप्न समान मिथ्या है ॥ १ ॥ हे बन्दे ! हे जीव ! जैसे तृण पर ओस की मोती हवा लगने से झर जाती है वैसे ही यह जिन्दगी नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥ तुम गर्भ से मूठी बाँधकर आया है। प्रारब्ध लेकर आये हो। परन्तु जाते समय हाथ पसार कर जाओगे। प्रारब्ध भुक्त—होनेपर खाली हाथ जाओंगे। कोई चीज तुम्हारे साथ जाने वाली नहीं है ॥ ३ ॥ कबीर कहते हैं कि, हे साधुजन ! सुनिये कि, जब देह त्यागकर जाओगे तब एक नाम की निशानीं रह जाने वाली है।

अतः संसार को स्वप्न समान मिथ्या समझो उससे वैराग्य प्राप्त करो और आत्मकल्याण प्राप्त कर जिन्दगी को सार्थक करो। मनुष्य शरीर धारण करने का फल प्राप्त करो ॥ ४ ॥



(१०६)

डगरिया बाँकी बनी, कोइ चलहु न जाने गवाँर ॥ टे० ॥१॥
एक डगर गयो परम धाम को, दूजो गयो जम के द्वार ॥ २ ॥
यह संसार कठिन भवसागर, कोई न पावे पार ॥ ३ ॥
साधु साधु सब पार उतरि गये, पापी डूबे मँझधार ॥ ४ ॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधु, उतर गये गुरु के लाल ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

मार्ग तो बहुत सुन्दर सुलभ बना है। परन्तु कोई अशिक्षित लोग इस पर चलना नहीं जानते हैं तो ध्येय स्थल पर कैसे पहुँच सकते हैं ?। सत्यलोक कैसे पहुँच सकते हैं ? मुक्त कैसे हो सकते हैं ?॥ १ ॥ दो मार्ग हैं। उन में से एक परमात्मा के परमधाम को गया है और दूसरा यमराज के द्वार को गया है। उन में से जो भगवद्धाम को गया है वह तो सुन्दर है और जो यम के द्वार को गया है वह असुन्दर अर्थात् दुःखद है ॥ २ ॥ यह संसार कठिन है। इसको लोग भवसागर कहते हैं। इस से पार होना है। परन्तु उक्त दुःखद मार्ग को लोग पकड़ते हैं। जिस से कोई पार नहीं पाता है ॥ ३ ॥ इस संसार से सुन्दर मार्ग में चलने वाले सन्त लोग पार हो गये। परमधाम चले गये और जो पापी लोग थे वे संसार सागर के मंझधार में डूब गये। जन्म मरण में ही पड़े रहे ॥ ४ ॥ कबीर कहते हैं कि हे सन्तो ! सुनो कि जो गुरु के लाल महात्मा थे वे उतर गये। संसार सागर से पार हो गये ॥ ५ ॥



(११०)

धुनि सुनि के मनुआँ मगन हुवा ॥ टे० ॥ १ ॥
लागि समाधि रह्यो गुरु चरन में, अन्दर का दुख दूर हुवा ॥२॥
सार सब्द की डोरी लागी, ता चढि हंसा पार हुवा ॥३॥
सून्य सिखर में झालर झलके, झरत अमी रस प्रेम चुवा ॥४॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, चाखि चाखि अलमस्त हुवा ॥५॥

(कबीर बचनावलि)

समाधि में योगियों को एक प्रकार की मनोहर ध्वनि सुनाई देती है। उसका वर्णन है—ध्वनि (शब्दविशेष) को सुनकर मन मगन हो गया है ॥ १ ॥ गुरु के चरणों में समाधि लग रही है। गुरु के चरणों का ध्यान धरने से उसी में चित्तवृत्ति एकाग्रता को प्राप्त हुई है। इस समय अन्दर का सब दुःख दूर हो गया है ॥ २ ॥ परमात्मा के नाम रूप सार शब्द की डोरी (तार = सुरति) लग गई है। उस पर चढ़कर आत्मा संसार सागर से पार हो गया है। नाम स्मरण की एकतानता जब हो जाती है तब उस पर चढ़कर आत्मा परमात्मा के यहाँ पहुँच जाता है। अतः भगवत्प्राप्ति मोक्ष प्राप्ति का मार्ग समाधि ही है ॥ ३ ॥ शून्यशिखर दशम द्वार ब्रह्माण्ड में किरण के समान प्रकाश प्रतीत होता है। अमृत रस झरता है। जिसका पान करने से योगियों को दीर्घ काल तक क्षुधा नहीं लगती और प्रेम भक्ति रस चूवता है। भक्ति की धारा अखण्ड रूप से बहती है ॥ ४ ॥ कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे साधुओ! सुनिये—उस प्रेम रस को चखकर मन मस्त हो गया है। स्थिर हो गया है मन को स्थिर होना ही तो समाधि है। उसके बाद साक्षात्कार बाद में मोक्ष ॥५॥

(१११)

धुबिया जल बिच मरत पियासा ।। टे०।। १ ।।

जल में ठाढ़ पिवै नहिं मूरख, अच्छा जल है खासा ।
अपने घट में मरम न जाने, करे धुबियन की आसा ।। २ ।।
छिन में धुबिया रोवै धोवै, छिन में होवै उदासा ।
आपै बरै कर्म की रस्सी, अपने गरेकी फाँसा ।। ३ ।।
साच्चा साबुन लेहिं न मूरख, है सन्तन के पासा ।
दाग पुराना छुटत नाहीं, धोवत बारह मासा ।। ४ ।।
एक रती को जोर लगावे, छोड़ि दियो भरि मासा ।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, आछत अन्न उपासा ।। ५ ।।

(शब्दावलि)

जैसे धोबी जल में रहता हुआ भी जल पीकर प्यास को नहीं बुझाता है । प्यासा ही मरता है । यह बात आश्चर्यजनक है । वैसे ही अज्ञानी पुरुष सत्सङ्गादि सर्व साधन से भरा हुआ मनुष्य शरीर में रहता हुआ भी साधन करके दुःख रूप प्यास को नहीं बुझाता है । प्यासा ही मरता है । यह बात भी आश्चर्यजनक है ।।१।। वह मूर्ख जल में खड़ा है । जल स्वच्छ निर्मल है । फिर पीता नहीं । साधन भी सुन्दर समर्थ है । कल्याणकारी है । फिर भी करता नहीं है । अपने घट में रहा हुआ परमात्मा को नहीं जानता है । दूसरे देवी देव रूप धोबियों की आशा करता है । स्वयं साधन नहीं करता है । दूसरे की आशा करता है । दूसरा कोई कल्याण नहीं कर देने वाला है ।। २ ।। अज्ञानी रूपी धोबी क्षण में रोता है और क्षण में धोता है एवं क्षण में उदास हो

जाता है स्वयं बाँटी हुई कर्म रूप रस्सी को अपने गले की फाँसी बना लेता है ॥ ३ ॥ सच्चा सत्संग रूपी साबुन सन्तों के पास है। मूर्ख उसको लेता नहीं है। अतः जन्म जन्मान्तर का पापरूपी दाग लगा हुआ है। वह छूटता नहीं है। यद्यपि वह बारह मास धोता रहता है। यथोक्त सच्चा साबुन न लेने से तथा अन्यान्य कर्म करते रहने पर भी पाप की निवृत्ति नहीं होती है ॥ ४ ॥ लोग मासा भर को छोड़ दिये हैं और एक रती को जोड़ते हैं। 'रुपये को छोड़ देते हैं और पाई को पकड़ रखते हैं' वाली कहावत को चरितार्थ करते हैं। कल्याण को छोड़कर विषय को पकड़ रखते हैं। कबीर कहते हैं कि, हे भाई साधु! सुनो, लोग अन्न रहते हुए उपवास करते है। साधन रहते हुए मुक्ति से वञ्चित रहते हैं ॥ ५ ॥



(११२)

ले चलु हो सजना अमरपुर ले चलु हो सजना ॥ टे०॥ १ ॥
अमरपुरी की साँकरि गलिया, अड़बड़ है चलना।
ठोकर लगी गुरु ज्ञान शब्द की, उघर गये झपना ॥ २ ॥
वही अमरपुर लागी बजिया, सौदा है करना।
वही अमरपुर सन्त बसत है, दरशन है करना ॥ ३ ॥
सन्त समाज सभा जहँ बैठो, वहीं पुरुष अपना।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, भव सागर तरना ॥ ४ ॥

(शब्दावलि)

शिष्य गुरु से प्रार्थना करता है कि. हे सज्जन सद्गुरो! मुझे आप अमरपुर सत्यलोक ले चलो। मैं स्वयं अपने बल से वहाँ जाने में असमर्थ हूँ॥ १॥ क्योंकि, अमरपुर जाने की गली सकरी है। वहाँ चलना बड़ा अड़बड़ है। मुझे ज्ञानप्रद गुरु के उपदेश रूप शब्द की ठोकर लग चुकी है जिससे अज्ञान आवरण दूर हो गया है। आत्मा का साक्षात्कार हो गया है॥ २॥ उस अमरपुर सत्यलोक में बाजार लगी है। वहाँ मुक्ति का सौदा करना है। वहाँ अमरपुर में यहाँ से उत्तरायण मार्ग द्वारा गये हुए सन्त लोग निवास करते हैं। उनका दर्शन करना है॥ ३॥ जहाँ = अमरपुर ब्रह्मलोक में सन्त समाज की सभा बैठी है। वहीं अपना सत्यपुरुष परमात्मा रहते हैं। कबीर कहते हैं कि—से साधुजन! सुनो कि, वहाँ जाने पर भवसागर से तर जाना है।

मुक्ति दो प्रकार की है। सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति। जिसको ब्रह्मलोक अर्थात् सत्यलोक जाने की कामना नहीं उसको-साक्षात्कारात्मक अभेद ज्ञान होकर यहीं मुक्ति हो जाती है। उसकी मुक्ति सद्योमुक्ति कहलाती है और जिसको ब्रह्मलोक जाने की कामना रहती है। उसको कामना प्रतिबन्धक होने से ज्ञान के साधन करने पर भी उक्त साक्षात्कारात्मक अभेद ज्ञान उत्पन्न होने नहीं पाता है। अतः उसको यहाँ मुक्ति नहीं होने पाती है। वह उत्तरायण मार्ग से अमरपुर अर्थात् सत्यलोक को जाता है। सत्यलोक शुद्ध सत्त्वगुण का बना हुआ है। साथ ही वहाँ के दिव्य भोगों को भोग लेने से प्रतिबन्धकरूप कामना नष्ट हो जाती है। अतः कोई प्रतिबन्धक न रहने से उक्त साक्षात्कार रूप अद्वैत चरम ज्ञान होने पर मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यह मुक्ति क्रममुक्ति कही जाती है। जो वहाँ जाने पर प्राप्त होती है। अतः इसी मुक्ति के लिये शिष्य सद्गुरु से प्रार्थना करते हैं कि हे सज्जन सद्गुरो! मुझे अमरपुर ले चलो। "शब्दामृत सिन्धु" पृष्ठ १८५ में जो इस पद की व्याख्या की गई है वह चिन्त्य है॥ ४॥

(११३)

अपने साईं को रिझाना चाहिये साधु बनि के ॥ टे० ॥१॥
जैसे जंगल की लकड़ी जरत है, वैसे तन को जलाना चाहिये ॥२॥
पाँच पचीस बसे घट भीतर, इनको ज्ञान हटाना चाहिये ॥३॥
धरमी धरमी पार उतरी गये, कलमा नबी को सुनाना चाहिये ॥४॥
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, हरि का ध्यान लगाना चाहिये ॥५॥

(शब्दावलि)

साधु बनकर अपने आचरण से परमात्मा को प्रसन्न करना चाहिये ॥ १ ॥ परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिये जैसे जंगल की लकड़ी जलती है वैसे ही शरीर को जलाना चाहिये, तप करना चाहिये ॥ २ ॥ पांच तत्त्व और पचीस प्रकृतियाँ इस शरीर के भीतर रहती हैं। अपने स्वभाव को छोड़ती नहीं है। जिससे विक्षेप होता रहता है। उनको ज्ञान से हटाना चाहिये ॥ ३ ॥ जितने धर्मात्मा थे ये सब संसार सागर से पार हो गये। परमात्मा को नामरूपी मन्त्र सुनाना चाहिये ॥ ४ ॥ कबीर कहते हैं कि, हे साधुभाई! सुनो, गुरु परमात्मा का ध्यान लगाना चाहिये ॥ ५ ॥

---

(११४)

पीले प्याला हो मतवाला, प्याला प्रेम अमीरस का रे ॥टे०॥१॥
पाप पुण्य दोउ भुगतन आया, कौन तेरा अरु तू किसका रे।
जो दम जीवो नाम गुण गावो, धन यौवन सपना निसिका रे ॥२॥

बालापन तो खेल में खोयो, तरुण भया तरुणी वशका रे।
वृद्ध भया कफ वात ने घेरे, खाट परे न जात मसका रे ॥३॥
नाभिकमल में है कस्तूरी, कैसे भ्रम मिटे पशु का रे।
विन सतगुरु इतने दुख पायो, जैसे भटकि मुवा मिरगा रे ॥४॥
लख चौरासी से उबरन चाहो, तो छोड़ो कामिनि काचसका रे।
कहँहिं कबीर सुनो भाई साधो, नख सिख रूप बना विषका रे ॥५॥

(शब्दावलि)

प्याला पी कर मतवाला हो जा। वह प्याला प्रेमलक्षणाभक्ति रूप अमृत रस का होना चाहिये ॥ १ ॥ पूर्वकृत पाप पुण्य के फल दुःख सुख को भोगने के लिये यहां आये हो। तेरा संसार में कौन है ? और तू किसका है ? अर्थात् कोई किसी का नहीं। जितने श्वास जीओ नाम गुणगान करो। भगवान् के गुणानुवाद करो। धन यौवन आदि विषय पदार्थ रात्रि के स्वप्न समान हैं। स्थिर रहने वाले नहीं हैं। अन्त में इनका वियोग तो होना ही है तो अभी इनका त्याग कर देना ही बुद्धिमत्ता है ॥२॥ बालपन बालकों के साथ खेल में खो दिया, तरुणपन तरुणी के वश में होकर खो दिया और वृद्ध हुआ तब तुमको कफ एवं वात ने घेर लिया। खटिया पर करवँटें भी बदल नहीं सकते हो। कैसा दुःख है ? ॥ ३ ॥ कस्तूरिया मृगा के नाभिकमल में कस्तूरी है। किन्तु उसको भ्रम हो गया है कि किसी और जगह से यह सुगन्धी आती है उस पशु का भ्रम कैसे मिटे। वैसे ही आत्मसुख अपने ही अन्दर है। परन्तु जीव को भ्रम हो गया है कि, यह कहीं और जगह है। जैसे मिरगा भटक भटक कर मर जाता है वैसे ही तू भी सद्गुरु के विना इतने दुःख पा चुके हो। भटक भटक कर मर चुके हो। अब तो चेतो। सद्गुरु प्राप्त करो। प्रेम का प्याला पीकर खुद मस्ती में मस्त हो जाओ ॥ ४ ॥

चौरासी लक्ष योनि से यदि बचना चाहते हो तो कामिनी के चस्के को छोड़ो। स्त्री विषय जन्य सुख की इच्छा को त्याग करो। क्योंकि, कबीर कहते हैं कि, हे साधु भाई! सुनो, वह (कामिनी) तो नख से शिख पर्यन्त विष से भरी है॥ ५॥



(११५)

अलमस्ता जोगी नाम अमलमद माता।
तन कर कुण्डी मन कर सोंटा, घोंटो दिन अरु राता ॥टे०॥१॥
जतन जतन कर छाँन लेउ तुम, प्रेम कि साफि हाथा।
रतन कटोरी भर भर पीयो, पाँचो इन्द्री साथा॥ २॥
रोम रोम रंग भीन रह्यो है, क्या सीता क्या ताता।
गुरु का शब्द अगिनि का कणका, जब छेड़ा तब जाता॥ ३॥
सिर के साँटे भक्ति कबूली, क्या तन की कुशलाता।
कहँहिं कबीर मगन ह्वै नाचो, क्या सन्ध्या परभाता॥ ४॥

(शब्दावलि)

सद्गुरु कहते हैं कि हे खुदमस्ती में मस्त अलमस्त योगीजन! आप लोग भगवान के नामरूप अमल के मद से मतवाले हो जाइये। आप लोग शरीर की कुण्डी और मन का सोंटा बनाइये। और उसके द्वारा जैसा भाँग घोंटा जाता है वैसा ही दिन और रात घोंटा करिये। रात्रि दिन नाम का जप तथा स्मरण आदि किया करिये॥ १॥ प्रेम की साफी हाथ में लो और बहुत प्रयत्न करके नाम में से आनन्दरस को

छाँन लो एवं रत्न की कटोरी में भर भर कर पांचो इन्द्रियों के साथ तुम लोग उसको पीओ। इन्द्रियों का निग्रह किये विना ब्रह्मानन्द का अनुभव नहीं होता है। इस लिये 'इन्द्री साधा' कहा गया है॥ २॥ रोम रोम में नाम रंग व्याप्त हो रहा है। चाहे ठण्डा हो या गरम। अग्नि के कण के समान गुरु के उपदेश रूपी शब्द को जिस समय सुना जाय उसी समय वह गहिरी असर करता है॥ ३॥ आप लोगों ने मस्तक के बदले में भक्ति स्वीकार की है तो शरीर की कुशलता क्या ?। जब शिर की कुशलता की आशा नहीं है तो शरीर की कुशलता की आशा न हो इसमें कहना ही क्या ?। कबीर कहते हैं कि हे योगीजन ! अमली के समान आप लोग मग्न होकर नाचिये। चाहे सन्ध्या हो या प्रभात। नाम अमल में अखण्ड नृत्य करिये॥ ४॥

---

(११६)

क्या उमरि हमरी जो बूझे सो बावरी।
हम तो सदा निरन्तर खेलैं जुग चारी॥ टे०॥ १॥
कोटि विष्णु हो हो गये दस कोटि कन्हैया।
अनन्त कोटि शम्भु भये मेरि एक पलैया॥ २॥
कोटि ब्रह्मा हो हो गये महम्मद चारी।
देवतन की गिनती नहीं क्या सृष्टि विचारी॥ ३॥
नहिं बूढा नहिं बालका नहिं जगत भिखारी।
कहँहिं कबीर योगी गोरख यह उमरि हमारी॥ ४॥

(शब्दावलि)

हमारी उम्र क्या ?। जो हमारी उम्र पूछे वह उन्मत्त है। हम चारों युगों में सदा निरन्तर लेखा करते हैं॥ १॥ करोड़ो विष्णु हो होकर चले गये। दश करोड़ कन्हैया = कृष्ण। अनन्त करोड़ों महादेव हो हो गये। मेरी अपेक्षा ये सब एक पल में हो गये। स्वप्न में एक पल में करोड़ो वर्ष भासते हैं॥२॥ करोड़ो ब्रह्मा हो हो कर चले गये। महम्मद चार चले गये। कहीं पेगम्बर पाठ है। मलेच्छ लोग खुदा के चार पेगम्बर मानते हैं। इस पक्ष में अर्थ होगा कि, चारों पेगम्बर करोडों बार हो हो कर चले गये। देवताओं की गिनती नहीं कि वे कितने वार हो हो कर चले गये। फिर सृष्टि बिचारी की क्या गिनती ?॥ ३॥ हम न तो बूढ़े हुए हैं, न बालक और न जगत में भिखारी हीं हैं। कबीर कहते हैं कि, हे योगी गोरख नाथजी! हमारी उम्र यही है। अनादि अनन्त चेतन की कोई उम्र नहीं है। इस पद में 'हमरी' 'हमारी तथा' 'मेरी' आदि प्रयोग कहीं बहुवचन कहीं एकवचन देखे जाते हैं। जो (वचन) अविवक्षित हैं॥ ४॥



(११७)

अब मोहि राम भरोसो तेरो, कौन को करैं निहोरो ॥टे०॥ १॥

जाके राम सम साहेब भाई, सो कस अनत पुकारन जाई॥ २॥

जाके सिर हिहुँ लोक के भारा, क्यों न करे जन का प्रतिपारा॥ ३॥

कहँहिं कबीर सेवौं बनवारी, सीचौं पेड़ पिवें सब डारी॥ ४॥

(शब्दावलि)

हे राम! अब मुझे तेरे ऊपर ही विश्वास है। अन्य किसकी प्रार्थना करूँ ?। हे भाई! जिसके राम के समान स्वामी हैं वह अन्यत्र

पुकारने को क्यों जायगा ?। जिस राम परमात्मा के शिर पर तीनों लोक का भार है वह अपने भक्तजन का प्रतिपालन क्यों नहीं करेगा ?। कबीर कहते हैं कि, बनवारी = सत्यपुरुष परमात्म की सेवा करूं। जिस से सब सुख प्राप्त होता है। जैसे पेड़ में पानी सींचने से सब शाखायें पी लेती हैं। वैसे ही एक ईश्वर की सेवा करने से सब देवों की पूजा हो जाती है। कहा है—

एक साधे सब सधत है, सब साधे सब जाय।
जो जल सींचे मूल को, साखा पत्र अघाय॥ ४॥



(११८)

दिवाने बंदे कौन तेरा साथी॥ टे०॥ १॥
जैसे बंदे ओस की मोता, यौं काया जाती।
दिना चार साहब को भजले, क्या बाँधे गाँठी॥ २॥
जमराजा ने दूत पठाया, लिख भेजा पाती।
निकल के मनुवाँ बाहर होवे, या काया माटी॥ ३॥
भाई बंधु औ कुटुंब कबिला, औ बेटा नाती।
बखत पड़े कोइ काम न आवे, समुझ फाटे छाती॥ ४॥
खाले पीले खरचले बंदे, यही बात खासी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सत गुरु कहे साँची॥ ५॥

(शब्दावलि)

हे उन्मत्त वंदा ! यहाँ तेरा कौन साथी है ? अर्थात् कोई नहीं ॥१॥ हे वंदे ! जैसे ओस के मोती क्षण भर रहकर चले जाते हैं वैसे ही यह शरीर भी चला जाता है। चार दिन की जिन्दगी है। तब तक परमेश्वर का भजन कर ले। गाँठ क्या बाँधता है ? ॥ २ ॥ यमराज ने दूत भेजा है। तुमको ले जाने के लिये पत्र लिखकर भेजा है। जब शरीर में से मन निकल कर बाहर होगा तब यह शरीर मिट्टी हो जायगा इस पर अभिमान क्या करता है ॥ ३ ॥ भाइ, बन्धु, कुटुम्ब, परिवार, बेटा, नाती सब समय आने पर कोई काम में आने वाले नहीं हैं। यदि इस बात को समझो तो कलेजा फट जायगा, हृदय विदीर्ण हो जायगा ॥ ४ ॥ हे वंदे ! तू खा पी ले, खर्च ले, यही बात अच्छी है। कबीर कहते हैं कि, हे साधु भाई ! सुनो, सद्गुरु लोग कहते हैं कि, यही बात सच्ची है। और सब झूठी। इस पद में मन पद चेतन सहित सूक्ष्म शरीर का उपलक्षक है। जो एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर में जाता है ।५।

---

(११६)

खलक सब रैन का सपना, समझ दिल कोई नहिं अपना
कठिन मद लोभ की धारा, वहा सब जात संसारा ॥टे०॥१॥

घड़ा जस नीर का फूटा, पत्र जस डाल से टूटा।
तैसहिं नर जान जिंदगानी, सबेरा चेत अभिमानी ॥ २ ॥

भुलो मत देखि तन गोरा, जगत में जीवना थोरा।
तजो मद लोभ चतुराई, रहो निशंक जग मांही ॥ ३ ॥

सज़न परिवार सुत दारा, सभे उस रोज है न्यारा।
निकल जब प्रान जावेगा, नहीं कोई काम आवेगा ॥ ४ ॥

भुलो जनि देख यह देहा, लगावो सतनाम से नेहा ।
कटे भ्रमजाल की फांसी, कहैं कबीर अविनासी ॥ ५ ॥
(शब्दावलि)

समस्त जगत रात्रि के स्वप्न समान है। हे दिल !, हे मन ! तू समझ, यहां कोई अपना नहीं है। मद तथा लोभ रूपी नदी की धारा बड़ी कठिन है। वहां सारा संसार बहा चला जा रहा है ॥ १ ॥ जैसे पानी का घड़ा फूट जाता है और जैसे पत्र डाल से टूट जाता है वैसे ही हे नर ! तू अपनी जिन्दगानी समझो। हे अभिमानी नर ! तू सवेरा चेत जाओ। शीघ्र ध्यान भजन आदि आत्म कल्याण के साधन में लग जाओ ॥ २ ॥ गोरा शरीर को देखकर मत भूलो। क्योंकि, संसार में जीवन बहुत थोड़ा है। मद, लोभ और चतुराई का त्याग करो। फिर जगत में निःशङ्क होकर विचरो। कोई भय नहीं ॥ ३ ॥ यद्यपि स्त्री पुत्र परिवार आदि सब सज्जन है तथापि उस दिन सब कोइ अलग हो जायेंगे। साथ जाने वाले नहीं हैं। जब शरीर में से प्राण निकल जायगा तब कोई भी काम में आने वाले नहीं हैं ॥ ४ ॥ इस देह को देखकर भूलो मत। परमात्मा = सत्यनाम से स्नेह करो। अविनाशी सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, ऐसा करने से आत्म अनात्म विषयक भ्रमजाल की फांसी (बन्धन) कट जायगी। तू भवबन्धन से मुक्त हो कर परमानन्द को प्राप्त होगा ॥ ५ ॥

---

(१२०)

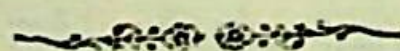
मुखड़ा क्या देखो दरपन में, तेरे दया धरम नहिं मन में ॥टे०॥१॥
गहिरी नदिया नाव पुरानी, उतरन चाहै पल में ।
धर्मी धर्मी पार उतरि गये, पापी बूड़े जल में ॥ २ ॥

दर्पन देखत पेंच सँवारत, तेल चुवत जुलफन में।
एक दिन ऐसा आन पड़ेगा, कागा नोचत तन में ॥ ३ ॥
आम कि डारि कोयलिया बोलै, सुवना बोलै वन में।
घरवारी घरनी में राजी, फक्कड़ आप अपने में ॥ ४ ॥
सुन्दर तिरिया बीरा लावै, सेवा चाहे अंग में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, ई का लरिहैं रण में ॥ ५ ॥

(शब्दावलि)

हे जीव! तेरे मन में दया धर्म तो है नहीं तो तू दर्पण में मुख क्या देखता है ? ॥ १ ॥ भवनदी बहुत गहिरी है और शरीररूपी नाव पुरानी हो चुकी है। तू एक पल में उतरना चाहते हो। इस नदी से धर्मात्मा लोग पार उतरते हैं और जो पापी होते हैं वे भवजल में डूब जाते हैं। जन्ममरण में ही रहते है। मुक्त होने नहीं पाते हैं ॥२॥ लोग दर्पण में मुख देखते हैं। पेंच सीधा करते हैं। जुलफी रखते हैं। उस में से तेल चूवता है। परन्तु एक दिन ऐसा आयगा कि, उस शरीर को काक सियार आदि नोचेंगे ॥ ३ ॥ आम की डाली पर कोयल बोलती है। शुक पक्षी वन में बोलता है। गृहस्थी गृहिणी में राजी रहता है और फक्कड़ ज्ञानी सन्त अपने आप में राजी रहते हैं ॥ ४ ॥ सुन्दर स्त्री पान की बीड़ी लाती है ओरे अपने अंग में सेवा चाहती है। करीब कहते हैं कि, हे साधु भाई! सुनिये—ये विषयासक्त लोग रण में क्या लड़ सकते हैं। ये आत्मकल्याण के साधन क्या करते हैं। अतः मुमुक्षुओं को चाहिये कि, विषयों को त्यागकर शमदमादि साधन का अनुष्ठान करके परमपद प्राप्त करे ॥ ५ ॥

इति प्रथमः खण्डः ।



* सत्य नाम *

* सत् सत् सोऽहम् गुरु *

❀ सोऽहं हंसः सत्यगुरु शरणम् ❀

❀ ॐ श्रीराम सत्यराम सोऽहं गुरु राम ❀

❀ वन्दे सद्गुरुं सत्यकबीरगुरुदेवम् ❀

सद्गुरु श्रीकबीर स्वामी की अमृतवाणी

अथ द्वितीय खण्ड

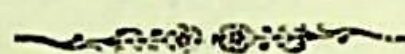
साखी

साखी—गुरु को कीजै दण्डवत, कोटि-कोटि परनाम ।
कीट न जानै भृंगको, करिले आप समाम ॥

सद्गुरु शिष्यों को उपदेश देते हैं कि, आप लोग गुरु को कोटि कोटि दण्डवत् प्रणाम करिये । क्योंकि, जैसे कीट भृंगी के महत्त्व को नहीं जानता है । फिर भी भृंगी कीट को अपने समान बना लेती है । वैसे ही शिष्य गुरु के महत्त्व को नहीं जानता है । फिर भी गुरु शिष्य को अपने समान बना लेते हैं । यह नवधा भक्ति में से वन्दन-भक्ति का उपदेश है ।

विवरण—परमेश्वर की सृष्टि एक दूसरी सृष्टि से विलक्षण होती है । सभी समान नहीं । भृङ्गी (एक प्रकार की बड़ी मक्षिका) की सृष्टि भी सबसे विलक्षण होती है यह संभोग से सन्तान उत्पन्न नहीं करती है ।

किन्तु भीत्ति आदि में मिट्टी के घर बना कर अपने से भिन्न जाति के कीट (जन्तु विशेष) को अपना शब्द सुनाती है। जो कीट शब्द सुनकर हाथ पैर पछाड़ने लगता है उसको अनधिकारी समझकर छोड़ देती है और जो शब्द सुनने के बाद ध्यानमग्न अर्थात् निश्चेष्ट हो जाता है उसको अधिकारी समझकर ले जाती है और घर में डालकर बन्द कर देती है। कुछ काल के बाद जब वह कीट भृङ्गी के चिन्तन से भृङ्गी रूप हो जाता है तब घर को छेदकर बाहर निकल आता है क ीट भृङ्गी हो जाता है। यही उसकी सन्तति परम्परा की स्थिति है। उसी का उदाहरण देते हुए सद्गुरु ने इस साखी में कहा है कि, जैसे कीट भृङ्गी का चिन्तन कर भृङ्गी रूप हो जाता है वैसे ही शिष्य गुरु का चिन्तन करके गुरु रूप हो जाता है गुरु परमेश्वर रूप है। जीव का परमेश्वर रूप होना ही तो मोक्ष है॥ १॥



(२)

गुरु गोविन्द करि जानिये, रहिये शब्द समाय।
मिलै तो दण्डवत बन्दगी, पल-पल ध्यान-लगाय॥

गुरु को गोविन्द परमात्मा रूप समझिये और उनके शब्द उपदेश में स्थिर रहिये। प्रत्यक्ष मिलने पर दण्डवत् वन्दना प्रणाम करिये और कहीं दूर देश में हों तो उनका पल-पल ध्यान लगाइये। भाव यह है कि, गुरु को परमात्मा जानना चाहिये। उनके उपदेश के अनुसार चलना चाहिये। उनकी वन्दना और ध्यान करना चाहिये।

इसमें उध्धृत साखी शब्द जहाँ-तहाँ से चुन-चुन कर एकत्रित किये गये हैं अतः एक की दूसरे के साथ सङ्गति की आकाङ्क्षा नहीं होनी चाहिये। क्योंकि, कहीं सङ्गति मिलती है कहीं नहीं। खीच तानकर

सङ्गति मिलाना समुचित नहीं। सद्गुरु की सभी वाणियाँ स्वतन्त्र हैं। अपने अर्थ प्रतिपादन में अन्य किसी की अपेक्षा नहीं रखती हैं ॥ २॥



(३)

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, किनके लागौं पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दिया बताय ॥

परमेश्वर की अपेक्षा गुरु की श्रेष्ठता—पाठक! थोड़ी देर के लिये कल्पना करें कि, गुरु और गोविन्द परमात्मा दोनों सामने खड़े हों वहाँ संशय होगा कि, प्रथम प्रणाम किनको किया जाय ?। विचार करने पर निश्चय होगा कि सद्गुरु की बलिहारी है, धन्यवाद है। क्योंकि, उन्होंने गोविन्द का उपदेश दिया है। यदि गुरु न होते तो ईश्वर-विषयक उपदेश कौन करता ? और उपदेश न मिलता तो ईश्वर-भक्ति कैसे होती ? एवं भक्ति विना ईश्वर का दर्शन कैसे होता ? अतः ईश्वर की अपेक्षा हमारे लिये गुरु श्रेष्ठ हैं। गुरु का उपकार अधिक है इस कथन से गोविन्द में लघुता नहीं समझना चाहिये। किन्तु गुरु विना गोविन्द की प्राप्ति न होने से गुरु में उपकारकता अधिक है। इस अर्थ में तात्पर्य है।



(४)

गुरु हैं बड़े गोविन्द ते, मन में देखु विचार।
हरि सिरजे ते वार है, गुरु सिरजे ते पार ॥

यद्यपि सर्व शास्त्रों में गुरु को गोविन्दरूप कहा है। तथापि मन में विचार कर देखने पर गोविन्द से गुरु बड़े हैं। क्योंकि हरि की सृष्टि में वार है अर्थात् संसार के इस पार देह-धारण कर जन्म मरण में है। और गुरु की सृष्टि में अर्थात् उपदेश द्वारा ज्ञान प्राप्त होने पर पार अर्थात् संसार सागर से पार हो जाता है। मुक्त हो जाता है। भाव यह है कि, ईश्वर जीव को कर्मफल देने के लिये संसार में डालते हैं और गुरु उपदेशजन्य ज्ञान-अग्नि से कर्म को भस्म कर जीव को जन्मादि संसार सागर से पार कर देते हैं। अतः गुरु ईश्वर से भी बड़े हैं ॥४॥

(५)

गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय।
कहैं कबीर सो सन्त है, आवागमन नसाय ॥

गुरु-भक्ति मोक्ष का हेतु है। शिष्य मुमुक्षु है। वह जो कुछ कार्य करे, गुरु से आज्ञा लेकर करे। गुरु की आज्ञा लेकर आवे और गुरु की आज्ञा लेकर कहीं जाना हो तो जाय। सद्गुरु कहते हैं कि, उसका नाम सन्त है। उसी के आवागन जन्ममरण आदि दुःख नष्ट होते हैं॥ ५॥

(६)

गुरु औ पारस में सदा, बड़ो अन्तरो जान।
ओ लोहा कञ्चन करे, ये करे आप समान ॥

गुरु और पारसमणि में वड़ा भारी अन्तर समझना चाहिये। क्योंकि, पारसमणि अपने स्पर्श से लोहा को कञ्चन अर्थात् सुवर्ण वनाता है। पारस लोहा को सुवर्ण तो वनाता है, परन्तु अपने समान पारस नहीं वना सकता है और गुरु अपने स्पर्श से शिष्य को अपने समान बना लेते हैं। गुरु जीवनमुक्त ब्रह्मरूप हैं। अपने शिष्य को भी जीवन्मुक्त ब्रह्मरूप कर देते हैं। अतः पारस से अधिक गुण गुरु में हैं॥ ६॥

---

(७)

कुमति कीच चेला भरा, गुरु ज्ञान जल होय।

जनम जनम का मोरचा, पल में डारे धोय॥

शिष्य कुमति रूपी कीचड़ से भरा है और गुरु ज्ञानरूपी जल हैं। ये जन्म जन्मान्तर के पाप रूपी मोरचा (कीचड़) को एक पल में धो डालते हैं। गुरु ज्ञान रूपी जल से शिष्य के पाप रूपी कीचड़ का नाश करके उसको निर्मल बना देते हैं॥ ७॥

---

(८)

गुरु धोवी सिप कापड़ा, साबुन सिरजन हार।

सुरति सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार॥

साधक! गुरु धोवी समान शिष्य कपड़ा समान और सृष्टिकर्ता परमात्मा साबुन समान हैं। सुरति = ध्यान वृत्ति रूपी पत्थर पर उस कपड़े को धोइये तो अपार ज्योति निकलेगी। जीव के पाप तथा अविद्या

गुरु की महिमा को कौन कह सकता है ? शिव और ब्रह्मा भी इसे पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं। गुरु को ये सद्गुरु ब्रह्मरूप हैं, ऐसा पहचान कर निर्वाणपद मोक्ष प्राप्त करता है इससे शिव तथा ब्रह्मा में अल्पज्ञता नहीं समझना चाहिये। क्योंकि दूसरा कोई जानता हो और शिव तथा ब्रह्मा नहीं जानते हों तो इनमें अल्पज्ञता आ सकती है। ऐसा तो है नहीं। अतः शिवादि अल्पज्ञ हैं इस कथन में तात्पर्य नहीं है किन्तु गुरु की महिमा की अनन्तता में तात्पर्य समझना चाहिये।



(१३)

गुरु मुख बानी ऊचरे, सीष साँच करि मान।
या विधि फंदा छूट हीं, और युक्ति नहीं आन॥

गुरु के मुख से जो वाणी उच्चरित हो, शिष्य उसको 'सत्य वचन' कहकर स्वीकार करे, 'यही हमारे कल्याण का हेतु है' ऐसा शिष्य को समझना चाहिये। इसी प्रकार संसार बन्धन से छूट सकता है। दूसरी कोई युक्ति (उपाय) नहीं है।



(१४)

गुरु मूरति गति चन्द्रमा, सेवक नैन चकोर।
आठ पहर निरखत रहै, गुरु मूरति की ओर॥

गुरु की मूर्त्ति चन्द्रमा समान और शिष्य के नेत्र चकोर के नेत्र के समान होना चाहिये। जो गुरु मूर्त्ति की तरफ आठो पहर देखता रहे।

गुरु का चिन्तन सदा करते रहना चाहिये अथवा गुरु के इशारे से शिष्य को बरतना चाहिये। कहना न पड़े कि, इस समय यह सेवा कर। संकेत से समझ लेना चाहिये। क्योंकि, मुक्ति का हेतु सेवाधर्म बहुत कठिन है। भरत जी की उक्ति है कि—

'शिर भर चलों उचित अस मोरा, सबसे सेवक धर्म कठोरा' (तुलसी)

शास्त्र-वचन—

'सेवा धर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः'

अर्थात् सेवा धर्म बहुत कठिन है। गहन है। योगियों के लिये भी अगम्य है। इतर की तो बात ही क्या ? गुरु के प्रति ऐसा भाव निरन्तर रखने से ही शिष्य का कल्याण होता है। अन्यथा नहीं। जन्मादि संसार अति भयंकर एवं रोमाञ्चक है इससे मुक्त होना आवश्यक है॥ १४॥



(१५)

गुरु समाना सीष में, सीष लिया करि नेह।
बिलगाये बिलगे नहीं, एक प्रान दुइ देह॥

जिस समय शिष्य गुरु के प्रति इस प्रकार का स्नेह कर लेता है उस समय गुरु भी शिष्य में समा जाते हैं। शिष्य गुरुरूप हो जाता है। दोनों का परस्पर का प्रेम बढ़ जाता है। फिर अलग करने पर भी अलग नहीं हो सकते हैं। क्योंकि उस अवस्था में गुरु-शिष्य दोनों के प्राण-आत्मा एक हो जाते हैं। केवल देहमात्र भिन्न भासते हैं।

प्राथमिक उपासना रूप प्रतिमा-चिन्तन से यह गुरुमूर्त्ति का चिन्तन अति श्रेष्ठ है। निकृष्ट में उत्कृष्ट बुद्धि उपासना कही जाती है। जैसे निकृष्ट विष्णु प्रतिमा में उत्कृष्ट विष्णु बुद्धि उपासना है वैसे ही निकृष्ट गुरु मूर्ति

में उत्कृष्ट परमात्मबुद्धि उपासना है। जैसे विष्णु-प्रतिमा में शिला-बुद्धि करने से नरक होता है वैसे ही गुरु मूर्त्ति में भौतिक मनुष्यबुद्धि करने से नरक होता है। शिष्य के अपने को गुरु रूप से और गुरु को ईश्वर रूप से चिन्तन करने से उसको अभेद ज्ञान उत्पन्न होता है और अभेद ज्ञान से मोक्ष होता है। इस प्रकार सहज में ही संसार की मुसाफरी समाप्त हो जाती है। प्रतिमा चिन्तन से इस प्रकार का अभेद ज्ञान नहीं होता है। यही सद्गुरु श्रीकबीर स्वामी को उपदेश में विशेषता है। अतः मुमुक्षु को चाहिये कि, सब अभिनिवेश को छोड़ कर सद्गुरु उपदिष्ट मार्ग पर आ जाँय। जिससे उसका कल्याण हो। अन्यथा संसार तो है ही ॥१५॥

---

(१६)

गुरु सरनागत छाँड़ि के, करै भरोसा और।
सुख संपति की कह चलीं, नहीं नरकमें ठौर ॥

इस प्रकार परमात्मा स्वरूप गुरु की शरणागति को छोड़कर जो शिष्य दूसरे की आशा करता है, उसको सुख संपति की प्राप्ति की बात तो दूर रही, नरक में भी स्थान नहीं मिलता है ॥ १६ ॥

---

(१७)

ज्ञान प्रकासी गुरु मिला, सो जनि विसरौ जाय।
जब गोविन्द क्रिपा करी, तब गुरु मिलिया आय ॥

सद्गुरु कहते हैं कि—हे मुमुक्षुजन ! आप लोगों को ज्ञान प्रकाशक गुरु प्राप्त हुए हैं वे विस्मृत न हो जाँय इसका ध्यान रखना चाहिये।

क्योंकि, जब परमात्मा ने कृपा की तब आप को गुरु प्राप्त हुए हैं। अन्यथा गुरु की प्राप्ति कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है।

पहले कहा गया है कि, गुरु की कृपा से गोविन्द प्राप्त होते हैं और यहां कह रहे हैं कि, गोविन्द की कृपा से गुरु प्राप्त होते हैं। अतः अन्योन्याश्रय दोष प्राप्त होता है। इसका परिहार इस प्रकार करना चाहिये कि, पूर्व जन्म उपार्जित शुभ कर्म से ईश्वर गुरु की प्राप्ति करा देते हैं और जब गुरु के उपदेश से शिष्य ईश्वर की भक्ति करता है तब भक्ति से आवर्जित ईश्वर भक्त को दर्शन देते हैं। गुरु प्राप्ति में पूर्व उपार्जित शुभ कर्म और ईश्वर—प्राप्ति में भक्ति हेतु होने से अन्योन्याश्रय नहीं होता है॥ १७॥

---

(१८)

कबीर ते नर अन्ध हैं, गुरु को कहते और।
हरि के रूठै ठौर है, गुरु रूठै नहिं ठौर॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, वे पुरुष अन्धे है जो गुरु को परमात्मा से भिन्न तथा छोटा मानते हैं। परन्तु विवेक करके देखने से गुरु परमात्मा से बड़े हैं। क्योंकि, हरि के रुष्ट होने पर स्थिति रहती है और गुरु के रुष्ट होनेपर कहीं स्थिति नहीं रहती है। ठीक ही कहा है—

हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
गन्तव्यो गुरुरेवात्र स्वात्मज्ञानेन देहिना॥

हरि के रुष्ट होने पर गुरु रक्षक होते हैं और गुरु के रुष्ट होने पर हरि आदि कोई रक्षक नहीं होने पाते हैं। अतः बुद्धिमानों के लिये गुरु ही प्राप्तव्य है। क्योंकि—

हरि रूठे गति एक है, गुरु सरनागत जाय।
गुरु रूठे एको नहीं, हरि नहि करै सहाय॥

हरि के रुष्ट अर्थात् अप्रसन्न होनेपर एक आश्रय है और वह यह कि, गुरु की शरणागति ग्रहण करे। गुरु के उपदेशानुसार भक्ति करने पर फिर हरि प्रसन्न हो सकते हैं। परन्तु गुरु के रुष्ट होनेपर कोई एक भी आश्रय नहीं है। क्योंकि, गुरु के रुष्ट होनेपर गुरुद्रोही की सहायता हरि कभी नहीं करते हैं कर्मानुसार सुख दुःख फल अवश्य देते हैं। परमात्मा न्यायभ्रष्ट कभी नहीं होते हैं॥ १८॥



(१९)

बलिहारी गुरु आप की, घरी घरी सौ बार।
मानुष ते देवता किया, करत न लागी बार॥

सद्‌गुरु कहते हैं—हे गुरुदेव! आप की घड़ी घड़ी में सौ सौ बार बलिहारी है अर्थात् धन्यवाद पूर्वक प्रणाम है। क्योंकि, मनुष्य से देवता बनाने में आप को देरी नहीं लगी। माता पिता पशु उत्पन्न करते हैं। गुरु विद्या देकर मनुष्य बनाते हैं। मनुष्य से देवता बनाते हैं। और ब्रह्मज्ञान देकर ब्रह्म बनाते हैं। अधिकारी होनेपर एक पल में जीव को ब्रह्म बना देते हैं। स्वरूप की विस्मृति से अपने को जीव कहता था। ज्ञान होनेपर 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ ऐसा कहने लगा। देव समान पूज्य हो गया॥ १९॥



(२०)

सिष खाँड़ा गुरु मसकला, चढ़ै शब्द खरसान।
शब्द सहै सनमुख रहै, निपजै सीष सुजान ॥

शिष्य जंग चढ़ी हुई तलवार समान मलिन है। गुरु मसकला अर्थात् जंग छुड़ाने का सिकलीगर का एक मसाला तथा औजर समान है। यदि शिष्य गुरु उपदेश शब्दरूप खरसान–तीक्ष्ण सान पर चढ़े और गुरु के कठिन शब्दों को सहन करते हुए सम्मुख रहे, कहीं चला न जाय तो वह ज्ञानी बन जाता है। नीतिशास्त्र में भी कहा है—

गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम्।
अजातशाणोत्कषणा नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसन्ति ॥

गुरु की कठिन अक्षर वाली वाणी से तिरस्कृत शिष्य महत्त्व को प्राप्त होता है। क्योंकि शाण के ऊपर न कषा हुआ मणि कभी राजा के मस्तक अर्थात् मुकुट पर वास नहीं कर सकता है भाव यह है कि, जैसे शाण पर कषा हुआ मणि राजा के मस्तक पर बैठता है, वैसे ही गुरु के कठिन शब्दों से कसा हुआ शिष्य ऊँचे पद पर बैठता है। अन्यथा नहीं ॥ २० ॥

---

(२१)

सब धरती कागद करूं, लिखनी सब बनराय।
सात समुँद की मसी करूं, गुरु गुन लिखा न जाय ॥

समस्त पृथिवी को कागज बनाऊं, संसार की सभी वनस्पतियों को लेखनी बनाऊं और सातों समुद्र के जल से स्याही बनाऊं तो भी गुरु के

गुण अनन्त होने से लिखकर पूरा नहीं कर सकते हैं। पुष्पदन्ताचार्य ने भी शिवमहिम्न स्तोत्र में कहा है--

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

हे ईश! (गुरुदेव!) आप के दिव्य एवं कल्याण गुणों को लेखबद्ध करने के लिये समुद्र मसीपात्र बने, काला पर्वत स्याही बने, मोटे मोटे कल्पवृक्ष की शाखा से कलम बने और पृथिवी कागज बने इन सब असंभवित वस्तुओं को संभवित बनाकर स्वयं सरस्वती देवी खाना पीना सोना बैठना आदि सब कुछ छोड़कर एवं अजर अमर हो कर सारा समय लिखती रहे तो भी आप के गुणों को लिख कर पूरा नहीं कर सकती है। दूसरों की तो गुंजाईश ही क्या है?। इस श्लोक में ईश्वर के गुणों को और प्रकृत साखी में गुरु के गुणों को अनन्त बतलाया गया है और गुरु और ईश्वर में भेद नहीं है। अतः गुरु परमात्मा के गुणों में अनन्तता कही गई है॥ २१॥

(२२)

अहं अगिनि निस दिन जरै, गुरु सों चाहै मान।
ताको जम न्यौता दिया, हो (उ) हमार मिहमान॥

अहंकार रूप अग्नि रात दिन जला करती है, बड़ा अभिमानी है, अत एव गुरु से मान प्रतिष्ठा चाहता है। ऐसे शिष्य को यमराज ने निमन्त्रण दिया है कि, तुम हमारा पहुना बनो। अर्थात् ऐसे अभिमानी शिष्य बार बार यमयातना को भोगते रहते हैं। मुक्त होने नहीं पाते हैं। अतः गुरु के आगे अभिमान करके उनसे मान प्रतिष्ठा की आशा नहीं करनी चाहिये बार बार मर कर यम के यहां जाना यमराज का मिहमान बनना है॥ २२॥

---

(२३)

जम गरजै बल बाघ के, कहैं कबीर पुकार।
गुरु किरपा ना होत जो, तो जम खाता फार॥

सद्‌गुरु कबीर पुकार कर कहते हैं कि, बाघ के = सिंह के समान, बल = बलवान्, जम = यमराज, गरजै = गर्जना करता है। अर्थात् जैसे सिंह वन्यपशु के शिकार करने के लिये गर्जना करता है वैसे ही यमराज पापी जीवों को यमयातना देने के लिये गर्जना करता है। यदि गुरु की कृपा न हुई होती तो यमराज रूपी व्याघ्र फाड़कर खा जाता। गुरु ने ज्ञान दिया। जिससे मुक्त हुआ। ज्ञानाग्नि से कर्मकाष्ठ सब दग्ध हुए। अतः यमराज के अधिकारी नहीं रहे। अब मृत्यु कुछ नहीं कर सकता है। यह गुरु का प्रताप है॥ २३॥

---

(२४)

पंडित पढ़ि गुनि पचि मुये, गुरु बिन मिलै न ज्ञान ।
ज्ञान विना नहि मुक्ति है, सत्त शब्द परमान ॥

केवल पुस्तकपाठी वाचकज्ञानी पण्डित लोग पुस्तकों को पढ़ गुनकर पचमुये, संसार में जन्मते मरते ही रहे । श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी गुरु विना उनको ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ और ज्ञान विना मुक्ति नहीं मिलती है । इस में सत्य शब्द रूप निम्नलिखित वेदादि के वचन प्रमाण हैं– "आचार्यवान् पुरुषो वेद" (छा. ६–१४–२) अर्थात् गुरुयुक्त पुरुष ही आत्मा को जानता है । "आचार्याद् ध्येव विद्या विहिता साधिष्टं साधयति" (छा. ४–७–३) अर्थात् गुरु आचार्य से प्राप्त विद्या ही मोक्ष को सिद्ध करती है । "तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय" अर्थात् ब्रह्माभिन्न आत्मा को गुरु से जानकर ही शिष्य मुक्तिप्राप्त करता है। मोक्ष के लिये अन्य मार्ग नहीं है । "ज्ञानादेव तु कैवल्यम्" अर्थात् ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है । "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" अर्थात् ज्ञान विना मुक्ति नहीं प्राप्त होती है । "यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयन्तीह मानवाः । तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति" अर्थात् जब पुरुष आकाश को मृगचर्म के समान समेट लेगा तब ब्रह्मात्मा के जाने विना दुःख का अन्त भी होगा । अर्थात् जैसे आकाश को समेटना असम्भव है वैसे ही आत्मज्ञान विना मोक्ष प्राप्त करना भी असम्भव है। और ज्ञान गुरु से ही प्राप्त होता है –"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" (मु. १–२–१२) अर्थात् उस ब्रह्मात्मा को जानने के लिये उपहार लेकर श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु के ही पास जाय ।

इस साखी में तीन बातें बताई गई हैं । एक-स्वयं शास्त्र पढ़ने से ज्ञान नहीं होता है । दूसरी-गुरु विना ज्ञान नहीं होता है और तीसरी–

ज्ञान विना मुक्ति नहीं होती है। इन तीनों बातों में वेदादि शास्त्र प्रमाण दिये गये हैं। ये अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त है। स्मरण रहे कि, ज्ञान से मुक्ति मानने वाला केवल अद्वैत वेदान्त ही है। अन्य कोई कर्म से, कोई उपासना से, कोई इन दोनों से और दूसरे कर्म और ज्ञान दोनों से मुक्ति मानते हैं। इस साखी में सद्गुरु कह रहे हैं—"ज्ञान विना नहीं मुक्ति है।" इसमें पूर्वोक्त सत्य शब्द वेद प्रमाण है।

कुछ लोगों का कहना है कि, सद्गुरु कबीर वेद नहीं मानते थे। सो समीचीन नहीं क्योंकि, 'ज्ञान से ही मुक्ति होती है' इस कथन में 'सत्य शब्द प्रमाण' अर्थात् वेद-वचन प्रमाण है ऐसा कह रहे हैं। एवं कुछ लोगों का यह भी कहना है कि, कबीर का और वेदान्त का सिद्धान्त एक नहीं किन्तु भिन्न है। यह भी ठीक नहीं, क्योंकि, उक्त साखी में सद्गुरु कह रहे हैं कि, 'ज्ञान विना नहि मुक्ति है।' यह केवलाद्वैत वेदान्त का ही सिद्धान्त है। जो नवीन नहीं किन्तु वेदप्रतिपादित होने से अनादि है। उसी का स्वामी शंकराचार्य आदि महापुरुषों के समान एक मुख्य प्रचारक सद्गुरु श्रीकबीर स्वामी हैं। उनका प्रचार संस्कृत में और सद्गुरु का सर्व साधारण के समझने के लिये हिन्दी में था। इतना ही भेद है। सिद्धान्त में भेद नहीं।

यदि यह कहें कि, सद्गुरु श्रीकबीर स्वामी श्रीरामानन्द स्वामी के एक मुख्य शिष्य थे और श्रीरामानन्द स्वामी श्रीवैष्णव होने से विशिष्टाद्वैत के मानने वाले थे। एवं विशिष्टाद्वैत केवल ज्ञान से नहीं किन्तु कर्म और ज्ञान दोनों से मुक्ति मानता है तो सद्गुरु श्रीकबीर स्वामी केवल ज्ञान से मुक्ति कैसे मानते हैं? इसका उत्तर यह है कि, उस समय के रामानन्दी श्रीवैष्णवों में विशिष्टाद्वैत को मान्यता का गन्ध भी नहीं था। यह मान्यता पीछे से प्रचलित हुई है। तभी तो श्रीतुलसी दास जी ने अपने रामचरित मानस में स्थान स्थान पर केवलाद्वैत के सिद्धान्त लिखे हैं। उदाहरणार्थ—"उभय बीच सिय सोहती कैसे, जीव ब्रह्म

बिच माया जैसे।" जीव और ब्रह्म के बीच में माया को केवलाद्वैती लोग ही मानते हैं। इसी प्रकार—"सो जानइ जेहि देहु जनाई' जानत तुमहि तुमहि होइ जाई।" अर्थात् हे राम! तुमको वही जान सकता है जिसको तुम जना देते हो और तुमको जानकर वह जानने वाला तुम्हीं हो जाया है। राम भक्त जीव का रामरूप हो जाना अद्वैत है। विशिष्टाद्वैत नहीं। अतः विशिष्टाद्वैत रामानन्दी वैष्णवों में गोस्वामी तुलसी दास जी के बहुत पीछे आकर घुस गया है। कबीर काल में रामानन्दी वैष्णव भी केवल ज्ञान से ही मुक्ति मानते थे। जो वेद का परम सिद्धान्त है॥ २४॥

---

(२५)

मूल ध्यान गुरुरूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव॥

ध्यान का मूल गुरुरूप है अर्थात् गुरु मूर्त्ति का ध्यान करने पर और किसी ध्यान की आवश्यकता नहीं रहती है। पूजा का मूल गुरु के चरण कमल है अर्थात् गुरु के चरण कमलों की पूजा करने पर और किसी पूजा की आवश्यकता नहीं रहती है। मन्त्र का मूल गुरु वाक्य है अर्थात् गुरु के वचन यही सर्व मन्त्रों का मूल है और सत्य स्वरूप मोक्ष का मूल सद्भावना अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्याकारक सद्रूप ब्रह्मभावना है। अथवा गुरु की जो कृपा यही मोक्ष का मूल है। यही बात गुरु गीता में भी कही गई है—

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः, पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मुक्तिमूलं गुरोः कृपा ॥

अर्थात् ध्यान करने योग्य केवल गुरुमूर्त्ति, पूजा करने योग्य केवल गुरुपद, मन्त्रस्वरूप केवल गुरुवाक्य और मुक्ति का मूल केवल गुरु की कृपा ही है ॥ २५ ॥

---

(२६)

कोटिन चंदा ऊगही, सूरज कोटि हजार ।
तीमिर तो नासै नहीं, बिन गुरु घार अंधार ॥

हजारों करोड़ चन्द्र और सूर्य के उदय होने पर भी अन्तर के अज्ञानरूपी अन्धकार नष्ट नहीं होता है किन्तु गुरु के विना घोर अन्धकार ही रहता है। बाह्य अन्धकार का विरोधी चन्द्र सूर्यादि के प्रकाश हैं और अन्तर के अज्ञानरूप अन्धकार का विरोधी गुरु के उपदेश जन्य ज्ञानरूप प्रकाश है। अतः गुरु बिना घोर अन्धार कहा गया है। यह अत्युक्ति नहीं किन्तु यथार्थ कथन है ॥ २६ ॥

---

(२७)

देवी बड़ा न देवता, सूरज बड़ा न चंद ।
आदि अन्त दोनों बड़े, कै गुरु कै गोविंद ॥

न देवी देवता बड़े हैं और न चन्द्र सूर्य बड़े हैं किन्तु आदि में मनुष्य जन्मदाता गोविन्द और अन्त में उपदेश जन्य ज्ञान द्वारा मोक्षदाता गुरु बड़े हैं। क्योंकि, बड़ा वह कहा जाता है जो दूसरों को

बड़ा करे। यथोक्त प्रकार से गोविन्द और गुरु जीव को बड़ा अर्थात् ब्रह्म कर देते हैं। इसी को और अधिक स्पष्ट करते हैं— ॥ २७ ॥

(२८)

हरि किरपा तब जानिये, दे मानव अवतार।
गुरु किरपा तब जानिये, मुक्त करे संसार ॥

जब जीव को मनुष्य अवतार देते हैं तब हरि की कृपा समझना चाहिये और जब जन्मादि संसार से मुक्त करते हैं तब गुरु की कृपा समझना चाहिये। मनुष्यशरीर चेतन शरीर है। जिसको कृपा पर-वश ईश्वर देते हैं और मनुष्यशरीर में ही ज्ञान द्वारा मोक्ष होता है। जिसको करुणा परवश गुरु देते हैं। अत एव ये ही दोनों बड़े हैं ॥२८॥

(२९)

नारद सरिखा सीष है, गुरु है मच्छीमार।
ता गुरु की निन्दा करे, पड़े चौरासी धार ॥

नारद जैसा शिष्य हो और मच्छीमार धीवर जैसा गुरु हो उनकी भी निन्दा करने पर चौरासी लक्ष योनि रूप भव नदी की धारा में डूबना पड़ता है तो उत्तमगुरु की निन्दा करने पर डूबना पड़े इसमें कहना ही क्या है ?।

इस पर एक आख्यान है कि, एक समय नारद मुनि भगवान् का दर्शन करने के लिये वैकुण्ठ गये। वैकुण्ठ का द्वार बन्द हो गया। नारद मुनि ने भगवान् से प्रार्थना की। तब आकाशवाणी हुई कि, हे

नारद जी ! आप निगुरे हैं। आज तक गुरु नहीं किया है। अतः आप के लिये वैकुण्ठ का द्वार नहीं खुल सकता है। गुरु करके आइये तब द्वार खुलेगा नारद जी ने कहा कि, मैं किसको गुरु बनाऊं ?। देववाणी ने कहा कि, कल प्रातः काल जो प्रथम आपको मिले उसी को गुरु बनाइये। सवेरे नारद जी जा रहे थे। उधर से एक मच्छीमार धीवर जाल लिये चला आ रहा था। उसी को नारद जी ने दण्डवत्प्रणाम किया और सब कथा कह सुनाई एवं शिष्य बनाने की प्रार्थना की। उसने नारद को जाल में से एक लोहे की नाली तोड़ कर कण्ठी के रूप में बाँध दिया और कहा कि, राम कहो। नारद जी गुरु करके पुनः वैकुण्ठ गये। द्वार खुल गया। भगवान् के पास जा बैठे। भगवान् ने पूछा कि नारद जी ! गुरु किया ?। नारद जी ने उत्तर दिया कि हाँ, गुरु तो किया, परन्तु मच्छीमार को। भगवान् ने नाराज होकर कहा कि हे नारद ! तुमने गुरुनिन्दा की है। अतः इसके फल भोगने के लिये चौरासी लक्ष योनि जाओ। नारद जी घबराये और भगवान् से उन्होंने विनय किया कि ऐसी दया करो कि मुझे चौरासी लक्षयोनि में न जाना पड़े। मेरी चौरासी छूट जाय—भगवान् ने कहा कि जिनकी तुमने निन्दा की है वे ही चौरासी छुड़ा सकते है। गुरु बिना अन्य कोई चौरासी छुड़ा नहीं सकते हैं। अतः तुम उन्हीं के पास जाओ।

दूसरे दिन नारदजी प्रातः काल उसी रास्ते से जा रहे थे जिससे पहले दिन गये थे। उधर से वही मच्छीमार आ रहा था। नारद जी ने प्रणाम किया और क्षमा मांगी। सब समाचार कह सुनाया एवं अत्यन्त विनम्रभाव से प्रार्थना करते हुए कहा कि मुझे चौरासी से मुक्त करिये। इत्यादि। मच्छीमार ने कहा कि नारद जी ! आप भगवान के पास जाओ और उनसे कहो कि आप ने जिस चौरासी को भोगने के लिये कहा वह कैसा होती है। मुझे पृथ्वी पर लिख कर बताइये। भगवान् जब लिख कर बतायेंगे तब उसी पर आप लौटने लगना जब भगवान्

पूछेंगे कि, यह क्या करते हो तब आप कहना कि, चौरासी भोगता हूँ। जब भगवान् कहेंगे कि, यह चौरासी कैसी ? तब आप कहना कि, वह चौरासी आप की बनाई हुई है और यह चौरासी किसकी बनाई हुई है ? वहीं इसी प्रकार से आपकी चौरासी मुक्त हो जाइगी और आप चौरासी लक्ष योनि से मुक्त हो जायेंगे। नारद जी ने ऐसा ही किया और चौरासी मुक्त हो गये। इसी कथा का संकेत सद्गुरु ने इसी साखी में किया है।

निगुरा के लिये वैकुण्ठ नहीं है। गुरु चाहे किसी जाति के हों उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। अन्यथा चौरासी भोगना पड़ता है। चौरासी भगवान् मुक्त नहीं कर सकते हैं किन्तु गुरु ही कर सकते हैं इत्यादि बोध इस साखी से प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

(३०)

भक्ति द्राविड ऊपजी, लाये रामानन्द।
प्रगट करी कबीर ने, सात दीप नव खंड ॥

इस युग में भक्ति द्राविड़ देश में उत्पन्न हुई। उस भक्ति को श्रीरामानन्द स्वामी उत्तर भारत में लाये। श्रीकबीर स्वामी ने सात द्वीप और नव खण्ड में अर्थात् सर्वजन साधारण में प्रगट किया। यद्यपि भक्ति सनातन होने से अनादि अनन्त है। इसकी उत्पत्ति कहना समुचित नहीं तथापि समय समय पर इसकी वृद्धि और ह्रास होता रहता है। इस साखी से भक्ति गुरु परंपरा से प्राप्त होती है यह कहा गया है ॥ ३० ॥

(३१)

कबीर हरि की भक्ति करु, तज विषया रस चौज।
बार बार नहिं पाइये, मानुष जन्म की मौज॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे मुमुक्षुजन! आप लोग विषय रस की चौज = चाहना या वासना को त्यागकर हरि की भक्ति करो। क्योंकि, मनुष्य जन्म के आनन्द को बारम्बार नहीं पावोगे। भाव यह है कि, मनुष्य शरीर चेतन शरीर है। इसी शरीर से आत्मकल्याण का साधन भक्ति आदि हो सकते हैं। अन्य पशु आदि शरीर से नहीं और यह मनुष्य शरीर बारम्बार प्राप्त नहीं होता है। देवदुर्लभ है॥ ३१॥



(३२)

मानुष जन्म दुर्लभ है, मिले न दूजी बार।
पक्का फल जो गिर पड़ा, बहुरि न लागे डार॥

मनुष्य शरीर दुर्लभ है। दूसरी बार नहीं मिलता है। जैसे आम्र आदि पक्का फल वृक्ष से गिर पड़ता है तो उसी समय फिर डाली में नहीं लगता है किन्तु दूसरे वर्ष ऋतु आने पर लगता है वैसे ही प्रारब्ध मुक्त होने पर मनुष्य शरीर जब छूट जाता है तब फिर उसी समय नहीं मिलता है। फिर दूसरा पुण्य उदय होने पर मिलता है।

इस साखी को देखकर मिश्र बन्धुओं ने यह कहा है कि, कबीर पुनर्जन्म नहीं मानते थे। यह कहना उनका साहित्य विषयक अनभिज्ञता

का परिचायक है। क्योंकि, इस साखी में पक्का फल का दृष्टान्त है। जैसे पक्का फल वृक्ष से गिर पड़ने पर तत्काल वृक्ष में नहीं लगता है। किन्तु दूसरे वर्ष ऋतु आने पर लगता है। वैसे ही मनुष्य शरीर छूट जाने पर पुनः तत्काल मनुष्य शरीर नहीं मिलता है। किन्तु पुनः पुण्य उदय होने पर मिलता है। मिश्रबन्धुओं ने "जियरा ऐसा पाहुना, मिले न दूजी बार" इस साखी को देखकर भी यही कहकर जनसमाज में भ्रम फैलाया है कि कबीर 'पुनर्जन्म' नहीं मानते थे यह उनमें मुसलमानी संस्कार था' इत्यादि। यहाँ भी उन्होंने दृष्टान्त को समझने में बड़ी भारी भूल की है। क्योंकि, इसमें दृष्टान्त है पहुना'। जैसे पहुना आ कर जाता है वह उसी समय फिर नहीं आता है। किन्तु जब कभी प्रसंग आता है तब आता है। वैसे ही मनुष्य शरीरधारी जीव पहुना समान है। यहाँ से गया फिर तत्काल मनुष्य शरीर में नहीं आयगा किन्तु जब मनुष्य शरीर देने वाला पूर्व उपार्जित पुण्य कर्म उदय होगा तब आयगा। सदा के लिये नहीं आयगा ऐसा नहीं। अतः मिश्रबन्धु तथा उनके पिछलग हिन्दी के लेखकों ने बहुत भूल की है। पाठकों को सावधानी से कबीर सिद्धान्त का निश्चय करना चाहिये।

---

(३३)

भक्ति भाव भादों नदी, सभी चली घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जेठ मास ठहराय॥

जैसे भाद्र मास की क्षुद्र नदियाँ गहराती हुई अर्थात् उमड़ती हुई तथा शब्द करती हुई चली जाती हैं। उनकी कोई प्रशंसा नहीं करता है। प्रशंसनीय वह है जो ज्येष्ठ मास में ठहरती है, जल देती है। वैसे ही सुख सम्पत्ति काल में सबके हृदय में भक्ति देखी जाती है किन्तु उनकी कोई प्रशंसा

नहीं करता है। प्रशंसनीय भक्ति यह है जो विपत्ति काल में विद्यमान रहती है। सदा अखण्ड रूप से रहने वाली भक्ति प्रशसनीय है ॥३३॥

(३४)

भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनन्त ।
ऊँच नीच घर औतरे, होय संत का संत ॥

अनन्तो युग चले जाने पर भी भक्ति के बीज नष्ट नहीं होते हैं। भक्त प्रारब्धवश ऊंच या नीच जाति में भले जन्म ग्रहण करे किन्तु सन्त का सन्त ही होता है। एक बार भक्ति का संस्कार पड़ जाता है वह मिटता नहीं है। इस साखी में 'जन्म ले' ऐसा नहीं किन्तु 'औ त रे' शब्द का प्रयोग है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि, जिस क्षण हृदय में भक्ति का अङ्कुर उत्पन्न होता है उसी क्षण वह भक्त जीवन्मुक्त भगवत्स्वरूप हो जाता है। भगवान् का जन्म नहीं होता है किन्तु अवतार होता है। वैसे ही भक्त भगवत्स्वरूप होने से जन्मते नहीं हैं किन्तु भक्ति को पूर्ण करने के लिये तथा प्रचार करने के लिये अवतार लेते हैं। भक्त को भी सुख दुःख तो होता है परन्तु उसको वह आत्मा में नहीं किन्तु देह में मानता है। परमात्मा सुख दुःख से रहित हैं। भक्त का आत्मा भी सुख दुःख से रहित है। अतः भक्त भगवत्स्वरूप है। भक्त की सेवा ही भगवान् की सेवा है।

(३५)

भक्ति पदारथ तब मिलै, जब हरे होय सहाय ।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरण भाग मिलाय ॥

भक्ति रूप पदार्थ तब प्राप्त होता है जब भगवान् सहायक होते हैं। भगवान् की कृपा विना भक्ति प्राप्त नहीं होती है। कहीं 'हरि' के स्थान पर 'गुरु' पाठ है। तब अर्थ यह है कि, गुरु की उपदेश रूप सहायता विना भक्ति नहीं प्राप्त होती है और जो परमप्रेमरूपा प्रेमलक्षणा भक्ति है वह तो पूर्ण भाग्य से प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥

---

(३६)

भक्ति दुहीली राम की, जस खाँड़े की धार ।
जो डोलै सो कटि पड़े, निहचल उतरै पार ॥

जैसे तलवार की धार तीक्ष्ण होती है वैसे ही राम की भक्ति दुहली= द्विधारी = कठिन = तीक्ष्ण होती है। इस पर चढ़ कर जो डोलता है वह कट कर गिर पड़ता है और जो निश्चल स्थिर होता है वह पार हो जाता है। अर्थात् संशय वाला गिर पड़ता है और दृढनिश्चयी पूर्णभक्ति करके संसार सागर से पार हो जाता है। जन्म मरण रूप बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥ ३६ ॥

---

(३७)

भक्ति निसैनी मुक्ति का, संत चढ़े सब धाय।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय।

भक्ति मुक्ति की निसैनी अर्थात् सीढ़ी है। इस पर सब सन्त दौड़ कर चढ़ जाते हैं और इसके द्वारा ऊँची पदवी को प्राप्त होते हैं। जिन जिनने अपने मन में आलस्य किया ये सब जन्म जन्मान्तर तक पश्चात्ताप करते रह गये। मनुष्य शरीर प्राप्त कर जिसने भगवान् की भक्ति की वह तो मुक्त हुआ और जिसने आलस्य किया, भक्ति नहीं किया, वह वर्तमान मनुष्य शरीर के छूटने पर पशु आदि शरीर में जाकर दीर्घ काल पर्यन्त पश्चात्ताप करता है॥ ३७॥

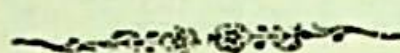


(३८)

जब लग नाता जाति का, तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़ै हरि भजै, भक्त कहावै सोय॥

जब तक ब्राह्मणत्वादि जाति का सम्बन्ध है तब तक भक्ति नहीं हो सकती है। अर्थात् जब तक 'मैं ब्राह्मण हूँ' 'मैं क्षत्रिय हूँ' 'मैं वैश्य हूँ' और 'मैं शूद्र हूँ' इस प्रकार का जात्यादि अभिमान रहता है तब तक ईश्वर की भक्ति प्राप्त नहीं होती है। जो जात्यादि सम्बन्ध को तोड़ कर परमात्मा का भजन करता है वही भक्त कहलाता है। इसमें कारण यह है कि, जैसे अन्धकार का विरोधी प्रकाश है। वे दोनों एक काल में तथा एक देश में एक साथ नहीं रह सकते हैं वैसे ही भक्ति का विरोधी यथोक्त जात्यादि विषयक अभिमान है। अतः ये दोनों भी एक काल में

तथा एक देश में एक साथ नहीं रह सकते हैं। अभिमानी को भक्ति प्राप्त नहीं होती है। भगवान् पतितपावन हैं। भक्ति द्वारा अपावन को पावन करते हैं। जो अपने को ब्राह्मण अर्थात् ऊँच तथा पावन समझता है, पतित तथा अपावन नहीं। उसको भगवान् भक्ति द्वारा पावन नहीं करते हैं ॥ ३८ ॥



(३९)

जल ज्यौं प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका, भक्ति प्यारा राम ॥

जैसे मछली को जल, लोभी को दाम (द्रव्य रुपया आदि) और माता को बालक प्रिय होते हैं वैसे ही राम=परमात्मा को भक्ति प्रिय होती है और भक्ति करने वाले भक्त के अधीन भगवान् हैं ॥ ३९ ॥



(४०)

कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करै कोई सूरमा, जाति वरन कुल खोय ॥

कामी, क्रोधी तथा लालची पुरुष से भक्ति नहीं हो सकती है। भक्ति तो कोई सूरवीर पुरुष ही कर सकता है। जो जाति, वर्ण और कुल के अभिमान को नष्ट किया हुआ होता है। इसमें हेतु यह है कि, कामी आदि पुरुषों का चित्त काम्य पदार्थों की तरफ दौड़ दौड़ कर जाता रहता है। एकाग्र नहीं होता है और भक्ति एकाग्र चित्त से होती है। भाव यह है कि, क्षिप्त, मूढ़ विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध ये पांच चित्त की

भूमिका हैं। उनमें क्षिप्त तथा मूढ़ भूमिका का चित्त भक्ति का अधिकारी नहीं। विक्षिप्त भूमिका का चित्त भक्ति का अधिकारी है। परन्तु उस अवस्था में चित्त चञ्चल होने से भक्ति नहीं हो सकती है। तब एकाग्र भूमिका चित्त होता है तब भक्ति होती है यह भक्ति साधन भक्ति कही जाती है और जब निरुद्ध भूमिका का चित्त होता है तब जो भक्ति होती है वह फल भक्ति कही जाती है। भक्ति और समाधि दोनों पर्याय शब्द हैं।

(४१)

आरत ह्वै हरि भक्ति करु, सब कारज सिध होय।
करम जाल भौ जाल में, भक्त फसै नहिं कोय॥

चार प्रकार के भक्त होते हैं। आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। उन में जो आर्त्त अर्थात् दुःखी होकर भी परमात्मा की भक्ति करता है उसके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। कर्मजाल यह संसार जाल है। इसमें कोई भी भक्त फसता नहीं है। इस में हेतु यही है कि यज्ञादि कर्म स्वर्गादि संसार के हेतु हैं, मुक्ति के नहीं। अतः मुमुक्षु भक्त उनमें नहीं फसते हैं। यहाँ आर्त्त शब्द चारों प्रकार के भक्तों का उपलक्षण है। क्योंकि, भक्ति का फल सर्व कार्य की सिद्धि बता रहे हैं, कार्य विशेष की नहीं। 'सर्व प्रकार के अभिमान को त्याग कर दीन भाव से भगवान् की भक्ति करो' यह सद्गुरु का कहना है॥ ४१॥

(४२)

तिमिर गया रवि देखते, कुमति गई गुरु ज्ञान।
सुमति गई अतिलोभ से, भक्ति गई अभिमान॥

जैसे सूर्य उदय होने पर अन्धकार चला जाता है वैसे ही गुरु उपदिष्ट आत्म-ज्ञान प्राप्त होने पर अज्ञान और तत्कार्य कुमति (दुष्टबुद्धि) चली जाती है। जैसे अतिलोभ करने से सुमति (सद्बुद्धि) चली जाती है वैसे ही अभिमान करने से भक्ति चली जाती है। यह पूर्व कहा गया है कि, भक्ति का विरोधी अभिमान है। जैसे एकाकी पतिव्रता सती स्त्री के घर में बलवान् दुराचारी के घुस जाने पर वह वहाँ से भाग कर अपना धर्म बचाती है वैसे ही एकाकी पतिव्रता सती स्त्री के समान भक्ति के अन्तःकरणरूपी घर में अभिमान के घुस जाने पर भक्ति वहाँ से भाग कर अपना धर्म बचाती है। भक्त को चाहिये कि, किसी प्रकार का अभिमान न करे। नहीं तो भक्ति उसके हृदय से चली जायगी॥४२॥



(४३)

जब लगि आसा देह की, तब लगि भक्ति न होय।
आसा त्यागी हरि भजै, भक्त कहावै सोय॥

अन्य की तो बात ही क्या, देह की आशा भी भक्ति में प्रतिबन्धक है। इसीलिये सद्गुरु कहते हैं कि, जब तक देह में भी आशा = आसक्ति है तब तक भक्ति नहीं हो सकती है। अतः जो देहादि में आसक्ति को त्याग कर हरि को भजता है वही भक्त कहलाता है। स्त्री धन पुत्रादि में जो सुख की आशा है—वह देह के लिये है। जब देह में ही आशा

अर्थात् सुख की आशा तथा देह—वासना का त्याग कर दिया तब अन्य आशा आसक्ति तथा वासना का त्याग हुआ इसमें तो कहना ही क्या ?। अनात्म विषय-वासना भगवद्वासना रूपी भक्ति की प्रतिबन्धक है। अतः भक्ति चाहने वाले मुमुक्षु को विषयवासना का त्याग ही करना चाहिये ॥ ४३ ॥

---

(४४)

चार चिन्ह हरिभक्ति के, प्रगट दिखाई देत।
दया धर्म आधीनता, पर दुख को हरि लेत ॥

परमेश्वर की भक्ति के ये चार चिन्ह प्रगट दिखाई देते हैं—एक दया, दूसरा अन्नादि दान रूप धर्म, तीसरा अधीनता अर्थात् नम्रता और चौथा दूसरे के दुःख को दूर करना। भाव यह है कि, जिसमें ये चारों चिन्ह देखने में आवे उसे भक्त समझना चाहिये। अतः भक्त को चाहिये कि, भक्ति की रक्षा के लिये यथोक्त चारों गुणों को अवश्य धारण करे ॥ ४४ ॥

---

(४५)

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाँहि।
सीस उतारै भुँय धरै, तब पैठै घर माँहि ॥

यह मुक्ति का घर प्रेम का है, प्रेम लक्षणा भक्ति का है। मौसी का नहीं कि, जो चाहे सो प्रवेश कर जाय। जो अभिमान रूपी सिर को

उतार कर पृथ्वी पर धरे वह उस घर में प्रवेश कर सकता है। अभिमान भक्ति का विरोधी है, यह बहुत बार कहा गया है। माता की बहिन मौसी को खाला कहते हैं। कहीं-कहीं पिता की बहिन बुवा को भी खाला कहते हैं। ये दोनों ही बहुत प्रेम करती हैं। दौड़ कर गोद में उठा लेती हैं। वैसी मुक्ति नहीं है जो बिना साधन के प्राप्त हो जाय, गोद में बिठा ले। किन्तु परमात्मा के प्रति प्रेम लक्षणा भक्ति रूप कठिन साधन करने पर प्राप्त होती है। जैसे स्त्री जब पुरुष पर प्रेम करती है तब पतिसुख उसको प्राप्त होता है। वैसे ही भक्त जब भगवान् पर प्रेम करता है तब उसको भगवत्सुख मोक्ष प्राप्त होता है। आत्मसुख, भगवत्सुख, ब्रह्मसुख और मोक्षसुख एक ही पदार्थ है। विषयसुख अनित्य है और सुख नहीं किन्तु सुखाभास है और मोक्ष सुख नित्य है और सत्य परमार्थरूप है। विषय सुख में जब प्रेम की अपेक्षा है तब मोक्ष में तो इसका कहना ही क्या ? ॥ ४५ ॥



(४६)

प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चिन्है कोय।
आठ पहर भींजा रहै, प्रेम कहावै सोय ॥

प्रेम प्रेम तो सब कोई कहते हैं, परन्तु प्रेम को कोई पहचानता नहीं है। जो रात्रि दिन प्रेम में मग्न रहता है वही प्रेम कहलाता है। अनन्य स्नेह रूप अखण्ड भक्ति प्रेम कहलाती है।

प्रेमलक्षणा भक्ति के प्राप्त होने पर भक्त की जो दशा होती है उसका शास्त्र में इस प्रकार वर्णन है—



क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्
हसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं
भवन्ति तुष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥

इस श्लोक का भाव महात्मा श्रीसुन्दरदास जी ने अपने सुन्दर विलास में इस प्रकार व्यक्त किया है—

कबहुँक हँसि उठि नृत्य करै रोवन फिर लागै ।
कबहुँक गद गद कंठ सब्द निकसैं नहिं आगै ॥
कबहुँक हृदै उमंग बहुत ऊँचे सुर गावै ।
कबहुँक है मुख मौन गगन जैसो रहि जावै ॥
चित्त वित्त हरि सों लग्यो सावधान कैसे रहै ।
यह प्रेमलच्छना भक्ति है शिष्य सुनो 'सुन्दर' कहै ॥
न लाज तीन लोक की, न वेद को कह्यौ करै ।
न संक भूत-प्रेत की, न देव-जच्छ ते डरै ॥
सुनै न कान और की, द्रसै न और इच्छना ।
कहै न बात और की, सुभक्ति प्रेम लच्छना ॥ ४६ ॥

(४७)

प्रेम तो ऐसा कीजिये, जैसे चंद चकोर ।
घींच टूट भुँयमें गिरै, चितवै वाही ओर ॥

भक्त का प्रेम भगवान् पर ऐसा होना चाहिये जैसा चन्द्रमा पर चकोर का प्रेम होता है। उसका घींच अर्थात् गर्दन टूट कर पृथिवी पर

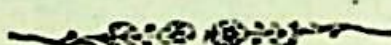
गिर जाता है तो भी वह उस चन्द्रमा की ओर ही देखता रहता है। 'आत्मा वा रे द्रष्टव्यः' अर्थात् अरे मैत्रेयी ? केवल प्रियतम आत्मा ही द्रष्टव्य है। अनात्म विषय पदार्थ नहीं ॥ ४७ ॥



(४८)

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जानु मसान।
ज्यों लुहार की धोंकसी, साँस लेत बिन प्रान ॥

जिसके हृदय में भगवद्विषयक प्रेम का सञ्चार (प्रवेश) नहीं है वह हृदय श्मशान के समान जानना चाहिये। जैसे लुहार की भाथी प्राण के विना ही श्वास लेती है वैसे प्रेम हीन पुरुष प्रेम रूपी प्राण के विना श्वास लेता है। वह जीवित है तो भी मृत समान है ॥ ४८ ॥

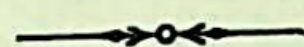


(४९)

पीया चहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
दोय खडग एक म्यान में, देखा सुना न कान ॥

प्रेम रस पीना चाहता है, भक्ति रस का पान करना चाहता है और अभिमान भी रखना चाहता है तो ये दोनों एक साथ नहीं रह सकते हैं। क्योंकि, एक म्यान में दो तलवार न तो आँख से देखी गई है और न कान से सुनी गई। पहले यह बहुत बार कहा गया है कि, भक्ति का अभिमान विरोधी है। ये दोनों एक साथ नहीं रह सकते। भक्ति

भगवदाकार अन्तः करण की वृत्ति को कहते हैं। अन्तः करण में रहती है और अभिमान अहंकार को कहते हैं। यह भी अन्तःकरण की वृत्ति रूप है। अन्तःकरण में रहता है। एवं भक्ति का विरोधी है अत एव ये दोनों एक समय एक अन्तःकरण में नहीं रह सकते हैं। इसीलिये भक्ति रस पान करने वाले को अभिमान को त्याग करना ही चाहिये। मान पान की आशा भी नहीं रखना चाहिये। एक अन्तःकरण एक ही समय में भगवद् आकार और अहंकाराकार नहीं हो सकता है ॥४९॥



(५०)

गोता मारा सिन्धु में, मोती लाये पैठि।
वह क्या मोती पायगा, रहे किनारे बैठि॥

जो समुद्र में गोता (डुबकी) लगाता है उसको मरजीवा कहते हैं यह जब समुद्र से डुबकी लगाता है तब तलस्पर्श करके मोती आदि रत्न लेकर बाहर आता है, और जो किनारे बैठा है। मरने से डरता है, गोता नहीं लगाता है वह क्या मोती कभी पा सकता है ? अर्थात् कभी नहीं। वैसे ही जो पुरुष परमात्मा स्वरूप समुद्र में प्रेम का गोता लगाता है वह मुक्ति रूपी मोती प्राप्त करता है और जो तटस्थ रहता है प्रेम भक्ति से उदासीन रहता है वह क्या कभी मुक्ति प्राप्त कर सकता है ? अर्थात् कभी नहीं। 'जिन जिन मन आलस किया, जन्म जन्म पछताय' ॥ ५० ॥



(५१)

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाँहि ।
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाँहि ॥

जब मैं था जब मुझमें किसी प्रकार का अभिमान था तब हरि नहीं थे। अब हरि है, मैं नहीं हूँ, अभिमान नहीं है। क्योंकि, प्रेम की गली अत्यन्त संकीर्ण है। उसमें दो समा नहीं सकते। जब तक यह जीव 'मैं कुछ हूँ' ऐसा समझता है तब तक उसके हृदय में परमात्मा का वास नहीं होता है। और जब यह अपनेपन को खो देता है तब इसके अन्तःकरण में हरि का वास होता है अर्थात् हरि की स्मृति होती है। हरि की स्मृति भक्ति है और 'मैं हूं' यह अभिमान है। अभिमान भक्ति का विरोधी है। अतः जब तक अभिमान है तब तक भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है और जब भक्ति नहीं तब मुक्ति भी नहीं। क्योंकि, भक्ति मुक्ति का साधन है। साधन विना साध्य की सिद्धि नहीं हो सकती है। अतः प्रयत्नपूर्वक अभिमान का त्याग करना चाहिये ॥ ५१ ॥



(५२)

उठा बबंडर प्रेम का, तिनका उड़ा अकास ।
तिनका तिन का सें मिला, तिनका तिनका पास ॥

जैसे बबंडर अर्थात् चक्राकार पवन-वर्तुल उठता है। उसके साथ तिनका अर्थात् शुष्कतृण उड़कर आकास में जाता है और एक तिनका दूसरे तिनके से मिल जाता है वैसे ही भक्त हृदय में भगवत्प्रेम रूप बबंडर उठा अर्थात् प्रेम प्रगट हुआ। उसके साथ भक्त के आत्मारूप

तिनका उड़कर सत्यपुरुष परमात्मा रूप ब्रह्माकाश में गया और तिनका आत्मा अपने परमात्मा रूप तिनका के पास में जा कर तिनका तिनका से अर्थात् आत्मा परमात्मा से मिल गया। भगवदाकार चित्तवृत्तिरूप समाधि काल में एवं मोक्ष काल में आत्मा परमात्मारूप अर्थात् भक्त भगवान के पास जाकर भगवत्स्वरूप हो जाता है। सुरति द्वारा भक्त भगवान् से सदा मिलते रहना चाहिये। भगवान् से भक्त का वियोग क्षणमात्र भी न होना चाहिये ऐसा प्रयत्न सर्वदा करते रहना चाहिये ।५२।

(५३)

अधिक सनेही माछरी, दूजा अलप सनेह।
जब ही जलते बीछुरै, तब ही त्यागे देह ॥

मछली का स्नेह सब से अधिक है और अन्य का स्नेह उसकी अपेक्षा बहुत अल्प है। क्योंकि, वह जिस समय जल से अलग होती है उसी समय शरीर त्याग देती है। उत्तम प्रेमलक्षणा भक्ति वह है जिसकी प्राप्ति होनेपर भगवद्विरह वेदना असह्य होने से भक्त उसी क्षण देह त्याग देता है और परमात्मा के स्वरूप में लीन हो जाता है ॥ ५३ ॥

(५४)

नाम रसायन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवन दुलभ है, माँगै सीस कलाल ॥

जैसे मद्यप मद्यपान करता है तो उसको पीते समय अन्य रसों से अधिक स्वाद प्रतीत होता है वैसे ही सर्व रसों का आश्रय नाम-जप है।

उसमें प्रेम ही रस है। उसको पीते समय अन्य रसों से अधिक स्वाद आनन्द प्रतीत होता है। परन्तु सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, उसको पीना दुर्लभ है। क्योंकि, गुरु या परमेश्वर रूपी कलाल इसके वदले में शिर मांगते हैं। इसी लिये वह दुर्लभ है ॥ ५४ ॥



(५५)

यह रस महँगा सो पिये, छाड़ि जीव की बान ।
माथा साटे जो मिलै, तो भी सस्ता जान ॥

इस वहुमूल्य प्रेमलक्षणा भक्तिरस को वही पी सकेगा जो आत्मा में जीवभाव को त्यागकर शिर के साटे (बदले) मिलने पर भी इसे सस्ता ही समझेगा। शिर का कोई मूल्य हो सकता है पर भक्ति का कोई मूल्य नहीं। अमूल्य है ॥ ५५ ॥



(५६)

प्रेम पंथ में पग धरै, देत न सीस डराय ।
सपने मोंह व्यापे नहीं, ताको जन्म नसाय ॥

शिष्य को चाहिये कि, प्रेम के मार्ग में पाँव धरे और गुरु के चरण कमलों में शिर देने में भय न माने तो उसको आत्मज्ञान प्राप्त होने से स्वप्न में भी स्त्री पुत्र आदि विषय पदार्थों में मोह व्याप्त नहीं होगा और उसका जन्म-मरण दुःख नष्ट हो जायगा। ज्ञान प्राप्त होने से जन्म

के हेतु अज्ञान और उसके कार्य कर्म के नाश होनेपर जन्म का अभाव हो जाता है। एवं जन्माभाव होने से मरणाभाव भी हो जाता है। इस प्रकार जन्म मरण रूप संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है। क्योंकि, जन्म न होने से आगे के जरामरणादि भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ५६ ॥



(५७)

राम नाम जिन चीन्हिया, झीना पंजर तासु ।
नैन न आवे नीन्दरी, अंग न जामे मांसु ॥

साधक की अवस्था का वर्णन—जो साधक राम नाम को कल्याण का साधन पहचानते हैं और उसके जप आदि में पूर्ण परिश्रम करते हैं उनके शरीर साधनाश्रम से कृश हो जाता है। परमात्मा की प्राप्ति की चिन्ता से उनके नेत्रों में निद्रा नहीं आती है एवं साधना के आगे आहारादि की उपेक्षा होने से उनके शरीर के अंग प्रत्यंग में माँस भी नहीं जमता है।

नोट—आज काल के वहुत से नामधारी सन्त हट्टा कट्टा स्थूलकाय देखे जाते हैं। इस कथन से समझना चाहिये कि, वे भजन चिन्तन नहीं करते हैं। सुख के साथ माल मलीदा खाते और सोते रहते हैं ।५७।



(५८)

जो जन भींजै राम रस, विगसित कबहुँ न रूख।
अनुभौ भाव न दरसई, ताको सुख न दुःख ॥

पहुँचे हुए ज्ञानी भक्तों की अवस्था का वर्णन–जो ज्ञानी भक्तजन रामभक्तिरस में भीज गये हैं अर्थात् भगवद्-अभिन्न आत्मतत्त्व को प्राप्तकर चुके हैं उनका मुख सदा विकसित ही रहता है। वे सदा प्रसन्न रहते हैं। उनके मुख पर कभी भी रूखापन = अप्रसन्नता नहीं रहती है। अथवा सुन्दर स्त्री आदि विषयों को देखकर उनका मुख कभी विकसित नहीं होता है। किन्तु उदासीन ही रहता है। उनके अनुभव अर्थात् दृष्टि से अनात्म पदार्थ सत्यरूप दिखाई नहीं देते हैं। किन्तु उनकी दृष्टि में सभी पदार्थ मिथ्या ही प्रतीत होते हैं। ऐसे जीवन्मुक्त ज्ञानी भक्त को अनुकूल तथा प्रतिकूल सभी अनात्म पदार्थ से न सुख होता है और न दुःख ॥ ५८ ॥

---

(५९)

विरह की ओदी लाकड़ी, सपचे औ धुँधुवाय।
दुःखते तबहीं बाँचि हो, जब सकलो जरिजाय ॥

जैसे गीली लकड़ी कभी जल उठती है और कभी धुँधवाती है। धुँवां देती है एवं उसमें से पानी निकलता है। क्योंकि वह आर्द्र तथा अधजली होती है। वैसे ही भगवद्विरहाग्नि से जली हुई भक्त के हृदय रूप लकड़ी कभी जल उठती है और कभी गाती है एवं कभी रोती है। उनकी आँखों से अश्रुपात होता है। दुःखी होकर अर्थात् भगवद्विरह

वियोग से व्याकुल होकर जलती रहती है। क्योंकि, वह गीली होने से अर्थात् ज्ञान प्राप्त न होने से अधजली है। सद्गुरु कहते हैं कि–हे लकड़ी! तुम दुःख से तभी बच सकती हो जब सबके सब जल जाय। भाव यह है कि, भगवद्विरह अग्नि से हृदय अर्धदग्ध होता है और ज्ञानाग्नि से वासना सहित संपूर्ण दग्ध हो जाता है। ज्ञान होने पर आत्मा सर्वदुःख से छूट जाता है॥ ५९॥



(६०)

विरहबान जेहि लागिया, औषध लगे न ताहि।
सुसुकि-सुसुकि मरि-मरि जिवे, उठे कराहि-कराहि॥

विरही भक्त की दशा—जिसके हृदय में भगवद् विरह का बाण लग गया है वह लोगों की दृष्टि में रोगी प्रतीत होता है। उसके सम्बन्धी लोग रोग की निवृत्ति के लिये औषधि करते हैं। परन्तु उसको औषधि नहीं लग सकती है। किन्तु वह सिसक-सिसक कर, मर-मर कर और मूर्च्छित हो होकर कराहता कराहता उठता है। मूर्च्छित अवस्था से सचेत होता है॥ ६०॥



(६१)

विरह भुवंगम तन डँसो, मन्त्र न मानै कोय।
राम वियोगी ना जिये, जिये तो बाउर होय॥

बाह्य सर्प जब दंश करता है तब उसका विष मन्त्र औषधादि से उतर जाता है। परन्तु यहां तो भगवान् के वियोग रूप सर्प ने शरीर

तथा हृदय में दंश किया है। यह किसी मन्त्र औषधादि को नहीं मानता है। यह विष किसी उपाय से उतरता नहीं है। अर्थात् यहां कोई बाह्य उपचार काम में नहीं आता है। भगवद् विरही भक्तजन जाता नहीं है। विरह वेदना की पराकाष्ठा प्राप्त होने पर उसी क्षण देह-त्यागकर मुक्त हो जाता है। भगवत्स्वरूप में विलीन हो जाता है। यदि कदाचित् प्रारब्धवश जीवित रहता है तो संसार की दृष्टि में बाउर अर्थात् पागल के समान मालूम पड़ता है॥ ६१॥

---

(६२)

राम वियोगी विकल तन, इन दुखवो मति कोय।
छूवत ही मरि जाँयगे, तालावेली होय॥

जो भक्त रामवियोगी होते हैं उनका शरीर तालावेली अर्थात् विरह व्यथा में स्वयं व्याकुल रहता है। इन्हें कोई सताओ नहीं। नहीं तो ये छूते ही मर जायंगे। क्योंकि, ये प्रथम से ही आकुल रहते हैं। भाव यह है कि, भगवद् भक्त को सताना नहीं चाहिये। क्योंकि, उनकी विरह-व्यथा बहुत असह्य होती है। दुखिया को दुःख देने से पाप लगता है। जिसका फल दुःख होता है॥ ६२॥

---

(६३)

विरह भुवँगम पैठिके, कीन्ह करे जे घाव।
साधू अंग न मोर ही, जौं भावे तौं खाव॥

भगवद्विरहरूपी सर्प ने हृदय में प्रवेश कर कलेजा में घाव कर दिया है। फिर भी भगवद्भक्त सन्तजन अपने शरीर के अवयवों को मोड़ते

नहीं अर्थात् अपनी साधना से डिगते नहीं। उक्त सर्प को जैसा भावे वैसा भले खा जावे अर्थात् वह विरह भुजंग चाहे जितना दुःख देवे परन्तु अपनी साधना को छोड़ते नहीं हैं ॥ ६३ ॥

---

(६४)

अरब खरब लों दरब है, उदय अस्त लों राज।
भक्ति महातम ना तुले, ई सभ कौने काज॥

अर्ब से खर्व पर्यन्त द्रव्य है, जिनका द्रव्य अर्ब और खर्ब की संख्या तक पहुँच गया है और उदय से अस्त पर्यन्त राज्य है, जिनके राज्य की सीमा उदयाचल से अस्ताचल तक पहुँच गई है। फिर भी वे सब भक्ति की महिमा के साथ नहीं तुल सकते हैं। मुक्ति देने वाले नहीं हो सकते हैं। तो फिर कहिये कि, ये सब किस काम में आने वाले हैं ?। उक्त द्रव्य और राज्यादि बन्धन के हेतु हैं और भक्ति मोक्ष का हेतु है। अत एव ये सब मिल कर भी भक्ति की तुलना में नहीं आ सकते हैं। इसलिये मुमुक्षु को चाहिये कि, मुक्ति के हेतु भक्ति का अनुष्ठान तत्पर होकर करना चाहिये ॥ ६४ ॥

---

(६५)

रही एक की भई अनेक की, वेश्या बहुत भतारी।
कहँहिं कबीर काके संग जरि हैं, बहु पुरुषन की नारी॥

एकेश्वर भक्ति का उपदेश—प्रथम एक पुरुष की स्त्री थी और आगे चल कर अनेक पुरुषों की प्रेमिका हो गई। ऐसी स्थिति में बहुत पति-

वाली स्त्री वेश्या कही जाती है। सद्गुरु श्रीकबीर स्वामी कहते हैं कि वह बहुत पुरुषों की स्त्री होने से किसके साथ जलेगी ?। अर्थात् किसी के साथ नहीं। क्योंकि, एक पतिव्रता स्त्री पति के साथ जलकर सती होती है। इसके तो पति बहुत हैं और स्वयं अकेली है। किसके किसके साथ जलेगी ?। भाव यह है कि, एक ईश्वर की भक्ति को छोड़कर अनेक देव देवियों की भक्ति करने वाले किसके लोक को जायंगे ? अर्थात् किसी के नहीं। अतः एक ईश्वर की ही भक्ति करनी चाहिये। जिससे ईश्वर भावापत्ति मुक्ति प्राप्त हो।

नोट—इससे सद्गुरु कबीर सती प्रथा को धर्म तथा मोक्ष का हेतु मानते थे यह नहीं समझना चाहिये। किन्तु शास्त्र तथा लोक प्रसिद्धि को लेकर उदाहरण दिया गया है। सद्गुरु ने तो पतिलोक प्राप्ति के लिये नहीं किन्तु ईश्वर प्राप्ति के लिये भक्ति का उपदेश स्त्री तथा पुरुष सबको दिया है॥ ६५॥

---

(६६)

भक्ति पियारी राम की, जैसी पियारी आग।
सारा पट्टन जरि मुवा, बहुरि ले आवे माँग॥

भगवान् की भक्ति भक्तों को ऐसी प्रिय होती है कि, जैसी सबको आग प्रिय होती है। देखिये, आग लगने पर सारा नगर जल जाता है फिर भी लोग भोजन बनाने के लिये दूसरों के यहाँ से अपने घर में मांग कर ले आते हैं। भाव यह है कि, भक्तों को भक्ति अतिप्रिय होने से संकट के समय भी उसको छोड़ते नहीं॥ ६६॥

---

(६७)

नारी कहावे पीव की, रहै अवर संग सोय।
जार मीत हृदया बसे, खसम खुसी क्यों होय॥

जो स्त्री अपने पति की स्त्री तो कहलाती है किन्तु दूसरे पुरुष के साथ सो रहती है। पर पुरुष के साथ रमण करती है। इस प्रकार उसके हृदय में जार रूप मित्र अर्थात् उपपति बसता है। भला कहिये तो सही कि, उसका पति उस पर कैसे प्रसन्न हो सकता है? भाव यह है कि, ईश्वर के भक्त होकर अन्य देवी देवों की भक्ति वा विषयों पर प्रेम करे तो उन पर ईश्वर कैसे प्रसन्न हो सकते हैं?। एक ईश्वर की भक्ति ही अनन्य भक्ति कहलाती है और अनन्य भक्ति ज्ञान द्वारा मुक्ति का साधन है॥ ६७॥



(६८)

पूरा साहब सेइये, सब विधि पूरा होय।
ओछे (से) नेह लगाय के, मूलहुँ आवै खोय॥

पूर्ण ब्रह्म सत्य पुरुष परमात्मा की सेवा भक्ति करनी चाहिये,— जिससे सेवक भक्त भी सर्व प्रकार से पूर्ण हो जाय और न्यून पदवी वाले मन. विषय वा देवीदेव आदि से स्नेह लगाकर अर्थात् परमात्मा से अन्य विषयों से प्रेम करके मूल भी [मनुष्य शरीर रूप मूल पूंजी को भी] खो बैठता है। इस व्यापार में लाभ प्राप्त करना तो दूर रहा प्रत्युत मूल भी गवाकर आना पड़ता है॥ ६८॥



(६९)

जाहू वैद घर आपने, बात न पूछै कोय।
जिन यह भार लदाइया, निरवाहेगा सोय ॥

भगवान् विरह व्यथा से पीड़ित भक्त को रोगी समझकर वैद्य जब चिकित्सा करने आता है तब वह कहता है कि, हे वैद्य जी ! आप अपने घर जाइये। यहां आप से बात पूछने वाला कोई नहीं है। यहां आप का भाव कोई पूछे ऐसा नहीं है। आप की औषधि से यह रोग दूर हो ऐसा नहीं है। जिसने यह विरह व्यथा रूप भार लादा है वही परमात्मा मिलकर निर्वाह करेगा। विरह व्यथारूप रोग को दूर करेगा। मेरे मस्तक पर जिसने इस बोझ को रखा है वही प्रभु इसको उठावेगा। उठाने की शक्ति देगा। जिसके वियोग से जो आता है उसके संयोग से ही यह जाता है। यह नियम है। भगवद् वियोग से दुःख आता है तो वह भगवद् संयोग से ही जाता है। भगवद्विरहजन्य दुःख निवृत्ति में अन्य औषध्यादि उपाय नहीं।

नोट—पाठक वृन्द ! 'रामनाम जिन चीन्हीया' यहाँ से लेकर 'जाहु वैद धर आपने' यहाँ तक तेरह साखियाँ बीजक की हैं। जिनमें विरह वेदना का वर्णन है। परमात्मा और जीवात्मा के वियोगजन्य दुःख को विरह वेदना कहते हैं। कतिपय नवीन कबीरपन्थी लोग यह कहते हैं कि, एक मात्र बीजक ग्रन्थ ही कबीरकृत ग्रन्थ है और बीजक में ईश्वर की मान्यता नहीं। इत्यादि। सो समीचीन नहीं। क्योंकि, परमात्मा यदि नहीं है तो विरह किसका ?। और विरह वर्णन तो है। अतः बीजक में ईश्वर की मान्यता है यह स्पष्ट प्रतीत होता है। यदि यह कहें कि, ये सब साखियाँ माया मुख हैं अर्थात् माया जीव को भ्रम में डालने के लिये ईश्वर और उसके वियोग का वर्णन करती है। तो यह कहना ठीक नहीं क्योंकि, 'बुढियां' तथा 'ननदी' आदि शब्द के समान मायाबोधक शब्द

इनमें नहीं है। अतः ये मायामुख नहीं किन्तु गुरुमुख या विरहीमुख हैं। साथ ही जीवको ईश्वर तरफ ले जाने में माया का क्या प्रयोजन है? यदि यह कहे कि, विषय तरफ ले जाने में क्या प्रयोजन है? तो यह कहना उचित नहीं क्योंकि, विषय तरफ अर्थात् माया तरफ जीव को ले जाने में माया कोई प्रयोजन नहीं प्रत्युत जीव माया से छूट जाता है। माया जीव को अपनी तरफ रखना चाहती है। मुक्त होने देना नहीं चाहती है। अतः सद्गुरु कबीरकृत बीजक ग्रन्थ में ईश्वर, उसकी भक्ति और उसकी विरह-वेदना आदि की मान्यता है यह स्पष्ट प्रतीत होता है। ईश्वर और तत्स्वरूप गुरु की भक्ति बिना जीव कभी भी मुक्त नहीं हो सकता है यह निश्चित है ॥ ६९ ॥

(७०)

रात्यूं रूनी बिरहिनी, ज्यूँ बच्चों को कूंज।
कबीर अंतर में प्रगटयो, विरह अग्नि को पुंज॥

जैसे क्रोञ्च पक्षिणी रात्रि में बच्चों के वियोग से अर्थात् विरह से रोती है वैसी ही विरहिणी अज्ञान रूपी रात्रि में भगवद्वियोग से (विरह से) रोती है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि क्योंकि, उसके हृदय में भगवद् विरह रूप अग्नि के पुञ्ज प्रगट हो गया है। भगवान् श्रीकृष्ण के विरह में गोपियों की, भगवान् श्रीराम की अप्राप्ति में शबरी (भिलनी) की और सद्गुरु श्रीकबीर के विरह में धर्मदासजी की इसी दशा का वर्णन है। कुंज का अर्थ कोञ्च पक्षी है। उसमें यह नियम है कि, रात्रि में उसका बच्चों के साथ वियोग हो जाता है। रात्रि को अन्धा हो जाने से बच्चों से यह मिल नहीं सकता है ॥ ७० ॥

(७१)

अमर कूंज कुरला हया, गरजि भरा सब ताल।

जिनते साहिब बीछुरा, तिन का कौन हवाल ॥

कूज क्रोञ्च पक्षी ने, अमर-आकाश में, कुरलाइया = कोलाहल किया, क्रोञ्च नामक पक्षी गण जल के बिना आकाश में चिल्लाने लगते हैं तब मेघ गरज कर वर्षा करके सब तालाव आदि जलाशयों को भर देता हैं। वह सुखी हो जाता है। परन्तु जिनसे परमात्मा बिछुरे हैं उनकी क्या दशा ? वे कब सुखी होंगे ?। भाव यह है कि, विरही भक्त अधीर हो कर कहता है कि, क्रोञ्च पक्षी मेघ के विरह में चिल्लाता है, रोता है तो मेघ बरस कर उसको मिल कर उसे सुखी कर देता है। परन्तु भक्त भगवान् के विरह में रोता है फिर भी वे मिलकर सुखी नहीं करते हैं तो इसकी क्या दशा होगी ?। इस साखी में मेंक्त की विह्वल दशा का वर्णन है ॥ ७१ ॥

---

(७२)

चकवी बिछुरी रैन की, आय मिली परभात।

जो जन बिछुरे नाम सों, दिवस मिले नहि रात ॥

चकवी चक्रवाकी को कहते हैं उसमें यह नियम है कि, रात्रि में उसका पति चकवा से वियोग हो जाता है। ये दोनां रात में एक साथ नहीं रह पाते हैं। रात्रि को पति से बिछुड़ी हुई प्रातःकाल आकर उस से मिल जाती है। परन्तु जो जन नाम अथवा नामी परमात्मा बिछुड़ जाता है-परमात्मा का नाम नहीं लेता है वह न तो दिवस में और न रात्रि में ही परमात्मा से मिल सकता है। भगवत्प्राप्ति के लिये नाम का जप करते रहना चाहिये ॥ ७२ ॥

(७३)

वासर सुख नहिं रैन सुख, ना सुख सपना माँहि ।
जो नर बिछुरे राम सों, तिनको धूप न छाँहि ॥

उसको न दिन में सुख है न रात्रि में, यहां तक कि, उसको स्वप्न में भी सुख प्राप्त नहीं होता है क्योंकि, जो मनुष्य राम से बिछुड़े हैं उसे न धूप अच्छी लगती है और न छाया ही। वह सदा बैचेन ही रहता है। अथवा उसको सर्वत्र धूप अर्थात् त्रिविध ताप ही है। कहीं छाया नहीं है। अतः रामभजन सदा करते रहना चाहिये॥ ७३ ॥

(७४)

बहुत दिनन की जोहती, बाट तुम्हारी राम ।
जिय तरसै तुम मिलन को, मन नाँहि विसराम ॥

सखी भक्ति—जीव रूपी सखी ईश्वर से कहती है कि, हे राम ! बहुत दिनों से तुम्हारी बाट देख रही हूँ। जीव तुम से मिलने के लिये तरसता है और मन में विश्राम (शान्ति) नहीं है। किन्तु बहुत बेचैनी है। इस साखी में परमात्मा से मिलने के लिये प्रार्थना है॥ ७४ ॥

(७५)

बिरहिनि ऊभी पंथ सिर, पंथी पूछै धाम ।
एक शब्द कहो पीव का, कबहि मिलेंगे आय॥

सखी भक्ति – विह्वलता का वर्णन—विरहिनी प्रेम-पन्थ के स्थान पर खड़ी रह कर पथिकों से दौड़ कर पूछती है कि, हे पथिक ! प्रियतम का एक शब्द मुझे कहो कि, ये कब आ कर मिलेंगे ? ॥ ७५ ॥

(७६)

विरहिनि देय सँदेसरा, सुनो हमारे पीव।
जल बिन मछली क्यों जिये, पानी में का जीव ॥

विरहिनी पथिक द्वारा सन्देश भेजती है कि, हे हमारे प्रियतम! सुनिये—पानी में रहने वाली मछली पानी विना कैसे जी सकती है? वैसे ही तुम्हारे बिना मेरी स्थिति कैसी होगी। इसको विचारिये। शीघ्र दर्शन दीजिये। जैसे जल विना मीन का जीवन असम्भव है वैसे ही भगवान् विना भक्त का जीवन भी असम्भव है ॥ ७६ ॥

(७७)

विरहिन देय सँदेसरा, सुनहु राम सुजान।
वेगि मिलो तुम आय के, नहि तो तजिहौं प्रान ॥

विरहिनी सन्देश देती है कि, हे सुजान राम! सुनो, तुम आकर शीघ्र मिलो। नहीं तो तुम्हारे बिना प्राण त्याग दूंगी। यह विरही भक्त की अन्तिम दशा का वर्णन है ॥ ७७ ॥

(७८)

विरहिनि उठि उठि भुंइ परे, दरसन कारन राम।
मूये पीछे देहुगे, सो दरसन किहि काम ॥

हे राम! तुम्हारे दर्शन के लिये विरहिनी उठ-उठ कर पृथ्वी पर गिरती है। मरने के पश्चात जो दर्शन दोगे तो वह किस काम में आयेगा? ॥ ७८ ॥

(७९)

विरहिनि उठि उठि भुंइ परे, दरसन कारन राम।
लोहा माँटी मिल गया,तब पारस किहि काम ॥

विरहिनी राम के दर्शन के लिये उठ-उठ कर पृथ्वी पर गिरती है। लोहा जब मिट्टी में मिल गया तब पारसमणि का मिलना किस काम का ?। अर्थात् जैसे लोहा के मिट्टी में मिल जाने के बाद पारस का मिलना व्यर्थ है (वह सुवर्ण नहीं बना सकता है) वैसे ही शरीर छूट जाने के बाद तुम्हारा मिलना भी व्यर्थ है। अतःअतीव शीघ्र दर्शन देकर इसी वर्तमान शरीर को कृतार्थ करो ॥ ७९ ॥

---

(८०)

विरह तेज तन में तपे, अंग सबै अकुलाय।
घर सूना जिव पीवमें, मौत ढूढ़ि फिरि जाय॥

विरहानल=विरहाग्नि का तेज शरीर में तप रहा है। जिस से शरीर सब अंग प्रत्यंग व्याकुल हो रहे हैं। जीव प्रियतम परमात्मा में है अतः जीव विना शरीर सूना है। मौत अर्थात् यमराज जीव को ले जाने के लिये आते हैं। शरीर में ढूंढ कर (जीव के न मिलने पर) पीछे फीर चले जाते हैं। जीव शरीर में हो तो उनको मिले न ? जीव तो प्रभु के पास है ॥ ८० ॥

---

(८१)

कबीर हसना दूर कर, रोने से कर चीत।
बिन रोवै क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे विरही मुमुक्षुओ ! हसना दूर करके रोने में चित्त लगाओ। अर्थात् विषय प्राप्ति से सुख मान कर जो हसते हो सो छोड़ दो और परमात्मा के वियोग से दुःख मानकर रोओ। क्योंकि, प्रेम के प्यारा मित्र—अत्यन्त स्नेही प्रियतम परमात्मा को रोये विना कैसे पाओगे ? जो जिसके विना व्याकुल है वही उसको प्राप्तकर सकता है। जिसके विना जिसको कुछ पड़ी नहीं है वह उसको कैसे प्राप्तकर सकता है ? ॥ ८१ ॥

---

(८२)

कबीर वैद बुलाइया, जो भावे सो लेय।
जिहि जिहि औषध हरि मिले, सो सो औषध देय॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं—विरही भक्त ने विरह वेदना रूप रोग को दूर करने के लिये वैद्य को बुलाया और कहा कि तुमको दवा का मूल्य या विजिट फी जो चाहिये सो लेलो परन्तु जिन-जिन औषधियों से हरि परमात्मा मिले वही वहीं औषधियाँ मुझे दो। भाव यह है कि, यह रोग भगवान् के वियोग से हुआ है। अतः भगवान् के मिलने से जायगा। इसके लिये अन्य औषधि काम में नहीं आ सकती है॥ ८२॥

---

(८३)

कबीर बैद बुलाइया, पकरि के देखी बाँहि ।
बैद न वेदन जानसी, करक कलेजे माँहि ॥

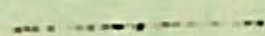
सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, विरही के दुःख को दूर करने के लिये वैद्य बुलाया गया । वह आया भी और उसने विरही रूप दर्दी की बाँह पकड़ कर देखी, नाड़ी देखी । परन्तु वह रोग का निदान न जान सका । क्योंकि, उसके हृदय में दर्द स्थूल था, शरीर में नहीं । तब विरही वैद्य से कहता है— ॥ ८३ ॥



(८४)

जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय ।
जिन या वेदन निरमई, भला करेगा सोय ॥

हे वैद्य जी ! आप अपने घर जाइये । यहाँ आप का किया कुछ होने वाला नहीं है । इस वेदना का जिसने निर्माण किया है, वही इसको दूर करेगा । परमेश्वर के वियोग से यह वेदना उत्पन्न हुई है तो उसके संयोग से ही यह दूर होने वाली है । क्योंकि, जो जिसके वियोग से उत्पन्न होता है वह संयोग से ही दूर होता है यह नियम है । जब तक भगवत्प्राप्ति न हो तब तक विरह वेदना की निवृत्ति न हो सकती है ॥ ८४ ॥



(८५)

अँखियन तो झाँई परी, पंथ निहार निहार ।
जिभ्या तो छाला पड्या, नाम पुकार पुकार ॥

विरही भक्त भगवान् से कहता है कि हे भगवन् ! आप के आने के मार्ग को देखते देखते आँखों में झाँई पड़ गई। और नाम ले ले कर पुकारते पुकारते जिह्वा में छाला पड़ गया है । फिर भी अभी तक आप आये नहीं, क्या कारण है ? ॥ ८५ ॥

(८६)

नैनन तो झड़ि लाइया, रहट बहे निसुवास ।
पपिहा ज्यों पिव पिव रटे, पिया मिलन की आस ॥

निसुवासर = रात्रि दिन, रहट वहे = रहट में जैसे जल बहता है वैसा ही नैनन तो = नेत्रों से, झड़ि लाइया = अश्रुपात की झड़ी लग गई है। ज्यों = जैसे, पपिहा = पपिहा नामक पक्षी, स्वाती नक्षत्र के जल की आशा से, पिव पिव पिया पिया, रटे = रटन करता है वैसे ही में, पिया मिलन की आस = प्रियतम परमात्मा आप से मिलने की आशा से नाम रटन कर रहा हूँ॥ ८६ ॥

(८७)

गलौं तुम्हारे नाम पर, ज्यों पानी में लौन।
ऐसा विरहा मे ले के, नित दुख पावै कौन॥

जैसे पानी में लवण अर्थात् नमक गल कर मिल जाता है, वैसे ही मैं भी तुम्हारे नाम पर गल कर मिल जाऊंगा। क्योंकि, ऐसा विरह से व्याकुल होकर रोज रोज कौन दुःख पाता रहे ?॥ ८७॥



(८८)

मांस गया पिंजर रह्या, ताकन लागे काग।
साहिब अजहुँ न आइया, मंद हमारे भाग॥

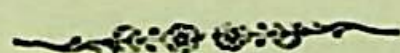
हे प्रियतम परमात्मन्! आपके मिलने की चिन्ता से शरीर में जो मांस था सो चला गया। अस्थि-पञ्जर रह गया है। उसको भी काग खाने के लिये ताक रहे हैं। अभी भी साहेब परमात्मा नहीं आये। इससे प्रतीत होता है कि, हमारा भाग्य ही मन्द है॥ ८८॥



(८९)

पिय बिन जिय तरसत रहै, पल पल विरह सताय।
रैन दिवस मोहि कल नहि, सिसकि सिसकि दम जाय॥

प्रियतम परमात्मा के विना उसको मिलने के लिये जीव तरसता है। पल पल विरहानल सताता रहता है। रात्रि दिन मुझे चैन नहीं है। सिसक सिसक कर प्राण निकलता है। हे ईश्वर! अब इससे अधिक कसोटी क्या होगी ?॥ ८९॥



(९०)

पहिले अगनी विरह को, पीछे प्रेम पियास ।
कहैं कबीर तब जानिये, राम मिलन की आस ॥

मुमुक्षुता का चिह्न—जिसको आगे विरह की अग्नि लगी हो और पीछे भगवान् को मिलने के लिये प्रेम रूपी प्यास लगी हो, सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, तब जानना चाहिये कि, इसको राम से मिलने की आशा है। भगवद् वियोग बन्धन का और भगवत्प्राप्ति मोक्ष का हेतु है प्रेम भक्ति से भगवान् मिलते हैं। भगवान् में अनन्य प्रेम हो उसको वियोग असह्य हो तब जानना चाहिये कि, इसमें मुमुक्षता प्राप्त हुई है ॥ ९० ॥



(९१)

विरहीनी मर जायगी, आतुर हाल शरीर ।
वेगी दर्शन दीजिये, जीवै दास कबीर ॥

विरहिनी मर जायगी, क्योंकि, इस समय इसका शरीर आतुर अर्थात् विरह व्यथा से पीड़ित है। शीघ्र दर्शन दीजिये। जिससे दास कबीर जीवित रहे। अथवा कबीर कहते हैं कि, यह विरही दास जीवित रहे। अर्थात् विरह वेदना रूप दुःख से मुक्त हो जाय ॥ ९१ ॥



(९२)

अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वाकी डार ।
तिरदेवा साखा भये, पात भया संसार ॥

अक्षय पुरुष = सत्य पुरुष परमात्मा = शुद्ध ब्रह्म एक वृक्ष है। निरञ्जन माया शवलित कार्यब्रह्म उसकी डाली है। पुराणप्रतिपादित त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु महेश) उसकी शाखा रूप हुए और समस्त संसार उसके पत्ते हुए। यहाँ अक्षय पुरुष आदि का पेड़ आदि रूप निरूपण होने से रूपक है ॥ ९२ ॥

---

(९३)

कबीर भरम न भाजिया, बहुविधि धरिया भेख ।
साँई के परचै विना, अन्तर रह गइ रेख ॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, नाना प्रकार के भेष धारण करने पर भी साँई = सत्य पुरुष परमात्मा के साक्षात्कारात्मक जीव ब्रह्म के अभेद ज्ञान विना भ्रम की निवृत्ति नहीं हुई। अन्तर में अविद्या की रेखा रह ही गई। जो जन्मादि संसार का हेतु है। अतः मोक्ष के लिये भक्ति आदि साधन द्वारा ईश्वरतत्त्व-साक्षात्कार प्राप्त करना चाहिये ॥ ९३ ॥

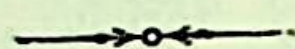
---

(९४)

साहब साहब सब कहें, मोहि अंदेसा और ।
साहब से परचै नहीं, बैठेंगे केहि ठौर ॥

संसार में साहब अर्थात् ईश्वर का नाम सब कोई लेते हैं। उनको देखकर मुझे एक प्रकार का विचार उत्पन्न होता है कि, ईश्वर से परिचय

तो इनको है नहीं अर्थात् ईश्वर का ज्ञान तो इनको है नहीं तो ये लोग किस स्थान पर जाकर बैठेंगे ? ईश्वर के ज्ञान के बिना मुक्ति पद इनको कैसे प्राप्त होगा ?। अतः मुमुक्षु को चाहिये कि, गुरु के पास जाकर ईश्वर का परिचय (ज्ञान) प्राप्त करें ॥ ९४ ॥



(९५)

सब घट मेरे साँइयाँ, सूनी सेज न कोय ।
बलिहारी उस सुघट की, जा घट परगट होय ॥

मेरे साँइयाँ = मेरे स्वामी परमेश्वर सबके घट में विराजमान है। सबके हृदय में अन्तर्य्यामी रूप से स्थित है। कोई भी हृदय रूपी शय्या शून्य अर्थात् उनके विना नहीं है। तिलमात्र ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहां वह न हो। परन्तु बलिहारी उस शुभ घट की है जहां वह प्रगट होता है। निराकार से साकार होकर भक्तों को दर्शन देता है। ईश्वर अनन्त है। अनन्त उसके रूप हैं। वह निर्गुण भी है और सगुण भी ॥ ९५ ॥



(९६)

साहेब तेरी साहेबी, सब घट रही समाय ।
जौं मेहदी के पात में, लाली लखी न जाय ॥

साहब = हे परमेश्वर ! तुम्हारी साहेबी = सत्ता सब घटों में समा रही है। परन्तु जैसे मेहदी के पत्र में लालिमा है पर दिखाई नहीं देती है वैसे ही यह है पर दिखाई नहीं देती है। जब उसको शिला रख कर

पीसा जाय और हाथ में लगा कर कुछ काल रहने दिया जाय तब दिखाई देती है। वैसे ही जब कष्टसाध्य साधन किया जाय तब वह दिखाई देती है। अनुभव में आती है॥ ९६॥

(९७)

साहेब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय।
दूजा साहेब जो कहूँ, साहेब खरा रिसाय॥

हिंदू और मुसलमान ईश्वर को भिन्न भिन्न मानते हैं उनके प्रति कहते हैं—मेरा परमेश्वर एक ही है। उसको दो नहीं कहा जा सकता है। यदि मैं उसको दो कहूँ तो वह मेरे पर रूठ जायगा कि, मैं एक हूं और मुझे दो कहता है मजहब और भाषा के भेद से उसका नाम जुदा जुदा है। वह एक ही है। जुदा मान कर जो आपस में लड़ते हैं उस पर वह नाराज होता है॥ ९७॥

(९८)

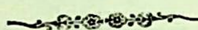
जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप वास तें पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप॥

जिसके मुख तथा मस्तक आदि कोई आकार नहीं है और जो रूपवान् तथा कुरूपवान् भी नहीं है एवं जो पुष्प के वास से भी पतला अर्थात् सूक्ष्म है वह उपमा रहित ईश्वरतत्त्व ऐसा है॥ ९८॥

(९९)

देहीं माहिं विदेह है, साहेब सुरति सरूप।
अनँत लोक में रमिरहा, जाके रंग न रूप॥

सुरति के समान रूप वाला परमेश्वर देह में विदेह रूप से स्थित है। और असंख्य लोकों में रमण कर रहा है। परन्तु वस्तुतः विचार किया जाय तो न उसका कोई रंग (आकार) है और न रूप। 'अशरीरं शरीरेषु'॥ ९९॥



(१००)

चार भुजा के भजन में, भूलि परे सब संत।
कबिरा सुमरै तासु को, जाकी भुजा अनंत॥

चतुर्भुज विष्णु भगवान् के भजन करने में सब सन्त भूल में पड़े हैं। परिच्छिन्न (एक देशी) ईश्वर को मान कर उसके भजन में सब सन्त भूले पड़े हैं। कबीर उसका स्मरण करता है जिसकी अनन्त भुजायें हैं। सर्वस्वरूप विराट् ब्रह्म की असंख्य भुजायें हैं। वही मुख्य परमेश्वर है॥ १००॥



(१०१)

जनम मरन से रहित है, मेरा साहेब सोय।
बलिहारी वही पीव की, जिन सिरजा सब कोय॥

जो जन्म मरण से रहित है, जनमता मरता नहीं है, यही मेरा साहेब अर्थात् ईश्वर है। उस प्रियतम परमात्मा की बलिहारी है,

जिसने सब को बनाया है। "सोऽकामयत एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय"। "तत् सर्वमसृजत्" निर्विकारी शुद्ध ब्रह्म सृष्टिकर्ता होने से विकारी होता है। चतुर्भुजादि एक देशी होने से सर्व को सृष्टि नहीं कर सकता है। जीव अल्पशक्ति होने से वह भी सर्वकी सृष्टि नहीं कर सकता है परिशेषात् मायाविशिष्ट सर्वज्ञ सर्वशक्ति व्यापक ईश्वर ही जगत् का कर्ता है। वही ईश्वर है ॥ १०१ ॥



(१०२)

एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि ।
है जैसा तैसा रहै, कहैं कबीर विचारि ॥

उस परमात्मा को यदि हम एक कहें तो है नहीं। क्योंकि, एक शब्द अपने निरुपकांक्ष में सापेक्ष है। कोई दूसरा हो तो उसकी अपेक्षा एक कहा जा सकता है और दो कहें तो गाली हो जाती है। क्योंकि, परमात्मा के तुल्य किसी मिथ्या पदार्थ को बताना उसका (परमात्मा का) अपमान करना है। अतः कबीर स्वामी विचार करके कहते हैं कि वह जैसा है वैसा ही है। उस के विषय में एक या दो कुछ कह नहीं जा सकता है उस तत्त्व को द्वैत शब्द से या अद्वैत शब्द से कह नहीं सकते हैं। क्योंकि, वह मन वाणी का विषय नहीं है। 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' (तै.२-४-१) अर्थात् यहां से मन सहित वाणी उस को जाने बिना लौट आती है। उस भूमिका पर पहुंचने पर बोलना बन्द हो जाता है ॥ १०२ ॥



(१०३)

रेख रूप जेहि है नहीं, अधर धरो नहीं देह ।
गगन मँडल के मध्य में, रहता पुरुष विदेह ॥

उस परमेश्वर का कोई आकार प्रकार नहीं है। उसने अधर में देह धारण नहीं किया है। वह विदेह पुरुष परमात्मा आकाश मण्डल में रहता है। सर्वत्र व्यापक है। अथवा समाधि काल में दशम द्वार ब्रह्माण्ड में वह पुरुष दिखाई देता है। बीज की विमला टीका में इस साखी का अर्थ निरञ्जनपरक किया गया है। वही देखना चाहिये।१०३।

(१०४)

सर्गुण की सेवा करौ, निर्गुण का करु ध्यान ।
निर्गुण सर्गुण के परे, तहैं हमारा ध्यान ॥

मुमुक्षुओ! आप लोग सगुण ईश्वर की सेवा करो और निर्गुण का ध्यान धरो। परन्तु हमारा तो ध्यान वहाँ है जहाँ निर्गुण और सगुण के परे सर्वत्र व्यापक विशुद्ध ब्रह्म है। माया विरहित विशुद्ध ब्रह्म निर्गुण सगुण दोनों से परे है॥ १०४॥

(१०५)

साहेब सों सब होत हैं, बन्दे से कछु नाहिं ।
राई ते पर्वत करे, पर्वत राई माहिं ॥

परमात्मा से सब कुछ होता है। जीव से कुछ नहीं। वह राई से पर्वत करता है और पर्वत से राई। भाव यह है कि, ईश्वर सर्वशक्ति है।

अतः वह सब कुछ कर सकता है और जीव अल्पशक्ति है। अतः इससे कुछ भी नहीं हो सकता है। परमात्मा कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् समर्थ है ॥ १०५ ॥



(१०६)

बहन बहन्ता थल करे, थल कर बहन बहोय ।
साहेब हाथ बढाइया, जस भावै तस होय ॥

परमात्मा जहां जल बहता है वहाँ स्थल कर देता है और जहाँ स्थल होता है वहां जल बहा देता है। ईश्वर ने हाथ लम्बा कर दिया है। वह जैसा चाहता है वैसा ही होता है। वह शक्तिशाली है। कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् समर्थ है ॥ १०६ ॥



(१०७)

साहेब सा समरथ नहीं, गरुआ गहिर गंभीर ।
औगुन छोड़े गुन गहे, छिनक उतारै तीर ॥

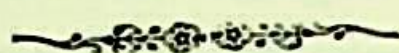
परमात्मा के समान कोई समर्थ नहीं है। बड़ा तो कहां से होगा ?। वह वजनदार है, बहुत गहरा है और अतीव गम्भीर है। भक्त के अवगुण को नहीं देखता है। उसके गुण का ग्रहण करता है। वह उसको एक क्षण में भवनदी के तीर से उतार देता है ॥ १०७ ॥



(१०८)

जो कछु किया सो तुम किया, मैं कछु करिया नाहिं।
कहो कही जो मैं किया, तुम ही थे मुझ माहिं ॥

हे ईश्वर ! मेरे से जो कुछ अच्छा काम हुआ है उसको मैंने नहीं किन्तु तुम्हीं ने किया है। यदि मैं यह कहूँ कि, मैंने किया है तो यह समुचित नहीं। क्योंकि उस समय मेरे में तुम्हीं तो थे। अन्तर्यामी रूप से मेरे में स्थित रहकर जैसी तुमने प्रेरणा की वैसा ही मैंने किया है। तुमने मुझे प्रेरणा की और शक्ति दी तब मेरे से कुछ हुआ है ॥१०८॥



(१०९)

जाको राखै साँइयाँ, मारि न सक्कै कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग वेरी होय ॥

जिसको वह स्वामी परमात्मा रखता है, रक्षा करता है, उसको कोई मार नहीं सकता है। यदी सारा संसार उसका शत्रु बन जाय तो भी उसका बाल बाँका भी नहीं कर सकता है। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को मार डालने के लिये सब कुछ किया। परन्तु उसका बाल बाँका भी नहीं हुआ था। इसको उस समय लोगों ने प्रत्यक्ष देखा था ॥ १०९ ॥



(११०)

साहेब मेरा बानियाँ, सहज करै व्यापार।
बिन डाँडी बिन पालरे, तौले सब संसार ॥

मेरा साहेब परमात्मा बनियाँ=व्यापारी है। सहज भाव से=बिना परिश्रम से व्यापार करता है। डँडी के बिना और पालरा के बिना

(तराजू के बिना ही) सारे संसार को तोलता है। सब जीवों को कर्मानुसार बराबर तौल कर फल देता है। किस कर्म का कहाँ और कब कितने प्रमाण में फल देना चाहिये इसका बिचार करके सबको फल देता है।॥ ११० ॥

---

(१११)

साँई तुझ से बाहिरा, कौड़ी नाहिं बिकाय।
जाके सिर पर तू धनी, लाखों मोल कराय॥

हे स्वामी ईश्वर! जो जीव तुम से बाहर है, तुम्हारी आज्ञा के अनुसार नहीं चलता है उसकी कौड़ी कीमत नहीं और जिस के सिर पर तू स्वामी रूप से स्थित है उसके लाखों मूल्य किये जाते हैं। जो नास्तिक है। ईश्वर को नहीं मानता है। वह कोड़ी कीमत का भी नहीं और जो आस्तिक है। ईश्वर को मानता हैं वह बहुमूल्य लाखों कीमत का है। संसार में उसकी बहुत प्रतिष्ठा होती है। क्योंकि, ईश्वर भक्तों को महान् उच्च पद पर स्थापित करता है। ॥ १११ ॥

---

(११२)

तेरा साहेब तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में वास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर-फिर ढूँढ़े घास॥

सद्गुरु कहते हैं कि, हे जीव! जैसे पुष्प में वास (सुगन्धी) है वैसे ही तेरा साहेब परमात्मा तुम्हारे में ही है। तुम्हारे हृदय में ही है परन्तु यह सूक्ष्म है। दिखता नहीं है। जैसे कस्तुरी का मृग है। वह

घुम-घुम कर घास में सुगन्ध को ढूँढता है। अर्थात् जैसे कस्तुरी मृग के नाभि में कस्तुरी है। उसको वह घास में ढूँढता है। वैसे ही तुम्हारा ईश्वर तुम्हारे हृदय में ही विराजमान है। उसको तुम बाहर तीर्थादि में ढूँढते हो। बाहर खोजना छोड़कर भीतर खोजो तो यहीं उसका साक्षात्कार होगा। ॥ ११२ ॥



(११३)

जा कारन जग ढूँढिया, सो तो घट ही माहिं।
परदा दिया तु भरम का, ताते सूझै नाहिं ॥

जिसकी प्राप्ति के लिये जीव संसार में ढूँढता फिरता है। वह परमात्मा तो शरीर के भीतर हृदय देश में ही है। किन्तु अविद्या-जन्य भ्रम का परदा दे दिया है, जिससे दिखता नहीं है। अज्ञान आवरणजन्य इसको भ्रान्ति हो गई है कि, ईश्वर कहीं वैकुण्ठादि दूर देश में है। इसी से ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता है। वस्तु कहीं अन्य जगह हो और उसको कहीं अन्य जगह मानता हो। उसी को भ्रम कहते हैं। जहां वस्तु नहीं हो यहां ढूँढे तो वह कैसे मि सकती है ?। ईश्वर हृदय में है और यह जीव ढूँढता है। तीर्थादि तथा वैकुण्ठादि में तो वह कैसे मिल सकता है ?। ॥ ११३ ॥



(११४)

ज्यों तिल माहो तेल है, ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साँई तुज्झ में, जागि सकै तो जागि ॥

जैसे तिल में तेल व्याप्त है और जैसे चकमक पत्थर में अग्नि व्याप्त है वैसे ही हे जीव ! तेरा स्वामी परमात्मा तुझमें व्याप्त है। तु

जाग सके तो जग जा। चेत जा। तेरे हृदय में ही स्थित ईश्वर को ज्ञान कर परम पद प्राप्त कर। ॥ ११४ ॥

---

(११५)

ज्यों नैनन में पूतरी, यों खालिक घट माहिं।

मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढन जाहिं ॥

जैसे नेत्र में पुतलियाँ हैं, नेत्र की रक्षा करती हैं, वैसे ही शरीर में ईश्वर है, शरीर की रक्षा करता है। परन्तु मूर्ख लोग उसको जानते नहीं, बाहर पानी पाषाण में उसको खोजने जाते हैं। वस्तु जहाँ हो वहीं खोजना चाहिये अन्यत्र खोजने से वह मिलती नहीं है। ईश्वर हृदय में है। यहीं खोजना चाहिये। ध्यान करना चाहिये तब वह मिलता है। अन्यत्र खोजने से वह मिलता नहीं है। ॥ ११५ ॥

---

(११६)

पावक रूपी साँइयाँ, सब घट रहा समाय।

चित चकमक लागे नहीं, तातें बुझि-बुजि जाय ॥

पावक=अग्नि रूपी यह स्वामी प्रभु है चकमक में जैसे अग्नि समाया हुआ है वैसे ही सब घट में वह समाया हुआ है। परन्तु चित्तरूपी चकमक उसमें लगता नहीं है। इससे वह बार बार सुलग कर बुझ जाता है। चित्त उसका ध्यान करे तब ज्ञान हो और तब मुक्ति प्राप्त हो सकती है अन्यथा नहीं ॥ ११६ ॥

---

(११७)

जहिया जन्म-मुक्ता हता, तहिया हता न कोय ।
छठी तिहारी हौं जगा, तु कहँ चला बिगोय ॥

हे जीव ! जब तू जन्म से मुक्त था तब कोई नहीं था। पश्चात् तुम्हारी छठी इन्द्रिय मन में अभिमान जागरुक हुआ। उसमें पड़ कर तू नष्ट होता हुआ कहां जा रहा है। सृष्टि के उत्पत्ति काल के पूर्व काल में जीव जन्म मरण से मुक्त था। ब्रह्मरूप था। बल्कि ब्रह्म ही था। उस समय स्त्री पुत्रादि कुटुम्ब परिवारों में से कोई नहीं था। यहां तक कि संसार के चराचर आत्मक पदार्थों में से भी कोई नहीं था। बाद में उसके मन में अभिमान उत्पन्न हुआ। 'एकोऽहं बहु स्याम्' अर्थात् मैं एक हूँ, बहुत होजाऊं। बाद में आकाशादि क्रम से सारे संसार की उत्पत्ति हुई। उसमें पड़ कर यह ब्रह्मरूप आत्मा जीव भाव को प्राप्त हो गया। जन्म मरणादि को प्राप्त होकर दुःखी हो गया। सद्गुरु कहते हैं कि, हे जीव! तू नष्ट होता हुआ कहाँ जा रहा है ?। इधर आवो। गुरु के उपदेश से ज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो जावो। जैसे पहले मुक्त था वैसे ही पुनः हो जाओ॥ ११७॥



(११८)

सकलो दुरमति दूरि करु, अच्छा जनम बनाव ।
काग गमन गति छांडि के, हंस गमन चलि आव ॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, हे सज्जन गण ! आप लोग सब दुर्बुद्धियों को दूर करो और मनुष्यजन्म को उज्ज्वल बनाओ एवं काग की चाल को छोड़कर हंस की चाल से हमारे पास चले आओ। क्योंकि,

दुराचरण-त्याग पूर्वक सदाचरण करने से ही परमपद की प्राप्ति होती है। विवेक करे बिना असद्विषयों की तरफ जाना काकगति और विवेक करके असद्विषयों को त्यागकर सद्गुरु की तरफ जाना हंसगति कही जाती है॥ ११८॥



(११९)

सब्द हमार तु सब्द का सुनि मतिजाहु सरकि।
जो चाहो निज तत्त्व का, सब्दहिं लेहु परखि॥

सद्गुरु कहते हैं कि, हे जीव! आत्मकल्याण उपदेश रूप सत्य सार शब्द हमारा है और तुम उस सार शब्द रूप उपदेश का अधिकारी है। उस सार शब्द को सुन कर तुम सरक कर अर्थात् खिसक कर संसार की तरफ मत जाओ। पुनः जन्म मरण में न जाओ। यदि तुम आत्मतत्त्व का ज्ञान चाहते हो, आत्मज्ञान द्वारा मुक्त होना चाहते हो तो उक्त उपदेशरूप सार शब्द का अभिधेय सत्यस्वरूप आत्मा को परख लो। आत्मा को परमात्मरूप से जान लो॥ ११९॥

---

(१२०)

सब्द हमार आदि का, सब्दै पैठा जीव।
फूल रहनि की टोकरी, घोरे खाया घीव॥

सद्गुरु कहते हैं कि, हमारा सार शब्द रूप सत्य उपदेश सृष्टि के प्रारम्भ का ही है। इस शब्द में जीवात्मा पैठ गया है। प्रविष्ट हो गया है। उपदेश ग्रहण करने के लिये आया है। किन्तु अधिकारी न होने से उसकी ऐसी दशा हुई जैसी पुष्प रहने की टोकरी में पुष्प की होती

है। अथवा छाँछ (मठा) में खाया हुआ घृत की होती है। टोकरी में अधिक काल रहने से पुष्प सड़ जाता है और छाँछ में घी वहुत काल रहने से नष्ट हो जाता है। वैसे ही जीव को उपदेश न लगने से जन्म मरण में ही रहता है ॥ १२० ॥

---

(१२१)

सब्द विना स्रुति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै सब्द का, फिरि फिर भटका खाय ॥

शब्द पद का सांकेतिक अर्थ परमात्मा और सुरति पद का अर्थ उसका ध्यान है। वहुत लोग परमात्मा का ज्ञान प्राप्त किये विना ही ध्यान किया करते हैं। उनके प्रति सद्गुरु कहते हैं कि परमात्मा को जाने विना सुरति अँधी है। भला कहो तो सही कि वह कहाँ जा सकती है? अर्थात् कहीं नहीं। क्योंकि, वह परमात्मा के यहां जाने के द्वार को नहीं पाती है अतः वह ब्रह्माकार न होकर विषयाकार हो जाती है। इसी लिये संसार में वार-वार घुम-फिर कर भटकती रहती है। वह सुरति ब्रह्मचिन्तन नहीं किन्तु अनात्म विषय चिन्तन ही करती रहती है। अतः गुरु से ज्ञान प्राप्त करके ध्यान करना चाहिये ॥ १२१ ॥

---

(१२२)

सब्द सब्द वहु अंतरा, सार-सब्द मत लीजे।
कहँहिं कबीर जेहि सार-सब्द नहिं, धृग जीवन सो जीवे।

यों तो शब्द शब्द में बहुत अन्तर है। उनमें से जो सार शब्द है उसके मत को लीजिये। अर्थात् जिस शब्द से ईश्वर का ज्ञान प्राप्त हो

उसका ग्रहण करना चाहिये। कबीर स्वामी कहते हैं कि, जिसको सार शब्द नहीं प्राप्त हुआ है उसका जीना धिक्कार है। व्यर्थ है ॥ १२२ ॥

(१२३)

सब्दै मारा गिर परा, सब्द हिं छोड़ा राज ।
जिन जिन सब्द विवेकिया, तिनका सरिगौ काज ॥

शब्द का मारा हुआ पुरुष गिर पड़ा है। सिद्धान्त से गिर गया है। पतित हो गया है और शब्द को सुनने से पुरुष ने राजपाट छोड़ दिया है। जिन जिन हंस रूप विवेकी पुरुषों ने सार असार शब्दों का विवेक किया है उनका मोक्ष रूप कार्य सिद्ध हो गया है। भाव यह है कि शब्द दो प्रकार के होते हैं। एक रागजनक और दूसरा विरागजनक। कामुक स्त्रियादि का शब्द रागजनक और विरक्त महात्माओं का शब्द विरागजनक होता है। रागजनक शब्दों को सुनने से पुरुष नीचे गिरता है और विरागजनक शब्दों को सुनने से ऊँचा उठता है। उदाहरणार्थ कैकेयी के शब्दों को ही ले सकते हैं। उसके शब्दों को सुनने से राजा दशरथ मूर्छित होकर गिर पड़े थे और श्रीराम राजपाट छोड़कर वन में चले गये थे ॥ १२३ ॥

(१२४)

सब्द हमारा आदि का, पल पल करहु याद ।
अन्त फलेगी मांहली, ऊपर की सब बाद ॥

सद्गुरु जीव को उपदेश देते हैं कि, हे जीव ! मेरा शब्द = उपदेश सृष्टि के आदि काल का है। आज का नहीं। तुम उसको क्षण क्षण

स्मरण करो। ऐसा करने से अन्त समय में हृदय रूपीमहल में रहने वाली मोक्षविषयिणी इच्छा फलिभूत हो जायगी। तुमको मोक्ष की प्राप्ति हो जायगी। इसके अतिरिक्त वाद विवाद सब व्यर्थ है। धारणा विना सब निष्फल है॥ १२४॥

(१२५)

सब्द सब्द बहु अन्तरा, सार सब्द चित देय।
जा सब्दै साहेब मिलै, सोइ सब्द गहि लेय॥

शब्द शब्द में वहुत अन्तर है। उनमें से सार शब्द में चित्त देना चाहिये। जिस शब्द से परमात्मा की प्राप्ति होती है उस भगवान् के नाम रूप शब्द का ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् भगवन्नाम उच्चारण सर्वदा करते रहना चाहिये॥ १२५॥

(१२६)

सब्द बराबर धन नहिं, जा कोइ जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलै, सब्दहिं मोल न तोल॥

संसार में शब्द बराबर दूसरा कोई धन नहीं है। परन्तु जो कोई बोलना जाने तो। हीरा बहुत कीमती वस्तु है फिर भी वह मूल्य से मिलता है। परन्तु शब्द का कोई मोल तोल नहीं है। यह अमूल्य वस्तु है। तोला नहीं जाता है॥ १२६॥

(१२७)

मीठे सभन से बोलिये, सुख उपजै चहु ओर ।
वसी करन यह मन्त्र है, तजिये वचन कठोर ॥

सबसे मधुर वचन बोलना चाहिये । इससे सर्वत्र सुख उत्पन्न होता है । यह (मीठा बोलना) वशीकरणमन्त्र है । जैसे वशीकरण मन्त्र से सब को वश में कर लिया जाता है वैसे ही मधुर वचन से सब को वश में कर लिया जाता है । हे सज्जनगण ! आप लोग कठोर वचन=कटु-वाक्यों को त्याग करिये । किसी के प्रति कटु वचन का प्रयोग न करिये ॥ १२७ ॥

---

(१२८)

मधुर वचन है औषधी, कटुक वचन है तीर ।
स्रवन द्वार ह्वै संचरे, सालै सकल सरीर ॥

मधुर वचन औषध समान और कटु वचन तीर समान है । श्रवण द्वार से भीतर प्रवेश करने पर सारा शरीर सालने लगता है । जैसे औषधि रोग को दूर करती है वैसे ही मधुर वचन सब विरोध को दूर करता है एवं जैसे तीर=बाण शरीर में प्रविष्ट होने पर दुःख होता है वैसे ही कटुवाक्य कर्ण द्वारा शरीर में प्रविष्ट होने पर दुःख होता है । वरं तीर से उतनी वेदना नहीं होती है जितनी कटुवाक्य से होती है ॥ १२८ ॥

(१२९)

काग का कछु लेत है, कोयल का कछु देत ।
मीठे वचन सुनाय के, जग अपनो करि लेत ॥

काक किसी का कुछ लेता नहीं है और न कोयल किसी को कुछ देता है । फिर भी सब कोई काक की निन्दा और कोयल की प्रशंसा करते हैं । इसमें कारण केवल यही है कि, काक कर्कश (कटु) वचन सुनाकर संसार को पराया और कोयल मधुर वचन सुनाकर संसार को अपना बना लेता है । कटु वचन बोलने में न किसी को कुछ लाभ है और न मधुर वचन बोलने में किसी को कुछ हानि है । फिर भी खेद के साथ कहना पड़ता है कि, लोग मधुर वचन छोड़कर कटु वचन को ही बोलते हैं । स्वयं जलते और दूसरों को जलाते हैं ॥ १२९ ॥

(१३०)

नाम अनन्त जो ब्रह्म का, तिनका वार न पार ।
मन मानै सो लीजिये, कहैं कबीर विचार ॥

ब्रह्म = परमात्मा के नाम अनन्त अर्थात् असंख्य हैं । उनका वार पार नहीं है । अथ और इति नहीं है । इस पार है, उस पार नहीं अथवा उस पार है इस पार नहीं ऐसा नहीं किन्तु सर्वत्र है । हे मुमुक्षुओ ! आप लोगों को उनमें से जो नाम भावे (रुचिकर हो) उसी को लीजिये, जप करिये । अर्थात् कबीर स्वामी विचार कर कहते हैं कि परमात्मा के उक्त अनन्त नामों में से जो आप को गुरुद्वारा प्राप्त हुआ हो अथवा जिसमें की अभिरुचि हो उसी को लीजिये और जप

करिये। 'यह नाम अच्छा है और यह खराब है' ऐसा कहने से नामापराध होता है। जिसका क्षमापन नहीं है॥ १३०॥

(१३१)

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह॥

आदि तत्त्व परमात्मा का नाम पारस मणि समान और मन मलिन लोहा समान है। मन रूपी लोहे का नाम रूपी पारसमणि के साथ स्पर्श होते ही वह कञ्चन हो जाता है, शुद्ध हो जाता है और मोहजन्य संसार बन्धन छूट जाता है। अन्तःकरण (मन) में तीन दोष हैं। मल, विक्षेप और आवरण। मल पाप, विक्षेप चञ्चलता और स्वरूप के अज्ञान को आवरण कहा जाता है। जब तक ये तीनों दोष रहते हैं तब तक ज्ञान नहीं होता है जब तक अज्ञान दूर नहीं होता है और अज्ञान दूर न होने से तत्कृत (अज्ञानकृत) जन्मादि संसार विद्यमान ही रहता है। जीव मुक्त होने नहीं पाता है। अतः नाम जप के द्वारा मन को शुद्ध करना चाहिये। ईश्वर-नाम-स्मरण ज्ञात अज्ञात सभी पापों का दूर करता है॥ १३ : ॥

(१३२)

आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु सो हंस।
जिन जान्यो निज नामको, अमर भयो सो वंस॥

आदि जो ईश्वर, उसका जो अपना नाम यह सब से श्रेष्ठ है। कल्याण के अन्य सब साधनों में उत्तम साधन है। हे हंस ? उसको

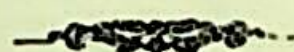
सर्व प्रथम आप समझ लो बाद में इसके जपादि करके अपना कल्याण करो। क्योंकि, उस नाम को जिसने जाना है यह बंश (शिष्य) अमर हो गया है, संसार बन्धन से मुक्त हो गया है। नामी परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके नाम लेने से शीघ्र मोक्ष होता है ॥ १३२ ॥



(१३३)

आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार।
कहैं कबीर निज नाम बिनु, बूड़ि मुआ संसार ॥

आदि परमात्मा का निज नाम मन्त्र मूल तुल्य है और अन्य सब मन्त्र डाली=शाखा समान है। मूल वृक्ष मुख्य होता है और डालियाँ गौण। मूल वृक्ष एक है और डालियाँ उसका विस्तार हैं। यद्यपि पात डालियों में आता है पर फल विना नहीं वैसे ही अन्य मन्त्र भी फल तो देते हैं पर नाम विना नहीं। इसी का सद्‌गुरु कबीर कहते हैं-मूल-भूत नाम के विना सारा संसार डूब मुआ है। भगवन्नाम स्मरण विना संसारी जीव संसार सागर में डूबे हुये हैं। जन्म जरा मरणादि दुःख में रहना इसका संसार में डूबना है ॥ १३३ ॥



(१३४)

नाम रतन धन पाइ कै, गाँठी बाँध न खोल।
नहि पाटन नहि पारखी, नहि गाहक नहि मोल ॥

भगवान् के नाम रूपी रत्न धन को पाकर गाँठ बाँध लो। हृदय में धारण कर लो। अनधिकारी के आगे उसको न खोलो। क्योंकि, इसको

विक्रय के लिये न पाटन-पत्तन (नगर) है न परखने वाला जौहरी है और मूल्य करने वाला ग्राहक ही है। यह अमूल्य धन मोक्ष का हेतु है ॥ १३४ ॥



(१३५)

नाम रतन धन संत पँह, खान खुली घट माँहि ।
सेंत मेंत ही देत हूँ, गाहक कोई नाँहिं ॥

इस परमात्मा के नाम रूपी रत्न-धन की खानि सन्त महात्माओं के पास उनके हृदय रूप घट में हैं। सद्गुरु कहते हैं कि, मैं उसको सेंत मेंत अर्थात् मुफ्त विना मूल्य ही देता हूँ तो भी इसका कोई ग्राहक नहीं है। कोई लेने के लिये तैयार नहीं है। भगवत्-कृपा विना मुमुक्षा उत्पन्न नहीं होती है और मुमुक्षा विना नाम लेने में अभिरुचि नहीं होती है ॥ १३५ ॥



(१३६)

सभी रसायन हम करी, नहीं नाम सम कोय ।
रंचक घट में संचरे, सब तन कंचन होय ॥

हमने भवरोग मिटाने के लिये सर्व प्रकार के साधन रूपी रसायन (दवा) करके देखा। परन्तु नाम समान इसका कोई रसायन नहीं है। क्योंकि, यह नाम रूपी रसायन किञ्चित् मात्र भी यदि शरीर में सञ्चार करे तो सारा शरीर कञ्चन समान हो सकता है। नाम रूपी रसायन का सेवन करने से भवरोगी जीव ब्रह्म रूप हो जाता है। जैसे

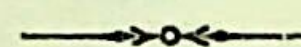
शरीर रोग मिटने पर शरीर कञ्चन समान हो जाता है वैसे ही भवरोग मिटने पर जीव ब्रह्मरूप होता है ॥ १३६ ॥



(१३७)

जबहि नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास ।
जैसी चिनगी आग की, परी पुरानी घास ॥

जिस समय नाम को हृदय में धारण किया जाता है—उसी समय जन्म जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे अग्नि की चिन्गारियाँ (अग्निकण) पुरानी घास में पड़ने पर उसी समय वे घास को भस्म कर नष्ट कर देती है। यहां नाम को अग्नि और पाप को घास समझना चाहिये ॥ १३७ ॥



(१३८)

ज्ञान-दीप परकास करि, भीतर भवन जराय ।
तहाँ सुमिर सतनाम को, सहज समाधि लगाय ॥

शरीर रूपी भवन के भीतर ज्ञान रूपी दीपक जला कर प्रकाश करना चाहिये और वहाँ सहज समाधि लगा कर सत्यनाम का स्मरण करना चाहिये। सत्य स्वरूप परमात्मा का 'सत्य' यह नाम मुख्य है। अन्य सब नामों में उत्तम है। उस नामी परमेश्वर का स्मरणपूर्वक नाम का उच्चारण करना चाहिये। सहज समाधि के प्रकार का निरूपण किया जा चुका है। "सन्तो सहज समाधि भली है"।

कतिपय निर्मूल एवं नवीन कबीर पन्थियों का कहना है कि, कबीर साहेब ने सत्यनाम का उपदेश नहीं किया है। उनको आँख खोल कर इस साखी को देखना चाहिये। ऐसे और भी बहुत वाणी वचन हैं जिनमें स्थान स्थान पर सत्यनाम भरे पड़े हैं। उदासीन, निर्मले तथा सीख धर्म में यहीं से सत्यनाम मन्त्र गया हुआ है। केवल इतना ही नहीं किन्तु अन्य भी सन्त मत के जितने सत्यनामी सम्प्रदाय हैं उन सब में कबीर पन्थ से ही सत्यनाम मन्त्र गया हुआ है। इस बात को भूलना नहीं चाहिये कि, सत्यनामी सन्तमत के आदि प्रवर्त्तक सद्गुरु कबीर ही हैं। निर्मत्सर सन्त लोग अपने सम्प्रदाय का विशाल कबीर पन्थ के साथ सम्बन्ध देख कर अपने को गौरवशाली मानते हैं। जो लोग मत्सरता आदि दोषदुष्ट हैं वे ही अपने को स्वतन्त्र मानते हैं। और जो कबीरपन्थी होते हुए भी अपना आदि कबीरपन्थ के साथ सम्बन्ध नहीं मानते हैं। उनकी बुद्धि तो दया के पात्र ही है॥ १३८॥

---

(१३९)

सुपनेहूँ बर्राइ के, धोखे निकरे नाम।
वा के पग की पैंतरी, मेरे तन को चाय॥

सद्गुरु कहते हैं कि, स्वप्न में भी बड़बड़ाते हुए धोखा में भी जिनके मुख से परमात्मा का नाम निकलता हो उनके पैर की पनही (जूतिया चप्पल) मेरे शरीर के चर्म से बनो। यह वचन अपने में अधीनता और नाम में महत्ता का सूचक है। जिसका सुनते ही शरीर रोमाञ्चित हो जाता है।॥ १३९॥

—:-०-:—

(१४०)

जैसो माया मन रम्यो, तैसो नाम रमाय।
तारा मंडल वेधिकै, तब अमरापुर जाय॥

जैसे मन माया में, मायिक स्त्रियादि विषयों में रम गया है वैसे ही भगवान् के नाम में रमाना चाहिए। ऐसा करने से यदि ज्ञान न हुआ हो तो भी तारा मण्डल आदि का वेधन करके (उलंघन करके) आत्मा उत्तरायण मार्ग से अमरापुर सत्यलोक (ब्रह्मलोक) चला जाता है। अर्थात् जैसे मन विषय चिन्तन करता है वैसे ही भगवान् का चिन्तन करे तो उसी क्षण परम-पद की प्राप्ति हो सकती है तारा मण्डल का वेधन कथन से तैत्तिरीय उपनिषद् प्रतिपादित देवयान मार्ग का संकेत किया गया है। अमरापुर शब्द से सत्यलोक सूचित किया गया है। जो कहते हैं कि कबीर साहेब परलोक नहीं मानते थे। उनको इस साखी पर ध्यान देना चाहिये और कबीर सिद्धान्त का निश्चय करना चाहिये॥१४०॥

(१४१)

पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, धूआँ ह्वै ह्वै जाय॥

परमात्मा का नाम अग्नि के समान सब घटों में समाया हुआ है। परन्तु वह प्रगट नहीं होता है। जैसे चकमक पत्थर में अग्नि है। परन्तु जब तक वह लोहा के साथ बराबर (जैसा चाहिये वैसा) टक्कर न ले तब धूम हो हो कर चला जाता है। ज्वाला रूप से प्रगट नहीं होता है। वैसे ही नाम जब तक चित्त के साथ बराबर टक्कर न ले

(मन लगाकर बराबर नाम स्मरण न करे) तब तक ज्ञान प्रकाश रहित धुँआ समान हो-हो कर व्यर्थ चला जाता है। ज्ञानरूपी प्रकाश उत्पन्न नहीं करता है। और ज्ञान बिना मोक्ष नहीं होता है। यह सिद्धान्त है। अतः चित्त देकर (मन लगा कर) नाम का जप करना चाहिये ऐसा करने से ही ज्ञान और तद् द्वारा मोक्ष होता है। ॥ १४१ ॥

(१४२)

लूटि सकै तो लूटि ले, सत्त नाम की लूटि ।
पाछे फिर पछताहुगे, प्रान जाहि जब छूटि ॥

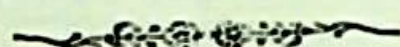
मुक्ति का साधन सत्यनाम की लूट हो रही है मुमुक्षुओं! तुम लूट सकते हो तो जल्दी लूट लो। जब तक मनुष्य शरीर है तब तक नाम स्मरण कर लो। इस सुन्दर अवसर प्राप्त कर यदि नाम स्मरण न करोगे तो पीछे पश्चाताप करना पड़ेगा। अर्थात् जब प्राण छूट जायगा तब पछताना पड़ेगा। मनुष्य शरीर छूट जाने पर पशु आदि का शरीर मिलेगा। तब नाम स्मरण नहीं होगा ॥ १४२ ॥

(१४३)

नाम बिना बेकाम है, छप्पन भोग बिलास ।
का इन्द्रासन बैठिबो, का बैकुण्ठ निवास ॥

छप्पन प्रकार के योग- विलास को प्राप्त करना या इन्द्रासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त करना या वैकुण्ठ में निवास करना आदि सब

नाम के बिना व्यर्थ हैं क्योंकि, 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' अर्थात् स्वर्ग सुख भोगने पर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होता है। और नाम स्मरण करने वाला मुक्त हो जाता है। पुनः जन्म मरण-रूप संसार में नहीं आता है। क्योंकि, नाम भगवत्प्राप्ति का मुख्य साधन है ॥ १४३ ॥



(१४४)

नाम जपत कोढी भलो, चुइ चुइ चूवे चाम ।
कंचन देह किस काम को, जा मुख निकसे न राम ॥

जिसके शरीर के चर्म में से चू चू कर मवाद गिरता हो ऐसा कोढी भी अच्छा है यदि वह नाम जप करता हो। और वह कञ्चन जैसा सुन्दर शरीर किस काम का जिसके मुख से राम नाम नहीं निकलता हो। भगवन्नाम स्मरण करके आत्मा का कल्याण करना मनुष्य शरीर का प्रयोजन है। यही यही नहीं करता है तब सुंदर शरीर किस काम का? निष्फल है ॥ १४४ ॥



(१४५)

नाम जपत कन्या भली, साकट भलो न पूत ।
बकरी के जिमि गलथना, जामें दूध न मूत ॥

ईश्वर नाम के जप करने वाली कन्या हो तो यह अच्छी है परन्तु साकट (शाक्त) मांसाहारी पुत्र हो तो वह अच्छा नहीं। जैसे बकरी के गला में गलथन (स्तन) होता है उस में न तो दूध होता है और न मूत्र

ही। जैसे दुग्धादि बिना का गलथन व्यर्थ है वैसे ही नाम बिना साकट पुत्र भी व्यर्थ है। पुत्र नाम उसका है जो माता-पिता का कल्याण करे। जो नाम जप न करे ऐसा पुत्र व्यर्थ है। क्योंकि वह माता पिता का उद्धार नहीं करता है॥ १४५॥

---

(१४६)

नाम लिया जिन सब लिया, सब सास्त्रन को भेद।
बिना नाम नरके गये, पढ़ि गुनि चारो वेद॥

जिसने भगवान् का नाम लिया, नाम का स्मरण किया, नाम का जप किया। उसने परमपद (मोक्ष) का सब साधन कर लिया। उसका कोई साधन बाकी न रहा। क्योंकि नाम सर्व वेद शास्त्रों का भेद=रहस्य=मुख्य प्रतिपाद्य विषय है! वेद शास्त्र कल्याण के जितने साधन बताते हैं। उन में मुख्य नाम है। जिन्होंने चारो वेदों को पढ़ गुन कर भी नाम नहीं लिया, भगवान् नामस्मरण नहीं किया वे सब नरक में गये। जन्म मरण रूप संसार में ही रहे। मुक्त हो नहीं पाये।

इस कथन का वेद शास्त्रों की निन्दा में नहीं किन्तु नाम जप कराने में तात्पर्य समझना चाहिये। सम्पूर्ण वेद शास्त्र का तात्पर्य ईश्वर स्वरूप प्रतिपादन में है। ईश्वर को जान कर उसकी भक्ति द्वारा आत्मा का कल्याण करना है जब वही नहीं किया तब वेदादि का पढ़ना गुणना व्यर्थ है॥ १४६॥

---

(१४७)

सत्तनाम निज औषधि, सतगुरु दई बताय ।
औषधि खाय रु पथ रहै, ताकी वेदन जाय ॥

सद्गुरु ने भवरोग की औषधि सत्य नाम बता दी है उसको खा कर जो पथ्य-पालन करे उसकी वेदना अर्थात् रोगजन्य पीड़ा जाती है जन्म जरा मरण रोग है। इनकी निवृति की औषधि सत्यनाम है। जिसको सद्गुरुरूपी वैद्य ने बता दी है। उसका जप स्मरणादि कर कुसंग आदि कुपथ्य का त्याग और विवेकादि तथा शमदमादि साधन का अनुष्ठान जो करे, पथ्य पालन जो करे उसका यथोक्त रोग जाता है। अन्य का नहीं ॥ १४७ ॥



(१४८)

राम नाम को सुमिरतां, उधरे पतित अनेक ।
कहैं कबिर नहिं छाँड़िये, राम नाम की टेक ॥

राम नाम का स्मरण करते हुए अनेक पतितों का उद्धार हुआ है। कबीर स्वामी कहते हैं कि, मुमुक्षुओ ! आप लोग रामनाम लेने की टेक को (नियम को) छोड़िये नहीं किन्तु नियम पूर्वक इसका जप स्मरणादि करते ही रहिये। जिससे आप का भी उद्धार हो ॥ १४८ ॥

---

(१४९)

राम नाम को सुमिरताँ, हँसि कर भावे खीज ।
उलटा सुलटा नीपजै, ज्यों खेतन में बीज ॥

सद्गुरु कहते हैं कि हे जीव ! तू रामनाम का स्मरण कर चाहे हस के कर या खीज के कर जैसे भावे वैसे कर वह फल तो अवश्य

देगा। जैसे खेत में बीज उलटा या सुलटा, चाहे जैसा बोया जाय, वह निपजाता अवश्य है। फल अवश्य देता है। वैसे ही रामनाम को विधिवत् लो या अविधिवत्, पवित्र होकर लो या अपवित्र होकर, हसते हुए लो या रोते हुए लो यह मोक्षरूप फल अवश्य देगा। निष्फल नहीं जायगा। विश्वास रखो ॥ १४९ ॥



(१५०)

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरत हरि को नाम।
सूली ऊपर नट विधा, गिरै तो नहि ठाम ॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हरि के नाम स्मरण करते समय वस्तुतः कठिनाई अवश्य है। क्योंकि जैसे सूली पर बैठा हुआ नट यदि वहाँ से गिरे तो कहीं ठिकाना नहीं है। नाम स्मरण के द्वारा उत्तम ऊँची भूमिका पर चढ़ा हुआ सन्त यदि विषय तरफ आकृष्ट हो जाय तो उसकी फिर कहीं स्थिति नहीं है ॥ १५० ॥



(१५१)

कबीर हरि के नाम से, कोटि विघ्न कटि जाय।
राई मात्र वैसन्दरा, केता काठ जलाय ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, हरि के नाम लेने से (जप करने से) करोड़ों विघ्न (पाप या संकट) कट जाते हैं। जैसे राई मात्र वैसन्दर (अग्नि) से कितने काष्ठ जलकर भस्म हो जाते हैं। नाम लेने से

धर्म उत्पन्न होता है और धर्म से पाप का नाश होता है। यह नियम है। क्योंकि, जैसे प्रकाश अन्धकार का विरोधी है वैसे ही धर्म पाप का विरोधी है। 'धर्मेण पापमपनुदति,' अर्थात् धर्म से पाप का नाश होता है।॥ १५१॥

---

(१५२)

कबीर नाम जु एक रती, पाप जु रती हजार।
अर्ध राइ घट संचरे, जारि करै सब छार॥

इसी को और स्पष्ट करते हैं--कबीर स्वामी कहते हैं कि, यदि नाम उच्चारणजन्य पुण्य एक रती हो और असत् कर्मजन्य पाप हजार रती हो तो भी आधा राई भर पुण्य के अन्तःकरण में संचार होने पर सब पाप को जला कर भस्म कर देता है। पुण्यपाप अन्तःकरण के धर्म हैं। दोनों ही एक जगह रहते हैं। 'बलवता दुर्बलो बाध्यते' अर्थात् बल वाले से दुर्बल बाधित होता है। यह नियम है नाम जप जन्य पुण्य बलवान् है। अतः सब दुर्बल पाप का नाश करता है॥ १५२॥

---

(१५३)

जाकी गाँठी नाम है, ताके हैं सब सिद्धि।
कर जोरै ठाढी सबै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि॥

जिसकी गाँठ में नामरूपी रत्न है उसके आगे अष्ट सिद्धि और नव निधि आदि सब सिद्धियाँ हाथ जोड़कर खड़ी रहती हैं। जैसे

जैसे नाम जप होता रहता है वैसे वैसे सिद्धि प्राप्त होती रहती है। अन्त में पूरी सिद्धि प्राप्त होने पर भक्त महात्मा सिद्ध हो जाता है सिद्ध होने पर इच्छानुसार सभी पदार्थ प्राप्त होते रहते हैं। सिद्धि प्राप्त होनेपर सन्त संसार के सभी कार्य करने में समर्थ हो जाते हैं। योगदर्शन के विभूति पाद में जो जो सिद्धियाँ कही गई हैं वे सब नाम जप करनेवाले महात्मा को प्राप्त होती हैं। नाम का सिद्धि अवान्तर फल है और मोक्ष मुख्य फल है। अतः आगे बढना चाहिये ॥ १५३ ॥

(१५४–१५५)

कहत हूँ कह जात हूँ, कहे बजाया ढोल।
एक स्वास जो जात है, चौदह लोक का मोल ॥
स्वास स्वास में नाम लो, वृथा स्वास जनि खोय।
ना जानो यहि स्वास को, आवन होय न होय ॥

सद्गुरु कहते हैं कि, हे जीवो! मैं कहता हूं, कहते ही रहता हूं और ढोल बजा कर कहता हूँ कि, तुम्हारा एक श्वास जो जाता है उसकी कीमत चौदह लोक की कीमत है इस लिये प्रत्येक श्वास में तुम परमात्मा का नाम लो। श्वास व्यर्थ में न जाने दो। क्योंकि, इस श्वास का क्या विश्वास ? शरीर से निकल गया फिर इसमें आवेगा या नहीं ? श्वास ही जीवन है। श्वास नहीं तो जीवन भी नहीं। जीवन पर्यन्त नाम द्वारा मोक्ष प्राप्त कर जीवन को सार्थक करो। अन्यथा पश्वादि शरीर मिलने पर यह साधन नहीं होगा एक मिनट में १५, साठ मिनट अर्थात् एक घण्टा में ९०० चोवीस घण्टा अर्थात् आठ पहर के दिन रात में २१६००

श्वास चलते हैं। इसी प्रकार एक मास में, एक वर्ष में और सौ वर्ष एक पुरुषायुष में जितने श्वास हों उतनी वार नाम उच्चारण करना चाहिये ॥ १५४-१५५ ॥

---

(१५६)

पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव।
जब सो पारस भेटि है, तब जिव होसी सीव ॥

भगवान् का नाम पारस (स्पर्शमणि) रूप और जीव आत्मा लोह रूप है। जीव जब नामरूप पारस (नाम) से मिल जाता है तब जीव शिवस्वरूप हो जाता है। नाम जप करने से जीव शिव हो जाता है। जीव नाम जीवात्मा का और शिव नाम परमात्मा का है। जीव को शिव कहने से जीवात्मा को परमात्मा कहा गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि सद्गुरु कबीर जीव ब्रह्म का अभेद रूप अद्वैत वाद को मानते थे। जो श्रुतिसिद्ध सिद्धान्त है ॥ १५६ ॥

---

(१५७)

सुख के माथे सिल परै, नाम हृदे से जाय।
बलिहारी वा दुःख को, पल पल नाम रटाय ॥

सुख के माथा पर पत्थर पड़े। क्योंकि, सुख के समय हृदय में जो ईश्वर का नाम रहता है वह चला जाता है। सुख-भोग काल में जीव नाम को भूल जाता है। उस दुःख की बलिहारी है कि जिस काल में पल पल में नाम रटन होता रहता है ॥ १५७ ॥

---

(१५८)

दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करै, (तो) दुख काहे को होय ।।

दुःख के समय भगवान् के नाम-स्मरण सब कोई करते हैं। हे राम हे भगवन्! इस प्रकार की पुकार सब कोई लगाते हैं। परन्तु सुख में स्मरण कोई नहीं करता है। यदि यह जीव सुख के समय भगवान् का स्मरण करे तो दुःख ही क्यों हो ? भगवान् का नाम स्मरण दुःखनिवृत्ति का हेतु है। दुःख हो ता उसको निवृत्त करता है। नूतन दुःख की उत्पत्ति तो कैसे होने देगा ?। अतः सुख के समय से हा नाम-स्मरण का प्रारम्भ कर देना चाहिये। जिससे दुःख की उत्पत्ति ही न होने पावे ।। १५८ ।।



(१५९)

लेने को हरि नाम है, देने को अन दान ।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान ।।

लेने के लिये संसार में हरि का नाम और देने के लिए अन्न का दान है। संसारसागर से तरने के लिये मुख्य साधन अधीनता (नम्रता) और डूबने के लिये अभिमान है। निरभिमानी पुरुष जन्मादि संसार सागर से तरता है और अभिमानी संसार में डूबता है। अतः मुमुक्षु को किसी प्रकार का अभिमान न करना चाहिये। मुक्ति का साधन जो भक्ति है उसका विरोधी अभिमान है ।। १५९ ।।



(१६०)

कबीर सूता क्या करै, उठिन भजो भगवान ।
जम घर जब ले जायंगे, पड़ा रहेगा म्यान ।।

सद्गुरु श्रीकबीर स्वामी कहते हैं कि, हे जीव ! तू सोया सोया क्या करता है । उठ कर नाम स्मरण भगवान् का भजन करो । यम के दूत जब तुमको यम के घर ले जायंगे तब यह शरीर रूपी म्यान यहीं पड़ा रह जायगा तलवार जैसे म्यान में रहती है वैसे ही आत्मा शरीर में रहती है । इसीलिए शरीर को म्यान कहा गया है । सो जाना धर्म आत्मा का नहीं किन्तु शरीर का है । जिवात्माको सोला कर सुखी रखता है । शरीर पर इसका मोह अधिक है । यह जितना अनर्थ करता है शरीर के लिये करता है वह शरीर तो यहीं पड़ा रहेगा, साथ नहीं जायगा । इस लिये शरीर से कष्ट उठा कर भगवान् का भजन करो यह कहा गया है । इन्द्रिय तथा देह दमन करे बिना भजन नहीं होता है और भजन बिना मोक्ष नहीं होता है ।। १६० ।।

---

(१६१)

तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँय ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँय ।।

'तू तू' करके स्मरण करने पर मैं भी तू हो गया । मेरे में हूँपना रहा नहीं । अहंभाव चला गया । मैं जिसका स्मरण करता रहा तद्रूप हो गया । तेरे नाम पर अपने को निछावर (अर्पण) करता हूँ । अब जहाँ देखता हूँ वहाँ तूं ही तूं नजर आता है । आत्मसत्ता खो गई, तुम्हारी सत्ता सर्वत्र रह गई । मैं कोई चीज नहीं, जो कुछ है सो

तू। 'अहं ब्रह्मास्मि' की भावना करने पर आत्मा ब्रह्म हो जाता है। कीट भ्रीङ्गी का चिन्तन करके भ्रीङ्गी हो जाता है। ब्रह्मभिन्न सब मिथ्या है। परमार्थ से है नहीं ॥ १६१ ॥



(१६२)

तू तू करता तू भया, तुझ में रहा समाय।
तुझ माहीं मन मिलि रहा, अब कहुँ अनत न जाय ॥

तू तू करते मैं भी तू हो गया। मैं तुझमें समा रहा हूँ। मन के पीछे मैं दौड़ता था। वह मन भी अब तुझमें ही मिल रहा है। अब कहीं दूसरी तरफ नहीं जाता है। मनसहित मैं भी तू ही हो गया। मन का किया हुआ संसार है। जब मन ही नहीं रहा, प्रभु–चिन्तन करते-करते प्रभुरूप हो गया तब संसार कहाँ? संसार, मन और जीव सब प्रभुरूप हो जाने से अद्वैत सिद्ध हो गया। एक ब्रह्मसत्ता से समस्त जगत् व्याप्त है। जगत् में स्वतन्त्र सत्ता नहीं है ॥ १६२ ॥



(१६३)

माला स्वासे स्वास की, फेरैंगे कोई दास।
चौरासी भरमे नहीं, कटै करम की फाँस ॥

प्रतिश्वास की माला यदि कोई-कोई दास फेरेंगे तो चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण नहीं करेंगे और उनका कर्म-बन्धन कट जायगा। जितने श्वास निकले उतने भगवान् के नाम लेकर निकले तो कर्म-बन्धन

से मुक्त होकर जन्म मरण के चक्र से छूट सकता है। आसन पर बैठकर प्रातःकाल असुक समय तक तुलसी आदि माला का जप करना दूसरी बात है और प्रति श्वास में नाम उच्चारण रूप अखण्ड माला फेरना दूसरी बात है। यहाँ अखण्ड माला का फल-कथन किया गया है॥१६३॥

(१६४)

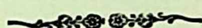
माला फेरत मन खुशी, ताते कछू न होय।
मन-माला के फेरते, घट उजियारो होय॥

माला के फेरने से मन प्रसन्न रहता है। यह अनुभवसिद्ध है। इससे कुछ विशेष लाभ नहीं। परन्तु मनरूप माला के फेरने से सारा शरीर प्रकाशित हो जाता है। ज्ञान–उत्पन्न होता है और ज्ञान से मोक्ष होता है। ज्ञान दो प्रकार का है। एक ब्रह्मरूप दूसरा वृत्तिरूप। ब्रह्मरूप ज्ञान नित्य और सामान्य ज्ञान कहा जाता है। उससे अज्ञान और तत्कार्य की निवृत्ति नहीं होती है। अर्थात् वह अज्ञान का बाधक नहीं। प्रत्युत सत्ता स्फूर्ति प्रदान कर साधक है। अतएव ब्रह्मरूप ज्ञान मोक्ष का साधक नहीं। वृत्तिरूप ज्ञान अनित्य और विशेष ज्ञान कहा जाता है। उससे अज्ञान और तत्कार्य की निवृत्ति होती है। यह वृत्ति-ज्ञान मन का परिणाम (कार्य) है। मन से भगवान् का स्मरण करना मन-माला फेरना कहा जाता है। मन माला जब फेरी जाती है अर्थात् मन से जब परमात्मा का चिन्तन किया जाता है तब वृत्ति ज्ञानरूप हो जाती है। यही विशेष ज्ञान है। इसी से अज्ञान तत्कार्य की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति रूप मोक्ष होता है। अतः यह कहा गया कि–'मन माला के फेरते घट उजियारो होय'॥ १६४॥

(१६५)

माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मनका मन का फेर॥

माला फेरते-फेरते युग चला गया। परन्तु मन का फेर मिटा नहीं। जीव! तू हाथ की माला की मणिका को छोड़ दे और मन की मणिका को फेर। तुलसी आदि की माला को फिराने से मन विषयों की तरफ से फिर कर परमेश्वर में लगता है। यही जब नहीं हुआ [मन विषयों की तरफ फिरता ही रहा] तो माला फिराने से क्या प्रयोजन? अतः माला के साथ-साथ मन को भी विषयों की ओर से परमात्मा की तरफ फेरो। तब ज्ञान होकर मोक्ष भी होगा। यहाँ माला फेरने के निषेध में नहीं किन्तु मन को विषयों की ओर से फिराने में तात्पर्य है॥ १६५॥



(१६६)

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुआ तो चहुदिस फिरै, यह तो समिरन नाँहि॥

माला तो हाथ में फिरती हो, जिह्वा मुख में फिरती हो और मन तो चारो दिशाओं में फिरता हो तो यह स्मरण नहीं कहा जाता है। माला, हाथ, जिह्वा, मुख और मन इन सबकी क्रिया चालु हो, एकाग्रता प्राप्त नहीं हुई हो तो यह स्मरण नहीं कहा जाता है। किन्तु मन एकाग्र करके माला फेरी जाय तब वह स्मरण कहा जाता है। क्योंकि, चञ्चल मन न तो ध्यान का और न ज्ञान का ही हेतु है। स्थिर मन ज्ञान ध्यान

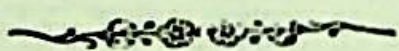
का हेतु है। एवं मन की स्थिरता में माला हेतु है। ध्यान से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष होता है यह बहुत बार कहा गया है॥ १६६॥



(१६७)

माला मोसे लड़ि पड़ी, का फेरत है मोहि।
जा मन फेरे जगत से, राम मिलाऊँ तोहि॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, एक समय अर्थात् जब मैं माला फेर रहा था तब माला मुझसे लड़ पड़ी और कहने लगी कि तुम मुझे क्या फेरते हो। मुझे फिराने से क्या होने वाला है? कुछ नहीं। यदि संसार से मन का फेर लो तो मैं तुम को राम मिला दे सकती हूँ। मन को सांसारिक विषयों से हटा कर यदि परमात्मा की तरफ लगाया जाय तब परमात्मा मिल सकते हैं। माला फिराने से मन विषयों से फिर कर परमात्मा में एकाग्रता को प्राप्त होता है और एकाग्र होने से ज्ञान और ज्ञान से मोक्ष होता है। किसी को निष्प्रयोजन घुमाया जाय तो वह जैसे लड़ पड़ता है वैसे ही विषयों से मन को फिराये विना निष्प्रयोजन माला को फिराने से माला भी लड़ पड़ती है। कल्पना करके मन को विषयों से रोकने का उपदेश दिया गया है॥ १६७॥



(१६८)

माला बनाई काठ की, उस में डाला सूत।
माला बिचारी क्या करे, जपने वाला कपूत॥

तुलसी आदि काष्ठ की माला बनाई गई। उसमें सूत डाला गया। पोया गया जप भी करने लगा। फिर भी मन स्थिर नहीं हुआ।

आत्मशान्ति नहीं मिली। माला को दोष देने लगा। परन्तु माला विचारी क्या करे? क्योंकि, जपने वाला ही कपूत है। मन को भगवान् में न लगाकर वह धनादि अनात्मपदार्थों में लगाता है तो शान्ति कैसे प्राप्त हो ॥ १६८ ॥

---

(१६९)

वाद विवादाँ मत करो, करु नित एक विचार।
नाम सुमिर चित लायके, सब करनी में सार ॥

हे मुमुक्षुआ! आप लोग व्यर्थ का वादविवाद न करो। सदा एक नित्य आत्म-विचार ही करो। चित्त लगा कर भगवन्नाम का स्मरण करो। क्योंकि, यही (नामस्मरण) सर्व कर्मों में उत्तम है। मोक्ष रूप उत्तम फल का साधन है। जिज्ञासुओं को वादविवाद न करना चाहिये। सतत आत्मविचार और नामस्मरण ही करना चाहिये। क्योंकि यही परमपद का मुख्य साधन है ॥ १६९ ॥

---

(१७०)

बाद विवादे विष घना, बोले बहुत उपाध।
मौन गहै सबकी सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥

वाद विवाद करने में बहुत विकार उत्पन्न होता है। 'बोलत बोलत बाढे विकारा'। बोलने से बहुत उपाधि खड़ी होती है। अतः साधु को चाहिये कि मौन ग्रहण करे और जो कुछ कोई कहे तो उसको सहन करे एवं एक तार से सतत नाम का स्मरण करे ॥ १७० ॥

---

(१७१)

अति का भला न बोलना, अति का भला न चूप।
अति का भला न बरसना; अति की भली न धूप ॥

बहुत बोलना भी अच्छा नहीं और अत्यन्त चूप रहना भी अच्छा नहीं। जैसे बहुत बरसना भी अच्छा नहीं और बहुत धूप भी अच्छी नहीं। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' ॥ १७१ ॥

मन

(१७२)

कबीरा मन तो एक है, भावै तहां लगाय।
भावै हरि की भक्ति कर, भावै विषय कमाय॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, मन तो एक है। उसको चाहे जहाँ लगाओ। उस मन से चाहे हरि की भक्ति करो चाहे विषय उपार्जन करो। एक ही होगा। दोनों एक साथ नहीं हो सकता है। कहीं 'हरि' के स्थान पर 'गुरु' पाठ है। अर्थ में भेद नहीं ॥ १७२ ॥

—:०:—

(१७३)

मन के मते न चलिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधू कोइ एक ॥

भक्तजन! आपलोग मन के मत के अनुसार न चलिये। मन के अधीन नहीं रहिये। मन के मत के अनुसार-चलने वाले तो अज्ञानी

एवं विषयी लोग बहुत हैं। जो मन रूपी घोड़ा पर सवार है वह साधु कोई एक ही है। करोड़ों में कोई विरल ही है। मन पर सदा सवार रहना चाहिये। कहीं इधर-उधर जाने देना नहीं चाहिये अपना लक्ष्य जो परमात्मा है उसकी तरफ ही ले जाना चाहिये ॥ १७३ ॥

—:-o-:—

(१७४)

मन-मुरीद संसार है, गुरु-मुरीद कोइ साध।
जो मानै गुरु-वचन को, ताको मता अगाध ॥

सारा संसार अर्थात् संसार के सभी लोग मन के मुरीद (शिष्य) हैं, गुरु के नहीं। गुरु के मुरीद कोई-कोई साधु होते हैं। जो सन्त गुरु के वचन को मानते हैं, गुरु उपदेश के अनुसार आचरण करते हैं उनका निश्चय अगाध है। आचरणशील सन्त ही श्रेष्ठ होते हैं। अज्ञानी मन के और ज्ञानी गुरु के शिष्य होते हैं ॥ १७४ ॥

—:-o-:—

(१७५)

मन को मारूँ पटकि के, टूक-टूक होइ जाय।
विष की क्यारी बोइके, लुनता क्यों पछिताय ॥

मलिन मन कल्याण मार्ग में प्रतिबन्धक है। अतः उसको पटक कर मारूँ। जिससे वह टुकड़े-टुकड़ा हो जाय। क्योंकि, विष की क्यारी में विष बोकर लुनते समय (काटते समय) क्यों पछताना चाहिये। जो चीज बोया जाता है वही काटा जाता है। उसी का फल भोगना

पड़ता है। विष बोया जाता है तो विष ही ऊगता है और उसका फल मृत्यु दुःख भोगना पड़ता है। मलिन मन को प्रथम से ही मार देने पर पीछे पछताना न पड़े। मन को मारना उसको निर्मल बनाना है॥१७५॥

—:-०-:—

(१७६)

मन पाँचों के वसि परा, मन के वस नहिं पाँच।
जित देखूँ तित दौ लगी, जित भागूँ तित आँच॥

मन पांचों ज्ञान इन्द्रियों के (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण के) वश में पड़ा है। जहां इन्द्रियां जाती हैं वहां मन को जाना ही पड़ता है और मन के वश में यथोक्त पांच इन्द्रियां नहीं हैं। जहाँ देखता हूँ वहाँ इन्द्रिय और मन ये दोनों लगे ही रहते हैं। जीव के पीछे ही पड़े रहते हैं। जहाँ भाग कर जाता हूँ वहीं आँच लगा रहता है। प्रतिबन्धक रूप से खड़े ही रहते हैं। इनसे बचने के लिये कोई स्थान नहीं हैं॥ १७६॥

—:-०-:—

(१७७)

कबीरा वैरी सबल हैं, एक जीव रिपु पाँच।
अपने-अपने स्वाद को, बहुत नचावैं नाच।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, मन के सहित पाँचों इन्द्रियाँ जीव के सबल शत्रु हैं। जीव एक है और ये शत्रु पाँच हैं। एक तो ये प्रबल हैं और दूसरे संख्या में पाँच हैं। जीव दुर्बल है और संख्या में एक है।

ये पाँचों इन्द्रियाँ अपने-अपने स्वाद के लिये जीव को बहुत नाच नचाती रहती हैं। जब से यह जीव संसार में आया है तब से विषयों के पीछे नाचता रहता है। कभी शान्त होने नहीं पाया है ॥ १७७ ॥

—:-o-:—

(१७८)

मन के मारे बन गये, बन तजि बस्ती माहिं।
कह कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाहिं॥

चञ्चल मन वाले मन के वश में होकर एवं साधु बनकर वन में गये। परन्तु वहाँ भी मन साथ ही गया तब वन को त्यागकर बस्ती में आये यहां भी मन साथ ही आया। कबीर कहते हैं कि क्या किया जाय ? यह मन कहीं भी स्थिर नहीं रहता है। जीव को भी स्थिर होने नहीं देता है। जब तक यह मन का संग छोड़ कर परमात्मा तरफ मुड़ेगा नहीं तब तक स्थिर होने नहीं पायगा। स्थिर होना मुक्ति पद प्राप्त करना है ॥ १७८ ॥

(१७९)

जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौर।
सहजै हीरा नीपजै, जो मन आवै ठौर॥

जितनी लहर समुद्र की उठती है उतनी ही मन की भी दौर है। यदि यह मन विषया की तरफ से लौट कर आत्मा के पास आ जावे तो सहज में ही हीरा बन सकता है। विष्णु पद (मोक्ष) को प्राप्त हो सकता है ॥ १७९ ॥

(१८०)

पहले यह मन काग था, करता जीवन-घात ।
अब तो मन हँसा भया, मोती चुँगि-चुँगि खात ॥

प्रथम यह मलिन मन काग समान था। क्योंकि जीवों का घात करता था। जैसा काक क्षुद्र जन्तुओं को मार मार कर खाता है वैसे ही यह मन भी जिस जीव के पीछे पड़ता था उसको जन्म मरण में डालता वा स्त्रियादि विषय भोग करता रहता था। अब तो निष्काम कर्म द्वारा शुद्ध होकर हंस हो गया है। आत्म-आनन्द रूपी मोती को चुंग चुंग कर खाता है। विषयानन्द को छोड़कर ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है। मान सरोवर में काक बक आदि पक्षीगग मत्स्यादि जन्तुओं को मार मार कर खा जाते हैं। और हंस पक्षी मोती चुंगते हैं। मन जब मलिन था तब विषयानन्द का अनुभव करता था। अब शुद्ध हुआ तब आत्मानन्द का अनुभव करता है ॥ १८० ॥

—: ० :—

(१८१)

मन के बहुतक रंग है, छिन-छिन बदले सोय ।
एकै रंग में जो रहै, ऐसा विरला कोय ।

मन के बहुत रङ्ग हैं। वह मन क्षण क्षण में बदलता रहता है। उसके साथ जीव भी हैरान होता रहता है। जो जीव एक रङ्ग में ही रहता है वह तो कोई विरल ही सन्त होता है। यहां रंग का अर्थ वासना है। यह जब से संसार में आया है तब से जिन जिन विषयों को भो.ता आया है उनकी वासना रूप रङ्ग इस में पड़ा हुआ है।

जीसका वासना रूप संस्कार उद्‌बुद्ध होता है उसी विषय पर मन दोड़ दोड़ कर जाता रहता है। परदेश में बहुत से पदार्थ पड़े हैं। जिसका भोग इसने नहीं किया है। न देखा है और न सुना है। उसपर मन कभी नहीं जाता है। क्योंकि, उसकी वासना इसमें नहीं है। जैसे वस्त्र में पड़े हुए रङ्ग को जल से धो कर साफ करने से वस्त्र स्वच्छ हो जाता है वैसे ही मन में पड़े हुए विषयसंस्कार (विषयवासना) को ज्ञान से धो कर साफ करने से मन भी स्वच्छ हो जाता है। मन में रही हुई विषय वासना के छूट जाने से मन विषयों की तरफ जाना छोड़ देता है। तब ब्रह्मचिन्तन करने लगता है। अनन्त वार ब्रह्मानन्द का अनुभव करने से ब्रह्म का रङ्ग इस पर चढ़ जाता है। जिसको भगवद्वासना कहते हैं। जिसकी वासना होती है उसी तरफ यह जाता है यह नियम है। बार बार ब्रह्म तरफ जाने से ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। ॥ १८१ ॥

—: ० :—

(१८२)

हिरदे भीतर आरसो, मुख देखा नहिं जाय।
मुख तो तबहीं देखसी, दिल की दुविधा जाय॥

हृदय के भीतर मन रूप आरसी = दर्पण है। परन्तु मुख देखा नहीं जाता है। स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता है। हे जीव ! मुख तो तुम तभी देख सकोगे जब दिल की दुविधा चली जायगी। दिल = मन में जो आत्मविषयक दुविधा = संशय है वह चला जायगा तब संशय विपर्यय रहित यथार्थ आत्मविषयक ज्ञान प्राप्त होगा और ज्ञान से मोक्षपद प्राप्त होगा। आत्मा और परमात्मा दो है या एक, इस प्रकार का जो संशय है उसको दुविधा कहा जाता है। निश्चय संशय का नाशक है। आत्म-

विषयक अद्वैत निश्चय से आत्मविषयक संशय दूर हो जाता है। केवल इतना ही नहीं किन्तु यथार्थ अद्वैत निश्चय रूप ज्ञान से अविद्या तत्कार्य की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति रूप मोक्ष भी होता है। दुविधा का निवर्तक ज्ञान परोक्ष और मुख देखना रूप ज्ञान अपरोक्ष समझना चाहिये। अन्यथा मुख देखनारूप प्रथम दुविधा की निवृत्ति का कथन असंगत हो जायगा ॥ १८२ ॥

—:०:—

(१८३)

पानी हूँ ते पातला, धूँआँ हूँ ते झीन ।
पवन हुं ते अतिउतावला, दोस्त कबीरा कीन ॥

यह मन पानी से भी अधिक पतला, धूम से भी अधिक झीन सूक्ष्म और पवन से भी अधिक शीघ्र गतिमान है। जिससे कबीरा = जीव ने दोस्ती = मित्रता की है। उसी के साथ (विषयों की तरफ) जाता है। उसी के साथ आता है। उसी का कहना करता है। उसी के साथ सुखी दुःखी होता रहता है और उसी के साथ जन्म मरणादि क्लेश को अनुभव करता है। एवं मन को अपना स्वरूप मान रखा है। मन में जो दुःख सुख है उसको अपने में मानता है वस्तुतः आत्मा सुख दुःख से रहित ब्रह्मरूप है भ्रम से अपने को मन से अभिन्न और ब्रह्म से भिन्न मानता रहता है ॥ १८३ ॥

—:०:—

(१८४)

कबिरा मन हि गयंद है, आँकुस दै दै राखु ।
विष की बेली परिहरी, अमृत का फल चाखु ॥

कबिरा = हे जीव ! यह मन गजेन्द्र = मस्त हाथी है । इसको दोष-दृष्टि वैराग्य तथा ज्ञानरूप अङ्कुश दे देकर अपने पास रखो, विषयों की तरफ न जाने दो । विषय विष की लता को त्याग कर अमृतरूप आत्म-लता का मोक्ष फल को आस्वादन करो । मनरूपी हाथी को ज्ञानरूपी अंकुश से वश में कर एवं विषय सुख को त्याग कर आत्म-सुख का अनुभव करो ॥ १८४ ॥

—:०:—

(१८५)

कुंभे बाँधा जल रहै, जल बिनु कुंभ न होय ।
ज्ञानै बाँधा मन रहै, मन बिनु ज्ञान न होय ॥

ज्ञानरूपी अंकुश से मन को वश में रखना चाहिये यह कहा गया । उस पर शङ्का होती है कि, ज्ञान मन का कार्य है वह अङ्कुश बनकर अपने कारण मन को कैसे वश करेगा ? इसका उत्तर देते हैं--जल के बिना कुम्भ (घड़ा) उत्पन्न नहीं होता है किन्तु जल से मिट्टी भिंजती है तब कुम्भ उत्पन्न होता है । जैसे वह कुम्भ उत्पन्न होकर अपने में (कुम्भ में) जल को बाँध देता है वैसे ही मन से ज्ञान उत्पन्न होता है और वह अङ्कुश बनकर मन को बाँधता है ॥ १८५ ॥

—:०—

(१८६)

मन माया तो एक है, माया मनहि समाय ।
तीन लोक संसय परा, काहि कहूँ समुझाय ॥

माया कारण है और मन कार्य । अतः ये दो हैं । एक नहीं । परन्तु माया जा कर मन में समा जाती है । इस लिये 'मन और माया एक है' ऐसा कहा जाता है । मन के कारण तीनों लोक अर्थात् सभी जीव संशय में पड़े हैं । इनको आत्मा और परमात्मा विषय में संशय हो गया है । 'सशयात्मा विनश्यति' संशय वाला आत्मा जन्म मरण में रहता है । मुक्त हो नहीं पाता है । सद्गुरु कहते है कि मैं, किसको समझा कर कहूँ । संशयरहित कोई हो ता उस का कहूँ । ऐसा कोई है नहीं ॥ १८६ ॥

—:o:—

(१८७)

मन सायर मनसा लहरि, बूड़े वड़े अनेक ।
कह कवीर ते बाँचि हैं, जाके हृदय विवेक ॥

मन सागर और मन की इच्छा तरंग समान है । इसमें वड़े वड़े असंख्य पुरुष बूड़ गये हैं । कवीर स्वामी कहते हैं कि, इसमें डूबने से वही बचता है जिसके हृदय में विवेक है । मन रूपी समुद्र की इच्छा रूपी तरङ्ग में डूबने से वही बचता जिसको विवेक है । जो ज्ञानी हंस है । मन सागर में डूबना मन के पीछे विषयों की तरफ चल कर जन्म मरण में पड़ना है ॥ १८७ ॥

—:o:—

(१८८)

तन बोहित मन काग है, लख जोजन उड़ि जाय।
कबहीं दरिया अगम बहि, कबहीं गगन समाय॥

शरीर जहाज और मन काग रूप है। उड़ उड़ कर योजन चला जाता है। कभी अथाह समुद्र में बह जाता है और कभी आकाश में समा जाता है। एक पल में सारे संसार में फिर आता है॥ १८८॥

—:o:—

(१८९)

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइये, मनहीं की परतीत॥

आत्मा के प्रयत्न से मन के हार जाने पर निरुद्ध हो जाने पर सारे संसार की हार हो जाती है। मन को जीत लेने से सारे संसार को जीत लिया ऐसा समझना चाहिये और मन की जीत होने पर, आत्मा के वश में न रहने पर सारे संसार की जीत हो जाती है। कबीर स्वामी कहते हैं कि मन के ऊपर पूरा विश्वास होने पर पिउ=हरि की प्राप्ति होती है। मन पूर्णरूप से निगृहीत हो जाने पर विश्वास होता है कि अब यह विषयों की ओर नहीं जायगा। तब प्रभु की प्राप्ति होता है। मन के वश होने पर सारा संसार वश में हो जाता है और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। इस कथन से यह समझना चाहिये कि, आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। अतः प्रयत्नपूर्वक मन को वश करना चाहिये॥१८९॥

—:o:—

(१९०)

तीनि लोक टींडी भई, उड़िया मन के साथ ।
हरिजन हरि जाने विना, परे काल के हाथ ॥

तीनों लोक के सभी जीव टींडी होकर मन के साथ ऊड़ रहे हैं। विषयासक्त होकर जन्मादि दुःख को प्राप्त हो रहे हैं। यहां तक कि, मन के पीछे पड़ कर हरिजन महात्मा लाग भी हरि को जाने विना ब्रह्म-साक्षात्कार किये विना काल के हाथ में पड़ रहे हैं। प्रारब्ध समाप्त होने पर सभी के शरीर कालधर्म को प्राप्त हो ही जाते हैं ॥ १९० ॥

—:०:—

(१९१)

बाजीगर का बंदरा, ऐसा जिउ मन साथ ।
नाना नाच नचायकै, राचै अपने हाथ ॥

बाजीगर का बंदर जैसे बाजीगर के साथ रहता है और बाजीगर बंदर को अनेक प्रकार का नाच नचाकर एवं अपने साथ रखकर आनन्द मनाता रहता है वैसे ही जीव मन के साथ रहता है और मन जीव को अनेक प्रकार का नाच नचा कर एवं अपने पास रखकर आनन्द मनाता रहता है। मन स्वयं नाचता रहता है, विषयों की तरफ दौड़ता रहता है और जीव को नचाया करता है, विषयों की तरफ दौड़ाया करता है। एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण कराया करता है। जैसे मन द्वारा विषय-चिन्तन कर विषय की तरफ जाता है वैसे ही मन द्वारा भगवत्-चिन्तन कर भगवान् को तरफ जाता है। जीव को चाहिये कि, मन को वश कर एवं विषयों को त्याग कर भगवत् चिन्तन करे। जिससे

भगवत् प्राप्ति कर यह यथोक्त नाच नाचने से मुक्त हो। जन्मादि संसार सें मुक्त होकर परमानन्द को प्राप्त हो ॥ १९१ ॥

—:-o-:—

(१९२)

मन करि सुर मुनि जँहड़िया, मन के लक्ष दुवार ।
ई मन चंचल चोर ई, ई मन शुद्ध ठगार ॥

मन के करने से बहुत से सुर = देवगण मुनि = ऋषिमुनि लोग भ्रम में पड़ गये हैं। मन को यहां से भाग निकलने में लाखां दरवाजे हैं। चाहे जहां से यह निकल सकता है। यह मन चञ्चल है। यह मन चोर है और यह मन नितान्त ठग है। बहुत से देवगण और मुनिगण मन से ठगे गये हे यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है। मन को निकलने के लिये, विषयों की तरफ जाने के लिये लाखों दरवाजे हैं शरीर में जितने रोम हैं उतने ही द्वार हैं। वहां से निकल कर मन विषयों की ओर जाता है। अतः चञ्चल है। आत्मा में रहे हुए कल्याण गुणों को हरण करता है। अतः चोर है और आत्मा को ठगता रहता है अतः अत्यन्त सफेद ठग है॥ १९२॥

—:-o-:—

(१९३)

मन पतंग गैयर हनै, मनसा भई सचान ।
जंत्र मंत्र माने नहीं, लागी उड़ि उड़ि खान ॥

मनरूपी मतंग सिंह जीवरूपी मस्त हाथी को मारता है और मन की इच्छा बाज पक्षी = चिड़िया हो गई है। वह यन्त्र मन्त्र कुछ भी मानतो

नहीं है। उड़ उड़कर अन्य कबुतरादि पक्षियों को खाने लग रही है, विषयभोग कर रही है॥ १९३॥

—:-०-:—

(१९४)

मन गयंद मानै नहीं, चलै सुरति कै साथ ।
दीन महावत क्या करैं, अंकुश नाहीं साथ ॥

मनरूपी गजेन्द्र मानता नहीं है। ध्यान के साथ चलने लगता है। जीवरूपी गरीब महावत क्या कर सकता है ? क्योंकि उसके पास विषय-विरागरूपी अंकुश नहीं। विषयों में दोषदृष्टि और तत्प्रयुक्त वैराग्य होने पर मन निरुद्ध हो सकता है॥ १९४॥

—:-०-:—

(१९५)

मन स्वारथ आपुहि रसिक, विषय लहरि फहराय ।
मन के चलतै तन चलत, ताते सरबसु जाय ॥

मन स्वार्थी है। आप रसिक है। विषयरूप लहर को देख कर फहराने लगता है। चञ्चल हो जाता है। मन के चलने से शरीर भी चलने लगता है और शरीर के चलने से सर्वस्व चला जाता है। विषयभोग करने से किया कराया सब साधन नष्ट हो जाते हैं॥ १९५॥

—:-०-:—

(१९६)

मन गया तो जाने दे, गहि कर राख सरीर ।
विना चढ़ाये कामठी, क्यों कर लागे तीर ॥

हे साधक गण ! मन विषयों पर गया तो जाने दो। रोकते हुए न रुका तो जाने दो। शरीर को पकड़ रखो, मन के पीछे जाने न दो। जैसे धनुष पर वाण चढाये विना वाण लक्ष्य वेधन नहीं करता है वैसे ही शरीर से भोग करे विना पाप नहीं लगता है। शरीर से भोग और भोग से पुण्य पाप होता है यह नियम है ॥ १९६ ॥

—:-o-:—

(१९७)

जानै था तब क्यों किया, अब करि क्यों पछताय ।
बोया बीज बबूर का, आम कहाँ से खाय ॥

हे जीव ! जब तू जानता था कि, असत्कर्म का फल दुःख होता है तब उसको क्यों किया ? और जब किया तब करके अब पश्चात्ताप क्यों करता है ? जब तूने दुःखरूप बबूल का असत्कर्म रूप बीज बोया है तो आम कैसे खायेगा ? जिसका बीज बोया जाता है उसी का फल मिलता है, यह नियम है। दुःखरूप बीज का सुखरूप फल कैसे मिल सकता है ? ॥ १९७ ॥

—:-o-:—

(१९८)

मन जानै सब बात, जानि बूझि अवगुन करै ।
क्यों कर हो कुसलात, कर दीपक कूवें परै ॥

मन सब बातों को जानता है कि शुभ कर्मों का फल सुख और अशुभ कर्मों का फल दुःख होता है फिर भी वह जान बूझकर अशुभ कर्म ही करता है तो कुशलता कैसे हो सकती है ? हाथ में दीपक लेकर कुयें में पड़ता है। ज्ञान रूपी दीपक को हाथ में लेकर दुःखरूप कूप-संसार में पड़ता है । जन्म मरण रूप संसार दुःख रूप जल से भरा है ॥१९८॥

—:-०-:—

(१९९)

मन को मिरतक देखि के, मति मानै विश्वास ।
साधु तहाँ लगि भय करै, जब लगि पिंजर श्वास ॥

किसी समय मन को मृतक (मुर्दा) समान देखकर उसका विश्वास न करना चाहिये । क्योंकि साधु लोग तो वहाँ तक मन से डरते रहते हैं जहाँ तक शरीर में श्वास रहता है । उपवास आदि अभ्यास के द्वारा दुर्बल हुआ मन फिर बलवान् हो जाता है । भगवान् ने ठीकही कहा है=

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥
(भ. गी. अ. २ श्लो. ५९)

यद्यपि इन्द्रियों के द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु राग नहीं निवृत्त होता है

और इस पुरुष का तो राग भी परमात्मा को साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाता है। अतः मन का विश्वास कभी नहीं करना चाहिये ॥ १९९ ॥



(२००)

कबीर यह मन लालची, समुझै नाहिं गमार।
राम भजन में आलसी, भोजन में हुसियार ॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि यह मन लालची (लोभी) और गवाँर (ग्रामीण जंगली मूर्ख) है। लोभ करने से जो हानि होती है उसको यह समझता नहीं है। राम भजन में आलसी और भोजन करने में, विषय भोग करने में बड़ा हुसियार चतुर है। जिन विषयों के लिए यह लोभ करता है वे सब मिथ्या हैं। उनमें सुख नहीं है। उनका भोग वासना द्वारा जन्म मरण का हेतु है। इस बात का यह मूर्ख समझता नहीं है। राम के भजन में बड़ा आलसी है, भजन नहीं करता है। भोजन में अर्थात् विषय भोग करने में बड़ा चतुर है ॥ २०० ॥



(२०१)

मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन हरिसों मिलै, तो हरि मिलै निशंक ॥

यह मन दाता है। यह मन लालची है। यह मन राजा है और यही मन रंक भी है। किन्तु यदि यह मन हरि से मिले तो हरि भी इससे अवश्य मिल सकते हैं इसमें शङ्का नहीं। माया में तीन गुण हैं। मन

माया का कार्य है। अतः मन में भी तीन गुण हैं। सत्त्व, रज, तम। जब मन सात्त्विक होता है तब दान करने से दाता कहा जाता है।जब मन राजस होता है तब लोभी, राजा और रंक कहा जाता है। यदि यह विशुद्ध सात्त्विक हो कर श्रीं हरि का भजन करने लग जाय तब हरि भी इसको अवश्य मिल सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं। अतः हरि की प्राप्ति के लिये सात्त्विक हो कर भजन करना चाहिये॥ २०१॥

---

(२०२)

तन की भूख सहज अहै, तीन पाव की सेर।
मन की भूख अनन्त है, निगलै मेरु सुमेर॥

तीन पाव अथवा शेर अन्न से मिटने वाली तन की (शरीर की) भूख सहज है। परन्तु मन की भूख अनन्त है, बहुत बड़ी है। उस से वह मेरु सुमेरु को भी निगल जाता है। तो भी उसको तृप्ति नहीं होती है। सर्वभक्षी मन है। विभिन्न शरीरों में रह कर खाद्य अखाद्य सब को खाता रहता है॥ २०२॥

—:०:—

(२०३)

यह मन मैला नीच है, नीचे कर्म सुहाय।
अमृत छाड़ै मान कर, विषै प्रीति सों खाय॥

यह मन मलिन है। अत एव नीच भी है। इसी लिये इस को नीच कर्म ही अच्छा लगता है। ब्रह्मसुख रूप अमृत को त्याग कर और विषय

सुख को अमृत पान कर उसको प्रीति से खाता हैं। अमृत को विष और विष को अमृत मानना अविद्या है। महर्षि पतञ्जलि ने योग सूत्र में कहा है कि, 'अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्माख्यातिरविद्या' अर्थात् अनित्य में नित्य बुद्धि अशुचि में शुचि बुद्धि दुःख में सुख बुद्धि और अनात्मा में आत्मबुद्धि अविद्या कही जाती है। प्रकृत में विषय-विष में अमृत बुद्धि करके मन प्रेम से विषय भोग करता है। यही इसमें अविद्या है॥ २०३॥

(२०४)

मन पंछी तब लगि उड़ै, विषय वासना माहिं।
प्रेम बाज की झपट में, जब लगि आवै नाहिं॥

मन रूप पक्षी विषय तथा विषय वासना में तब तक उड़ता रहता है, विषयों की तरफ जाता रहता है जब तक वह भगवद् विषयक प्रेमलक्षणा भक्ति रूप बाज पक्षी के झपट में नहीं आता है। अर्थात् जैसे अन्य पक्षी आकाश में तब तक उड़ते रहते हैं जब तक उन के ऊपर बाज पक्षी का आक्रमण नहीं होता है वैसे ही मन रूपी पक्षी तभी तक विषय तरफ जाता रहता है जब तक प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त नहीं होती है। सर्वोत्कृष्ट ईश्वर प्रेम प्राप्त होने पर निकृष्ट विषय प्रेम निवृत्त हो जाता है। ठीक ही है उत्तम पदार्थ मिलने पर तुच्छ पदार्थ को कौन लेने जायगा ? अर्थात् कोई नहीं॥ २०४॥

(२०५)

दौड़त दौड़त दौड़िया, जेतिक मन की दौड़।
दौड़ि थके मन थिर भया, वस्तु ठौर की ठौर॥

मन की जितनी दौड़ थी उतना वह दौड़ा। अन्त में थक कर स्थिर हो गया। जिसको प्राप्त करने के लिए वह तीर्थादि में दौड़ता था। वह आत्मतत्त्व तो पास में ही था। आत्मा और परमात्मा एक ही है। अतः पास में ही है। सब के हृदय देश में अन्तर्यामी रूप से स्थित है। ज्ञान न होने से मन उसको प्राप्त करने के लिये तीर्थादिक में दौड़ता है। जब थक जाता है तब बैठ जाता है जहाँ बैठता है वहीं वह प्रभु विराजमान है उसको प्राप्त करके वह कृतकृत्य हो जाता है और पश्चात्ताप करता है कि, अहो ? जिसको खोजने के लिये मैंने इतनी दौड़ लगाई वह प्रभु तो पास में ही है॥ २०५॥

---

(२०६)

बात बनाई जग ठग्यो, मन पर मोध्यो नाहिं।
कहैं कबीर मन लै गयो, लख चौरासी माहिं॥

लोग बात बना-बना कर सबको ठगते रहते हैं। परन्तु मन को समझाते नहीं हैं। कबीर स्वामी कहते हैं कि अशिक्षित मन जीव को चौरासी लाख योनि में ले जाता है। जन्म मरण चक्र में डाल देता है। यदि मन को समझा कर वश में किया गया होता तो निरुद्ध मन ने ईश्वर-चिन्तन कर जीव को मुक्त कर दिया होता॥ २०६॥

---

(२०७)

मनुवाँ तूं क्यों बावरा, तेरी सुध क्यों खोय।
मौत आय सिर पै खड़ी, ढलते वेर न होय ॥

हे मन ! तू उन्मत्त (पागल) क्यों हो गया है ?। तुमने तुम्हारी सुध बुध को क्यों खो दिया है ?। मौत आकर तुम्हारे सिर पर खड़ी है। इस शरीर को ढ़लते देरी नहीं लगेगी। अतः तूं चेत जा, विषयों तरफ जाना छोड़ दे। नाम स्मरण कर, हरि चिन्तन कर हरि स्वरूप हो जा। क्योंकि भृङ्गीकीटन्याय से यह सिद्ध है कि जो जिसका चिन्तन करता है वह उसी के स्वरूप हो जाता है।

इस साखी में मन को समझाया गया है। यहां यह प्रश्न होता है कि, संसार-बन्धन जीव को है, मन को नहीं। मुक्त होना जीव को है मन को नहीं। तो फीर मन क्यों समझने लगा ?। इसको समझने में प्रयोजन तो है नहीं। इसका उत्तर यह है कि, सुख दुःख मन का धर्म हैं, जीव का नहीं। अतः मन ही बन्धन में है, जीव नहीं। मुक्त भी मन होने वाला है, जीव नहीं। पुनः प्रश्न होता है कि, जीव को जब बन्ध मोक्ष नहीं है तो मोक्ष के लिए उसके साधन की क्या आवश्यकता है ?। इसका उत्तर यह है कि यद्यपि जीव को सुख दुःख बन्ध मोक्ष नहीं है, किन्तु मन को है तथापि मनगत सुख दुःख बन्ध मोक्ष को जीव भ्रम से अपने में मानता है, इसी भ्रान्ति को दूर करने के लिये सब साधन हैं। अनादि अविद्या, तज्जन्य भ्रान्ति, भ्रान्ति-जन्य जन्मादि बन्ध, शमदमादि साधन से मुक्ति यह क्रम समझना चाहिये ॥ २०७ ॥



(२०८)

कबीर मन मिरतक भया, दुर्लभ भय सरीर ।
पीछै लागा हरि फिरे, यूं कहि दास कबीर ।।

जब यह मन साधन से मर जाता है तब शरीर दुर्लभ हो जाता है, अर्थात् तब शरीर नहीं बनता है। यह आत्मा शरीर बन्धन से मुक्त हो जाता है। जिसका मन मृतक भाव को प्राप्त होता है उस सन्त के योग क्षेम वहन करने के लिये हरि मानो पीछे लगे फिरते हैं। इस प्रकार कबीर स्वामी कहते हैं कि भक्त भगवान् के नाम लेते हुए चलते हैं और भगवान् भक्त के नाम लेते हुए भक्त के पीछे पीछे चलते हैं। गुरु नानक देव ने क्या ही अच्छा कहा है—"पीछे लग हरि जो चले, कहत कबीर कबीर" श्रीभगवान् ने भगवद्गीता में कहा है—

अनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।९–२२।।

जो अनन्यभाव से मेरे में स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए, निष्काम भाव से भजते हैं. उन नित्य एकीभाव से मेरे में स्थितिवाले पुरुषों को योग क्षेम मैं स्वयं प्राप्त करा देता हूँ। भक्त के पास अप्राप्त वस्तु को प्राप्त कर देना योग और प्राप्त वस्तु का रक्षण कर देना क्षेम कहा जाता है। भक्त के ये दोनों कार्य भगवान् करते रहते हैं। ये ही उनके पीछे पीछे फिरना है ।। २०८ ।।

(२०९)

यह मन हरि चरने चला, माया मोह सें छूट ।
बेहद माहिं घर किया, काल रहा सिर कूट ॥

यह मन माया मोह से छूट कर हरि के चरण की तरफ चला, हरि के चरण पकड़ कर चिन्तन करने लगा सीमा रहित व्यापक परमात्मा में घर (रहने का स्थान) कर लिया तब काल (यमराज) शिर कूट कर रह गय । यमराज कर्मानुसार यमयातना देता था सो अब छूट गया । निरुद्ध मन परमात्मचिन्तन में लग गया । परमात्मा रूप हो गया । परमात्मा अर्थात् ब्रह्म के ज्ञान से अज्ञान गया । अज्ञान जाने से तत्कार्य कर्म गया और कर्म जाने से जन्म गया । बेहद में घर करने से अर्थात् ब्रह्म में एकीभाव को प्राप्त हो जाने से मुक्त हो गया । क्योंकि, ब्रह्मरूप हो जाना ही तो मोक्ष है ॥ २०९ ॥



(२१०)

यह मन तो शीतल भया, जब उपजा ब्रह्मज्ञान ।
जेहि बैसंदर जग जरै, सो पुनि उदक समान ॥

जब ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हुआ तब यह मन शीतल हो गया । जिस मन-रूपी अग्नि से सारा संसार जल रहा है यही अब जल के समान शीतल हो गया है । मन एक प्रकार का अग्नि है जो सब के हृदय को जलाया करता है । परन्तु जब जीव ब्रह्म का अभेद ज्ञान उत्पन्न होता है तब वह शीतल हो जाता है । फिर हृदय को नहीं जलाता है । प्रत्युत परमानन्द को अनुभव करता है ।

पांच विषय हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इन के ज्ञान के साधन पांच इन्द्रियाँ हैं। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण। ये पांचो बाह्य करण कहलाते हैं। छठा इन्द्रिय मन है। जो अन्तःकरण कहलाता है। यह उक्त पांचों इन्द्रियों का सहायक है। इसके विना किसी इन्द्रिय से किसी विषय का ज्ञान नहीं होता है। मन का स्वतन्त्र विषय सुख दुःख है। सुख दुःख का ज्ञान मन से ही होता है। आत्मा का ज्ञान भी मन से ही होता है। यह नैयायिकों का सिद्धान्त है।

विवरणानुसारी वेदान्ती लोग मन को इन्द्रिय नहीं मानते हैं। सुख दुःख साक्षी भाष्य है। मन का विषय नहीं। जैसे चक्षु का स्वतन्त्र विषय रूप है वैसे मन का कोई स्वतन्त्र विषय होता तो मन इन्द्रिय कहलाता सो तो है नहीं अतः मन इन्द्रिय नहीं। आत्मा का ज्ञान मन से नहीं किन्तु तत्त्वमस्यादि महावाक्य से होता है। अतः मन का कोई स्वतन्त्र विषय न होने से मन इन्द्रिय नहीं। चक्षुरादि के समान तत्त्वमस्यादि महावाक्य का भी मन सहायक है। मन के विना महावाक्य से भी आत्मज्ञान नहीं हो सकता है।

वाचस्पति मिश्र का मत है कि मन के सहित तत्त्वमस्यादि महावाक्य से ब्रह्मात्म का परोक्ष ज्ञान होता है। अपरोक्ष नहीं। जब मन से श्रवण मनन निदिध्यासन और तत्पद त्वंपद अर्थ का शोधन किया जाता है तब ब्रह्मात्म का अद्वैत साक्षात्कार होता है। चाहे जो हो पर मन के विना कोई भी ज्ञान हो नहीं पाता है यह सिद्ध हुआ।

वह मन यदि मलिन चञ्चल हो तो आत्मज्ञान नहीं होता है। और ज्ञान विना मुक्ति नहीं होती है। यह श्रुतिसिद्ध सिद्धान्त है। अतः मन को शुद्ध और स्थिर करने के लिये यहां यह उपदेश दिया गया है ॥२१०॥



(२११)

मन के कहा न कीजिये, मन है पक्का दुष्ट ।
जाय पड़े भवचक्र में, हाथ से जैहैं छूट ॥

हे सन्तजन ! आप लोग मन का कहना न करें । क्योंकि मन बड़ा दुष्ट है । जब वह संसार चक्र में जा पड़ता है तब हाथ में नहीं रहता है । अपने वश में नहीं रहता है । अनर्थ करने लग जाता है । छूटा हुआ मन फिर हाथ में नहीं जाता है अतः निगृहीत मन का भी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ २११ ॥



(२१२)

मन मरे माया मरे, मरि मरि जाय शरीर ।
आशा तृष्णा ना मरे, कहि गये दास कबीर ॥

सतत साधन करने वाले साधक का मन मर जाता है । मन का कारण माया भी मर जाती है और माया का कार्य शरीर भी मर जाता है । परन्तु आशा और तृष्णा नहीं मरती हैं । ये महापुरुषों में देखी जाती हैं । अतः इतनी उच्च कक्षा पर पहुँचने पर भी साधक को चेतते रहना चाहिये । यह कबीर स्वामी कह गये हैं । कहते हैं । यहां वर्तमान में भूत काल का प्रयोग है और दास पद निरभिमानता का सूचक है।२१२।



काम और कामी

(२१३)

जहां काम तहाँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम।
दोनों कबहूँ ना मिलैं, रवि रजनी इक ठाम॥

जहां काम तहां राम नहीं रह सकता है और जहां राम तहां काम नहीं रह सकता है। क्योंकि, रवि = सूर्य और रजनी = रात्रि दोनों एक स्थान पर कभी नहीं मिल सकते हैं। जैसे अन्धकार का प्रकाश विरोधी है। अतः ये दोनों एक स्थान पर एक समय नहीं रह सकते हैं वैसे ही राम का काम विरोधी है। अतः ये दोनों भी एक समय पर नहीं रह सकते हैं। यदि राम = परमात्मा को हृदय में रखना हो = भजन करना हो तो काम = विषय कामना को त्याग देना चाहिये॥२१४॥

(२१४)

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग घट में खान।
कहा मूर्ख कह पंडिता, दोनों एक समान॥

जब तक पुरुष के अन्तःकरण में काम, क्रोध, मद और लोभ की खान है (स्थान है) तब तक क्या मूर्ख और क्या पण्डित ये दोनों एक समान हैं। क्योंकि, कामादि जैसे मूर्ख के हृदय में रहता है वैसे पण्डित के भी। अतः दोनों समान हैं। अतः पण्डितो को चाहिये कि अपने हृदय से काम क्रोधादि को निकाल कर बाहर फेक दें॥ २१४॥

(२१५)

काम काम सब कोइ कहे, काम न चीन्है कोय ।
जेती मन की कल्पना, काम कहावै सोय ॥

काम काम तो सब कोई कहते हैं पर काम को कोई पहचानते नहीं हैं। मन की जितनी कल्पना = विषयकामना हैं वे सब काम कहीं जाती हैं। साधक को चाहिये कि, प्रयत्न पूर्वक विषय-कामना का त्याग करें, वा किसी विषय की असत्कल्पना न करें ॥ २१५ ॥

---

(२१६)

कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥

कामी क्रोधी लालची पुरुषों से भक्ति नहीं हो सकती है। क्योंकि, उनका चित्त काम्य आदि पदार्थों की ओर रहता है, भगवान् की ओर नहीं। जाति, वर्ण तथा कुल आदि के अभिमान को त्याग कर कोई कोई शूर-वीर पुरुष भक्ति कर सकता है। साधक को चाहिये कि किसी प्रकार का अभिमान न करे। ब्राह्मणत्वादि जाति देह की है। आत्मा की नहीं। भ्रान्ति से आत्मा में मानता है। जात्यादि का अभिमान भक्ति का विरोधी है यह वहुत वार कहा गया है ॥ २१६ ॥

(२१७)

भक्ति बिगारी कामियाँ, इन्द्री केरे स्वाद ।
हीरा खोया हाथ से, जनम गँवाया वाद ॥

इन्द्रियों के स्वाद के कारण अर्थात् विषयों में फस कर कामी पुरुषों ने भक्ति को विगाड़ दी है। केवल इतना ही नहीं अपितु ज्ञानरूपी हीरा को भी हाथ से खो दिया है। काम के वश में पड़ने से अदृढ ज्ञान उनका नष्ट हो गया है इसी लिये उन्होंने व्यर्थ जन्म गवा दिया है। मनुष्य शरीर धारण करने का फल उनको नहीं मिला। साधक को चाहिये कि विषयकामना को त्यागकर भक्ति द्वारा आत्म-कल्याण करे॥ २१७ ॥

---

(२१८)

सह कामी दीपक दसा, सोखै तेल निवास ।
कबिरा हीरा संत जन, सहजै सदा प्रकास ॥

कामी पुरुषों की दशा दीपक के साथ मिलती जुलती है जो अपने तेल का शोषण कर आप भी नष्ट हो जाता है। कबीर स्वामी कहते हैं कि सन्त जब हीरा के समान हैं जो स्वभाव से ही सदा प्रकाश करतें रहतें हैं। अर्थात् दीपक और हीरा दोनों प्रकाशक पदार्थ हैं। उन में दीपक अपने आश्रय तेल का शोषण करता है तेल समाप्त होने पर आप ही नष्ट हो जाता है। वैसें ही कामी पुरुष बार-बार भोग-भोग कर भोग के नष्ट होने पर आप भी नष्ट हो जाता है ओर हीरा किसी का शोषण नहीं करता है किन्तु स्वरूप से ही सदा सब को प्रकाशता है। अतः यह

नष्ट नहीं होता है किन्तु सदा विद्यमान रहता है वैसे ही सन्त रूपी हीरा विषय भोग नहीं करता है। अतः विषय के नाश से इनका नाश नहीं होता है। साधक को चाहिये कि काम्य और तद्विषयिणी कामना का त्याग कर भक्ति और ज्ञान द्वारा आत्मा का कल्याण करे॥ २१८॥

—:-०-:—

(२१९)

कामी कबहु न हरि भजै, मिटै न संशय शूल।
और गुनाह सब बक्शि है, कामी डाल न मूल॥

कामी पुरुष कभी हरि का भजन नहीं करता है। इसी लिये उसका संशय रूप शूल मिटता नहीं है। परमात्मा उसके अन्य सब अपराधों को तो क्षमा कर देंगे परन्तु कामी के संसार के डाल और मूल में से कुछ भी नष्ट नहीं होगा। उसका संसार विद्यमान ही रहेगा। वह कभी मुक्त होने नहीं पायगा। अतः कामना को त्याग कर भजन करना चाहिये जिससे आत्मा मुक्त हो॥ २१९॥



(२२०)

कामी लज्जा ना करे, मन माहीं अहलाद।
निन्द ना मांगै सथरा, भूख न मांगै स्वाद॥

कामी पुरुष निन्दित कर्म में भी लज्जा नहीं मानता है। उलटा मन में आनन्द मानता है। जैसे निद्रा बिछौना नहीं मांगती है और भूख स्वाद नहीं मांगती है वैसे ही कामी पुरुष विधिविधान को नहीं

मांगता है। शास्त्रप्रतिषिद्ध कर्म को ही करता है। मुमुक्षु को चाहिये कि निन्दित कर्म में लज्जा और खेद करना चाहिये, आनन्द नहीं ॥२२०॥

क्रोध

(२२१)

क्रोध अगिनि घर घर बढी, जलै सकल संसार।
दीन लीन निज भक्त जो, तिनके निकट उबार॥

क्रोधरूपी अग्नि सबके हृदय रूपी घर में बढ़ रही है। उसमें सारा संसार जल रहा है। जो पुरुष दीन दुःखी एवं भगवान में लीन भगवान् के निज भक्त हैं उनके पास रहने से, सत्संगादि करने से उबार हो सकता है क्रोधाग्नि में जलने से बच सकता है। कामाग्नि केवल कामी को जलाती है और क्रोधाग्नि जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है उसको और क्रोध करने वाले क्रोधी दोनों को जलाती है। अतः क्रोध काम से भी अधिक खराब है। मोक्ष मार्ग में प्रतिबन्धक है। इसलिये क्रोध को प्रयत्नपूर्वक दबाना चाहिये ॥ २२१ ॥

(२२२)

दसौं दिसा में क्रोध की, उठी अपरबल आग।
शीतल संगति साधकी, तहाँ उबरिये भाग॥

दशों दिशा में क्रोध की बहुत प्रबल अग्नि उठी हुई है प्रज्वलित हो रही है। हे साधकगण! साधुओं की संगति अतिशीतल है वहाँ

भागकर जाइये और बचिये। अज्ञानी पुरुष कामी और क्रोधी भी होते हैं। वे क्रोधाग्नि में सदा जलते रहते हैं। सन्त के हृदय में काम नहीं, विषय की इच्छा नहीं। अतएव क्रोध भी नहीं। इसीलिये उनका हृदय सदा शीतल रहता है। इनकी सङ्गति करने वाले साधक भी निष्काम और क्रोधरहित होते हैं। साधक को संसार सागर से उद्धार के लिये सत्सङ्ग में जाना चाहिये ॥ २२२ ॥

(२२३)

कोटी करम लागे रहैं, एक क्रोध की लार।
क्रिया कराया सब गया, जब आया हंकार ॥

एक क्रोध की लैंन में करोड़ो कर्म लगे रहते हैं। जब अहङ्कार आ जाता हैं तब क्रिया कराया सब नष्ट हो जाता है। क्रोध और अहङ्कार दोनों साथ ही रहते हैं। अतः इन दोनों का त्याग ही होना चाहिये ॥ २२३ ॥

लोभ

(२२४)

जब मन लागै लोभ सों, गया विषय में सोय।
कहैं कबीर विचारि कै, कस भक्ती धन होय ॥

सद्गुरु कबीर विचार करके कहते हैं कि जब मन लोभ के साथ मिल जाता है तब वह विषयों की तरफ चला जाता है। जिस वस्तु का

लोभ होता है उसकी ओर चला जाता है। परमात्मा की तरफ नहीं रहता है। तब कहो कि भक्तिरूप धन उसको कैसे प्राप्त हो सकता है ? और भक्ति न होने से ज्ञान और ज्ञान न होने से मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? ॥ २२४ ॥



मोह

(२२५)

कबीर त्रिस्ना पापिनी, लाखों प्रीति न जोरि ।
पैंड पैंड पाछे परै, लागै मोटी खोरि ॥

सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि, तृष्णा (लोभ) बड़ी पापिनी है। उससे प्रीति जोड़ना न चाहिये। उससे प्रेम करना नहीं चाहिये। क्योंकि वह मार्ग मार्ग में, प्रतिमार्ग में, पद पद पर पीछे पड़ती है, सन्मार्ग में द्रव्य खरचने नहीं देती है। जिससे मोटी खोर लगती है, भारी दोष अर्थात् पाप लगता है। पापी से प्रेम करने पर पाप ही लगता है। लोभ और तृष्णा दोनों का अर्थ एक ही है ॥ २२५ ॥



(२२६)

मोह फंद सब फंदिया, कोय न सकै निवार ।
कोई साधु जन पारखी, विरला तत्त्व विचार ॥

सब लोग मोह रूप फन्द में फस गये हैं। इसका निवार (निवारण या विवेक) कोई नहीं कर सकता है। विरल ही कोई पारखी जन साधु

तत्त्व का विचार करता है। असुन्दर में सुन्दर बुद्धि, असत में सत् बुद्धि, दुःख में सुख बुद्धि और असार में सार बुद्धि मोह कहलाती है। जो मिथ्या ज्ञानरूप है। इनका यथार्थ ज्ञान तत्त्व विचार कहा जाता है।२२६।



(२२७)

अमृत केरी पोटरी, सिर से धरी उतारि ।
जाहि कहौं मैं एक है, मोहि कहै द्वै चारि ॥

ब्रह्म ज्ञान रूपी अमृत की गठरी को लोगों ने अपने मस्तक से उतार दिया है ज्ञान से काम नहीं लेता हैं। मैं जिस आत्मा और परमात्मा को एक कहता हूं उसको वे लोग दो चार कहा करते हैं। जीवात्मा और परमात्मा दो चार नहीं हैं किन्तु एक है उसको दो चार बताया करते हैं। यह मोह है। वेद का सिद्धान्त अद्वैत है। इसी को सद्गुरु भी मानते हैं। जो सद्गुरु के सिद्धान्त को वेदविरोधी कहते है वे कबीर साहित्य के ज्ञाता नहीं हैं क्योंकि, सद्गुरु स्वयं कहते हैं ॥ २२७ ॥



(२२८)

जाको मुनिवर तप करैं, वेद थकै गुण गाय ।
सांई देव सिखायना, कोइ नहीं पतियाय ॥

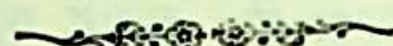
जिसकी प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ मुनिजन तप करते हैं और जिसके गुणगान करके वेद थक गये हैं उसी का उपदेश मैं भी देता हूँ। परन्तु इसका विश्वास कोई नहीं करता है। यही मोह है ॥ २२८



(२२९)

भर्म परा तिहुँ लोक में, भर्म बसा सब ठाउँ ।
कहहिं कबीर पुकारि के, बसैं भर्म के गाँउँ ॥

यह भ्रम तीनों लोक में पड़ा है सब को भ्रम हो गया है भ्रम ने सब जगह वास कर लिया है। कबीर स्वामी पुकार कर सब को कहते हैं कि सब जगह भ्रम का ग्राम बसा हुआ है। कहीं खाली नहीं है। यही मोह है॥ २२९ ॥



(२३०)

युवा जरा बालापन बीत्यों, चौथि अवस्था आई ।
जस मुसवा को तकै बिलैया, तस जम घात लगाई ॥

बालापन, युवापन, वृद्धपन बीत गया। अब चौथी अवस्था आ गई। जैसे मूस (चूहा) को बिलाई ताकती रहती है वैसे ही यमराज घात लगा रहा है। किस समय झपट लेगा कह नहीं सकते हैं। तीनों पन बीत गया, चौथा पन आया तो भी मोह नहीं छूटा॥ २३० ॥

—: ० :—

(२३१)

दर्पण केरो जो गुफा, सुनहा पैठो धाय ।
देखत प्रतिमा आपनी, भूँकि-भूँकि मरि जाय ॥

दर्पण की गुफा में दौड़ कर श्वान (कुत्ता) पैठ जाता है। मोहवश अपने असंख्य प्रतिबिम्बों को देखकर भूँक भूँक कर मर जाता है। श्वान

एक है। उसके प्रतिबिम्ब अनेक हैं। उनको देख कर, मोह से एक में अनेक की कल्पना कर भूँक-भूँक कर मर जाता है वैसे ही आत्मा एक है। उसके प्रतिबिम्ब आभास अनेक हैं, मोह से एक में अनेक की कल्पना कर उनके साथ अनेक प्रकार के व्यवहार कर मर जाता है। एक शरीर को छोड़ कर दूसरा शरीर धारण करता है। 'अत एषोपमा सूर्यकादिवत्' ब्र. सू. अ. ३ पा. २, १८ 'जैसी फूटी आरसी टूक - टूक में देख' ॥ २३१ ॥

—:-o-:—

(२३२)

मनुष विचारा क्या करै, कहे न खुलैं कपाट।
श्वान चौक वैठायके, पुनि-पुनि ऐपन चाट ॥

मनुष्य विचारा क्या करेगा ?। उपदेश करने पर भी उसका मोह रूप कपाट खुलता नहीं है। उसको वार वार विषय भोग करने की आदत पड़ गई है। जैसे श्वान को चौक पूरकर उसपर पूजने के लिये वैठाया जाय तो भी वह वार वार ऐपण चाटता है। क्योंकि उसको चाटने की आदत पड़ गई है। वैसे ही जीव को विष्णुपद देने के लिये ऊँचा स्थान पर बैठाया जाय तो भी मोह से उसको जो विषय भोग की आदत पड़ गई है उसको छोड़ता नही ॥ २३२ ॥

—:-o-:—

अहंकार

(२३३)

अहँ आया तहँ आपदा, अहँ संसय तहँ सोग ।
कहैं कबीर कैसे मिटै, चारो दीरघ रोग ॥

जहां आपा अर्थात् अहंकार है वहां आपदा अर्थात् आपत्ति है और जहां संशय वहां शोक है। कबीर स्वामी कहते हैं कि ये चारो (अहंकार, आपत्ति, संशय और शोक) दीर्घ रोग किसी प्रकार मिट नहीं सकते हैं। अहंकार, अभिमान मान, मद और घमण्ड आदि पर्याय शब्द हैं ।२३३।

---

(२३४)

अहं अगिनि हिरदै जरै, गुरु सों चाहै मान ।
तिनको जम न्योता दिया, हो हमार मिहमान ।

जिसका हृदय अहंकाररूपी अग्नि में जलता रहता है और जो गुरु से मान प्रतिष्ठा की आशा रखता है । उसको यमराज निमन्त्रण देता है और कहता है कि मेरा पहुँना बनो। अर्थात् यमराज उसको बहुत यमयातना (कष्ट) देते हैं । अतः गुरु से सम्मान की इच्छा नहीं करना चाहिये। उनके आगे बहुत दीन भाव से रहना चाहिये। अभिमान नहीं करना चाहिये ॥ २३४ ॥

—:०:—

(२३५)

हरिजन हरि तो एक है, जो आपा मिट जाय ।
जा घट में आपा वसै, साहिब कहाँ समाय ॥

यदि आपा अर्थात् अहंकार मिट जाय तो हरिजन और हरि एक स्वरूप है। जिस हृदय में अहंकार रहता है उसमें साहिब अर्थात् परमात्मा कहाँ समायगा ?। जीव और ईश्वर में भेद कराने वाला अहंकार उपाधि है। वह जब चला गया तब इन दोनों में भेद नहीं। एक स्थान में दो वस्तु रह नहीं सकती है। हृदयरूपी स्थान में जब अहंकार भर गया है तब अन्य को रहने के लिये अवकाश तो है नहीं तो ईश्वर कहाँ समायगा ? अतः अहंकार को हृदय से निकाल देना चाहिये और ईश्वर को वहाँ रखना चाहिये ॥ २३५ ॥



(२३६)

कबीर गर्व न कीजिये, रंक न हसिये कोय ।
अजहूँ नाव समुद्र में, ना जानौं क्या होय ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे साधकजन ! आप लोग गर्व (अहंकार) न करें, गरीब को निर्धन देखकर हसी न करे क्योंकि, अभी भी शरीर रूपी नाव संसार सागर में पड़ी है। न जाने एक क्षण पीछे क्या होने वाला है। परमात्मा किसी का गर्व रहने नहीं देता है। लक्ष्मी चला है। उसके चले जाने में देरी नहीं लगती है। लक्ष्मी के चले जानेपर हसने वाले की वही दशा होने की सम्भावना है। अतः अपने को धनी और दूसरे को निर्धन देखकर अहंकार नहीं करना चाहिये ॥ २३६ ॥



(२३७)

अभिमानी कुंजर भया, निज सिर लीन्हा भार ।
ताको जमरा कूटि हैं, लोहा गढ़त लुहार ।।

अभिमानी जन कुञ्जर = हस्ती (हाथी) हुआ । क्योंकि, कुञ्जर जैसे भार लेकर चलता है वैसे ही वह भी ज्ञान धनादि के अभिमानरूप भार शिर पर लेकर चलता है । उसको यमराज इस प्रकार कूटता है जिस प्रकार लुहार गढते समय लोहे को कूटता है । भयङ्कर यमयातना सहन न करना पड़े इसके लिये अहंकार का त्याग करना चाहिये ।। २३७ ।।

—:-०-:—

(२३८)

भक्त रु भगवत एक है, बूझत नहीं अजान ।
सीस नमावत सन्त को, बड़ा करै अभिमान ।।

अज्ञानी लोग 'भक्त और भगवान् एक है' इस को समझते नहीं हैं। सन्त को शिर झुकाने में (प्रणाम करने में) बड़ा भारी अभिमान करते हैं । ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व आदि जाति के अभिमान से अपने को ऊँच और साधुओं को नीच मानते हैं । यह नहीं समझते हैं कि, "चार वरण से हरिजन ऊँचा" तथा "जाति पाँति पूछो मति कोई, हरि को भजे सो हरि का होई ।" भक्त भगवान् का चिन्तन करके भगवान् हो जाते हैं । अतः वे सबसे ऊँचा हैं ।। २३८ ।।

—:०—

(२३९)

लेने को हरिनाम है, देने को अँन दान।
तरने को अति दीनता, बूड़न को अभिमान॥

वस्तुतः संसार में ग्रहण करने योग्य हरि नाम, देने योग्य अन्न दान और तरने योग्य अतिदीनता = नम्रता है। और डूबने के योग्य अभिमान है। डूबना जन्मना मरना है॥ २३९॥

—:o:—

माया

(२४०)

माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगताँ के पीछै फिरै, सनमुख भागै सोय॥

माया और छाया दोनों एक समान है। छाया जैसे पुरुष के साथ चलती है वैसे ही माया भी। उसको विरल पुरुष ही कोई जान पाता है। जैसी छाया पुरुष के पीछे पीछे फिरती है वैसी ही माया भी भक्तों के पीछे पीछे फिरती है। और सम्मुख होकर पकड़ने से वह माया भाग जाती है। पकड़ में नहीं आती है। माया में पड़ने से भक्ति आदि कल्याण के साधन नहीं हो पाते हैं॥ २४०॥



(२४१)

माया तो ठगिनी भई, ठगत फिरै सब देस ।
जा ठग या ठगिनी ठगी, ता ठग को आदेस ।।

माया ठगिनी हो गई है। सर्व देशों में सब जीवों को ठगती फिरती है। जिस ठग ने इस ठगिनी को ठगी है--अर्थात् जिस साधक ने माया का त्याग किया है-उस ठग को, उस साधक को आदेश (प्रणाम) है। माया जीव को संसार में फसाती है। यही इसका ठगना है। भक्त माया को त्याग देता है। यही इसका भी ठगना है। यद्यपि आदेश शब्द का अर्थ आज्ञा है तथापि नाथ साधुओं में प्रणाम में रूढ है।।२४१।।

—:-०-:—

(२४२)

कबीर माया रूखरी, दो फल को दातार ।
खावत खरचत मुक्ति भे, संचत नरक दुवार।।

संसार के छोटे बड़े जितने पदार्थ हैं वे सब माया के रूप हैं। धन सम्पत्ति भी माया का एक रूप है। कबीर स्वामी कहते हैं कि, रूखरी माया=धन सम्पत्ति रूपा माया दो फल देती है। खाने खिलाने वाले को मुक्ति और सञ्चय करने वाले को नरक के द्वार देती है। प्राप्त सम्पत्ति का निष्काम भाव से परमार्थ में लगाने से चित्तशुद्धि द्वारा मुक्ति और सञ्चय करने से चित्त मलिनता द्वारा नरक होता है। इस प्रकार माया-रूप सम्पत्ति वृक्ष के दो फल होते हैं।। २४२।।

—:०:—

(२४३)

माया संचै संग्रहै, वह दिन जानै नाहि।
सहस बरस का सब करै, मरै मुहूरत माहि॥

माया समूह संग्रह करता है। आवश्यक से अधिक माया=रूप धन का संग्रह करता है और उस दिन को जानता नहीं है, जिस दिन मरना है। हजारों वर्ष तक काम में आने वाली सम्पत्ति को सब संग्रह करते हैं परन्तु एक मुहूर्त्त में मर जाते हैं। यदि यह जानते कि मैं थोड़ी देर में मरने वाला हूँ, तो हजारों वर्ष की सामग्री को क्यों इकट्ठा करते?। "घड़ी पल की खबर नहीं करे अगम की बात"॥ २४३॥

---

(२४४)

कबीर माया मोहनी, मोहे जान सुजान।
भागे हूँ छूटै नहीं, भरि-भरि मारै बान॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, माया बड़ी मोहनी है। सुजान (चतुर) जान कर सब को मोहती है। भागने पर भी कोई छूटने नहीं पाता है। लोभादि बाण भर भर कर मारती है। धन सम्पत्ति रूप माया के लोभादि बाण हैं। जिनके लगने से पुरुष मर जाता है। माया में ही पड़ा रहता है। भजन नहीं करता है॥ २४४॥

---

(२४५)

माया के झक जग जरै, कनक कामिनी लागि।
कह कबीर कस बाँचिहै, रुई लपेटी आगि ॥

कनक (सुवर्ण) कामिनी (स्त्री) में आसक्त हो कर सारा संसार माया रूपी अग्नि के झक=लपक में आकर जल रहा है। महात्मा कबीर कहते हैं कि, कामिनी रूपी रूई से लपेटी हुई माया रूपी अग्नि से लोग कैसे बच सकते हैं ?। जैसे जलने के डर से अग्नि के अङ्गार को रुई से लपेट दिया जाय तो रुई तत्क्षण जल जाती है और अग्नि प्रगट हो कर जला देती है वैसे ही माया से बचने के लिये कामिनी रूप रुई से माया रूप अग्नि को लपेट दिया जाय तो उसी क्षण कामिनी को जला कर माया प्रगट हो जाती है और संसार को जला देती है। माया अपने बस में कर लेती हैं ॥ २४५ ॥

—:-o-:—

(२४६)

मैं जानूँ हरि से मिलूँ, मो मन मोटी आस।
हरि बिच डारै अंतरा, माया बड़ी पिचास ॥

मैं जानता था कि, हरि से मिलूँ और मेरे मन में हरि मिलने की बड़ी आशा भी थी परन्तु यह माया इतनी बड़ी पिशाच है कि इसमें मेरे और हरि के बीच में अंतर डाल दिया है। जिससे हरि मिल नहीं रहे हैं। मायावी जीव हरि को प्राप्त नहीं कर सकते हैं ॥ २४६ ॥



(२४७)

कबीर माया पापिनी, फँद ले बैठी हाट ।
सब जग तो फंदे परा, गया कबीरा काट ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, यह माया बड़ी पापिनी है। संसाररूपी हाटा में मोहादि फन्द लेकर बैठी है। इसके फन्दे (बन्धन) में सारा संसार पड़ गया है। एक कबीर ने वा विवेकी सन्त ने इसको काट दिया गया है। माया ने संसार में सर्वत्र अपना जाल पसार रखा है उसमें अज्ञानी जन फंस गये हैं। एक विवेकी जन ही उस जाल को काट कर निकल सकते हैं॥ २४७॥

—:o:—

(२४८)

कबीर माया पापिनी, लोभ भुलाया लोग ।
पूरी किनहु न भोगिया, इसका यही विजोग ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, यह माया बड़ी पापिनी है। लोभी लोगों को लोभ में भुला दिया है। लोभ में पड़ कर अज्ञानी लोग माया को भोगने लगे हैं। परन्तु किसी ने पूरी तौर से माया को भोग नहीं सका है। इसको भोग कर कोई तृप्त होने नहीं पाया है। बीच में ही सब चले गये हैं। तृप्ति विना वियोग होना यही इसका स्वभाव है॥ २४८॥

—:o:—

(२४९)

कबीर माया पापिनी, हरि सों करै हराम ।
मुख कड़ियाली कुबुधि के, कहन न देई राम ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, यह माया बड़ी पापिनी है। हरि से हराम (पृथक्) करा देती है। दुष्ट बुद्धि वाले पुरुष के मुख में रहकर मुख से राम कहने नहीं देती है ॥ २४९ ॥

—:०:—

(२५०)

कबीर माया वेसवा, दोनुँ की इक जात ।
आवत को आदर करैं, जात न बूझें बात ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, माया और वेश्या दोनों की एक ही जाति होती है। क्योंकि दोनों ही आने वाले पुरुष का आदर करती है और जाने वाले से बात भी नहीं पूछती है। विरक्त महात्माओं का आदर माया नहीं करती है। प्रत्युत निरादर कराया करती है ॥ २५० ॥

—:-०-:—

(२५१)

कबीर माया डाकिनी, सब काहू को खाय ।
दाँत उपारूं पापिनीं, सन्तो नियरै जाय ॥

जैसे डाकिनी डाईन सबके बच्चों को खा जाती है वैसे ही यह मायारूप डाकिनी सब जीवों को खा जाती है। जन्म मरण में डाल देती है। सद्गुरु कहते हैं कि, यदि यह माया सन्तों के पास जायगी तो

उसके सब दाँत उखाड़ दूंगा। माया सच्चे सन्त को सता नहीं सकती है ॥ २५१ ॥



(२५२)

कबीर माया डाकिनी, खाया सब संसार।
खाइ न सके कबीर को, जाके नाम अधार ॥

कबीर कहते हैं कि यह माया डाकिनी अर्थात् डाइन है। जैसे डाइन बच्चों को खाती रहती है वैसे ही यह भी संसार के सब जीवों को खाती रहती है। जिनके एक भगवान् के नाम ही आधार है उन कबीर को तथा उनके भक्तों को खा नहीं सकती है। भगवान् की दासी माया भक्तों को नहीं सताती है। यह उसका नियम है ॥ २५१ ॥

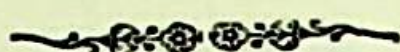


(२५२)

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि माँहि परन्त।
कोई एक गुरु ज्ञान ते, उबरे साधू सन्त ॥

माया एक प्रकार का दीपक है और पुरुष पतङ्ग। फिर फिर कर उसमें पड़ते हैं। कोई एक साधु सन्त गुरु-ज्ञान द्वारा उसमें पड़ने से बचते हैं। जैसे दीपक में पड़कर पतङ्ग जल मरता है वैसे ही माया में पड़कर जीव जल मरता है। जन्म मरण आदि दुःख में पड़ता है। कोई

विरल सन्त ही ज्ञान के द्वारा बच सकता है। क्योंकि, माया नाम अज्ञान का है। वह ज्ञान से नष्ट होती है॥ २५३॥



(२५४)

माया दोय प्रकार की, जो कोय जानै खाय।
एक मिलावै राम को, एक नरक ले जाय॥

माया अर्थात् धन सम्पत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं। जो कोई उपयोग करना जाने तो एक माया राम को मिलाती है और यदि उपयोग करना न जाने तो वही माया नरक ले जाती है। धन को धर्म मार्ग में खरचने से स्वर्ग और अधर्म मार्ग में खरचने से नरक होता है। एवं धन द्वारा निष्काम कर्म करने से चित्त शुद्धि, चित्तस्थिरता, भक्ति और ज्ञान द्वारा भगवत्स्वरूपोपपत्तिरूप मोक्ष होता है॥ २५४॥



(२५५)

माया मुई न मन मुआ, मरि-मरि गया सरीर।
आशा तृस्ना ना मुई, यौं कथि कहैं कबीर॥

साधन न करने से न माया मरी न मन मरा न आशा तृष्णा मरी। केवल शरीर ही बार-बार मरता जन्मता रहा। इस प्रकार कबीर स्वामी ने कथन करके कहा है। उपदेश दिया है॥ २५५॥



(२५६)

मन मरा माया मरी, मर-मर जात शरीर ।
आशा तृष्णा ना मरी, कह गये दास कबीर ॥

साधन करने से मन मर गया, माया भी मर गई और शरीर भी मर गया। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि आशा और तृष्णा नहीं मरी। प्रश्न होता है कि, आशा और तृष्णा का उपादान माया है और उपादान कारण के नाश से कार्य का भी नाश होता है यह नियम है। माया के मरने पर आशा तृष्णा कैसे रह गई ?। इसका उत्तर यह है कि, माया और अविद्या एक पदार्थ है। अविद्या के नाश होने पर भी अविद्यालेश विद्यमान है। वही आशा तृष्णा को टिका रखने में हेतु है। उच्चभूमिका पर पहुँचे हुए ज्ञानी पुरुष में भी आशा तृष्णा देखी जाती है यह अनुभवसिद्ध है ॥ २५६ ॥



(२५७)

मोटी माया सब तजै, झीनी तजी न जाय ।
पी पैगम्बर औलिया, झीनी सब को खाय ॥

स्त्री पुत्र धनादिरूप स्थूल माया को तो सब कोई त्याग करते हैं, परन्तु उक्त आशा तृष्णा रूप तथा वासनारूप सूक्ष्म माया को कोई त्याग नहीं सकता है। क्योंकि पीर पैगंबर और औलिया आदि सबको सूक्ष्म माया खा जाती है = नष्ट कर देती है। अतः सूक्ष्म वासना रूप माया का भी प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये ॥ २५७ ॥



(२५८)

कबीरा माया सांपिनी, जनता ही को खाय।
ऐसा मिला न गरुडी, पकड़ि पिटारे बांय ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, यह माया सर्पिणी है। जनसमूह को खा जाती है। ऐसा कोई गरुड़मन्त्र के जानने वाला गारुड़ी आज तक इसको नहीं मिला जो इस मायारूपी साँपनी को पकड़कर ब्रह्मरूपी पिटारी में बन्द कर देता। जैसे गरुड़मन्त्रज्ञ सर्पणीको पकड़ कर बांस की पिटारी में बन्दकर देता है तब वह किसी को काट नहीं सकती है वैसे ही ज्ञानी रूपी गरुड़मन्त्रज्ञ माया रूपी सर्पिणी को पकड़कर ब्रह्मरूपी पिटारी में बन्दकर देने से यह भी किसी को काट नहीं सकती है। सता नहीं सकती है ॥ २५८ ॥

(२५९)

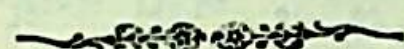
कबीर माया चूहड़ी औ, चुहड़ों की जोय।
साँई साथ बिसारि के, रहे निराला सोय ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, यह माया चुहड़ी अर्थात् चाण्डालिनी है और चुहड़ों = चाण्डालों की स्त्री है। पति के साथ को भुलाकर अकेली सो रहती है। माया को चूहड़ी इसलिये कहा है कि यह नीचगा है। इसके जीवरूप पति को चूहड़ा इसलिये कहा गया है कि वह माया में फंसकर नीच कर्म ही करता है। माया कुछ काल जीव के साथ रहकर फिर निराली (पृथक्) सो रहती है। जीवको ईश्वर विमुख कराकर पश्चात् साथ नहीं रहती है। 'दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम' ॥ २५९ ॥

(२६०)

आँधी आई ज्ञान की, ढही भरम की भीति ।
माया टाटी उड़ि गई, लगी नाम से प्रीति ॥

माया से मुक्त होने पर ज्ञान रूपी आँधी आई। भ्रमरूपी दीवार गिर पड़ी। माया रूप टाटी (घांस का बना हुआ दरवाजा) उड़ गई और भगवान् के नाम से प्रीति लग गई। जब ज्ञान उत्पन्न होता है तब भ्रान्ति की निवृत्ति होती है। माया नष्ट हो जाती है। क्योंकि, माया अनादि सान्त है। उसके बाद नाम और नामी परमात्मा में प्रेम बढ़ता है। आत्मा मुक्त हो जाता है। संसार की मुशाफरी समाप्त हो जाती है ॥ इति ॥ २६० ॥



कनक और कामिनी

(२६१)

चलौं-चलौं सब कोइ कहै, पहुँचे बिरला कोय ।
एक कनक औ कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥

परमात्मा को मिलने के लिये चलो-चलो सब कोई कहते हैं। परन्तु उनमें से कोई विरल पुरुष ही पहुँच पाता है। इसमें कारण यह है कि, एक कनक (सुवर्णादि) और दूसरी कामिनी (स्त्री) ये दोनों दुर्गम घाटी हैं। इनका उलङ्घन करके जाना बहुत कठिन है ॥ २६१ ॥

—:-०-:—

(२६२)

नारी की झाँई परत, अंधा होत भुजंग ।
कबीर तिनकी कौन गति, नित नारी के संग ॥

कबीर कहते हैं कि, स्त्री की छाया पड़ते ही सर्प अन्धा हो जाता है तो जो नित्य स्त्री के साथ रहते हैं उनकी क्या गति होगी ? भगवान् जाने ॥ २६२ ॥



(२६३)

पर नारी पैनी छुरी, मति कोइ लाओ अंग ।
रावन के दस सिर गए, पर नारी के संग ॥

दूसरे की स्त्री पत्थर पर घस कर तीक्ष्ण की हुई छुरी के समान है उसके अङ्ग के साथ सम्बन्ध कोई न करो। क्योंकि, दूसरे की स्त्री के साथ संग करने से ही रावण के दश मस्तक गये थे। केवल स्पर्शमात्र से जब दश मस्तक गये थे तो उसके साथ समागम आदि करने से समूल नाश हो इसमें कहना ही क्या ? ॥ २६३ ॥



(२६४)

पर नारी पैनी छुरी, विरला बाँचे कोय ।
ना वहि पेट सँचारिये, सर्व सोने की होय ॥

पर स्त्री तीक्ष्ण छुरी समान है। इससे तो कोई विरल पुरुष ही बच सकता है। वह नख से शिखा तक सर्व सोने की बनी हो तो भी

उसके साथ पेट संचार (अंक में सम्बन्ध) न करना चाहिये । हास्यादि तथा आलिङ्गनादि न करना चाहिये ॥ २६४ ॥

---

(२६५)

पर नारी के राँचतै, सीधा नरके जाय ।
तिनको जम छाँडै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥

पर स्त्री के साथ प्रेम करने से पुरुष सीधा नरक को जाता है और उसको यमराज करोड़ों उपाय करने पर भी छोड़ता नहीं है। वेद-विहित कर्म से पुण्य और वेदनिषिद्ध कर्म से पाप होता है। एवं पुण्य से स्वर्ग और पाप से नरक होता है। 'न परदारान् गच्छेत्' पर स्त्री गमन न करना चाहिये। इस श्रुति से पर स्त्री गमन निषिद्ध है। इसको करने से पाप होता है और पाप के फल नरक में यमयातना भोगना पड़ता है। स्व स्त्री समागम भी धर्म और सन्तान के लिये विहित है। काम सुख के लिये नहीं। वह भी ऋतु काल में। सदा नहीं। क्योंकि 'ऋतुकालाभिगामी स्यात्' अर्थात् ऋतु काल में स्वस्त्री समागम करना चाहिये। सदा नहीं। अन्य काल में स्वस्त्री समागम भी पाप जनक है। परन्तु वह क्षम्य है। किसी काल में भी परस्त्री अभिगमनजन्य पाप क्षम्य नहीं ॥ २६५ ॥

---

(२६६)

पर नारी का राचना, ज्यों लहसुन की खान।
कोनै बैठी खाइये, परगट होय निदान ॥

परस्त्री से प्रेम करना लसुन के खाने के समान है। घर के कोने में बैठ कर भले खाइये तो भी अन्त में वह प्रगट अवश्य हो जायगा। छिपेगा नहीं। लसुन गन्धाता नहीं है किन्तु लसुन के खाने वाला गन्धाता है। इसीलिये वह निषिद्ध है। उसको खाना नहीं चाहिये। फिर भी यदि इसको कोई खाय तो वह चाहे जहां कहीं छिप के खाय प्रगट हुए विना नहीं रहेगा। वैसे ही परस्त्री पर प्रेम छिपा नहीं रहेगा। कहीं भी छिप कर पर स्त्री से समागम करे पर प्रगट हुए विना नहीं रहेगा। प्रगट होने पर निन्दा का पात्र होगा। पर लोक में इसका फल दुःख भोगना पड़ेगा यह अलग ॥ २६६ ॥



(२६७)

नारी पराई आपनी, भोगै नरकै जाय।
आग-आग सब एकसी, हाथ दिये जरि जाय ॥

जैसे अग्नि अपने घर की हो या दूसरे के यहाँ से मांग कर लाई गई हो, दोनों समान है। हाथ डालने पर दोनों जलाती ही है वैसे ही- स्त्री अपनी हो या दूसरे की भोगने पर नरक ले जाती है। घर की अग्नि यह विचार नहीं करती कि, मैं इसके घर की हूँ इस को न जलाउँ वैसे ही अपनी स्त्री यह विचार नहीं करती कि मैं इसके घर की हूँ इसको नरक न ले जाउँ। अग्नि का जलाना स्वभाव है वैसे ही

स्त्री का जन्मादि नरक में ले जाना स्वभाव है। चाहे अपनी हो या दूसरे की ॥ २६७ ॥

(२६८)

छोटी मोटी कामिनी, सब ही विष की बेल।
वैरी मारे दाव दै, यह मारे हसी खेल ॥

स्त्री चाहे वालिका हो या युवती (तरुणी) सभी विष की लता है। विष की लता चाहे कोमल हो या कठिन, खाने से प्राणी मर जाता है वैसे ही स्त्री छोटी हो या बड़ी भोगने से मर जाता है। दो परस्पर प्रतिपक्षी होते हैं। आपस में खेलते हैं। एक दूसरे को मारते हैं पर दाव देकर मारते हैं। अथवा वैरी = शत्रु दाव पेंच से मारता है परन्तु स्त्री तो हँस खेल कर मारती है ॥ २६८ ॥

(२६९)

नारि रचन्ते पूरुषा, पुरुष रचन्ते नारी।
पुरुष हि पुरुषा जो रचे, ते विरले संसार ॥

पुरुष स्त्री में आसक्त होते हैं और स्त्री पुरुष में (आसक्त होती हैं) यह सामान्य नियम देखने में आता है। परन्तु परमात्मारूप पुरुष में जीवात्मारूप पुरुष संसार में विरल ही कोई आसक्त होता है। पुरुष स्त्री को और स्त्री पुरुष की भक्ति करती हैं। परन्तु पुरुष की भक्ति कोई विरल पुरुष ही करता है। भक्त भगवान् की भक्ति करते हैं। स्त्री आदि विषय की नहीं ॥ २६९ ॥

(२७०)

जहाँ काम तहँ राम नहि, जहाँ राम नहि काम ।
दोनों कबहूँ ना मिलै, रवि रजनी इक ठाम ॥

जहां काम रहता है वहां राम नहीं और जहां राम रहता है वहां काम नहीं। क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी हैं। जैसे रवि=सूर्य और रजनी रात्रि दोनों एक स्थान पर कभी नहीं मिलते हैं। यहां रात्रि का विरोधी रवि है दृष्टान्त में दोनों परस्पर विरोधी अथवा राम का ही विरोधी काम समझना चाहिये ॥ २७० ॥



(२७१)

गाय भैंस घोड़ी गधो, नारी नाम है तास ।
जा मन्दिर में ये वसैं, तहां न कीजै वास ॥

गाय, भैंस, घोड़ो और गद्धी इन सब का नाम नारी है जिस घर में ये रहते हों वहां सन्त को वास नहीं करना चाहिये। क्योंकि, इन को देख कर अनर्थ करने की इच्छा उत्पन्न होती है ॥ २७१ ॥



(२७२)

नारि नसावै तीन गुन, जहि नर पासे होय ।
भक्ति मुक्ति अरु ध्यान में, पैठि सके नहि कोय ॥

जिस पुरुष के पास स्त्री रहती है उसके तीन सद्गुणों को वह नाश करती है। भक्ति, मुक्ति और ध्यान में कोई पुरुष प्रवेश नहीं कर सकता

है। जिस पुरुष में स्त्री विषयक वासना होती है वह मुक्ति के साधन भक्ति और ध्यान आदि नहीं कर सकता है। ईश्वर में चित्त हो तो भक्त्यादि हो सकती हैं। स्त्री में चित्त हो तो नहीं ॥ २७२ ॥



(२७३)

जहाँ जराई सुन्दरी, तूँ जनि जाय कबीर।
उड़ि के भसम जो लागसी, सूना होय सरीर ॥

जहां सुन्दर स्त्री जलाई गई हो हे कबीर (हे सन्त!) वहां तू न जाना। क्योंकि, उसका भस्म ऊड़ कर जब तुम्हारे ऊपर पड़ेगा तब सारा शरीर शून्य हो जायेगा भस्म के लगने से स्त्री विषयक स्मरणादि जागरुक होने से उसी में चित्त चला जायगा। उस समय शरीर में चेतना न रहने से शून्यवत् हो जायगा। स्त्री में चित्त चले जाने से भगवान् में नहीं रहेगा तो भक्ति नष्ट हो जायगी। मुक्ति तो कहां से मिलेगी ॥ २७३ ॥



(२७४)

दीपक सुन्दर देखि कै, जरि-जरि मरै पतंग।
बड़ी लहर जो बिषय की, जरत भौड़े अंग ॥

जैसे सुन्दर दीपक को देख कर पतङ्ग जल जल कर मर जाता है वैसे ही विषय कामी बढ़ी हुई विषय की लहर को देख कर उसमें जलते

हुए अंग नहीं मोड़ता है। हंसते हंसते जल मरता है। पतंग का विषय दीपक और कामी का विषय कामिनी है॥ २७४॥

—:-०-:—

(२७५)

साँप बीछि को मंत्र है, माहुर झारे जात।
विकट नारि पाले परे, काढ़ि कलेजा खात॥

साँप और बिच्छी के विष को झारने के लिये मन्त्र और जहर-माहुरा है। उससे यह (विष) झारा जाता है। परन्तु विकट स्त्री के वश में पड़ने पर वह कलेजा काट कर खा जाती है। हृदय हरण कर लेती है। कल्याण का साधन नहीं करने देती है। जन्म मरणरूप संसार में डाल देती है। मुहूर्त सुख के कारण असंख्य जन्मों तक दुःख भोगना पड़ता है॥ २७५॥

—:०:—

(२७६)

कनक कामिनी देखि कै, तू मति भूल सुरंग।
बिछुरन मिलन दुहेलरा, केंचुकि तजै भुजंग॥

हे सुरंग = सुन्दर ब्रह्मस्वरूप जीव ! कनक और कामिनी को देखकर तू मत भूलो, स्वस्वरूपविस्मृत न होओ। क्योंकि, इसका मिलना और बिछुड़ना दोनों दुःखदायी है। जैसे भुजंग = सर्प केंचुल का त्याग करता है। अर्थात् जैसे सर्प के शरीर पर केंचुल के आते समय और जाते समय दोनों समय वह दुःख देता है वैसे ही कनक और कामिनी के आते समय और जाते समय दोनों समय वह दुःख देता है॥ २७६॥

—:०:—

(२७७)

काम कहर असवार है, सब को मारै धाय ।
कोइ इक हरिजन ऊबरा, जाके नाम सहाय ॥

कामदेव बड़ा कठिन अश्वारोही योद्धा है जो सबको दौड़कर मारता है। कोई एक ईश्वर भक्त बचता है। जिसको परमात्मा का नाम सहायक है। काम से वही बच सकता है जो भगवान् के नाम का स्मरण करता है ॥ २७७ ॥

—:o:—

(२७८)

कामिनी सुन्दर सर्पिनी, जो छेड़े तिहि खाय।
जो हरि-चरणें राँचिया, तिनके निकट न जाय॥

कामिनी एक बड़ी सुन्दर सर्पिणी है। जो इसे छेड़ता है उसको खाती है। वश में करके जन्मादि संसार में डाल देती है। जो हरि के चरणों में प्रेम करता है, ईश्वर भजन करता है, उनके पास नहीं जाती है। कामिनी से बचने का हेतु एकमात्र प्रभु-प्रेम है ॥ २७८ ॥

(२७९)

नारी नाहीं नाहरी, करै नैन की चोट ।
कोइ हरिजन ऊबरे, ले सतगुरु की ओट ॥

यह नारी-नारी नहीं किन्तु एक प्रकार की बाघिन है। यह नेत्र से ही चोट करती है। नयन शर मारती हैं। कोई सन्त सद्गुरु की शरण में

जा कर इससे बचता है। कनक कामिनी से बचना हो तो सद्गुरु की शरण में ही जाना चाहिये ॥ २७९ ॥



(२८०)

काला सर्प सरीर में, सब जग खाया झार।
कहैं कबीर ते बाँचि हैं, रामहि भजै विचार ॥

काम एक प्रकार का शरीर में विषधर काला सर्प है। इसने झार पछोड़ कर सारा संसार को खा लिया है। कबीर स्वामी कहते हैं कि इससे वे ही बच पाते हैं जो विचार कर राम को भजते हैं। कामिनी और काम से बचने का साधन राम भजन है ॥ २७९ ॥



(२८१)

नारी नरक न जानिये, सब सन्तन की खान।
जामें हरिजन ऊपजे, सोइ रतन की खान ॥

नारी को नरक नहीं समझना चाहिये। क्योंकि वह सन्तों की खानि है। जिसमें हरिजन=भगवद्भक्त उत्पन्न होते हैं वह नरक नहीं किन्तु रत्नों की खानि कहीं जाती है। सन्त संसार के रत्न कहे जाते हैं। आज तक संसार में जितने सन्त हुए हैं ये सब नारी से ही उत्पन्न हुए है। जो जगत् के उद्धारक हुए हैं ॥ २८१ ॥



(२८२)

नारि निंदा न कीजिये, नारी रतन की खान।
नारी से सब औतरे, ध्रुव प्रहलाद समान ॥

नारी की निन्दा न करिये। क्योंकि, नारी तो रत्नों की खानी है। देखिये, ध्रुव तथा प्रहलाद आदि सब महात्मा लोग नारी से ही प्रगट हुए हैं। तो फिर प्रश्न होता है कि प्रथम जो निन्दा की गइ है उसकी क्या गति?। इसका उत्तर यह है कि, जो रजोगुणी विषयासक्त कामुकी तथा पुरुषों को फंसाने वाली स्त्रियां हैं उनकी निन्दा की गई है सात्त्विक स्त्रियों की नहीं। इति॥ २८२॥

—:०:—

सती

(२८३)

सती जरन को नीकसी, चित धरि एक विवेक।
तन मन सौंपा पीव को, अंतर रही न रेख ॥

सती स्त्री चित्त में एक हो विवेक को धारण कर पति के साथ जल कर सती होने के लिये निकली और उसने तन मन पति को सौंप दिया भीतर जरा भी कपट नहीं रखा तो पतिलोक को प्राप्त हुई। वैसे ही जो भक्त निष्कपटभाव से तन मन परमात्मा को सौंप देता है वह परमात्मा को प्राप्त होता है। सतीत्व के दो फल हैं। एक पति सुख प्राप्ति और दूसरा मोक्ष। सकाम को पतिसुख प्राप्ति और निष्काम को मोक्ष। वैसे ही भक्ति के भी दो फल हैं। एक सांसारिक सुख प्राप्ति और दूसरा मोक्ष। सकाम को सांसारिक सुख प्राप्ति और निष्काम को मोक्ष। सती

जैसे पति पर प्रेम करती है वैसे ही भक्त को भगवान् पर प्रेम करना चाहिये यह अभिप्राय है ॥ २८३ ॥

---

(२८४)

सती बिचारी सत किया, काँटों सेज बिछाय।
सूती ले पिय संग में, चहुँ दिसि आग लगाय॥

विचारी सती ने सत किया। काँटों की शय्या बिछाकर पति को उत्संग (गोद) में लेकर और चारो दिशा अग्नि लगाकर सो गई। आहा ? कितनी कठिन साधना है ? कल्याण के लिये साधक को ऐसी साधना करना चाहिये ॥ २८४ ॥

—:-o-:—

(२८५)

सती डिगै तो नीच घर, सूर डिगै तो कूर।
साधु डिग तो सिखरते, गिरि भय चकनाचूर॥

यदि सती सत्य घर से डिगे तो नीच घर में, शूरवीर संग्राम से डिगे तो क्रूर घर में जन्म होता है। और यदि साधु साधना से डिगे तो उच्च शिखर से गिरकर चकनाचूर हो गये हैं। मनुष्य शरीर छूटने पर एवं चौरासी लक्ष्य योनियों में जाने पर फिर उबरने की आशा नहीं। अतः चाहे जितना कष्ट पड़े साधु को साधना से डिगना नहीं चाहिये ॥ २८५ ॥

(२८६)

सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो राँड़ ।
साधू भीख न मांगई, जो मांगै सो भांड़ ॥

जैसे अन्य गरीब स्त्रियाँ पीसना कूटना आदि मजूरी करके गुजर करती हैं। वैसे सती पीसना नहीं पीसती है। जो पीसती है वह रॉड है (विधवा वा व्यभिचारिणी) वैसे ही साधु भीख नहीं मांगता है जो माँगता है वह भांड है। सती कभी विधवा नहीं होती है। उसका पति धर्मों के प्रभाव से भरण पोषण करने वाला पति सदा जीवित रहता है। उसको पीसना पीसने नहीं पड़ता है। वैसे ही भक्ति के प्रभाव से साधु का योगक्षेम करने वाला परमात्मा होता है। उसको भीख मांगना नहीं पड़ता है। जैसे रांड की कोई इज्जत नहीं वैसे ही भीख मांगने वाले साधु को कोई इज्जत नहीं होती है॥ २८६॥

—:-०-:—

(२८७)

साध सती औ सूरमा, इनका मता अगाध ।
आसा छांडे देहकी, तिनमें अधिका साध ॥

साधु, सती और शूरवीर इनका मत अथाह है। कोई थाह लगा नहीं सकता है। क्योंकि ये तीनों देह की आश का त्याग किये हुए रहते हैं। उन में साधु अधिक श्रेष्ठ हैं ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि, ये ज्ञानी होते हैं। सती पति के साथ देह को जला देती है, शूर भी संग्राम में देह की परवाह नहीं करता है और साधु भी साधना करते समय देह की परवाह नहीं करता है॥ २८७॥

(२८८)

सतिया सोइ अस तिया, जलती है इक बार ।
नित जलना है संत कूं, नाम पुकार पुकार ॥

सती (और शूर) से सन्त श्रेष्ठ हैं, इसमें हेतु देते हैं-जो सती है वह इस प्रकार की स्त्री होती है कि वह एक बार पति के साथ जल जाती है और सन्त का भगवन्नाम पुकार-पुकार कर जीवन पर्यन्त जलना होता है। इसीलिये सती की साधना की अपेक्षा सन्त की साधना कठिन है और जीवन पर्यन्त कठिन साधना करने से सन्त श्रेष्ठ है ॥ २८८ ॥

—:०:—

पतिव्रता

(२८९)

पतिवरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप ।
पतिवरता के रूप पर, वारों कोटि सुरूप ॥

पतिव्रता स्त्री यदि मैली, काली, कुचिल=कुचैल=कुवस्त्र और कुरूप हो तो भी अन्य सब स्त्रियों से भली (अच्छी) क्योंकि, पतिव्रता के रूप पर करोड़ो सुरूप—न्योच्छावर (त्यागने योग्य) है। पतिव्रता कुरूप है तो भी अच्छी और व्यभिचारिणी सुरूप है तो भी अच्छी नहीं॥२८९॥

—:०:—

(२९०)

पतिव्रता पति को भजै, और न अन्य सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास न खाय॥

पतिव्रता स्त्री पति को ही भजती है। उसको विपत्ति काल में भी अन्य कोई नहीं सुहाता है। जैसे सिंह के बच्चा लंघना = उपवासी होने पर भी घास नहीं खाता है। वैसे ही भक्त भगवान् को ही भजता है अन्य देवी देवता उसको नहीं सुहाता है॥ २९०॥

—:o:—

(२९१)

पतिव्रता पति को भजै, पति पर धर विश्वास।
आन दिसा चितवै नहीं, सदा पीव की आस॥

पति पर विश्वास रखकर पतिव्रता स्त्री पति को ही भजती है। अन्य दिशा तरफ कभी नहीं देखती है और सदा पति की ही आशा करती है। वैसे ही भक्त भगवान् को ही भजते हैं और भगवान् पर विश्वास रखते हैं कि इसी से ही मेरा कल्याण होगा। भक्त दूसरे की तरफ देखते नहीं हैं। केवल भगवान् की आशा रखते हैं॥ २९१॥



(२९२)

सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिव्रता के तन नहीं, सुरति बसै पिव माहिं॥

शूरवीर को शिर की, दाता को धन की और पतिव्रता को शरीर की परवाह नहीं रहती है। क्योंकि उसका चित्त पति में रहता है। वैसे ही

भक्त को भी किसी की परवाह नहीं रहती है। क्योंकि इसका भी चित्त भगवान् में रहता है। शूर यदि शिर की परवाह करे तो संग्राम में न जाय। क्योंकि संग्राम में शिर कट जाता है। दाता यदि धन की परवाह करे तो दान न करे। क्योंकि, दान करने से धन नष्ट होता है। इसी प्रकार पतिव्रता यदि शरीर की परवाह करे तो सती न होवे। क्योंकि सती होने पर शरीर भस्म हो जाता है। इसी प्रकार भक्त भी शिर, धन की परवाह नहीं करता है। क्योंकि, इनकी परवाह करने पर भक्ति नहीं हो सकती है ॥ २९२ ॥

—:-o-:—

(२९३)

नाम रटा तो क्या हुआ, जो अंतर है हेत।
पतिव्रता पति का भजै, मुख से नाम न लेत ॥

नाम जप करने से क्या हुआ, कुछ नहीं। यदि अन्तर में प्रेम है तो नाम जपने से कोई लाभ नहीं। क्योंकि, पतिव्रता स्त्री पति को भजती है। परन्तु पति का नाम नही लेती है। शास्त्र में स्त्री को पति का नाम लेना निषेध है। अतः पतिव्रता मुख से पति का नाम नहीं लेती है। हृदय से चिन्तन करती है तो भी उसका पातिव्रत का फल कल्याण हो जाता है। वैसे ही भक्त यदि मुख से भगवान् के नाम का जप न करे तो भी यदि हृदय में प्रेम है तो कल्याण हो जाता है। इस से नाम लेने का निषेध न समझना चाहिये। किन्तु हृदय से नाम स्मरण करना चाहिये इस अर्थ में तात्पर्य समझना चाहिये। प्रारम्भ में मुख से नाम जप किये बिना हृदय से स्मरण नहीं होता है। यह अनुभव-सिद्ध है ॥ २९३ ॥

—:-o-:—

(२९४)

जीवत मिरतक हो रही, तन-मन सेती नेह ।

कहैं कबिर ता नारि के, चरण कमल की खेह ॥

जो पतिव्रता स्त्री जीवित होती हुई मृत के समान हो रही हो, देहादि अभिमान से रहित हो और तन मन से पति पर स्नेह करती हो, कबीर स्वामी कहते हैं कि, उस स्त्री के चरण-कमल की मैं खेह=धूर हूँ। यह वचन पातिव्रत धर्म के महत्त्व और अपने में निरभिमानता का सूचक है। अथवा उस स्त्री के चरण-कमल की धूर धन्य है यह अर्थ समझना चाहिये। वस्तुतः इस प्रतिव्रता के समान जीवतमृतक रामस्नेही सन्त के चरण कमल की धूर हूँ इस अर्थ में तात्पर्य है ॥ २९४ ॥

—:o—

(२९५)

नैनों अंतर आव तू, नैन झॉपि तोहि लेव ।

ना मैं देखौं और का, ना तोहि देखन देव ॥

हे परमात्मन्! तू मेरे नेत्रों के भीतर आ जाय और मैं तुझे नेत्रों के अन्दर ढाक लूँगा। न मैं किसी अन्य को देखूंगा और न तुम्हें किसी को देखने दूंगा। जब तू मेरे अन्दर आ जाओगे तब मैं भीतर तुझे देखकर आनन्द सागर में मग्न हो जाऊंगा। यह कृतकृत्यता की याचना है ॥ २९५ ॥

—:o:—

(२९६)

कबीर सीप समुद्र की, रटै पियास पियास ।

और बूँद को ना गहै, स्वाति बूँद की आस ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, समुद्र की सीप समुद्र के अथाह पानी में रहकर 'पियास' 'पियास' कर रटन करती है। परन्तु समुद्र में रहे हुए अन्य पानी के बूंद का ग्रहण नहीं करती है और एक मात्र स्वाति नक्षत्र के पानी के बूंद की आश करती है। यही हालत भक्त की है। वह विषय सुख को ग्रहण नहीं करता है। केवल ब्रह्मसुख की ही आशा करता है। एक परमात्मा की ही आशा करनी चाहिये, संसार की नहीं, संसार की भी आशा करने से परमात्मा नहीं मिलता है॥ २९६॥

—:०:—

(२९७)

पपिहा का पन देखकर, धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा, तऊ न बोरी चंच॥

पपिहा के प्रण को देख कर बडे-बड़े के हृदय में रंचमात्र भी धैर्य रहने नहीं पाता है। क्योंकि, वह मरते दम (श्वास) तक जल में रहता है। तो भी स्वाति जल को छोड़ कर अन्य जल में चोंच लगाता नही है। वैसे ही सन्त भगवत् सुख को छोड़ कर अन्य विषय सुख को नहीं भोगता है॥ २९७॥

---

(२९८)

पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज।
तन छाड़ै तो कुछ नहीं, पन छाड़ै है लाज॥

पपिहा जैसे अपने प्रण (नियम) को नहीं छोड़ता है। यदि छोड़े तो शरीर बेकाम (व्यर्थ) समझता है वह ऐसा समझता है कि, शरीर छूटने पर कोई हानि नहीं। परन्तु प्रण को छोड़ने से लज्जा जाती

है। शरीर की अपेक्षा इज्जत बड़ी वस्तु है। वैसे ही भक्त ब्रह्मचर्यादि प्रण का त्याग नहीं करता है यदि त्याग करे तो मनुष्य शरीर व्यर्थ हो जाता है। शरीर छोड़ने से कोई हानि नहीं पर प्रण छूटने से लज्जा जाती है। भगवत् प्राप्ति के लिये बराबर नियम का पालन करते हैं॥ २९८॥

—:०:—

(२९९)

चातक सुतहि पढावई, आन नीर मति लेय।
मम कुल याही रीत है, स्वाति बूँद चित देय॥

चातक पक्षी अपने पुत्र को पढ़ाता है, शिक्षा देता है कि, अन्य जल को न पीना। हमारे कुल की यही रीति है कि, स्वाति नक्षत्र के जल के बूंद में ही चित्त देना। स्वाति जल को ही पीना, अन्य जल को नहीं वैसे ही भक्त तथा सन्त अपने पुत्र तथा शिष्य को उपदेश देते हैं कि विषय भोग न करना, यहा हमारे कुल तथा सम्प्रदाय की रीति है। तुम लोगों के लिये यही उचित व्यवहार है। अन्यथा परमार्थ में हानि होगी॥ २९९॥

—:-०-:—

(३००)

जा यह एक न जानिया, बहु जाने का होय।
एकै तें सब होत हैं, सब तें एक न होय॥

यदि यह एक अद्वितीय परमात्मा को नहीं जाना तो बहुत अनात्म-पदार्थ को जानने से क्या फल, कुछ भी नहीं। क्योंकि, एक से सब होता है और सब से एक भी नहीं होता है। एक विज्ञान से सर्व विज्ञान की सिद्धि होती हैं। "यथा हि सौम्य एकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं

विज्ञातं स्यात्, वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिका इत्येव सत्यम्" एक कारण परमात्मा को जानने से उसके कार्य सब पदार्थ का ज्ञान हो जाता है। और सभी अनात्म पदार्थ को जानने पर भी एक परमात्मा का ज्ञान नहीं होता हैं। कार्य ज्ञान से कारण का ज्ञान नहीं होता है। "आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्" (२-४-५) अर्थात् हे मैत्रेयि! एक आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन और विज्ञान से यह सब जाना जाता है। इस मनुष्य शरीर से कठिन साधन करके परम तत्त्वका साक्षात्कार करना चाहिये, जिससे कल्याण हो ॥३००॥

---

(३०१)

सब आये उस एक में, डार पात फल फूल ।
कबीर पीछे क्या रहा, जब पकड़ा निज मूल ॥

जैसे एक वृक्ष के पकड़ने से डाली, पत्र, फल और फूल सब आ जाते हैं। वैसे ही एक परमात्मा के पकड़ने से संसार के सभी पदार्थ आ जाते हैं। कबीर स्वामी कहते हैं कि, जब एक परमात्मा रूपी निज मूल कारण को पकड़ लिया तो अब दूसरा बाकी क्या रहा ? कुछ भी नहीं। सबका मूल कारण परमात्मा है उसको पकड़ना भक्ति करना है ॥३०१॥

---

(३०२)

प्रीति बड़ी है तुज्झ से, बहु गुनियाला कंत ।
जो हँस बोलों और से, नील रँगाओं दंत ॥

कंत=हे कान्त स्वामिन्! आप बहुत दया दाक्षिण्यादि कल्याण गुण वाला हो। अतः तुमसे प्रीति बड़ी है, लगी है। जो मैं किसी दूसरे से

हँस कर बोलूं तो नील से दाँत रंग कर काला करने समान है। संसार से प्रेम करना मुँह काला करने के समान है ॥ ३०२ ॥

—:०:—

(३०३)

कबीर रेख सिंदूर अरु, काजर दिया न जाय।
नैनन प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाय ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, अब मांग में सिंदूर की रेखा और नेत्र में काजर दिया नहीं जा सकता है । क्योंकि, नेत्र में प्रियतम पति परमात्मा रम रहा है उसी से स्थान पूरा गया तो दूसरी वस्तु कहां समा सकती है? नेत्र में काजल देने भर का स्थान खाली नही हैं। परमात्मा से भर गया है, खाली हो तो काजल दिया जायन ॥ ३०३ ॥



(३०४)

आठ पहर चौंसठ घड़ी, मेरे और न कोय।
नैना माहीं तू बसै, नींद हि ठौर न होय ॥

आठ पहर और चौंसठ घड़ी में मेरा दूसरा कौई नही है। मेरे नेत्र में केवल तू ही बस रहा है तो नींद के लिये स्थान कहां है। ध्यान के समय आठ पहर अखण्ड भगवदाकार वृत्ति बनी रहती है। अन्य तरफ चित्तवृत्ति जाती नही है। निद्रा के लिये अवकाश नही हैं। आठ पहर में साठ घड़ी होती है। चौंसठ नही। अतः आठ पहर में साठ घड़ी कथन विह्वलता का अतिरेक (अधिक) समझना चाहिये ॥ ३०४ ॥



(३०५)

बलिहारी वा दुःख की, पल-पल नाम कहाय।
वा सुख के माथे शिला, जो हरि हिय सों जाय॥

वह दुःख है तो भी प्रशंसनीय है। क्योंकि, उस काल में पल-पल नाम लिया जाता है और उस सुख के माथा पर पत्थर पड़ो, जिस काल में हृदय से हरि चला जाता है। दुःख में हरि याद आते हैं और सुख में भूल जाते हैं॥ ३०५॥

(३०६)

दुख में सुमरण सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमरण करे, (तो) दुख काहे को होय॥

सद्गुरु कहते हैं—दुख में परमात्मा को सभी कोई याद करते हैं परन्तु सुख में कोई नहीं याद करते। यदि सुख काल में परमात्मा को याद किया गया होता तो दुःख ही क्यों होता? जब किसी को किसी प्रकार का ज्वरादि रोगजन्य दुःख होता है तब हरे राम! हरे कृष्ण आदि शब्दों से सम्बोधन करते हुए ईश्वर को सभी कोई स्मरण करते हैं और जब सुख होता है तब सब कोई ईश्वर को भूल जाते हैं। ईश्वर का स्मरण सुख का हेतु है। सुख काल में ईश्वर का स्मरण भजन करने से सुख कायम रहता है। कभी भी दुःख नहीं होता है यदि सुख चाहिये तो सदा काल ईश्वर का स्मरण भजन करते रहना चाहिये॥ ३०६॥

—:-o-:—

(३०७)

इक साधै सब सधत है, सब साधै सब जाय।
माली सींचै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥

एक कार्य को सिद्ध करने से सब सिद्ध हो जाता है और सबको सिद्ध करने जाने से सब चला जाता है। एक भी सिद्ध नहीं होता है। जैसे माली एक पेड़ को सींचता है, शाखा पत्रादि को नहीं, तो भी पेड़ भरपूर होकर फुलता भी है और फलता भी। वैसे ही एक ईश्वर की भक्ति करने से सर्व फल को प्राप्ति हो जाती है और देव देवियो के साधने से सब चला जाता है। कुछ भी नहीं मिलता है। अतः एक ईश्वर की ही भक्ति करनी चाहिये ॥ ३०७ ॥



(३०८)

आसा तो एक नाम की, दूजा आस निरास।
पानी मांहीं घर करै, सो क्यों मरै पियास ॥

एक परमात्मा के नाम की आशा करनी चाहिये। इसी से कल्याण होगा। दूसरे की इच्छा करना निराशा को प्राप्त होना है। जिसने जल में ही घर किया है वह प्यास से कैसे मर सकता है ? मुक्ति की आशा रख कर जो भगवान् का नाम लेता है उसको अवश्य मुक्ति मिलती है। वह निराश नहीं होता है। अन्य साधन करने से जीव निराश हो जाता है ॥ ३०८ ॥



(३०९)

मैं सेवक समरत्थ का, कबहुं न होत अकाज ।
पतिवरता नंगी रहै, वाही पति को लाज ॥

भक्त कहता है कि, मैं सर्व समर्थ परमात्मा का सेवक हूं। इससे हमारी कभी हानि नहीं होती है। पतिव्रता स्त्री यदि नंगी रहे तो उसके पति को लाज है वैसे हा यदि मेरी किसी प्रकार की हानि हुई तो वह समर्थ परमेश्वर की हानि समझनी चाहिये। सो तो अशक्य है। क्योंकि तब उसको समर्थ कौन कहेगा ॥ ३०९ ॥



(३१०)

कबीर कुत्ता राम का, मोतिया मेरा नाम ।
गले प्रेम की जेवरी, जित खींचे तित जाम ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, भगवान् के सेवक (भक्त) कहता है कि, मैं राम का एक प्रकार का कुत्ता हूं। मेरा नाम मोतिया है। मेरे गले में कुत्ते के गले में जैसे जेवती = रज्जु (रस्सी) रहती है वैसे ही प्रेम रूपी रज्जु है। राम उस रज्जु को जिस तरफ खींचता है उसी तरफ जाता हूं। ईश्वर की प्रेरणा के अधीन मेरा सब व्यवहार है।११०



(३११)

तू तू करै तो वाहरं, दुर दुर करै तो जाउं ।
ज्यों हरि राखै त्यों रहूं, जो देवै सो खाउं ॥

जैसे किसी का कुत्ता है। उसको धनी (स्वामी) तू तू कर के जब बुलाता है तब वह बाहर = पास चला आता है और जब दूर दूर करता

है तब वह दूर भाग जाता है वैसे ही मैं भी प्रभु का एक प्रकार का कुत्ता समान सेवक हूं। वह श्री हरि जैसा रखता है वैसा रहता हूं और जो कुछ देता है वही खाता हूं। यह अधीनता का सूचक वचन समझना चाहिये ॥ ३११ ॥

(३१२)

नारि कहवै पीव की, रहै और सँग सोय ।
जार मीत हिरदय वसै, खसम खुसी क्यों होय ॥

भक्त को पतिव्रता, शूर, पपिहा तथा चातक आदि की उपमा दी गई। अब अभक्त को व्यभिचारिणी की उपमा देते हैं—स्त्री तो अपने पति की कहलाती है और दूसरे के साथ सो रहती है एवं जार (उपपति) रूपी मित्र उसके हृदय में वसते हैं तो उस पर उसका पति प्रसन्न कैसे हो सकता है ?। वैसे ही भक्त तो भगवान् का कहलाता है और विषयों से प्रेम करता है तो उसपर परमात्मा प्रसन्न कैसे हो सकता है ॥३१२॥

(३१३)

सेज बिछावै सुन्दरी, अन्तर परदा होय ।
तन सौंपे मन दे नहीं, सदा दुहागिन सोय ॥

सुन्दरी स्त्री पति के साथ सोने के लिये सेज बिछाती है। परन्तु भीतर पति से परदा (अन्तर = भेद) रखती है एवं शरीर तो पति को सौंप देती है परन्तु मन नहीं देती है। पति से भेद रखती है। परिणाम यह होता है कि, वह सदा दुर्भागिनी अर्थात् विधवा होती है। इसी प्रकार जो भक्त भगवान् से भेद रखता है वह सदा कंगाल रहता है। उसको परम पद की प्राप्ति कभी नहीं होती है। परमात्मा से परदा रखना

निरन्तर भगवच्चिन्तन छोड़कर बीच बीच में विषय का भी चिन्तन करता है ॥ ३१३ ॥

—:०:—

साधु

(३१४)

साधु बड़े परमारथी, ज्यों घन बरसै आय ।
तपन बुझावैं औरकी, अपनो पारस लाय ॥

जैसे घन = मेघ आकर वर्षा करता है तब दूसरे के तपन = गर्मी को बुझा देता है। उसको अपना कोई स्वार्थ नहीं होता है। केवल परमार्थ ही प्रयोजन है। वैसे ही सन्तजन अपना ज्ञानरूपी पारस को लाकर दूसरे के दुःख सन्ताप को दूर करते हैं। इनको अपना कोई स्वार्थ नहीं होता है। केवल परमार्थ ही प्रयोजन है। इसलिये साधु बड़े परमार्थी हैं ॥ ३१४ ॥

(३१५)

साधु बड़े परमारथी, सीतल जिनके अंग ।
तपन बुझावैं और की, दे दे अपनो रंग ॥

जिनके शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग तथा मन आदि सब शीतल होते हैं ऐसे सन्तजन बड़े परमार्थी होते हैं–क्योंकि, वे अपने शुभ गुण को देकर दूसरे के दुःख को दूर कर देते हैं। अपनी शीतलता से दूसरे के संताप को शान्त कर देते हैं। घर की झंझटो से सन्तप्त हुआ पुरुष जब सन्तों के पास आता है तब उपदेश सुनकर शान्त हो जाता है। यह अनुभवसिद्ध है ॥ ३१५ ॥

—:-०-:—

(३१६)

सिंहों के लेहँडे नहि, हंसों को नहि पाँत ।
लालों की नहि बोरियाँ, साधु न चलैं जमात ॥

जैसे सिंहो की धार नहीं होती है, हंसों की पक्ति नहीं होती है और लालों की बोरियाँ भरी नहीं होती हैं वैसे ही साधुओं की जमात नहीं चलती है । सच्चे साधुओं की संख्या बहुत नहीं हुआ करती हैं। अभी जो साधुओं की जमातें देखने में आती हैं उन सभी सच्चे साधु नहीं होते हैं। यह बात अडंगा लगाते देखने से सत्य साबित होती है ॥३१६॥

(३१७)

सब बन तो चंदन नहीं, सूरा का दल नाहि ।
सब समुद्र मोती नहीं, यों साधू जग माहि ॥

सभी वन में चन्दन नहीं होता है, शूरवीरों का दल नहीं होता है और सभी समुद्र में मोती नहीं होता है, इसी प्रकार जगत् में सभी साधु नहीं होते हैं। भेष धारियों में सभी विवेक वैराग्यादि गुण वाले नहीं होते हैं। साधु के वेष देखकर उनकी पूजा की जाती है नीति शास्त्र में भी कहा है—

शैले शैले न माणिक्यं, चन्दनं न बने बने ।
साधवा नहि सर्वत्र, मौक्तिकं न गजे गजे ॥

अर्थात् सभी पर्वत में माणिक्य नहीं होता है, सभी वन में चन्दन नहीं होता है और सभी हाथी में मोती नहीं होता है वैसे ही सर्वत्र साधु नहीं होते हैं। अच्छी वस्तु बहुत नहीं किन्तु बहुत कम होती है ॥३१७॥

—:०:—

(३१८)

गाँठी दाम न बाँधई, नहि नारी सों नेह ।
कह कबीर ता साधुकी, हम चरनन की खेह ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि जो गाँठ में दाम अर्थात् रुपया पैसा आदि द्रव्य नहीं बाँधता है और जो स्त्री से स्नेह (प्रेम) नहीं करता है उस साधु के चरणकमलों के हम सब साधुजन खेह अर्थात् धूर हैं। यह वचन सद्गुरु कबीर में निरभिमानता का और यथोक्त सन्त में त्यागमहत्ता का द्योतक है ॥ ३१८ ॥

—:-०-:—

(३१९)

वृच्छ कबहुँ नहि फल चखै, नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर ॥

वृक्ष में लगा हुआ फल स्वयं वृक्ष नहीं खाता है। इसी प्रकार नदी में संचय किया हुआ जल को स्वयं नदी नहीं अंचवती (पीती) है। किन्तु दूसरे के लिये अर्थात् परमार्थ के लिये वृक्ष फल फलता है और नदी जल सञ्चय करती है। वैसे ही परमार्थ के लिये साधुजन शरीर धारण करते हैं। अपना शरीर समर्पण करके दूसरे की सहायता करते हैं ॥ ३१९ ॥

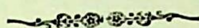
—————

(३२०)

साधु साधु सब ही बड़े, अपनी अपनी ठौर ।
शब्द विवेकी पारखी, ते माथे के मौर ॥

अपने-अपने स्थान पर साधु-साधु सब बड़े हैं इसमें संशय नहीं। किन्तु जो शब्द के विवेक करने वाले ज्ञानी सन्त हैं वे माथे के मौर

अर्थात् शिरोधार्य हैं। सबसे श्रेष्ठ हैं। इस साखी में भेषधारी सभी साधुओं को बड़ा कहा गया है। परन्तु अपने-अपने स्थान पर। सर्वत्र नहीं और जो शब्दविवेकी पारखी हैं वे सब से शिरोमणि सबके माथे के मौर हैं॥ ३२०॥



(३२१)

साधु साधु सब एक हैं, ज्यों पोस्ते का खेत।
कोइ विवेकी लाल है, और सेत का सेत॥

जैसे पोस्ता (खश खश) के खेत सब समान हैं वैसे ही साधु साधु समान हैं। परन्तु कोई ज्ञानी सन्त लाल अर्थात् जीवन्मुक्त है। अन्य आचरण से सेत=निर्मल तो हैं। परन्तु जीवन्मुक्त नहीं। क्योंकि उनको ज्ञान नहीं हुआ है। जिसमें से अफीम उत्पन्न होता है, उसके बीज को पोस्ता अर्थात् खशखश कहते हैं। पहले विहार प्रदेश से इसकी खेती अधिक होती थी। जब इसमें फूल आता है तब कोशों तक खेत सफेद नजर जाता है। कचित् ही कोई खेत लाल फूल आने से लाल दिखाई देता है। बाकी सब शुक्ल दिखाई देते हैं। यहाँ उसी की उपमा सन्त को दी गई है। यहाँ खेत का अर्थ निर्मल और लाल का पुगा हुआ, कृतकृत्य, जीवन्मुक्त है॥ ३२१॥



(३२२)

निराकार की आरसी, साधू ही की देह।
लखा जो चाहै अलख को, इनहीं में लखि लेह॥

जैसे आगरसी में अर्थात् दर्पण में मुख देखा जाता है। वैसे ही साधुओं का देह निराकार ब्रह्म को देखने के लिये एक प्रकार का आरसी

है। अलख जो लखने में नहीं आवे मन वाणी का अगोचर ब्रह्म है उसको यदि लखना हो जानता हो तो इन साधुओं में ही लख लो। अन्यत्र कहीं वह नहीं जाना जा सकता है। अलक्ष्य को लक्ष्य कराना साधु ही जानते हैं। अन्य नहीं ॥ ३२२ ॥



(३२३)

कोई आवै भाव ले, कोई आव अभाव।
साधु दोउ को पोषते, गिनैं न भाव अभाव ॥

साधु के पास कोई भाव लेकर और कोई अभाव लेकर आता है। साधु समदर्शी होते हैं। वे भाव और अभाव को नहीं गिनते हैं। दोनों को पोषते हैं। उपदेश देकर कल्याण करते हैं। इनका आशीर्वाद अमोघ (सफल) होता है ॥ ३२३ ॥



(३२४)

नहिँ शीतल है चंद्रमा, हिम नहिँ शीतल होय।
कबीर शीतल संतजन, नाम सनेही सोय ॥

कबीर स्वामी कहते हैं—संसार में न तो शीतल चन्द्रमा है और न हिम ही है। शीतल तो सन्तजन हैं क्योंकि वे नामस्नेही होते हैं। जिनके मुख से भगवान् के नाम का उच्चारण होता है वे सर्व प्रकार स शीतल होते हैं और दूसरों को भी शीतल करते रहते हैं। भगवन्नाम में ऐसी शक्ति है कि यह लेने वाले के दुर्गुणों को दूर कर उनको सद्गुणों का आवास बना देता है ॥ ३२४ ॥



(३२५)

जाति न पूछो साधु की, जब पूछो तब ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान॥

सद्गुरु कहते हैं, कि, हे सज्जनगण! आप लोग साधु की जाति न पूछो। जब पूछो तब ज्ञान ही को पूछो। तलवार का मोल (कीमत) करो। म्यान को पड़ी रहने दो क्योंकि, क्षत्रीय कुमार जब तलवार खरीदने जाता है तब वह दूकानदार से तलवार का मूल्य करता है—(पूछता है)। म्यान का नहीं। म्यान तो उसके साथ आती ही है। वैसे ही साधु के पास जाय तो ज्ञान के विषय में ही चर्चा करो। इत्यादि बाह्य विषय में नहीं। ठीक ही कहा है—'चार वरन से हरिजन ऊँचा'॥ ३२५॥

—:-०-:—

(३२६)

संत न छोड़े संतई, कोटिक मिलै असंत।
मलय भुवंगहिं वेधिया, सीतलता न तजंत॥

करोड़ों असन्त मिले तो भी सन्त अपनी साधुता को छोड़ते नहीं। मलय गिरि चन्दन के वृक्ष को चारो तरफ से विषधर सर्प वेध देते हैं तो भी वह (चन्दन) शीतलता को छोड़ता नहीं है संसार में चन्दन का वृक्ष एक ही है और वह मलयगिरि पर रहता है। उसमें शीतलता बहुत रहती है। इधर नर जाति के सर्प उत्पन्न होते हैं। उनमें विष होता है। विष बहुत गरम होता है। उससे सर्पों को बहुत बेचैनी रहती है। इस के मारे वे उड़ कर यथोक्त मलयागिरि चन्दन में लिपट जाते हैं। तव कुछ उनको शान्ति मिलती है। वे चन्दन को दंश करते हैं तो भी चन्दन अपनी शीतलता को छोड़ता नहीं है। वैसे ही चाहे जितना दुर्जन मिले तो भी सन्त अपनी सन्तता को छोड़ते नहीं हैं॥ ३२६॥

—:-०-:—

(३२७)

साधु ऐसा चाहिये, दुखै दुखावै नाहिँ ।

पान फूल छूवै नहीं, बसै बगीचा माहिँ ॥

साधु ऐसा चाहिये कि वह किसी के सताने से दुःखी न हो और स्वयं किसी को दुःख न देवे। किसी के बगीचा में भले रहे तो भी बगीचा के पत्र, पुष्प तथा फलादि को छूवे नहीं। दूसरे पक्ष में संसार में रहे परन्तु किसी की स्त्री आदि पर कुदृष्टि न करे ॥ ३२७ ॥



(३२८)

साधु असाधु बड़ अंतर, जैसे आम बबूल ।

वाकी डारी अमी फल, या की डारी सूल ॥

साधु और असाधु में बड़ा अन्तर है। जैसे आम (आम्र) और बबूल में अन्तर होता है। आम की डाली में अमृत फल और बबूल की डाली में शूल अर्थात् कांटा लगता है। साधु सत्साधन से सुख और असाधु असत्साधन से दुःख उत्पन्न करता है ॥ ३२८ ॥

—: ० :—

(३२९)

साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिँ ।

धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिँ ॥

साधु भाव (प्रेम तथा सद्भावना) का भूखा होता है। धन का नहीं जो भेखधारी साधु धन का भूखा होता है वह साधु नहीं है अतः साधुओं को चाहिये कि, धन की आशा से किसी के यहां न जायें ॥३२९॥

—:-०-:—

(३३०)

साधु समुन्दर जानिये, माहीं रतन भराय ।
मंद भाग मूठी भरै, कर कंकर चढि जाय ॥

साधु को समुद्र समझना चाहिये । क्योंकि, इसमें भी ज्ञान वैराग्यादि रत्न भरे होते हैं । जो भाग्यशाली इसमें गोता लगाते हैं, अर्थात् साधु समाज में आते हैं, सत्सङ्गादि करते हैं वे तो यथोक्त ज्ञान वैराग्यादि रत्नों को लेकर बाहर निकलते हैं और जो मन्द भागी होते हैं उसके मूठी भरने पर हाथ में कंकड़ चढ आते हैं । साधुओं में आकर सार नहीं किन्तु असार ग्रहण करते हैं ॥ ३३० ॥

(३३१)

जो चाहै साकार तू, साधू परतछ देव ।
निराकार निज रूप है, प्रेम प्रीति से सेव ॥

परमात्मा के दो रूप हैं । एक साकार और दूसरा निराकार । साकार की उपासना करते करते निराकार की उपासना प्राप्त होती है । सद्गुरु कहते हैं कि हे साधक जीव ! जो तू साकार ईश्वर को चाहते हो तो साधु प्रत्यक्ष देव = ईश्वर है ऐसा समझो और इसकी उपासना करो । और निराकार जो ईश्वर है वह निजरूप ही है । आत्मा और परमात्मा में भेद नहीं है । उसकी प्रेम प्रीति से सेवा करो । जैसे विष्णु की प्रतिमा ईश्वर का साकार रूप है वैसे ही साधु का शरीर भी ईश्वर का साकार रूप है । जैसे प्रतिमा की भक्ति से कल्याण होता है वैसे ही साधु की भक्ति से भी कल्याण होता है ॥ ३३१ ॥

(३३२)

पछा-पछी के कारने, सब जग रहा भुलान ।
निरपछ होय के हरि भजे, सोई सन्त सुजान ॥

अपने अपने मतपन्थ के पक्ष के कारण अर्थात् पक्षपात के कारण सारा संसार भूल रहा है। जो निष्पक्ष होकर अर्थात् पक्षपात से रहित होकर परमात्मा का भजन करते हैं वे ही महात्मा ज्ञानी हैं। भाव यह है कि, जब जीव जीव और जीव ब्रह्म एक है तब पक्षपात किसका ? ॥ ३३२ ॥

—:-o-:—

(३३३)

समुझि बूझि जड़ ह्वै रहे, बल तजि निर्बल होय ।
कह कबीर ता सन्त को, पला न पकरै कोय ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, जो जानबूझ कर जडवत् होकर स्थित रहते हैं और बल को त्याग कर स्थित रहते हैं उन सन्त का कोई पला भी (कपड़े का छोर भी) पकड़ नहीं सकता है। अन्य किसी प्रकार की हानि तो कैसे कर सकता है। शास्त्र में भी कहा है कि "जानन्नपि च मेधावी जडवल्लोकमाचरेत्" अर्थात् ज्ञानी सन्त सब कुछ जानते हुए भी जडवत् होकर लोक में आचरण करे या विचरण करे अन्यथा अज्ञानी जन तो इनकी बात मानेंगे नहीं। उलटा वादविवाद करेंगे। जिससे स्वरूप चिन्तन में विक्षेप होगा ॥ ३३३ ॥

(३३४)

हद चलै सो मानवा, बेहद चलै सो साध ।
हद बेहद दोनों तजैं, ताका मता अगाध ॥

शास्त्र मर्यादा के भीतर रहकर जो चलता है वह मनुष्य कहा जाता है, कर्म की मर्यादा को छोड़ कर ज्ञान के साधन शमदमादि का जो अनुष्ठान करता है वह साधु कहा जाता है और हद बेहद दोनों को छोड़कर जीवन्मुक्तिदशा में अत्याश्रमी होकर जो विचरता है उसका मत तो अगाध है। अथाह है। उसको कोई जान नहीं सकता है। क्योंकि वह ज्ञान की सप्तम भूमिका में स्थित ब्रह्मनिष्ठ है। ज्ञान की सात भूमिकायें ये हैं—शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति की, पदार्थाभाविनी और तूर्यगा ॥ ३३४ ॥

---

(३३५)

सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुरै सौ वार।
दुर्जन कुंभ कुम्भार का, एकै धका दरार ॥

सुवर्ण, सज्जन और साधुजन ये तीनों सौ बार टूटते हैं और फिर जुट जाते हैं, अलग होकर फिर मिल जाते हैं परन्तु दुर्जन पुरुष और कुम्भार का कुम्भ (घड़ा) एक ही धक्का लगने पर फट कर पृथक् हो जाते हैं। फिर कभी भी ये जुटते नहीं हैं। पृथक् होकर फिर कभी न मिलना यह इनका स्वभाव है ॥ ३३५ ॥

---

(३३६)

जीवन्मुक्त ह्वै रहै, तजै खलक की आस।
आगे पीछे हरि फिरैं, क्यों दुख पावै दास ॥

साधु को चाहिये कि, शमदमादि साधन के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके जीवन्मुक्त होकर संसार में विचरें और संसार की आशा को त्याग दें क्योंकि, जिसके आगे और पीछे श्रीहरि फिरते हैं। वह उसके दास

सन्त दुःख को प्राप्त कैसे हो सकता है ?। भक्त की रक्षा भगवान् करते हैं। भक्त के योगक्षेम को भगवान् वहन करते हैं। गीता वचन—

अनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ (९–२८)

भगवान् कहते हैं कि, जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुए सन्त जन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं उन नित्य एकीभाव से मेरे में स्थिति वाले साधुओं का योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ। अप्राप्त प्राप्ति योग और प्राप्त रक्षण क्षेम कहा जाता है ॥ ३३६ ॥

—:०:—

असाधु

(३३७)

चाल बकुल की चलत हैं, बहुरि कहावैं हंस।
ते मुक्ता कैसे चुगैं, परैं काल के फंस ॥

जो असाधु पुरुष चाल तो बकुल (बगला) की चलते हैं और फिर हंस कहलाते हैं वे मुक्ता (मोती) कैसे चुंग सकते हैं ? परिणाम यह होता है कि वे दुर्जन काल के फांस में फंस जाते हैं। जैसे बगुल के भीतर में घात करने का भाव होता है और बहार से हंस कहलाता है। वह मोती नहीं खा सकता है। वैसे ही दुर्जन के भीतर में घात करने का भाव रहता है और वहार से साधु कहलाता है वह भी सुख को भोग नहीं सकता है। अन्त में काल के फांस में फंस जाता है। उसका कल्याण हो नहीं पाता है ॥ ३३७ ॥



(३३८)

साधु भया ता क्या भया, माला पहिरी चार ।
बाहर भेस बनाइया, भीतर भरी भँगार ॥

चार प्रकार की माला पहन कर साधु हुआ तो क्या हुआ। कुछ भी नहीं। क्योंकि, वाहर में भेष बनाया है। भीतर जो भँगार भरी है। पोल है। विकार भरा है। ऊपर राम, भीतर काम। ऐसे भेखधारी साधु दम्भी कहलाते हैं। ऐसे का कल्याण होने वाला नहीं है। भेख लेना व्यर्थ है ॥ ३३८ ॥

---

(३३९)

माला तिलक लगाइके, भक्ति न आई हाथ ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, चले दुनी के साथ ॥

नकली, साधु वेषधारी, असाधु लोग, माला तिलक लगा कर एवं दाढ़ी मूँछ मुड़ा कर, द्वैतवादी दुनिया के साथ चलने लगे। वावली वाल रखने लगे। हाथ में घड़ी बाँधने लगे। संसारी के जैसा काछ लगाकर धोती पहनने लगे। परिणाम यह हुआ कि, इनके हाथ में भक्ति नहीं आई। कल्याण हो तो कैसे हो ? ॥ ३३९ ॥

—:o:—

(३४०)

दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, होगै घोटम घोट ।
मन को क्यों नहिं मूड़िए, जामें भरिया खोट ॥

दाढ़ी मूँछ मुड़ा कर घोटम घोट हो गया। इसकी अपेक्षा मन को क्यों नहीं मुड़ा जाय ?। जिसमें सव अवगुण भरे हैं। मन को मूड़ना

उसे निग्रह करना है। यहाँ दाढ़ी मूँछ मुँड़ा कर भेख धारण के खण्डन में नहीं अपितु साधन द्वारा मन को वश करने में तात्पर्य है। भेख तो चाहिये। परन्तु भेखमात्र ही कल्याण का कारण नहीं। धर्मशास्त्र में भी कहा है—'न लिङ्गं धर्मकारणम्' अर्थात् भेख ही धर्म का हेतु नहीं है॥ ३४०॥



(३४१)

मूँड़ मुड़ाए हरि मिलैं, सब कोइ लेहि मुँड़ाय।
बार बार के मूँड़ने, भेड़ न बैकुँठ जाय॥

मस्तक मुड़ाने से यदि हरि मिल जाते हों तो सब कोई मुँड़ा कर हरि को प्राप्त कर सकते हैं। भेड़ को बार बार मुँड़ने से वह वैकुण्ठ नहीं चली जाती है। अतः मूँड़ मुड़ाने मात्र से किसी को न तो मुक्ति मिली है और न मिलने की। हरि की भक्ति आदि साधन करने से मुक्ति मिलती है। केवल मूँड़ मुड़ाने से नहीं॥ ३४१॥



(३४२)

केसन कहा बिगारिया, जो मूँड़ो सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूड़िए, जामें विषै विकार॥

केशों ने क्या बिगाड़ा है? जो सैकड़ों बार मूँड़ाते रहते हो? मन को क्यों नहीं मुँड़ा जाय? जिसमें विषय विकार सब भरे पड़े हैं। मलिन मन में कामादि विकार भरे हैं। उन को निष्काम कर्म के द्वारा दूर करना चाहिये। क्योंकि शुद्ध मन से ज्ञान होता है और ज्ञान से

मोक्ष यह नियम है। जो मूँड़न आदि कराके साधु बनते हैं और आगे के साधन नहीं करते हैं उनके लिये यह उपदेश समझना चाहिये ॥ ३४२ ॥

---

(३४३)

बाँबी कूटें बावरे, साँप न मारा जाय।

मूरख बाँबी ना डसै, सर्प सबन को खाय ॥

पागल अज्ञानी लोग बाँबी=सर्प के बिल को कूटते हैं उससे सर्प मारा नहीं जाता है। हे मूर्ख ? बिल तो किसी को काटता नहीं है। उसको क्यों कूटते हो ? काटता तो सर्प है। उसको मारो। प्रकृति में मूँड़ मुड़ाना बाँबी कूटना है और मन को नहीं मारना सर्प को नहीं मारना है। विषय विष मन में भरा है। जिससे जन्म मरण होता है उसी को मारना चाहिये। शास्त्र में कहा है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

बन्धाय विषयासक्तं मुक्तये निर्विषयं स्मृतम् ॥ (यो.वा.)

मनुष्य के बन्ध ओर मोक्ष का कारण मन ही है। विषयासक्त मन बन्धन का और निर्विषय मन मुक्ति का हेतु है ॥ ३४३ ॥

—:o:—

(३४४)

जा विभूति साधुन तजी, जग ता में लपटाय।

वमन करी हुइ वस्तु को, स्वान स्वाद से खाय ॥

जिस विभूतियों को साधुओं ने त्याग दी है। उसमें संसारी जीव, ऐसे लिपट रहे हैं जैसे वमन की हुई वस्तु में श्वान लिपटते रहते है।

जैसे मनुष्यों की उलटी की हुई वस्तु को कुत्ता खाता है वैसे ही साधुओं की त्याग की हुई वस्तुओं को संसारी लोग खाते हैं। भोग करते हैं। साधु हो कर जो विषयभोग में आसक्त होते हैं वे श्वानवत् निन्द्य हैं ॥ ३४४ ॥



(३४५)

सज्जन तो दुर्जन भया, सुनि काहू को बोल ।
काँसा ताँबा ह्वै रहा, नहिँ हिरण्य का मोल ॥

जैसे काँसा जब ताँबा हो जाता है तब उसकी सुवर्ण की कीमत नहीं होती है वैसे ही किसी दुर्जन की बोली को सुनकर सज्जन जब दुर्जन हो जाता है तब उसकी सज्जन की कीमत नहीं होती है। नास्तिक निरीश्वरवादियों की बोली को सुनकर साधु जब नास्तिक निरीश्वरवादी बन जाता है तब उसकी साधु की कीमत नहीं रहती है। यह साध असाधु हो जाता है ॥ ३४५ ॥



(३४६)

लोहे केरी नावरी, पाहन गरुआ भार ।
सिर में विष की पोटरी, उतरन चाहै पार ॥

लोहे का नाव हो। वजनदार पत्थर उसमें भरा हो। और मस्तक पर बड़ा भारी वजन दार विष की गठरी हो एवं समुद्र के इस पार से उस पार जाना चाहता हो। भला कहो तो सही कि वह पार कैसे जा सकता है ?। वैसे ही पाप रूपी मलिन लोहे की बनी हुई शरीररूपी नाव है। अभिमानरूपी वजन दार पत्थर उसमें भरा है और मस्तक पर

विषयरूपी विष की बड़ी भारी गठरी है एवं संसार समुद्र के इस से उस पार जीव जाना चाहता है। भला कहो तो सही कि, यह जीव भी कैसे पार जा सकता है ?। जब पाप से मुक्त हो। अभिमान करना छोड़ दे और विषय का त्याग करे तब संसार सागर से पार जा सकता है।३४६।

—:०:—

(३४७)

सकलौ दुरमति दूरि करु, अच्छा जनम बनाउ।
काग गवन गति छाँड़िके, हंस गवन चलिआउ॥

असाधुओं को सद्गुरु उपदेश देते हैं कि, हे सज्जनगण! आप लोग सर्व दुर्बुद्धियों को दूर करो और मनुष्यजन्म को उज्ज्वल बनाओ एवं काग की चाल को छोड़कर हंस की चाल से हमारे पास चले आओ। क्योंकि दुराचरण त्यागपूर्वक सदाचरण करने से ही परम पद की प्राप्ति होती है॥ ३४७॥



(३४८)

चंदन सर्प लपेटिया, चंदन काह कराय।
रोम रोम बिष भीनिया, अमृत कहाँ समाय॥

चन्दन के वृक्ष को सर्पों ने लपेट लिया है परन्तु चन्दन बिचारा क्या कर सकता है ? क्योंकि सर्पों के रोम रोम में विष व्याप्त है तो अमृत कहां समायगा ?। सर्प में विष है और चन्दन में अमृत। अमृत विष का विरोधी है। फिर भी विष को दूर नहीं कर सकता है। क्योंकि, सर्प के सारे शरीर में विष प्रविष्ट है। अमृत के लिये स्थान नहीं है। वह कहां समायगा ?। अर्थात् कहीं नहीं। वैसे ही असाधुओं में विषय-

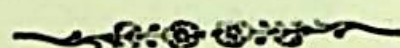
विष व्याप्त है। उपदेशरूप अमृत के लिये स्थान खाली नहीं है तो आत्मसुखरूप अमृत कहां समायगा ?। असाधुओं का कल्याण होना असम्भव है॥ ३४८॥

—:-०-:—

(३४९)

मलयागिरि के वास में, वेधा ढाक पलास।
वेना कबहुँ न वेधिया, जुग जुग रहिया पास॥

मलयागिरि चन्दन के वास में ढाक पलाश आदि सभी वृक्ष वेध गये हैं। चन्दन बन गये हैं। अन्य जाति के वृक्ष भी चन्दन के पास रह कर सुगन्धी युक्त चन्दन बन गये हैं। परन्तु वेना=वांस कभी नहीं वेधा गया है। चन्दन के पास रहने से सभी चन्दन बने परन्तु बांस युग युग चन्दन के पास रहने पर भी चन्दन नहीं बन सके। क्योंकि, उसमें पोल है। वैसे ही साधु के पास असाधु सदा रहने पर भी साधु नहीं बन सके। क्योंकि, इसके भीतर अवगुण भरे हैं॥ ३४९॥



(३५०)

जहर जिमी दै रोपिया, अमि सींचै सौ वार।
कबीर खलकै ना तजै, जामें जौन विचार॥

जमीन में जहर (विष) रोप कर (बोकर) सौ सौ बार अमृत सीचा जाय तो भी वह अमृत कभी नहीं हो सकता है वैसे ही कबीर स्वामी कहते हैं कि असाधु असाधुता को कभी नहीं त्याग सकते हैं। जिसमें जो अच्छा बुरा विचार रहता है वह कभी नहीं जा सकता है।३५०।



(३५१)

गुरू विचार क्या करै, शिष्यहि में है चूक ।
शब्द-बाण वेधे नहीं, बाँस बजावै फूंक ॥

विचारे गुरु क्या कर सकते हैं जब शिष्य में ही चूक है। पात्र विना वस्तु कहां ठहर सकती है ? अधिकारी विना उपदेश कहां लगेगा? शब्दरूपी बाण वेधता नहीं है जैसे वांस फूँक कर बजाया जाता है। अर्थात् पोल वाले वांस में फूंक मारने से इस पार से उस पार निकल जाता है। ठहरता नहीं है वैसे ही अनधिकारी असाधु को उपदेश करने पर वह ठहरता नहीं है। इस कान से उस कान में निकल जाता है। सुपात्र को उपदेश देना चाहिये ॥ ३५१ ॥

—: ० :—

(३५२)

कबीर संगति साधु की, हरै और की व्याधि ।
ओछी संगति कूर की, आठो पहर उपाधि ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, साधु की सङ्गति दूसरे की व्याधि को हरण कर लेती है और असाधु = कूर प्रकृति वाले पुरुष की सङ्गति ओछी = तुच्छ है। क्योंकि वहां आठो पहर उपाधि रहती है। कभी शान्ति नहीं ॥ ३५२ ॥

—:०:—

(३५३)

निगुरा मानस ना मिलो, पापी मिलो हजार ।
एक निगुरा के सिस पर, लक्ष पापी का भार ॥

सद्‌गुरु कहते हैं कि, चाहे हजारों पापी मिले तो हानि नहीं परन्तु असाधु निगुरा मनुष्य न मिले तो अच्छा। क्योंकि, एक निगुरा के शिर पर लक्ष पापी का भार होता है ॥ ३५३ ॥

—:०:—

माला और वेष

(३५४)

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिँ ।
मन चहुँ दिसि मारे फिरै, यह तो सुमरन नाहिँ ॥

हाथ में माला फिरती है। मुख में जीभ फिरती है और मन चारो तरफ मारे मारे फिरता है। यह स्मरण नहीं कहा जाता है। किन्तु एकाग्र चित्त से माला फेरे तो वह स्मरण कहा जाता है ॥ ३५४ ॥



(३५५)

माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर ।
करका मनका छोड़ दे, मन का मनका फेर ॥

माला फेरते फेरते युग चला गया परन्तु मन का फेरा न मिटा। मन चञ्चल ही रह गया। तो अब हाथ के मणके को छोड़ दो और मन के मणका को फेरो। संसार के विषयों से मन को फिरा कर ईश्वर चिन्तन करो ॥ ३५५ ॥

—:०:—

(३५६)

माला बनाइ काठ की, उसमें डाला सूत ।
माला बिचारो क्या करे, भजने हार कपूत ॥

तुलसी आदि काष्ठ की माला बनाई गई और उसमें सूत डाल कर वह पिरोई गई। परन्तु वह माला बिचारी क्या कर सकती ? कुछ नहीं, क्योंकि, माला भजने वाला कपूत है। चित्त लगा कर माला फेरता नहीं तो कल्याण कैसे हो ? ॥ ३५६ ॥

---

(३५७)

माला मुझसे लड़ पड़ी, क्या तू फेरे मोहि ।
जो मन फेरे जगत् से,(तो) राम मिलाऊँ तोहि ॥

एक समय माला मुझसे लड़ पड़ी और कहने लगी कि, तू मुझे क्यों फिराता है ?। चक्र में डाल कर क्यों दुःख देता है। यदि तू मन को संसार के विषयों की तरफ से घूमा दो तो तूझे राम के साथ मिलाप करा दूं। क्योंकि जब तक मन विषयों की आर से मुड़ता नहीं तब तक परमात्मा को प्राप्त नहीं होता है ॥ ३५७ ॥

—:-o-:—

(३५८)

माला स्वासे स्वास की, फेरेंगे कोइ दास ।
चौरासी भरमे नहीं, कटै काल के फाँस ॥

श्वास श्वास में ईश्वर का नाम लेना असली माला कही जाती है। इसको कोई विरल दास ही फेरते हैं। इस माला को फेरने वाले महात्मा चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण नहीं करते हैं और इनका काल फाँस

कट जाता है। प्रारब्ध भुक्त होने पर कालधर्म को प्राप्त होना =(शरीर त्याग करना) काल फाँस कहा जाता है।

यथोक्त माला विषयक जितने वचन हैं उन सबका तात्पर्य दत्तचित्त होकर माला फेरने में है, निषेध में नहीं। क्योंकि, हाथ में लेकर माला फिराये विना मानसिक जप होना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव भी है ॥ ३५८ ॥

—:०:—

(३५९)

तत्त्व तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान।

करनी कंठी कंठ में, परसा पद निर्वान ॥

मैंने मस्तक पर आत्मतत्त्व का तिलक दिया, चन्दन का नहीं। कान में सुरति (ध्यान) की श्रवणी दी, काष्ठ की नहीं और कण्ठ में कर्म की कण्ठी पहनी तुलसी की नहीं तब निर्वाण पद प्राप्त किया। बाह्य वेष नहीं किन्तु आन्तर वेष धारण किया तब मोक्षपद प्राप्त हुआ। इस कथन से बाह्य वेष की निन्दा-खण्डन नहीं समझना चाहिये क्योंकि, बाह्यवेष भी आन्तर वेष का कारण है ॥ ३५९ ॥

—:०:—

(३६०)

मन माला तन मेखला, भय को करे भभूत।

अलख मिला सब देखता, सो जोगी अवधूत ॥

जो मन को माला, तन को मेंखला और भय को भभूति करता है एवं सबके देखता अलक्ष्य ब्रह्मको मिल गया है वह योगी अवधूत कहलाता है। माला मेखला और भभूति आदि भेख का नाम है ॥३६०॥

—:०:—

(३६१)

तन को जोगी बस करै, मन को बिरला कोय।
सहजै सब विधि पाइए, जो मन जोगी होय॥

शरीर को तो सभी योगी (साधु) वश करते हैं, परन्तु मन को कोई विरल ही वश कर पाता है। यदि मन योगी (साधु) हो जाय तो सहज में सब वश में हो सकते हैं और परमात्मा को प्राप्त हो सकते हैं। देह–दमन पूर्वक इन्द्रिय अन्तःकरण आदि को वश करने पर परमपद की प्राप्ति होती है। केवल देहदमन से नहीं। भाव यह है कि, केवल शरीर में भेख धारण करने से नहीं किन्तु मन में धारणावृत्ति को धारण करने से परमपद प्राप्त होता है॥ ३६१॥

—:o:—

(३६२)

हम तो जोगी मनहिं के, तन के हैं ते और।
मन को जोग लगावते, दसा भई कछु और॥

सद्गुरु कहते हैं कि, हम लोग मन के योगी हैं, तन के नहीं। तन के योगी (भेखधारी) तो कोई और ही होते हैं। मन को योग में लगाने से हमारी दशा कुछ और ही हो गई है। सच्ची समाधि लग गई है। निरुद्ध समाधि के द्वारा साक्षात्कार होने से ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये हैं॥ ३६२॥

—:o:—

आशा

(३६३)

आसा तो गुरुदेव की, दूजी आस निरास।
पानी में घर मीनका, सो क्यों मरै पियास॥

गुरुदेव की जो आशा वही एक आशा है और दूसरे की आशा निराशा है। वह आशा पूरी नहीं हो सकती है। जैसे मछली का घर पानी में होता है तो वह प्यास से कैसे मर सकती है ? वैसे ही जिसने मोक्ष की आशा से गुरु की शरण ग्रहण किया है वह मोक्ष से वञ्चित कैसे रह सकता है॥ ३६३॥

—:०:—

(३६४)

आसा जीवै जग मरै, लोग मरै मन जाहि।
धन संचैं सो भी मरैं, उबरैं सो धन खाहि॥

संसार के लोग सब मर जाते है। परन्तु आशा जीवित रहती है, मरती नहीं। मन भी चला जाता है और जो भोग की आशा से धन सञ्चय करता है वह भी मर जाता है। केवल उबरता (बचता) वह है जो धन को खाता खिलाता है। सुख की आशा से धन सञ्चय करने वाले बीच में अचानक मर जाने पर वासना से उसका जन्म मरण होता है। धन को शुभ कार्य में खर्च करने वाले को वासना नहीं होती है। अतः वह मुक्त हो जाता है॥ ३६४॥



(३६५)

आसन मारे का भया, मुई न मन की आस ।
ज्यौं तेली के बैल को, घर ही कोस पचास ॥

आसन मार कर एक स्थान पर बैठने से क्या हुआ अर्थात् कुछ भी नहीं। क्योंकि, मन की आशा तो मरी नहीं। जसे तेली के बैल को घर ही में पचास कोश जितना चलना हो जाता है। वैसे ही एक आसन पर बैठा रहने पर भी जिस जिस विषय की आशा रहती है उन सब का मन चिन्तन करता ही रहता है। निरुद्ध नहीं होता है। और जब आशा मर जाती है। तब मन स्थिर हो जाता है। आसन लगाने का फल मिल जाता है ॥ ३६५ ॥

---

(३६६)

तब लग जोगी जगत गुरु, जब लग रहै उदास ।
जब आसा मन में बसी, जग गुरु जोगी दास ॥

तभी तक योगी=साधु जगत का गुरु रहता है जब तक वह उदास (निराश) रहता है और जब उसके मन में आशा बस जाती है तब जगत तो उसका गुरु और वह योगी (साधु) उसका दास हो जाता है। इस लिये साधु को सदा उदासीन रहना चाहिये। किसी चिज को आशा नहीं करना चाहिये ॥ ३६६ ॥

—:-०-:—

(३६७)

बहुत पसारा जनि करा, कर थोड़े की आस ।
बहुत पसारा जा किया, सा सब गये निरास ॥

बहुत माया का विस्तार न करो। थोड़े की आशा करो। जिसने माया का बहुत विस्तार किया वह संसार से निराश होकर गया। उसकी आशा पूर्ण नहीं होने पाई और वह संसार से चल बसा ॥ ३६७ ॥

—:०:—

तृष्णा

(३६८)

की त्रिस्ना है डाकिनी, की जीवन का काल ।
और और निस दिन चहै, जीवन करै बिहाल ॥

या तो तृष्णा डाकिनी (डाइन) है या जीवों का काल। क्योंकि, वह रात्रि दिन अन्य-अन्य=नयी नयी वस्तु चाहती रहती है और जीवों को बेहाल करती रहती है। डाकिनी जैसे बच्चों को मारती रहती है वैसे ही यह तृष्णा जीवों को मारती रहती है। स्वरूप से रूपान्तर कर देना बेहाल कहा जाता है। एक हो तो दो की, दो हो तो दश की, दश हो तो सौ की और सौ हो तो हजार की इच्छा करती रहती है। जिससे जीव सदा विकल रहता है ॥ ३६८ ॥

—:०:—

(३६९)

रामहि छोटा जानि के, दुनियाँ आगे दीन ।
जीवन को राजा कहै, तृष्णा के आधीन ॥

तृष्णा के अधीन पुरुष राम को छोटा जानकर और दुनिया के आगे दीन होकर धनी मानी जीवों को राजा कहता है। यदि यह धन की इच्छा रूप तृष्णा के वश न होता तो किसी के आगे दीन वचन न बोलता और अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के राजा राम को राजा न कहकर

प्राकृत जीवों को राजा न कहता। कहता तो है। अतः यह जीव तृष्णा के अधीन है। दुःखी है॥ ३६९॥

---

(३७०)

कबीर तृस्ना पापिनी, तासों प्रीति न जोर।
पैंड़ पैंड़ पीछे परै, लागै मोटी खोर॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, यह तृष्णा बड़ी पापिनी है इससे कोई प्रीति न जोड़ो। क्योंकि, इससे प्रेम करने पर पद पद पर पुरुष पीछे पड़ता है। हरेक काम में पुरुष पीछे ही पड़ता है। आगे बढ़ने नहीं पाता है। जिससे मोटी खोर लगती है। बड़ा भारी दोष लगता है।३७०।

---

(३७१)

तृस्ना सींची ना बुझै, दिन दिन बढती जाय।
जावासा का रूख ज्यौं, घन मेहा कुम्हिलाय॥

तृष्णा रूपी लता प्रेम रूपी सेचन को कुछ समझती नहीं है। विना सेचन के प्रतिदिन बढ़ती जाती है। जैसे जावासा का वृक्ष मेघ के सेचन से उलटा सूख जाता है॥ ३७१॥

---

(३७२)

कबीर सो धन संचिए, जो आगे को होय।
सीस चढाए गाँठरी, जात न देखा कोय॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि जो धर्म के हेतु धन हो उसका सञ्चय करना चाहिये अर्थात् जो शरीर छूटने के बाद परलोक में मिलने वाला हो उस धन का संग्रह करना चाहिये। धन की गठरी मस्तक पर चढ़ा कर जाते हुए किसी को देखा नहीं है। भाव यह है कि, धर्म के लिये धन सञ्चय करना चाहिये। जिसका फल दूसरे जन्म में प्राप्त हो अन्यथा धन यहीं पड़ा रहेगा। कोई बाँध कर गया नहीं और जाने का भी नहीं ॥ ३७२ ॥

निद्रा

(३७३)

कबीर सोया क्या करै, उठि न भजै भगवान।
जम जब धर लै जायँगे, पड़ा रहेगा म्यान ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे जीव ! तू सोया सोया क्या करता है? उठ कर भगवान् का भजन करो क्योंकि, जब यमराजा तुझे पकड़ कर ले जायगा तब आत्मा रूपी तलवार का शरीर रूपी म्यान यहीं पड़ा रहेगा। उठकर भजन करने से कल्याण होगा ॥ ३७३ ॥

---

(३७४)

कबीर सोया क्या करै, जागन की करु चौंप।
ये दम हीरा लाल है, गिनि गिनि गुरु को सौंप ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे जीव ! तू सोया सोया क्या करता है जागने का अभ्यास कर। यह जो तेरा श्वास चलता है वह हीरा और

लाल के समान रत्न है। इनको गिन गिन कर गुरु का अर्पण कर दो। नीद से उठ कर भजन कर॥ ३७४॥



(३७५)

नींद निसानी मीच की, उट्ठ कबीरा जाग।

और रसायन छाँड़िकै, नाम रसायन लाग॥

निद्रा रोग की निशानी है। हे जीव! उठो, जागो। अन्य रसायन को छोड़कर नाम रसायन में लग जा। इससे तेरा सब रोग मिट जायगा। भव रोग से मुक्त हो जायगा॥ ३७५॥



(३७६)

पिउ पिउ कहि कहि कूकिए, न सोइये असरार।

रात दिवस के कूकते, कबहुँक लगै पुकार॥

पपिहा के समान पिउ-पिउ कह-कह कर कूकते (पुकारते) रहना। वेभान होकर सोते न रहना। रात्रि दिन के कूकने से कभी तो प्रभु के दरबार में तेरी पुकार लग जायगी॥ ३७६॥



(३७७)

सोता साधु जगाईये, करे नाम का जाप।

ये तीनों सोते भले, साकत सिंह औ साँप॥

सोए हुए साधु को जगा देना चाहिये। क्योंकि, वह उठकर नाम का जप करेगा। अतः जगाने से पाप नहीं लगेगा। ये तीनों सोते रहैं

तभी अच्छा है–साकट (मांसाहारी), सिंह और साँप। अर्थात् ये तीनों सोते हों तो सोने देना चाहिये। इनको जगाना नहीं चाहिये। क्योंकि ये उठेंगे तो हिंसा करेंगे। अतः इनको जगाने से पाप लगता है ॥३७७॥

—:०:—

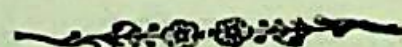
(३७८)

जागन में सोवन करै, सोवन में लौ लाय।
सुरति डोरि लागी रहै, तार टूटि नहिं जाय॥

जागते हुए सोवे और सोते हुए लवलगाता रहे (जागता रहे) सुरति रूपी डोरी अखण्ड लगी रहे एवं तार टूटने न पावे। जागते हुए अनर्थ चिन्तन न करे, सोते हुए प्रभु में लवलीन रहे, सुरति रूपी डोरी लगी रहे एवं कभी तार टूटने न पावे इसका नाम भजन है। निवातस्थ दीप शिखावत् और तैल धारावत् निरन्तर ध्यान में लगा रहना चाहिये। गीता में भी कहा है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

हे अर्जुन! सम्पूर्ण भूतप्राणियों के लिये जो रात्रि है उसमें नित्य शुद्ध बोध स्वरूप परमानन्द में भगवान् को प्राप्त हुआ योगी पुरुष जागता है और जिस नाशवान् क्षणभङ्गुर सांसारिक सुख में सब भूतप्राणी जागते हैं तत्त्वको जानने वाले मुनि के लिये वह रात्रि है ॥गी०२,६९॥३७८॥



निन्दा

(३७९)

निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय॥

निन्दक पुरुष को आँगण में कुटी छवा (बनाकर) पास में रखना चाहिये। क्योंकि, वह विना पानी के और विना साबुन के पाप धोकर अपने स्वभाव से ही निर्मल कर देता है। धोवी साबुन से कपड़ धोता है। परन्तु निन्दक तो साबुन विना ही अपने निन्दा करने के स्वभाव से ही दूसरे के पाप को धो डालता है। किसी की निन्दा करना उसका पाप धोना है। उसका पाप ले लेना है। अतः किसी की निन्दा नहीं करना चाहिये॥ ३७९॥

(३८०)

तिनका कबहु न निंदिए, जो पाँवन तर होय।
कबहूँ उड़ि आँखिन परै, पीर घनेरी होय॥

जो चलते समय पाँव के तलिया के नीचे होता है ऐसे तिनका (तृण) की भी निन्दा नहीं करनी चाहिये। तुच्छ जानकर तिरस्कार नहीं करना चाहिये। छोटे को छोटा नहीं समझना चाहिये। क्योंकि, कभी वह उड़कर आंख में पड़े तो बहुत पीड़ा होती है। निन्दा करना एक प्रकार का तिरस्कार करना है॥ ३८०॥

—:-०-:—

(३८१)

सातो सायर मैं फिरा, जंबुदीप दै पीठ।
निंदा पराई न करै, सो कोइ विरला दीठ॥

जम्बुद्वीप को पीठ पीछे करके अर्थात् धार्मिक देशों को छोड़कर सातो समुद्र पर्यन्त मैं फिरा और देखा तो जो दूसरों की निन्दा न करते हों ऐसे कोई विरल पुरुष ही मुझे मिले और सब दूसरे की निन्दा करते ही देखने में आये। निन्दा बड़ी मिट्ठी वस्तु है। निन्दा करते समय बड़ा आनन्द आता है। अतः इसको सब कोई करते हैं। दूसरे की निन्दा न करते हैं ऐसे कोई विरल पुरुष ही संसार में होते हैं॥ ३८१॥

—:o:—

(३८२)

दोष पराया देखि के, चलै हसंत हसंत ।
आपन याद न आवई, जाको आदि न अंत॥

दूसरों के दोष को देखकर हसते हसते चलते हैं। परन्तु अपना रागद्वेषादि रूप दोष याद नहीं आते हैं। जिनका आदि और अन्त नहीं है किन्तु असंख्य हैं। अन्य के अवगुणों को देखकर निन्दा करते हैं। अपने अन्दर जो अनन्त (असंख्य) अवगुण हैं, उनको नहीं देखते हैं। दूसरे की निन्दा नहीं करनी चाहिये और अपने में जो निन्द्य अवगुण हैं उनको दूर करने के लिये प्रयास करना चाहिये॥ ३८२॥

—:-o-:—

(३८३)

निंदक एकहु मति मिलै, पापी मिलौ हजार।
इक निंदक के सीस पर, कोटि पाप को भार॥

पापी पुरुष हजार मिले तो हानि नहीं पर निंदक एक न मिले तो अच्छा। क्योंकि, एक निन्दक के शिर पर करोड़ो पाप का भार होता है। भाव यह है कि अन्य पाप तो पाप हैं पर निन्दा करना महापाप है।३८३।

मद

(३८४)

मद तो बहुतक भाँति का, ताहि न जानै कोय।
तन-मद मन-मद जाति-मद, माया-मद सब लोय ॥

मद बहुत प्रकार का होता है। उसको कोई नहीं जानता है। देखिये तन मद, मन-मद, जाति-मद और माया-मद में सब लोग मस्त हैं॥३८४॥

—:०:—

(३८५)

विद्या-मद औ गुनहुँ-मद, राज- मद्द उनमद्द।
इतने मद को रद करैं, तब पावै अनहद्द ॥

तन-मद, मन-मद, जाति-मद और माया-मद, ये चार मद पूर्व साखी में आये और इस साखी में विद्या-मद, गुण-मद, राज-मद, और उनमाद ये चार मद आये। इन आठो मदों को रद (नाश) करे तब अनहद= सीमा रहित परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। मद नाम अभिमान का है। जो भक्ति का विरोधी है। यह पूर्व बहुत बार कहा गया है। ये जब तक हृदय में रहते हैं तब तक भक्ति प्राप्त नहीं हाती है और जब भक्ति नहीं तब ज्ञान भी नहीं प्राप्त होता है एवं जब ज्ञान नहीं तब अनहद ब्रह्म की प्राप्तिरूप मोक्ष कैसे हो सकता है ?॥ ३८५॥

—:-०-:—

(३८६)

कबीर माता नाम का, मद मतवाला नाहिँ ।
नाम पियाला जो पियै, सो मतवाला नाहिँ ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, भक्त जन नाम मद से मतवाले होते हैं। मादक द्रव्य के मद से मतवाले नहीं होते हैं। नाम रस का प्याला भर कर जो पीते हैं वे मतवाले नहीं कहे जाते हैं। क्योंकि, मादक द्रव्य के मद से जो मतवाला होता है वह बेभान होता है और नाम मद से जो मस्त होता है उसको आत्मा और परमात्मा का अभेद भान होता है। इस लिये भक्त मतवाला नहीं किन्तु खुदमस्ती में मस्त होता है ॥३८६॥

—:-०-:—

नशा और अमल

(३८७)

कलियुग काल पठाइया, भांग तमाखू फीम ।
ज्ञान ध्यान की सुधि नहीं, बसै इन्ही की सीम ॥

कलियुग में काल ने भांग, तमाकू और अफीम आदि मादक द्रव्य भेज दिया है। जिसका सेवन करने से ज्ञान ध्यान की सुधि बुद्धि नहीं रहती है। क्योंकि इन्हीं के साथ सीमा के अंदर निवास करता है तो ज्ञान ध्यान हो कैसे ?। नशा में चूर रहने से ज्ञान ध्यान नहीं हो सकता है ॥ ३८७ ॥



(३८८)

भांग तमाखू छोतरा, आफू आर सराब ।
कौन करेगा बंदगी, ये तो भये खराब ॥

भांग तमाकु छोतरा आफू और शराब आदि के नशा में सब वेभान हो गये हैं तो वंदगी कौन करेगा ?। नशा में फस जाने से मोक्ष के साधन भक्ति ज्ञानादि कौन करेगा ? और साधन न करने से कल्याण कैसे होगा ॥ ३८८ ॥

---

(३८९)

भांग तमाखू छोतरा, सुरापान से हेत ।
ते नर नरके जायँगे, माता पिता समेत ॥

भांग तमाकू छोतरा (छूत = अपवित्र) और मदिरा पान से जो हेत = प्रेम करता है वह पुरुष माता पिता के सहित नरक में जायगा । क्योंकि, सन्तान सुकृत कर्म करे तो माता पिता को भी स्वर्ग और दुष्कृत कर्म करे तो नरक होता है यह नियम है ॥ ३८९ ॥

—: o :—

(३९०)

अमल अहारो आतमा, कबहु न पावे पार ।
निश्चय हावे दरिद्री, परे चौरासी धार ॥

अमल आहार करने वाला जीव कभी संसार सागर से पार नहीं हो सकता है । केवल इतना ही नहीं अपितु वह निश्चय दरिद्री भी होता है और चौरासी लक्ष योनि रूप भवनदी की बीच धारा में डूब मरता है । सदा जन्मते मरते ही रहता है ॥ ३९० ॥

(३९१)

भांग तमाखू छूतरा, जन कबीर जे खाँहि ।
जोग जज्ञ जप तप किये, सबै अकारथ जाँहि ।।

कबीर स्वामी कहते हैं कि, जो जन भांग, तमाकू और अत्यन्त अपवित्र तामस पदार्थ को खाता है उसके योग, यज्ञ, जप और तप किये हुए सब व्यर्थ हो जाते हैं। सब निष्फल होते हैं। फल के हेतु नहीं रहते हैं। अपने कल्याण के साधनों को सफल बनाना हो तो नशा का परित्याग करना चाहिये ।। ३९१ ।।



(३९२)

राखें व्रत एकादसी, करैं अन्न को त्याग ।
भांग तमाखू ना तजै, कहैं कबीर अभाग ।।

लोग एकादशी व्रत रखते हैं। उस दिन अन्न का त्याग करते हैं। परन्तु भांग तमाकू आदि मादक पदार्थ का त्याग नहीं करते हैं। कबीर स्वामी कहते हैं कि ऐसे लोग भाग्यहीन होते हैं। क्योंकि, व्रत को सिद्ध न होने देने वाले एवं व्रत को निष्फल बनाने वाले मादक द्रव्य का त्याग तो करते नहीं तो व्रत का फल कैसे मिलेगा ।। ३९२ ।।

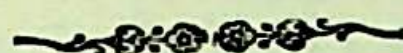


मांसाहार और हिंसा

(३९३)

मांसाहारी मानवा, परतछ राछस अंग ।
ताकी संगति मति करो, पड़त भजन में भंग ।।

हे अंग ! हे शिष्य ! मांसाहारी मनुष्य प्रत्यक्ष राक्षस है। उसकी सङ्गति कभी नहीं करनी चाहिये। क्योंकि, भजन में भंग पड़ता है। अहिंसा हिंसा भक्ष्य अभक्ष्य आदि विषयों पर वादविवाद करते रहने से भजन हो नहीं पाता है ॥ ३९३ ॥



(३९४)

कलियुग केरे ब्राह्मणा, मांस मछलियाँ खाय ।
पाँय लगे सुख मानहीं, राम कहै जरि जाय ॥

खेद की बात है कि कलियुग के ब्राह्मण लोग मांस मछली खाते हैं। उनको लोग 'महाराज ! प्रणाम' ऐसा कहते हैं तब सुख मानते हैं—बहुत प्रसन्न होते हैं और "महाराज ! राम राम" ऐसा कहते हैं तब जल जाते हैं। प्रणाम करने से खुश होते हैं और राम राम कहने से नाराज होते हैं ॥ ३९४ ॥



(३९५)

तिल भर मछली खाय के, कोटि गऊ दे दान ।
कासो करवत ले मरै, तौ भी नरक निदान ॥

तिल मात्र मछली खा कर यदि करोड़ों गोदान करे और काशी में जाकर करवत लेकर मरे तो भी अन्त में नरक ही होता है। उस पाप से मुक्त हो नहीं पाता है ॥ ३९५ ॥



(३६६)

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल ।
जो बकरी को खात है, तिनका कौन हवाल ॥

बकरी घास पात खाती है। उसकी तो मांसाहारीलोग खाल (चर्म) काढ़ डालते हैं और जो लोग बकरी को खा जाते हैं, उनकी क्या दशा होगी ?। विना अपराधी को अपराधी समझ कर जब खाल खींच डालते हैं तो अपराधी की क्या दशा होगी ? ॥ ३९६ ॥

—:-०-:—

(३६७)

जिव मति मारहु बापुरे, सबका एके प्रान ।
हत्या कबहु न छूटिहै, कोटन सुनो पुरान ॥

हे बापुरा जीव ! जीव को न मारो। क्योंकि, सबका प्राण समान है। जीव हत्या करने से जो पाप होगा वह कभी छूटने का नहीं। चाहे करोड़ो वार पुराण भले सुनो ॥ ३९७ ॥

—:०:—

(३९८)

मुलना तुझे करीम का, कब आया फरमान ।
दयाभाव हिरदै नहीं, जबह करै हैवान ॥

हे मुलाना जी ! तुमको करीम = खुदा का फरमान (हुकुम) कब आया है जो तुम कुर्बानी करते हो। गाय, बकरी तथा मुर्गी मारते हो। जीव हिंसा करते हो। जिसके हृदय में दया नहीं है अत एव जबह

अर्थात् प्राणियों के गले पर छुरी चलाता है वह मुसलमान नहीं किन्तु हैवान है ॥ ३९८ ॥

—:o:—

(३९९)

जोर करी जिबहै करै, मुख सों कहै हलाल ।
साहिब लेखा मांगसी, होसी कौन हवाल ॥

जोर करके जबह करते हो और कहते हो कि मैंने हलाल किया है। साहेब जब हिसाब मांगेगा तब तुम्हारी क्या दशा होगी ? ॥ ३९९ ॥

—:o:—

(४००)

गला काटि विसमिल करै, ते काफिर बेबूझ ।
औरन को काफिर कहै, अपनो कुफर न सूझ ॥

प्राणियों के गले को काट कर "विसमिलाहुर्रहिमाने रहिम" ऐसा शब्द करता है वह स्वयं बेबूझ (अज्ञानी) काफर कहा जाता है। दूसरे को काफर कहता है पर अपना कुफ्र सूझता नहीं है। जो कुफ्र करे सो काफर ॥ ४०० ॥

—:o:—

(४०१)

कबीर तेई पीर है, जे जानें पर पीर ।
जे पर पीर न जानहीं, ते काफिर बेपीर ॥

२४

कबीर स्वामी कहते हैं कि, संसार में वही पीर (गुरु) है जो दूसरे की पीड़ा को जानता है और जो दूसरे की पीड़ा को नहीं जानता है। वह बेपीर काफर कहा जाता है। उसको दोजक होता है। बिहिस्त नहीं ॥ ४०१ ॥



(४०२)

हिंदू के दाया नहीं, मिहर तुरुक के नाँहि ।
कहैं कबिर दोनौं गये, लख चौरासी माँहि ॥

कबीर कहते हैं कि, हिंदू के हृदय में दया नहीं और तुरुक के हृदय में मेहर नहीं इस लिए ये दोनों चौरासी लक्ष यौनियों में चले गये ॥ ४०२ ॥



(४०३)

अंकुर भखै सो मानवा, मांस भखै सो स्वान ।
जीव वधै सो काल है, सदा नरक परमान ॥

अङ्कुर भक्षण करे वह मनुष्य मांस भक्षण करे वह कुत्ता और जो जीव वध करे वह काल कहा जाता है उसको सदा नरक में रहना पड़ता है यह प्रमाण शास्त्र का नियम है इति ॥ ४०३ ॥



शील

(४०४)

सील छिमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि तब होय।

बिना सील पहुँचै नहीं, लाख कथै जो कोय॥

शील=चारित्र्य (सदाचरण स्वभाव) और क्षमा=तितिक्षा सहन स्वभाव जब उत्पन्न होता है तब अलख दृष्टि अर्थात् ब्रह्म दृष्टि प्राप्त होती है। आत्मज्ञान प्राप्त होता है शील के बिना चाहे कोई लाखों कथा कथे परन्तु परमात्मा के परमधाम सत्यलोक पहुँच नहीं सकता है॥४०४॥

---

(४०५)

सीलवंत सब तें बड़ा, सर्व रतन की खानि।

तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि॥

शील वाला पुरुष सबसे बड़ा और सर्वरत्नों की खान होता है। क्योंकि, तीनों लोकों की सम्पत्तियाँ मानो शील में हो आकर समा रही हो शीलवान् पुरुष सन्तोषी होता है। और जिसको सन्तोष है। उसको सब कुछ है॥ ४०५॥

—:०:—

(४०६)

ज्ञानी ध्यानी संयमी, दाता सूर अनेक।

जपिया तपिया बहुत हैं, सीलवंत कोइ एक॥

ज्ञान, ध्यानी, संयमी, दाता, शूरवीर, अनेक हैं। जप तप करने वाले भी संसार में बहुत हैं। परन्तु शीलवान् पुरुष तो हजारों में कोई

एक होता है। क्योंकि, वहुत से ज्ञानी कहलाने वाले चरित्रभ्रष्ट देखे जाते हैं ॥ ४०६ ॥

—:o:—

(४०७)

सुख का सागर सील है, कोइ न पावै थाह।
सील बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहि साह ॥

शील सुख का सागर है। इसका थाह कोई पा नहीं सकता है। जैसे द्रव्य (रुपया) विना साहुकार नहीं वैसे ही शील विना का साधु साधु नहीं कहला सकता है शास्त्र में भी कहा है—

शीलं प्रधानं न कुलं प्रधानं
कुलेन किं शीलविवर्जितेन।
बहवो नरा नीचकुलेषु जाताः
स्वर्गं गताः शीलमुपास्य धीराः ॥

अर्थात् संसार में शील ही प्रधान है, कुल नहीं। शीलरहित पुरुष उच्च कुल में उत्पन्न हुआ तो क्या हुआ, कुछ भी नहीं। क्योंकि, बहुत से धीर पुरुष नीच कुल में उत्पन्न हुए थे परन्तु शील का उपार्जन करके स्वर्ग चले गये हैं ॥ ४०७ ॥

—:-o-:—

(४०८)

घायल ऊपर घाव लें, टोटे त्यागी सोय।
भर जोवन में सीलवँत, बिरला होय तो होय ॥

घायल के ऊपर घाव लेता हो अर्थात् स्वयं घायल हो फिर भी दूसरे को बचाने के लिये अपने पर घाव ले लेता हो, धन का टोटा (अभाव) रहने पर भी त्यागी (दान करने वाला) हो और यौवन भर अर्थात् भरी जुवानी में चरित्र शील हो ऐसा संसार में कोई विरल पुरुष हो तो हो सकता है, बहुत नहीं ॥ ४०८ ॥



(४०९)

सीलवन्त निर्मल दसा, पाँव परे चहुँ खूँट ।
कहैं कबिर ता दास की, आस करै वैकुंठ ॥

शीलवान पुरुष की दशा निर्मल होती है। चार खूंट पृथिवी पर रहने वाले सभी लोग उसके पाँव पड़ते हैं। कबीर कहते हैं कि ऐसे दास की आशा वैकुण्ठ करता है। अर्थात् उसको भगवद्धाम की प्राप्ति होती है। चाहे वह उदासीन भले ही हो ॥ ४०९ ॥

—:-०-:—

सन्तोष

(४१०)

गोधन गजधन वाजिधन, और रतनधन खानि ।
जब आवै संतोषधन, सब धन धूरि समान ॥

संसार में पुण्यात्माओं के पास गाय रूप धन है,—गज (हाथी) रूप धन है, वाजी (घोड़ा) रूप धन है और सुवर्ण चाँदी हीरा मोती आदि रत्नों की खानि रूप धन हैं। परन्तु जब जीव को सन्तोष रूप धन प्राप्त होता है तब यथोक्त सब धन धूर के समान तुच्छ हो जाते हैं ४१०



(४११)

चाह गई चिंता मिटी, मनुआँ बेपरवाह ।
जाको कछू न चाहिए, सो साहन पति साह ॥

चाह (विषय-इच्छा) गई। इससे चिन्ता भी मिट गई। इससे मन भी बेपरवाही ही हो गया। जिसको कुछ भी नहीं चाहिये वह शाहन के पतियों का भी शाह है, बादशाहों का भी बादशाह है। संसार स्वप्न समान मिथ्या है। उसकी इच्छा नहीं होती है ॥ ४११ ॥

---

(४१२)

माँगन गए सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिं ।
तिनसे पहले वे मरे, होत कहत जो नाहिं ॥

जो भीख मांगने गया वह मर रहा ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि जो जीते हुए मरा समान होता है वही मांगने जाता है। उनसे पहले वे मरे समान होते हैं जो पास में धन होते हुए भी याचक को नहीं कह देते हैं। जो मांगने जाता है उसका मुख मुर्दा के समान दीन दिखाई देता है। याचको जो दान देता है उसका मुख प्रफुल्लित दिखाई देता है। जिस समय धन होते हुए भी दाता याचक को नहीं कह देता है उस समय कहने वाले का मुख मुर्दा के समान म्लान दिखाई पड़ता है।४१२।

---

(४१३)

मरि जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज ।
परमारथ के कारने, मोहि न आवै लाज ॥

मर जाऊँ परन्तु अपने शरीर के लिये न मांगू। परन्तु परमार्थ के लिये मांगने में मुझे लज्जा नहीं आती है। अपने लिये मांगते समय मुख म्लान होता है पर परोपकार के लिये मांगते समय मुख उज्ज्वल दिखाई देता है। अतः परोपकार के लिये मांगना ही चाहिये। इससे दोनों का कल्याण होता है ॥ ४१३ ॥

—:०:—

(४१४)

उदर समाता अन्न ले, तनहिँ समाता चीर ।
अधिक संग्रह नहिं करै, ताका नाम फकीर ॥

पेट में जितना समाये उतना तो अन्न ले और शरीर जितने से ढका रहे उतना ही वस्त्र ले। इससे अधिक संग्रह न करे उसका नाम साधु है। इससे अधिक संग्रह करने पर सन्तोषी नहीं किन्तु असन्तोषी कहा जाता है ॥ ४१४ ॥

—:०:—

दया

(४१५)

दाया दिल में राखिये, तूं क्यों निर्दय होय ।
साँई के सब जीव हैं, कीड़ी कुंजर सोय ॥

हे जीव ! हृदय में दया रख। तूं निर्दय क्यों होता है। जिसको तू निर्दयता पूर्वक मारता है वे सब जीव सांई अर्थात् स्वामी परमात्मा के अंश हैं। नहीं नहीं कीड़ी से कुञ्जर पर्यन्त वही परमात्मा है ॥ ४१५ ॥



(४१६)

दयाभाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथै वेहद ।

ते नर नरके जहिंगे, सुनि सुनि साखी सब्द ॥

हृदय में तो दयाभाव नहीं है और वेहद का ज्ञान कथन करता है वह पुरुष साखी शब्द सुन सुन कर अवश्य नरक में जायेंगे इसमें शङ्का नहीं। साखी शब्द सुनने से एवं ऊपर ऊपर से ज्ञान कथन करने से कल्याण नहीं होता है॥ ४१६ ॥

—:०:—

क्षमा

(४१७)

क्षमा बड़न को चाहिये, छोटन को उत्पात ।

कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात॥

छोटे का स्वभाव है कि वह बड़े बड़े उत्पात = अपराध करता रहता है। परन्तु बड़े पुरुषों को चाहिये कि उनके अपराधों को क्षमा कर दें। महर्षि भृगु ने लात मारी तो इसमें विष्णु का क्या घट गया अर्थात् कुछ भी नहीं।

पुराणों में कथा है। एक समय देवसभा हुई। उसका विषय था कि देवताओं में सबसे बड़ा कौन है ? किसी ने कहा कि, हम में सब से अधिक जो क्षमाशील हो वह बड़ा है। फिर प्रश्न हुआ कि हम में सबसे अधिक सहनशील कौन है ?। उत्तर मिला-विष्णु। पुनः प्रश्न हुआ कि, इसकी परीक्षा कौन करे। भृगु मुनि ने बीड़ा उठाया। इसकी परीक्षा मैं करूंगा। भृगु मुनि वहां गये जहां क्षीर सागर में विष्णु भगवान सो रहे थे, लेटे थे। भृगु मुनि ने क्रोध के आवेश में आकर

विष्णु की छाती में जोर से एक लात मारी। विष्णु भगवान ने उनके पैर पकड़ लिये और कहने लगे कि देव! मेरी छाती वज्रवत् कठोर है। आप के पैर दुख गये होंगे। उनके पैर दबाने लगे। भृगु मुनि लज्जित हुए। उसने सब कथा कह सुनाई। निश्चय हुआ कि विष्णु समान क्षमाशील कोई नहीं है। उसी दिन से विष्णु भगवान् सबसे अधिक पूज्य माने जाने लगे॥ ४१७॥

—:o:—

(४१८)

जहाँ दया तहाँ धर्म है, जहाँ लोभ तहाँ पाप।
जहाँ क्रोध तहाँ काल है, जहाँ छिमा तहाँ आप॥

जहां दया है वहां धर्म है। जहां लोभ है वहां पाप है। जहां क्रोध है वहां काल है और जहां क्षमा है वहां आप स्वयं परमात्मा है। दण्ड देने की शक्ति होते हुए जो अपराधियों के अपराध को क्षमा कर देता है उस हृदय में स्वयं परमात्मा निवास करता है॥ ४१८॥



(४१९)

करकस सम दुर्जन वचन, रहै संत जन टारि।
बिजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि॥

दुर्जनों के वचन वज्र समान कर्कश होते हैं। सन्तजन उसको हटा कर रहते हैं, उपेक्षा कर देते हैं। दुर्जन के अपराध को सन्तजन क्षमा कर देते हैं। उनके कठोर वचन सन्त का कुछ बिगाड़ नहीं सकते हैं। जैसे शीतल समुद्र में बिजली पड़ने से कुछ जला नहीं सकती है वैसे

ही सन्त के शीतल हृदय में दुर्जन के कर्कश वचनरूपी विजली पड़ने से कुछ जला नहीं सकती है ।। ४१९ ।।

—:०:—

(४२०)

खोद खाद धरती सहै, काट कूट वनराय ।
कुटिल वचन साधु सहै, और सहा नहिँ जाय ।।

खोदखाद को पृथिवी सहन करती है। काटकूट को वनराज वृक्षादि सहन करते हैं और कुटिल पुरुषों के वचन को साधुजन सहन करते हैं। और किसी से सहा नहीं जा सकता है। धरती और वनराजि के समान क्षमाशील सन्त महात्मा ही होते हैं ।। ४२० ।।



सत्य

(४२१)

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप ।।

सत्य के समान तप नहीं और असत्य के समान पाप नहीं है। जिसके हृदय में सत्य है उसके हृदय में आप परमात्मा रहता है। क्योंकि सत्य ही परमात्मा है। जो जिन्दगी भर सत्य बोलता है। हास परिहास में भी झूठ नहीं वोलता है। उसने जीते जी परमात्मा को प्राप्त कर लिया है ऐसा समझना चाहिये ।। ४२१ ।।

—:०:—

(४२२)

साँई से साँचा रहौ, साँई साँच सुहाय।
भाँवै लंबे केस रख, भाँवै घोट मुँडाय॥

सबके स्वामी परमात्मा से सत्य व्यवहार करो। क्योंकि उस स्वामी को सत्य ही अच्छा लगता है। सत्यप्रतिज्ञ होने के पश्चात् चाहे दाढी मोछ आदि पञ्चकेश रखो चाहे घोट कर मुँड़ा डालो। ईश्वर के यहां भेख का आदर नहीं केवल सत्य का आदर है। इससे भेख की निन्दा नहीं समझनी चाहिये किन्तु दम्भ का परिहास है॥ ४२२॥

(४२३)

साँचे साप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिले, साँचे माँहि समाय॥

सत्य बोलने वाले को शाप नहीं लगता है और सत्य बोलने वाले को काल भी नहीं खा सकता है। जब सत्य बोलने वाले सत्य बोलने वाले से मिल जाता है तब वह सत्य परमेश्वर में समा जाता है। जो स्वयं सत्य बोलता हो और अन्य को सत्य बोलने का उपदेश देता हो वह सत्य परमात्मा को मिलता है। झूठ और सत्य का विरोध है। झूठा पुरुष सत्य परमात्मा से नहीं मिल सकता है॥ ४२३॥

(४२४)

साँच विना सुमिरन नहीं, भय विन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहे, कंचन कहि विधि होय॥

सत्य बोले विना ईश्वर का स्मरण नहीं हो सकता है। ईश्वर का भय न हो तो भक्ति नहीं हो सकती है। पारस मणि और लोहे में यदि अन्य पदार्थ का अन्तराय हो तो लोह कंचन (सुवर्ण) कैसे हो सकता है ?। ईश्वर में और जीव में असत्य का अन्तराय है। अतः जीव ब्रह्म कैसे हो सकता है ?। जो असत्य बोलता है उसको सत्य स्वरूप ईश्वर का भय नहीं है तो भक्ति कैसे हो सकती है ॥ ४२४ ॥



(४२५)

प्रेम प्रीति का चोलना, पहिरि कबीरा नाच ।
तन मन ता पर वारहूँ, जो कोई बोलै साँच ॥

जो कबीरा = जीव प्रेम प्रीति के चोलना को पहिन कर नाचता है। प्रेम लक्षणा भक्ति करता है और सदा सत्य ही बोलता है उस पर तन आदि सब अर्पण करता हूँ। पति पत्नि से, शिष्य गुरु से और भक्त भगवान् से यदि सत्य न बोले तो कपटपूर्ण व्यवहार होने से भक्ति सिद्ध नहीं होती है। भक्ति विना ज्ञान और ज्ञान विना मुक्ति नहीं प्राप्त होती है ॥ ४२५ ॥



(४२६)

साँचे कोइ न पतीजई, झूठे जग पतियाय ।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय ॥

सत्य कहता हूँ तो कोई विश्वास नहीं करता है। सारा संसार झूठ के ऊपर विश्वास करता है। दुनिया अच्छी वस्तु की नहीं किन्तु बुरी वस्तु की कदर करती है। देखिये दूध दही आदि गोरस गली गली फिरते हैं

और मदिरा (दारू) एक ही स्थान पर बैठी बैठी बिकती है। सत्य अच्छी और झूठ बुरी वस्तु है। गोरस अच्छी वस्तु है उसको घर घर जाकर बेचना पड़ता है और मदिरा मादक होने से बूरो वस्तु है फिर भी वह एक ही स्थान पर बिकती हैं। नीतिशास्त्र में भी कहा है—"सुरा विक्रीयते स्थाने, दधि क्षीरं गृहे गृहे" अर्थात् मदिरा अपने ही स्थान पर बिकती है और दही दूध घर घर जाकर बिकते हैं॥ ४२६॥

—:०:—

(४२७)

साँचे सौदा कीजिये, अपने मन में जानि।
साँचे हीरा पाइये, झूठे मूरी हानि॥

हे सज्जनगण! आप लोग अपने हृदय में समझ कर सत्य व्यापार करिये। सत्य हीरा का व्यापार करने पर लाभ प्राप्त होता है और झूठा अर्थात् नकली हीरा खरीदने पर मूल की भी हानि होती है। व्यापार में दगा नहीं करना चाहिये। अथवा अपने मन में संसार को मिथ्या और परमात्मा को सत्य समझकर परमात्मा की प्राप्ति के लिये शमदमादि साधन करना चाहिये। अन्यथा मूल = मनुष्य शरीररूपी पुञ्जी की भी हानि हो जायगी॥ ४२७॥

—:०:—

धैर्य

(४२८)

कबीर धीरज के धरे, हाथी मन भर खाय।
टूक एक के कारने, स्वान घरै घर जाय॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, धैर्य धारण करने से हाथी मन भर=एक मन परिमित अन्न खाता है और धैर्य धारण न करने से ही श्वान=कुत्ता रोटी के एक टुकड़े के लिये घर-घर दौड़ता है। धैर्य धरने से हाथी बैठा मान पूर्वक भर पेट खाता है और धैर्य न रहने से कुक्कुर एक टुकड़ा के लिये घर-घर अपमानित होता है। फिर भी टुकड़ा नहीं मिलता या कठिनता से मिलता है॥ ४२८॥

—:-०-:—

(४२९)

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।
माली सींचैं सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय॥

हे मन! धैर्य धर। धीरे-धीरे कार्य कर। क्योंकि, संसार के सभी कार्य धीरे से ही होते हैं। देखो—माली वृक्ष के फूल में सौ घड़ा पानी सींचे तो भी ऋतु आने पर फल होता है। ऋतु आए विना वृक्ष फल फलता नहीं। अधीर होने की आवश्यकता नहीं॥ ४२६॥

—→०←—

(४३०)

कबीर भँवर में बैठिकै, भौचक मना न जोय।
डूबन का भय छाँडि दे, कर्ता करै सो होय॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, संसार नदी के व्यवहार भँवर में बैठकर (पड़कर) भी उसको भौचक = आश्चर्य चकित मन से नहीं देखो एवं डूबने का भय छोड़ दो। क्योंकि जगत के कर्ता परमात्मा जो कुछ करता है यही होता है। इसमें अपना कुछ चलता नहीं है और वह जो

कुछ करता है सो अच्छा ही करता है। सर्वतोभावेन ईश्वर शरण हो जाओ ॥ ४३० ॥



(४३१)

मैं मेरी सब जायगी, तब आवैगी और।
जब यह निश्चय होयगा, तब पावैगा ठौर ॥

जब मैं और मेरी = अहन्ता ममता सब चली जायगी तब इससे अन्य सन्तोषादि सत्सम्पत्ति आवेगी और जब यह निश्चय हो जायगा कि मैं ममता आदि का आश्रय देहादि से भिन्न ब्रह्मरूप हूँ तब ठौर पा जायगा। ब्रह्मस्थिति प्राप्त होगी। धैर्य रखो ॥ ४३१ ॥

—: ० :—

(४३२)

कबीर तूँ काहे डरै, सिर पर सिरजनहार।
हाथी चढ़ि कर डोलिये, कूकर भुकै हजार ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे जीव! तू डरता क्यों है। तेरे शिर पर सृष्टिकर्ता परमात्मा बैठा है। हाथी पर चढ़कर फिरो। शाकटरूपी हजारों कुत्ते भुकते रहैं। तुम्हारी हानि क्या कर सकते हैं? भक्त का रक्षक भगवान है। उसकी किसी प्रकार की हानि कोई नहीं करसकता है। धैर्य रखना चाहिये ॥ ४३२ ॥

—:-०-:—

चेतावनी

(४३३)

कबीर गर्व न कीजिये, काल गहे है केस ।
ना जानौं कित मारि है, क्या घर क्या परदेस ।।

कबीर स्वामी कहते हैं कि हे सज्जनगण ! आप लोग गर्व (अभिमान) न करें। क्योंकि, काल भगवान् केश पकड़ कर खड़ा है। खबर नहीं वह कब और कहाँ मारेग.। उस समय क्या घर में रहेंगे या परदेश में। अतः सदा रहने का अभिमान छोड़ दो ।। ४३३ ।।

—:o:—

(४३४)

कबीर गर्व न कीजिये, अस जोबन की आस ।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास ।।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, साधकजन ! आप लोग गर्व न करें। क्योंकि, इस प्रकार के यौवन की आशा व्यर्थ है। पलास वृक्ष दश दिन के लिये सुन्दर पुष्प फुलाता है। अन्त में खंखर (तुच्छ=) विना पत्र पुष्प के हो जाता है। जैसे पुष्प खिलता है और मुरझा जाता है। वैसे ही यौवन भी। अतः जुवानी का गर्व नहीं करना चाहिये ।। ४३४ ।।

—:o:—

(४३५)

कबीर गर्व न कीजिये, ऊँचा देखि अवास ।
काल परौं भुँइ लेटना; ऊपर जमसी घास ।।

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, मठ मकान को ऊंचा देखकर अभिमान नहीं करना चाहिये। क्योंकि, कल या परसों पृथिवी के अन्दर लेटना पड़ेगा और इसके ऊपर घास जम जायगा। आज जो ऊँचा आवास में रहता है और उसका बड़ा गर्व करता है वह कल नीचे पृथिवी के अंदर रहने वाला है। फिर अभिमान किसका और कैसा ?॥ ४३५॥

—:-o-:—

(४३६)

कबीर गर्व न कीजिये, चाम लपेटे हाड़।
हयवर ऊपर छत्र तट, तो भी देवै गाड़॥

सद्गुरु कहते हैं कि, शरीर का गर्व न करना चाहिये। क्योंकि, वह हाड़ चाम से लपेटा हुआ है। इससे सुन्दर दीखता है। नहीं तो ग्लानिजनक है। अन्त में काग गिद्ध चोंथ खाता है। यद्यपि श्रेष्ठ घोड़ा पर बैठा है। छत्रादि से सुशोभित है तो भी शरीर से आत्मा के निकल जाने पर पृथिवी में गाड़ दिया जायगा। इसमें संशय नहीं। फिर इसका गर्व कैसा ?॥ ४३६॥

—:-o-:—

(४३७)

कबीर गर्व न कीजिये, चाम लपेटे हाड़।
इक दिन तेरा छत्र सिर, देगा काल उखाड़॥

कबीर गुरु कहते हैं कि हे भाइयो! शरीर तथा छत्र चामरादि का गर्व न करना। क्योंकि, शरीर की हड्डी चमड़े से लपेटी हुई है। हे छत्रधारी जीव! एक दिन तेरे छत्रादि को काल शिर से उखाड़ देगा।

फिर अभिमान कैसा ? । गर्व त्याग कर भगवान् का भजन कर जिससे कल्याण होगा ॥ ४३७ ॥

—:०:—

(४३८)

कबीर गर्व न कीजिये, देही देखि सुरंग ।
बिछुरे पै मेला नहीं, ज्यौं केचुली भुजंग ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे सुरंग जीव ! इस क्षणभङ्गुर देह को देख कर गर्व न करो । क्योंकि, जैसे सर्प केचुली को छोड़ देता है और फिर नहीं मिलता है वैसे ही आत्मा शरीर को छोड़ देता है और फिर नहीं मिलता है । इसका गर्व कैसा ? ॥ ४३८ ॥

(४३९)

कबीर नावत आपनो, दिन दस लेहु बजाय ।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरिन देखौ आय ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे संसारासक्त जीव ! तुम दश दिन तक अपनी नौवत (नगाड़ा) जितना बजाना हो बजा लो । मनुष्यशरीर पाकर जितना अनर्थ करना हो उतना कर लो । परन्तु याद रक्खो कि इस मनुष्य शरीर रूप पट्टन = शहर की गली को फिर कर देखने वाले तुम नहीं हो । भाव यह है कि, कर्म शरीर पाकर अनर्थ करना छोड़ दो और कल्याण का साधन करके परमपद प्राप्त कर लो । नहीं तो क्या खबर कि मनुष्यशरीर फिर मिलता है या नहीं ॥ ४३९ ॥

(४४०)

झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद ।

जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥

अज्ञानी लोग मिथ्या विषय सुख को सत्य सुख कहते हैं और मन में मोद (आनन्द) मानते हैं । परन्तु यह नहीं समझते कि, सारा जगत काल का चबेना है । बाल भोजन (नास्ता) है । कुछ काल के मुख में और कुछ गोद में है । स्वप्न के स्त्री पुत्रादि पदार्थ और तज्जन्य सुख जैसे मिथ्या हैं वैसे ही जाग्रत के पदार्थ भी मिथ्या हैं । परमार्थ अर्थात् सत्य नहीं । अत एव नित्य भी नहीं । इनको त्याग कर सत्य सुख का साधन करना चाहिये ॥ ४४० ॥



(४४१)

कुसल कुसल हो पूछते, जग में रहा न कोय ।

जरा मुई ना भय मुआ, कुसल कहाँ से होय ॥

सब कोई एक दूसरे से 'कुशल हो' 'कुशल हो' ऐसा पूछते हैं परन्तु संसार में कोई रहने तो पाया नहीं, न जरा अवस्था मरी और न भय मरा फिर कहिये कि, कुशल कहां से हो । जो संसार में सदा के लिये आया हो, कभी मरे नहीं, उसका कुशल है जिसकी जरा अवस्था मर गई हो, कभी वृद्ध होवे नहीं उसका कुशल है और जिसका भय मर गया हो, किसी का डर नहीं हो उसका भी कुशल है ऐसा कहा जा सकता है । ऐसा तो कोई है नहीं । फिर कुशल कैसा ? कुशल नाम सुख का है । संसार में सुख किसी को है नहीं । सब दुःखी है । अतः दुःख-रूप संसार से मुक्त होने के लिये साधन करना चाहिये ॥ ४४१ ॥



(४४२)

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥

जैसे पानी के बद्‌बुदा वैसे ही मनुष्य जात (शरीर) अर्थात् जैसे जल का बुद्‌बुदा जल में मिल जाता है वैसे ही पांच तत्त्व का शरीर पांच तत्त्व में मिल जाता है। जैसे प्रभात होने पर, रात्रि बीत जाने पर तारागण छिप जाता है वैसे ही प्रारब्ध भुक्त होने पर शरीर भीछिप जाता है। शरीर का छिपना कारण में लीन होना हैं। शरीर क्षणभङ्गुर है। परन्तु मोक्ष का मुख्य साधन है। जब तक यह खड़ा है तब तक साधन कर आत्मा का कल्याण कर लेना चाहिये ॥ ४४२ ॥

---

(४४३)

रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवाया खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥

हे मनुष्य शरीर धारी जीव ! तुम ने आज तक रात्रि सो सो कर और दिन खा खाकर बिता दिया है। तुम्हारा मनुष्य जन्म अमूल्य हीरा जन्म था, परन्तु उसको तुमने कौड़ी के बदले में खो दिया। अभी भी वह कोड़ी के बदले में ही जा रहा है। क्या इसका ख्याल तुमने कभी किया ? ॥ ४४३ ॥

—:०:—

(४४४)

आछे दिन पाछे गए, हरि से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गइ खेत ॥

जो अच्छे दिन थे सो पीछे चले गए। जो समय साधन करने का था सो चला गया। हरि परमात्मा से हेत (प्रेम-भक्ति) नहीं किया। जुवानी गई। वृद्धावस्था आई। जीव ! तूं अब पश्चात्ताप करता है। इससे क्या होने वाला है। कुछ भी नहीं, क्योंकि, जब चिड़ियाँ खेत को चुग जाती है तब पश्चात्ताप करने से क्या फायदा ? कुछ भी नहीं। वैसे ही जब समय और शरीर चला गया तब पछताने से क्या फल कुछ भी नहीं। अब साधन कर कल्याण की आशा करना व्यर्थ है ॥ ४४४ ॥

—:०:—

(४४५)

काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब ।
पल में परलै होयगा, बहुरि करैगा कब ॥

हे जीव ! जो कुछ तुझे करना है वह कल करना हो तो आज कर और आज करना हो तो अब=अभी कर डालो क्योंकि, एक पल में प्रलय होने वाला है=एक क्षण में शरीर छूट जाने वाला है तो फिर कब करोगे ?। यद्यपि संसार के सभी कार्य को शीघ्र कर डालने के लिये उपदेश दिया गया है, यह प्रतीत होता है तथापि यहां आत्मकल्याण के साधन रूप कार्य को अतिशीघ्र कर डालने के लिये यह उपदेश समझना चाहिये। क्योंकि, संसार के अन्य कार्य को समाप्त करके न कोई गया है और न जाने वाला ही है। साथ ही मनुष्यशरीर का मुख्य कार्य आत्मकल्याण है। इसी को जैसे बने वैसे शीघ्र कर डालना चाहिये ४४५



(४४६)

पावपलक की सुधि नहीं, करै काल्ह का साज ।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज ॥

अज्ञानी जीवों को पाव पलक की खबर नहीं है। एक पाव पल पीछे क्या होने वाला है इसकी किसी को खबर नहीं है और कल के लिये साज (सुख का साधन) सजाता है। जैसे बाज पक्षी तीतर पक्षी को अचानक मार डालता है वैसे ही काल भगवान प्राणी को अचानक मार डालता है। यहां का सजाया हुआ सब साज यहीं रह जाता है। अकेला सबका जाना पड़ता है। यदि कोई साथ जाता है तो वह धर्म है। शास्त्र में कहा है—

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे ;
भार्या गृहद्वारि जनाः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे
कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

अर्थात् इस जीव के उपार्जन किये हुए धन भूमि में, पशु गोष्ठ में, स्त्री गृह द्वार तक, सम्बन्धी जन श्मशान तक, शरीर चिता तक जाते हैं और परलोक मार्ग में शुभाशुभ कर्म के पीछे चलने वाला अकेला ही जीव जाता है। कोई साथ नहीं जाता है ॥ ४४६ ॥

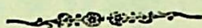


(४४७)

पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ॥

छत्रपति राजा के महल के सिंह द्वार पर पाँच प्रकार की नौबतें बजती थीं और छत्तीस प्रकार के राग और रागिनी हुआ करती थीं। वह मन्दिर (राजमहल) आज खाली पड़ा है। केवल इतना ही नहीं किन्तु उस महल के ऊपर आज काग बैठने लगे हैं। वह राजा भी रहने

न पाये। जीव ! तू सदा रहने का अभिमान क्या करता है ? उठो चेतो और कल्याण का साधन करो ॥ ४४७ ॥



(४४८)

ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल।
दिन दस के व्योहार में, झूठे रंग न भूल ॥

जैसा सीमर का फूल होता है वैसा ही यह संसार है। जीव ! तू दश दिन के व्यवहारों में मिथ्या विषय रङ्ग को देख कर न भूल। सीमर के लाल सुन्दर पुष्प के समान यह संसार है। जैसे शुक पक्षी सीमर के पुष्प को लाल, सुन्दर और बड़ा देख कर आशाबद्ध हो जाता है कि, इसका फल, पुष्प के अनुसार ही सुन्दर और मीठा रसयुक्त होगा। उसको खाकर मैं तृप्त हो जाऊँगा। उसके केला के समान लम्बे लम्बे फलों को देख कर और अधिक आशाबद्ध हो जाता है। वह शुक पक्षी चारा चुगना आदि छोड़ कर पुष्प के पास ही बैठा रहता है। बहुत दिनों के बाद जब उसको कठिन देखकर चाँच मारता है तब उसमें से रूई निकल कर ऊड़ जाती है। वैसे ही विषयी पुरुष रंग विरंग के सांसारिक विषयों को देखकर सुख के लिये आशाबद्ध हो जाता है कि, इसका सुख बहुत बड़ा और नित्य होगा। उसे भोग कर मैं तृप्त हो जाऊँगा। भजन को छोड़ कर विषयों के उपार्जन रक्षणादि में ही लगा रहता है। विषय के वियोग होने पर निराश हो जाता है ॥ ४४८ ॥



(४४९)

माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोहि।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूंगी तोहि ॥

मिट्टी कुम्हार से कहती है कि, तूँ मुझे रूँदेगा ? कुछ नहीं। एक दिन ऐसा होगा कि, मैं तुझे रूँदूँगी। जिस दिन देह छूट जाता है उस दिन मिट्टी में मिल जाता है। जिस देह की सेवा में यह जीव आठो पहर सँलग्न रहता है। वह एक दिन मिट्टी में मिल जायेगा। अतः देह में आत्माभिमान को छोड़कर कल्याण के साधन करना चाहिये ॥४४९॥



(४५०)

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाय।
कै सेवा कर साधु की, कै हरि के गुन गाय ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, हे जीव ! यह तुम्हारा शरीर क्षण क्षण क्षीण होता जा रहा है। एक दिन नष्ट हो जायगा। तुमसे हो सके तो इस कल्याण का साधन कर आत्मा को स्थिर पद ब्रह्म में लगा दो। तूं सब कुछ छोड़कर या तो साधुओं की सेवा कर और या तो हरि परमात्मा के गुणगान कर। इस शरीर से दो ही कार्य होना चाहिये। या तो सन्त-सेवा और नहीं तो हरिभजन ये ही दो काम करके शरीर को ठौर लगाना है, सार्थक करना है ॥ ४५० ॥

—:-o-:—

(४५१)

मोर तोर की जेवरी, बटि बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधै, जाके नाम अधार ॥

माया ने मोर तोर की जेवरी = रस्सी बाट कर उससे सारे संसार को बाँध लिया है। संसार के सभी जीव अहन्ता ममता रूपी रस्सी से बँध गए हैं। कबीर स्वामी कहते हैं कि, जिसका भगवान् के नाम ही

आधार (आश्रय) है वह दास क्यों बँधेगा ? । अथवा जिसका नाम ही आधार है वह कबीर दास उक्त अहन्ता ममता रूपी रज्जु से क्यों बँधेगा ? । इस अर्थ में कबीर पद में श्लेष समझना चाहिये । क्योंकि, एक ही कबीर पद के दो अर्थ हैं । कबीर कहते हैं और दास कबीर क्यों बँधेगा ? ॥ ४५१ ॥

—:-o-:—

(४५२)

दुर्लभ मानुष जनम है, मिलै न बारंबार ।
तरुवर ज्यौं पत्ता झड़ै, बहुरि न लागै डार ॥

मनुष्य जन्म दुर्लभ है । क्योंकि, यह बार बार नहीं मिलता है । जैसे वृक्ष से पत्ता झड़ता है तो फिर डाली में नहीं लगता है । जैसे जो पत्ता डाली से गिरता है वही फिर डाली में नहीं लगता है किन्तु नये पत्ते लगते हैं वैसे ही जो मनुष्य शरीर छूट जाता है वही फिर नहीं मिलता है किन्तु नये अन्य शरीर मिलते हैं । अतः इसी शरीर से कल्याण के सब साधन कर लेना चाहिये क्योंकि, क्या खबर इस शरीर के छूटने के बाद फिर मनुष्य शरीर मिलता है या नहीं ? । इस साखी का पाठान्तर यह है—

मानुष जन्म दुर्लभ है, मिलै न दूजी बार ।
पक्का फल ज्यौं गिर पड़ा, बहुरि न लागै डार ॥

दोनों का अर्थ एक ही है । केवल पाठ भेद है । पहली साखी में पाठ पत्ता और इसमें फल है । इस साखी को देखकर हिन्दी के लेखकों ने बड़ी भारी भूल की है और कहा है कि, कबीर में कुछ मुसलमानी संस्कार भी था । क्योंकि, मुसलमान लोग ही पुनर्जन्म नहीं मानते हैं ।

इत्यादि। सो समीचीन नहीं। क्योंकि, मनुष्य जन्म को दुर्लभ कहा है। अन्य को नहीं। साथ ही दुर्लभ कहा है। असम्भव नहीं ॥ ४५२ ॥

—:०:—

(४५३)

आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढि चलै, इक बँधि जात जँजीर ॥

संसार में मनुष्य शरीर धारण कर जो आए हैं सो सब चाहे राजा हो या रंक हो या फकीर हो चले जायँगे। एक सिंहासन पर चढ़ कर और एक जँजीर से बँधकर जायँगे। पर जायँगे अवश्य। इसमें सन्देह नहीं। एक बार नहीं किन्तु बारम्बार। बार बार आना जाना न पड़े इस लिये परमपद का साधन करना चाहिये ॥ ४५३ ॥

—:०:—

(४५४)

जो जानहु जीव आपना, करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पाहुना, मिलै न दूजी बार ॥

यदि जीव को अपना स्वरूप ब्रह्मरूप जानते हो तो जीव को सार = कल्याण का साधन करो। क्योंकि, जीव ऐसा पहुना है कि दूसरी बार फिर नहीं मिलेगा। अर्थात् यह वर्तमान मनुष्य शरीर छूट जायगा तो फिर दूसरी बार तुरन्त नहीं मिलेगा। जैसे पहुना जाता है तो तुरन्त नहीं आता है। जब कोई फिर प्रसंग आता है तब आता है। वैसे ही शरीर जाता है तो तुरन्त नहीं आयगा। जब फिर मनुष्य शरीर के योग्य प्रारब्ध आगे आयगा तब आयगा। इस साखी का भी हिन्दी के लेखकों ने अर्थ का अनर्थ किया है। पहुना पद का स्वारस्य उन्होंने नहीं समझा

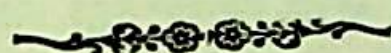
है। क्योंकि पहुना जाता है तो फिर नहीं आता है ऐसा नहीं किन्तु प्रसंग आने पर आता है। वैसे ही जीव भी फिर नहीं आता है ऐसा नहीं किन्तु प्रारब्ध आने पर आता है। भाव यह है कि मनुष्य शरीर बार बार नहीं मिलता है। अतः इसी शरीर से साधन कर आत्मा का कल्याण करना चाहिये ॥ ४५४ ॥

—:o:—

(४५५)

कबीर यह तन जात है, सकै तो राख बहोर ।
खाली हाथों वे गए, जिनके लाख करोर ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि हे जीव ! यह मनुष्य शरीर जा रहा है। फिरा कर रख सकते हो तो रखो जिनके पास लाखों और करोड़ों रुपये थे ये सब खाली हाथ चले गये। ये सब रुपये आदि सम्पत्तियाँ उनके साथ नहीं गई। तुम भी एक दिन खाली हाथ ही चले जाओगे। इस लिये इनको अभी से त्याग कर भक्ति आदि कल्याण साधन करो॥४५५॥



(४५६)

आस पास जोधा खड़े, सभी बजावैं गाल ।
माँझ महल से ले चला, ऐसा काल कराल ॥

जिसके आस पास में अङ्गरक्षक, शत्रुओं को मारने वाले, योद्धा, खड़े रहते हैं। सब कोई गाल बजाते रहते हैं। झूठी प्रशंसा करते रहते हैं। इसको कोई मार न डाले एवं कोई यहां से ले न जाय इस विचार में तत्पर रहते हैं। फिर भी काल ऐसा विकराल है कि महल के बीच

से उसको लेकर चला जाता है। सब कोई देखते रह जाते हैं। यह चक्र चालू ही रहता है। एक शरीर को छोड़ कर दूसरा, दूसरे को छोड़कर तीसरा। इस प्रकार का चक्र चला ही करता है। इससे मुक्त होना हो तो सब छोड़कर भगवान का भजन करना चाहिये ॥ ४५६ ॥

—:०:—

(४५७)

तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय।

कोउ काहू का हैं नहीं, देखा ठोंक बजाय ॥

जैसे धर्मशाला में पहरेदार पहरा देते रहते हैं। उसमें मुसाफिर बहुत आकर उतरते हैं। उनमें कोई किसी का सम्बन्धी नहीं होता है। वैसे ही यह शरीर रूपी सराय=धर्मशाला है। मन पहरेदार पहरा दे रहा है। विषय की इच्छा वाले जीव स्त्री पुत्रादि के रूप में इसमें आकर उतरा है। उनमें कोई किसी का सम्बन्धी नहीं है। यह मैंने ठोक बजाकर देखलिया है। अर्थात् बहुत विचार कर देख लिया है कि इनमें कोई किसी का नहीं। जिनके मोह में पड़कर यह जीव कल्याण का साधन नहीं करता है उनमें कोई किसी का नहीं। अकेले आया है और अकेले जायगा ॥ ४५७ ॥

(४५८)

मैं भँवरा तोहि वरजिया, बन बन बास न लेय।

अटकैगा कहुँ बेल से, तड़पि तड़पि जिय देय ॥

इस साखी में अन्योक्ति अलङ्कार है। क्योंकि कहना है जीवको और कहते हैं भ्रमर को। सद्गुरु कहते हैं कि,-हे भ्रमर! मैंने तुझे

मना किया कि, वन-वन में वास न ले। क्योंकि, यदि कही वेला में (लता में) फँस जायगा तो तड़प-तड़प कर जीव देना पड़ेगा। लता में फँस कर मर जायगा। हे जीव! विषय सुख को ग्रहण न कर। नहीं तो वासना में फँसकर छटपटा-छटपटा कर मर जायगा। विषय सुख को त्यागकर ब्रह्मसुख के लिये भजन कर ॥ ४५८ ॥

—:०:—

(४५९)

बाड़ी के बिच भँवर था, कलियाँ लेता बास।

सो तो भँवरा उड़ि गया, तजि बाढ़ी की आस ॥

इसमें भी अन्योक्ति ही है। बाग में भ्रमर था। पुष्प की कलियों में रहा हुआ वास (गन्ध) को ग्रहण करता था। वह भ्रमर तो वाड़ी की आशा को त्यागकर उड़ गया। शरीर रूपी बगीचा में जीवरूपी भ्रमर था। वह विषय वासको लेता था। वह बगीचा की आशा को त्यागकर चला गया। परमात्मा के भजन को छोड़कर विषयभोग में मस्त था। प्रारब्ध भुक्त होने पर शरीर की आशा को त्यागकर शरीरान्तर में चला गया। इसी प्रकार आवागमन के चक्र में सबको रहना पड़ता है। इससे मुक्त होना हो तो साधन करना चाहिये। यह भाव है ॥ ४५९ ॥

—:-०-:—

(४६०)

भय बिनु भाव न ऊपजै, भय बिनु होय न प्रीति।

जब हिरदे से भय गया, मिटी सकल रस रीति ॥

भय के विना भाव उत्पन्न नहीं होता है और भय के विना प्रीति भी उत्पन्न नहीं होती है। जब हृदय से भय चला जाता है तब सब रसों की

रीति मिट जाती है। संसार के जितने व्यवहार हैं सो सब भय से चलते हैं और भय द्वैत दर्शन से होता है। 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' अर्थात् द्वैत से ही भय होता है। जब अद्वैत ज्ञान हो जाता है तब विषय रस फिका पड़ जाता है। मन संसार से उदासीन हो जाता है। आत्मा आनन्द का अनुभव करने लगता है। कृतकृत्य हो जाता है॥ ४६०॥



(४६१)

ऐसी गति संसार की, ज्यों गाड़र की ठाट।
एक पड़ा जेहि गाड़ में, सबै जायँ तेहि बाट॥

संसार की गति वैसो ही है जैसी भेड़ की टोली की होती है। भेड़ों में से एक जिस गढे में पड़ता है सभी उसी गढे में जा पड़ते हैं। गड़ेरिया भेड़ चराने जाता है। भेड़ों को नदी के इस पार से उस पार ले जाना चाहता है। भेड़ पानी में डूबना नहीं चाहते हैं। गड़ेरिया एक भेड़ को पकड़ कर कन्धा पर धर लेता है और पानी में डाल देता है तब सभी भेड़ टमाटम-टमाटम करते हुए पानी में चले जाते हैं और इस पार से उस पार हो जाते हैं। वैसे ही संसारी लोगों में से कोई एक जिस रास्ते से चल पड़ता है उसी से सब दौड़ने लगते हैं। भला बुरा का विचार नहीं करते हैं। परिणाम चाहे जैसा हो॥ ४६१॥



(४६२)

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं॥

सद्गुरु कहते हैं कि, हे संसारी जीव ! सुन। एक दिन तेरे लिये ऐसा आयगा कि, कोई किसी का नहीं रहेगा। घर की नारी (स्त्री) को कौन कहे तन (शरीर) की नारी भी छूट जायगी। जिस दिन शरीर में से जीवात्मा निकल जाता है उस दिन घर की स्त्री का तो वियोग होता ही है। शरीर की नारी अर्थात् नाड़ी का भी वियोग हो जाता है। भाव यह है की अभी से सबको छोड़कर ईश्वर परायण हो जा। जिससे तेरा आत्म कल्याण हो जाय॥ ४६२॥



(४६३)

भँवर बिलम्बे बाग में, बहु फूलन की आस।
जीव बिलम्बे विषय में, अंतहुँ चले निरास॥

जैसे भ्रमर बाग में बहुत फूलों की सुगन्धी की आशा से बध जाता है। वैसे ही जीव विषय में बध जाता है। अन्त में निराश होकर चला जाना पड़ता है। भ्रमर कमल पुष्प पर बैठता है। मकरन्द अर्थात् पुष्प-रस को ग्रहण करता है। सूर्य अस्त हो जाता है। कमल पुष्प संपुटित हो जाता है। भ्रमर बीच में फँस जाता है। वह चाहे तो पुष्प को कतर कर बाहर निकल सकता है। परन्तु निकलता नहीं है। विचार करता है कि,-प्रातःकाल सूर्योदय होगा। कमल खिलेगा। तब मैं चला जाऊँगा। सूर्योदय के पहले वन में से हाथी आता है। फूल को खा जाता है।—उसके साथ भ्रमर भी चर्वित होकर मर जाता है। वैसे ही जीव भी सुख की आशा से विषय में लीन हो जाता है। कल्याण का साधन नहीं करता है। अन्त में काल का ग्रास हो जाता है। साहित्य में भी कहा है—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदिष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति पद्मगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ।।

अर्थात् भ्रमर विचार करता है—रात्रि जायगी। सुप्रभात होगा। सूर्योदय होगा। कमल खिलेगा तब मैं चला जाऊँगा। कमल पुष्पगत भ्रमर ऐसा विचार करता है कि इतने में हा हन्त हन्त—खेद है कि कमल को हाथी कुचल देता है। उसके साथ भ्रमर भी नष्ट हो जाता है ।। ४६३ ।।

---

(४६४)

चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय ।
दुइ पट भीतर आइके, साबित गया न कोय ।।

अनादि अज्ञान जीव की उपाधि है। अज्ञान से शुभाशुभ कर्म। शुभाशुभ कर्म से पुण्यपाप। पुण्यपाप से शरीर। शरीर से सुखदुःख भोग। सुखदुःख भोग से वासना। वासना से पुनः कर्म। कर्म से पुनः पुण्यपाप। पुण्यपाप से पुनः शरीर। शरीर से पुनः सुखदुःख भोग। इत्यादि संसार-चक्र को चक्की कहते हैं। इस को देखकर दयाद्रवित सद्गुरु कबीर रो दिये और कहने लगे कि, जन्म मरण, सुखदुःख, काम क्रोध, लोभ मोह, और ईर्ष्याद्वेष आदि द्वन्द्वरूप दो पटों के बीच में आए हुए कोई साबुत बचा नहीं। सब पीस गए ।। ४६४ ।।

—: ० :—

(४६५)

सेमर सुवना सेइया, दुइ ढेंढी की आस ।
ढ़ेंढी फूटि चटाक दै, सुवना चला निरास ॥

सुवना=सुग्गा=शुक पक्षी ने दो ढेंढी की आशा से मेहर वृक्षका सेवन किया । परन्तु ढेंढी जब चटाक दे फूट गई । तब वह (सुवना) निराश होकर चला गया । इसका विवरण साखी ४५० में देखिये ॥ ४६५ ॥



(४६६)

धरती करते एक पग, समुँदर करते फाल ।
हाथन परवत तौलते, तिनहूं खाया काल ॥

त्रिविक्रमावतार में वामन भगवान ने समस्त पृथ्वि को एक पग कर लिया था । लंका जाते समय हनुमान जी ने समस्त समुद्र को फाल कर लिया था । छलांग मार कर कूद गये थे । और रावण ने समस्त कैलास पर्वत को हाथों से तौल लिये था । ऐसे अतुल बलवान थे इनको भी काल ने खा लिया । तो हे जीव ! तूं किस गिनती है । काल किसी को छोड़ता नहीं है । तुझे भी एक दिन खा जायगा । बचता हो तो सब छोड़कर हरि भजन कर । एक काल में हो और दूसरे काल में न रहे उस को काल खाए ऐसा कहा जाता है । इससे इनकी निन्दा नहीं समझनी चाहिये । किन्तु काल का भय बता कर जीव को साधन कराने में तात्पर्य समझना चाहिये ॥ ४६६ ॥



(४६७)

आज काल्ह दिन एक में, इस्थिर नाहिं सरीर।
कह कबीर कस राखिहौं, काँचे बासन नीर ॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, आज से लेकर कल तक एक ही दिन में शरीर स्थिर नहीं रहता है। क्षण क्षण में परिणाम को प्राप्त होता रहता है तो भला कहो तो सही कि, कच्चे बासन में पानी के समान शरीर में प्राण को कैसे रखोगे। जैसे कच्चे बासन में पानी नहीं रह सकता है वैसे ही क्षणभङ्गुर शरीर में प्राण नहीं रह सकता है। किस समय शरीर से प्राण निकल जायगा कह नहीं सकते हैं। अतः जब शरीर है तब तक कल्याण का साधन कर लेना चाहिये ॥ ४६७ ॥

—:-०-:—

(४६८)

आज कहै मैं काल्ह भजुं, काल्ह कहै फिर काल।
आज काल के करत हीं, अवसर जासी चाल ॥

मनुष्य आज कहता है कि, कल भजन करूंगा और फिर कल कहता है कि, कल भजन करूंगा। इस प्रकार आज कल करते करते कल्याण के साधन करने का अवसर चला जायगा तो फिर कब साधन करोगे ॥ ४६८ ॥



(४६९)

माली आवत देखि कै, कलियाँ करैं पुकार।
फूलि फूलि चुनि लिए, काल्हि हमारो बार ॥

यमराजरूप माली को आते हुए देखकर जिसका प्रारब्ध कुछ बाकी है ऐसे जीवरूपी कलियाँ पुकार करती हैं और कहती हैं कि इस माली ने जिसका प्रारब्ध भुक्त हो चुके हैं ऐसे जीवरूपी खिले हुए फूलों को आज चुन लिये हैं अब कल हमारी बारी आने वाली है। आज खिले हुए को चुन लिया हैं। कल जो खिलने वाले हैं उसको भी चुन लेंगे। जिसको चुन लिये हैं वे मर कर चले गए। और जिसको चुनने वाले हैं वे अभी हैं। एक दिन ये भी जायँगे। जब तक हैं तब तक कल्याण के साधन कर लेने से जाना आना बन्द हो जायगा। नहीं तो काल किसी को छोड़ता नहीं है। कुछ को ले गए हैं और रहे हुए को भी ले जायँगे किसी को रहने नहीं देंगे॥ ४६९॥



(४७०)

काँची काया मन अथिर, थिर थिर काज करंत।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरत, त्यों त्यों काल हसंत॥

शरीर कच्चा है। क्षणभङ्गुर है। मन अस्थिर है। चञ्चल है। धीरे धीरे कार्य (आत्म कल्याण का साधन) करता है। जैसे जैसे मनुष्य निधड़क (निडर) होकर फिरता है वैसे वैसे काल हसता है। कुछ लोग आत्मकल्याण का साधन करते हैं। पर धीरे धीरे। प्रातःकाल तथा सायंकाल दो चार माला कर लेते हैं। और सारा समय निर्भय होकर फिरते हैं। इसी से वे अपना कल्याण मान लेते हैं। पूरा साधन हुए विना कल्याण नहीं होता है। उसको देखकर काल हसता है और कहता है कि ये मुझसे बच नहीं सकता हैं। भोजन बनाने के लिये जितना अग्नि जल आदि साधन चाहिये उतना हो तो भोजन बनता है। उनमें से एक नहीं हो तो भोजन बनता नहीं है। वैसे ही मोक्ष के लिये जितना साधन चाहिये उतना हो तो मोक्ष होता है। उन

से एक नहीं हो तो मोक्ष होता नहीं है। साथ ही अतिशीघ्रता से इसी जन्म में साधन पूरा कर लेना चाहिये। बीच में कच्चा शरीर छुट जाने पर और जन्म लेना पड़ेगा। काल से बचने नहीं पायगा ॥ ४७० ॥

—:०:—

(४७१)

हम जानैं थे खायँगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रह गया, पकरि लै गया काल ॥

हम लोग यह समझते थे कि, इस पुरुष ने जो न्याय नीति से या अन्याय अनीति से जमीन जायदाद धन सम्पत्ति आदि माल एकत्रित किये हैं ऊनको खायँगे = ऊपभोग करके जायँगे। परन्तु वे सब माल तो ज्यों के त्यों यहीं रह गये और काल भगवान पकड़ कर इसको ले गये। खाने नहीं पाये। जीव! तू छोड़। भजन कर ॥ ४७१ ॥

—:०:—

(४७२)

कबीर रसरी पाँव में, कहँ सोवै सुख चैन।
स्वाँस नगाड़ा कूँच का, बाजत है दिन रैन ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि हे जीव! तेरे पैर में रस्सो बँधी हुई है। काल तुझे घसीटते हुए ले जाने चाह रहा है। तू सुख चैन से क्या सो रहा है। स्वासरूपी कूँच का नगाड़ा दिन रात बज रहा है। कर्म रूपी रस्सी है। काल सीधे सीधे नहीं ले जायगा किन्तु घसीटते ले जायगा। कर्म के फल सुख दुःख देते हुए ले जायगा। दिन और रात्रि सदा श्वास चलता रहता है वह एक प्रकार का कूँच का (एक शरीर

से दूसरे शरीर में जाने का) नगाड़ा है। वह चलो चलो जल्दी चलो कह रहा है। जाना आना छूटे इसके लिये प्रभु भजन करो ॥ ४७२ ॥

—:०:—

(४७३)

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गया सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, गया बजावनहार ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, शरीररूपी यन्त्र अब बजता नहीं। इसके सब तार टूट गये हैं। यह यन्त्र विचारा क्या करे इसका बजाने वाला जीवात्मा तो निकल गया। जैसे सितार वाद्य यन्त्र बजता है। परन्तु जब तार सब टूट जाते हैं तब नहीं बजता है। वैसे ही शरीररूपी यन्त्र भी बजता है। अनेक प्रकार की वाली बोलता है। परन्तु जब जीवात्मा इसमें से चला जाता है तब नहीं बजता है। इसके अङ्ग प्रत्यङ्ग सब टूट जाते हैं। सब खेल खलास हो जाता है। इस स्थिति को याद करने से वैराग्य होता है। आगे के सब साधन होने लगते हैं। साधनसम्पन्न होने से आत्मा का कल्याण होता है ॥ ४७३ ॥

—:०:—

(४७४)

दस द्वारे का पींजरा, ता में पंछी पौन।
रहिवे को आचरज है, जाय तो अचरज कौन ॥

दो नेत्र, दो नाक, दो कान, दो गुदा और शिश्न, एवं दो मुख और दशमद्वार तालु ये दश दरवाजा वाला शरीररूपी पींजरा है। उसमें पवन (प्राण) रूप पक्षी रहता है। वह गतिमान है। सतत गमन करता रहता है। उड़ता रहता है। इसको शरीर में रहना आश्चर्य है। जाने में कोई

आश्चर्य नहीं। जैसे पींजरा में से पक्षी उड़ जाता है वैसे ही शरीर में से प्राण उड़ जाता है। इसको जाने में आश्चर्य नहीं किन्तु रहने में आश्चर्य है। जब तक है तब तक भक्ति आदि कल्याण के साधन सतत करते रहना चाहिये। जिससे आवागमन न हो॥ ४७४॥



(४७५)

सुर नर मुनि औ देवता, सात द्वीप नवखंड।
कह कबीर सब भोगहीं, देह धरे का दंड॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, सात द्वीप और नव खण्ड पृथिवी पर जितने सुर, नर, मुनि और देवता = देवियाँ हैं वे सब देह धरने के दण्ड को भोगते हैं। सभी ज्वरादि रोग जन्य दुःख को भोगते हैं। क्योंकि, 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' अर्थात् शरीर रोग का घर है॥४७५॥



(४७६)

देह धरे के दंड को, भोगत है सब कोय।
ज्ञानी भोगे ज्ञान से, अज्ञानी भोगे रोय॥

देह धारण करने के दुःखरूप दण्ड को सब कोई भोगते हैं। परन्तु ज्ञानी जन ज्ञान से और अज्ञानी जन रो रो कर भोगते हैं। इतना अन्तर है॥ ४७६॥

—:०:—

उपदेश

(४७७)

जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल ।

तोको फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ॥

सद्गुरु कहते हैं कि हे जीव ! जो कोई तेरे लिये काँटा बोये=अहित करे तो उसके लिये तू फूल वोओ=हित ही करो। तेरे लिये तो फूल का फूल है=हित का फल हित होगा और उसके लिये त्रिशूल=त्रिविध ताप रूप त्रिशूल=अहित ही होगा ॥ ४७७ ॥



(४७८)

दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी हाय ।

बिना जीव की स्वाँस से, लोह भसम ह्वै जाय ॥

सद्गुरु उपदेश देते हैं कि, हे भाइयो ! आप लोग दुर्बल=गरीबों को नहीं सताइए, दुःख न दीजिए। क्योंकि उनकी हाय रूप अग्नि बहुत बड़ी होती है। देखिये जोव के विना निर्जीव लोहार की भाथी की स्वास से कठिन से कठिन लोहा भी भस्म हो जाता है। जैसे जीव विना की लौहार की धोंकसी से निकली हुई साँस से प्रज्वलित अग्नि से लोहा भस्म हो जाता है वैसे ही दुर्बल प्राणी की हाय रूपी अग्नि से बलवान् मनुष्य रूपी लोहा भस्म हो जाता है। नाश को प्राप्त होता है। जैसे दुर्बल भाथी की हाय=स्वांस=ऊर्ध्वश्वास से बलवान् लोहा भस्म होता है वैसे दुर्बल की ही हाय=ऊर्ध्वश्वास से वलवान पुरुष नष्ट हो जाता है। अतः किसी गरीब को सताना नहीं चाहिये ॥ ४७८ ॥



(४७९)

कबीर आप ठगाइए, और न ठगिए कोय ।
आप ठगे सुख होत है, और ठगे दुख होय ॥

कबीर स्वामी उपदेश देते हैं कि, हे मनुष्यों, कोई ठगता हो तो आप भले ठगाइये परन्तु अन्य किसी को न ठगिये । क्योंकि, अपने ठगाने से पाप के अभाव से सुख होता है और अन्य को ठगने से पाप लगने से तज्जन्य दुःख होता है ॥ ४७९ ॥

—: ० :—

(४८०)

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय ।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय ॥

सद्गुरु कहते हैं कि, हे सज्जनगण ! आप लोग मन का आपा अर्थात् स्वार्थ को त्याग कर ऐसी शीतल वाणी बोलिये कि, वह (वाणी) सुनने वाले को शीतल कर दे और उससे आप (स्वयं) भी शीतल हो जाय । मधुर वचन से बोलने वाला और सुनने वाला दोनों प्रसन्न होते हैं ॥ ४८० ॥



(४८१)

जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय ।
या आपा को डारी दे, दया करै सब कोय ॥

सद्गुरु कहते हैं कि संसार में कोई किसी का शत्रु नहीं है । यदि मन शीतल हो तो । यदि तू स्वार्थ को त्याग करे तो तेरे पर सब कोई दया करे ऐसा है । यदि मन पवित्र हो और स्वार्थ को त्याग कर

व्यवहार करे तो संसार में कोई किसी का शत्रु न रहे, सब सबका मित्र बन जाय इसमें सन्देह नहीं ॥ ४८१ ॥

---

(४८२)

हस्ती चढिए ज्ञान का, सहज दुलीचा डारि ।
स्वान रूप संसार है, भूसन दे झख मारि ॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि हे जीव ! सहज स्वभाव रूपी गलीचा को डाल कर ज्ञान रूपी हाथी पर चढ़ो। यह संसार तो श्वान (कुत्ता) समान है। इसको भूकने दो। आप ही झख मार कर चूप हो जायगा। जैसे हाथी को देख कर कुत्ते भूकते हैं वैसे ही साधु को देखकर संसारी भूकते हैं, निन्दा करते हैं। साधु को अपना कार्य करते रहना चाहिये संसारी की तरफ देखना नहीं चाहिये ॥ ४८२ ॥

—:०:—

(४८३)

बाजन दे बाजन्तरी, कलि—कुकुही मति छेड़ ।
तुझे बेरानी का परी, अपनी आप निबेड़ ॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि, सज्जन ! वाद्य यन्त्र के बजाने वाले को बाजा बजाने दो। तुम इन कलियुग के कुक्कुटों को (मुर्गों को) मत छेड़ों। निन्दकों को मत रोको। क्योंकि, तुम्हें दूसरों की क्या पड़ी है। तुम्हें दूसरों की बातों से क्या प्रयोजन है। तुम तो अपनी क्रियाओं का स्वयं निर्णय कर लो। अपने कार्यों को सुधारते जाओं। तुम्हारे उत्तम कार्यों की प्रशंसा को सुनकर निन्दक अपने आप बंद पड़ जायँगे ॥ ४८३ ॥

---

(४८४)

आवत गारी एक है, पलटत होत अनेक ।
ताकी औषध मौन है, रहे एक की एक ॥

सद्गुरु कबीर सहनशील बनने का उपदेश देते हैं–किसी ने किसी को गाली दिया तो वह गाली आती हुई एक है और पलटने से अर्थात् गाली के प्रति गाली देने से वह अनेक हो जाती है। उसकी दवा मौन है। मौन रहकर सहन कर लेना। गाली के प्रति गाली न देना। तब वह गाली एक की एक ही रह जाती है। झगड़ा बढ़ता नहीं है। अतः किसी को गाली नहीं देना चाहिये। सहनशील बनना चाहिये ॥४८४॥

—:०:—

(४८५)

गारी ही सों ऊपजै, कलह कष्ट औ मीच ।
हारि चलै सो साधु है, लागि परै सो नीच ॥

गाली से ही कलह, कष्ट और मृत्यु आदि अनर्थ उत्पन्न होते हैं। इसलिये हार कर वहाँ से हट जाने वाला साधु और कलह आदि में लगने वाला नीच कहा जाता है। इसलिये जहाँ गाली गुत्ता होता हो वहाँ से अलग चले जाना चाहिये ॥ ४८५ ॥

—:०:—

(४८६)

जैसा भोजन खाइए, तैसा ही मन होय ।
जैसा पानी पीजिए, तैसो बानी सोय ॥

जसा भोजन खाया जाता है वैसा ही मन होता है और जैसा पानी पिया जाता है वैसी ही वाणी होती है। अतः मन और वाणी को शुद्ध रखना हो तो खान-पान शुद्ध रहना चाहिये ॥ ४८६ ॥

—:o:—

(४८७)

माँगन मरन समान है, मति कोइ माँगो भीख।
माँगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥

मांगना और मरना दोनों समान है। अतः कोई भीख न मांगो। मांगने से मरना अच्छा है। यह सद्गुरुओं की शिक्षा है। सत्पुरुषों का उपदेश है ॥ ४८७ ॥

—:o:—

(४८८)

उदर समाता अन्न ले, तनहिं समाता चीर।
अधिक संगरह नहि करै, ताका नाम फकीर ॥

पेट में जितना समाये उतना तो अन्न ले और शरीर जितने से ढका रहे उतना ही वस्त्र ले। इससे अधिक संग्रह न करे, उसका नाम साधु है ॥ ४८८ ॥



(४८९)

कहते को कहि जान दे, गुरु की सीख तु लेइ।
साकट जन औ स्वान को, फिर जवाब मत देइ ॥

सद्गुरु उपदेश देते हैं कि, कहने वाले को कहते रहने दो। तुम तो गुरु की शिक्षा को ग्रहण करो और वह यह है कि,—मांसाहारी शाक्तजन

और श्वान (कुत्ता) को इनके वचनों का उत्तर नहीं देना चाहिये। क्योंकि, उत्तर देने से झगड़ा बढ़ेगा ॥ ४८९ ॥

—:o:—

(४९०)

जो कोइ समझै सैन में, तासों कहिए वैन।
सैन वैन समझै नहीं, तासों कछू कहै न ॥

जो कोई इसारा से समझ जाता हो उससे कुछ कहना चाहिये और जो इसारे को समझता न हो उससे कुछ कहना न चाहिये। क्योंकि ऐसी जगह वचन व्यर्थ जाता है और कदाचित् उलटा समझ गया तो कलह भी होता है ॥ ४९० ॥

—:o:—

(४९१)

बहते को मत बहने दे, कर गहि खैंचहु ठौर।
कहा सुना मानै नहीं, बचन कहो दुइ और ॥

पानी में डूबकर बहते हुए को बहने न दो। हाथ पकड़कर अपने पास खींच लो। यदि वह कहना सुनना न माने तो भी दो वचन और कहकर उसको डूबने से बचाओ। अज्ञानी जीव भवनदी के मध्यधारा में बहता हुआ चला जा रहा है। उसको बहने न दो। जन्म मरण में रहने न दो। यदि वह उपदेश को न माने तो भी शान्ति से दो वचन और कहकर उसका उद्धार करो ॥ ४९१ ॥



(४९२)

सकलो दुरमति दुरि करु, अच्छा जनम बनाव ।
काग गमनगति छाँड़ि के, हंस गमन चलि आव ॥

सद्गुरु कबीर उपदेश देते हैं कि हे सज्जनगण ! आप लोग सभी दुर्बुद्धियों को दूर करो और मनुष्यजन्म को उज्ज्वल बनाओ एवं काग की चाल को छोड़कर हंस की चाल से हमारे पास चले आओ। क्योंकि, दुराचरण त्याग पूर्वक सदाचरण करने से ही परमपद की प्राप्ति होती है।

नोटः—कतिपय कबीरपन्थी, जो आदि कबीर पन्थ से बाहर निकाल दिये गये हैं, वे इसी साखी को गुरु मन्त्र के रूप में शिष्यों के कान में देते हैं ॥ ४९२ ॥

—:o:—

(४९३)

मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर ।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल सरीर ॥

मधुर वचन औषधी समान है। और कटु वचन तीर समान है। क्योंकि यह श्रवण द्वारा जब भीतर संचार करता है तब सारा शरीर चौंक पड़ता है। मधुर वचन सुखकर है। अतः औषधी स्वरूप है और कटु वचन दुःखकर है। अतः विष स्वरूप है। मधुर वचन ही बोलना चाहिए और कटु वचन को प्रयत्न पूर्वक त्याग देना चाहिए ॥ ४९३ ॥



(४९४)

बोलत ही पहिचानिए, साहु चोर की घाट।
अंतर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट॥

साहुकार और चोर के भाव को बोलते ही समझ जाना चाहिए। क्योंकि उनको जो कुछ करना है वह सब भीतर के भाव मुख रूपी द्वार से पहले ही बाहर निकल आता है। उन की बोली पर से समझ लेना चाहिए कि, यह साहुकार है। और यह चोर। उसके बाद संबंध और त्याग करना चाहिये॥ ४९४॥



(४९५)

पढ़ि-पढ़ि के पत्थर भए, लिखि-लिखि के भैं ईंट।
कबीर अंतर ज्ञानकी, लागो नेक न छींट॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, लोग पढ़-पढ़ कर पत्थर (जड़वत्) और लिख-लिखकर ईंट (जड़वत्) हो गये हैं। परन्तु भीतर में ज्ञान की छींट जरा भी लगने नहीं पाई है। पढ़ा लिखा जाता है ज्ञान के लिये। सो तो हुआ नहीं तो ऐसे लोगों का पढ़ना लिखना व्यर्थ है। पढ़ने के पश्चात् विवेक, वैराग्य आदि तथा शमदमादि साधन करना चाहिये तब ज्ञान और उसके बाद मोक्ष होता है। केवल पुस्तक पढ़ने लिखने वाले वाचक तथा लेखक पंडित हैं। उनको साक्षात्कार आत्म का ज्ञान न होने से पत्थर और ईंट के समान जड़ कहा गया है। पढ़ने लिखने के निषेध में तात्पर्य नहीं है। अन्यथा 'बीजक में पढ़ना पढ़ो' यह कैसे कहते॥ ४९५॥

—:०:—

(४९६)

कबीर दुनिया देहरे, सीस नयायन जाय ।
हिरदे माहीं हरि वसैं, ताहि न कोइ लौ लाय ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, दुनिया के लोग देवालय अर्थात् मन्दिरों में शिर झुकाने जाते हैं । परन्तु हृदय देश में ही परमात्मा वस रहे हैं उनसे कोई लव नहीं लगाते हैं । प्रेम नहीं करते हैं । इससे मन्दिरों में शिर झुकाना नहीं चाहिये इस अर्थ में तात्पर्य नहीं समझना चाहिये किन्तु हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित परमात्मा का अहर्निश चिन्तन करना चाहिये इस अर्थ में तात्पर्य समझना चाहिये ॥ ४९६ ॥



(४९७)

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जान ।
दस द्वारे का देहरा, तामें ज्योति पिछान ॥

मनको मथुरा, दिल=हृदय को द्वारिका और काया=शरीर को काशी समझना चाहिये । दश द्वार का शरीर रूपी मन्दिर है । इसी में स्वयं प्रकाश ज्योति स्वरूप परमात्मा की पहचान करो । शमदमादि साधन द्वारा साक्षात्कार करो । तब मुक्ति मिलेगी । अन्यथा नही । क्योंकि, यही (ज्ञान) मोक्ष का साधन है । इस कथन से मथुरा, द्वारिका और काशी आदि तीर्थों की निन्दा नहीं समझना चाहिये । किन्तु हृदय देश में परमात्मा का साक्षात्कार कराने में तात्पर्य है । स्नानादि द्वारा तीर्थादि भी ज्ञान का साधन चित्तशुद्धि का हेतु है ॥ ४९७ ॥



(४९८)

पूजा सेवा नेम व्रत, गुड़ियन का सा खेल ।
जब लग पिउ परसैं नहीं, तब लग संसय मेल ।।

पूजा, सेवा, नियम और व्रत ये सब गुडियन का खेल जैसा है। जब तक सच्चे पति का सम्बन्ध नहीं हुआ है तब तक पति विषयक संशय का सम्बन्ध हो जाता है तब गुडवा गुडिया का खेल अपने आप छूट जाता है। वैसे ही जब जीवात्मा को परमात्मा के साथ सम्बन्ध हो जाता है तब पूजा सेवा नियम और व्रत आदि अपने आप छूट जाते हैं। साधन तभी तक आवश्यक है जब तक साध्य की सिद्धि नहीं हुई हो। फल प्राप्त होने पर साधन की आवश्यकता नही रहती है। यहाँ पूजा सेवा आदि का खण्डन नहीं है किन्तु उनकी सीमा बताई गई है।४९८।

—:०:—

(४९९)

तीरथ चाले दुइ जना, चित चंचल मन चोर ।
एको पाप न उतरिया, मन दस लाए जोर ।।

तीर्थों में जाने वाले लोगों को हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं। एक वे हैं जिनका चित्त चंचल है और दूसरे वे हैं जिनका मन चोर है। ऐसे लोगों के स्नान करने से उनका पाप एक भी शिर से उतरता नहीं है प्रत्युत और अधिक दश मन जोड़ कर अर्थात् मिला कर ले आते हैं। यहाँ तीर्थों की निन्दा में नहीं किन्तु मन को शुद्ध करने में तात्पर्य समझना चाहिये। तीर्थों में स्नान किया परन्तु मन शुद्ध नहीं हुआ तो इसका अर्थ कुछ भी नहीं। क्योंकि चोरी करने की आदत तो विद्यमान ही है।। ४९९ ।।

—:-०-:—

(५००)

न्हाए धोए क्या भया, जो मन मैल न जाय ।
मीन सदा जल में रहै, धोए बास न जाय ॥

यदि मन का मैल नहीं गया तो तीर्थों में नहाने धोने से क्या हुआ, कुछ भी नहीं। मछली सदा जल में ही रहती है परन्तु बहुत धोने पर भी बास (गन्ध) नहीं जाता है। जिसका स्वभाव ही मलिन है उसको तीथ-स्नान क्या करेगा। पुनः पाप न करने की प्रतिज्ञा करके यदि तीर्थ स्नान किया जाय तब पूर्वकृत पाप का नाश तीर्थ स्नान से होता है यह शास्त्र का नियम है ॥ ५०० ॥

---

(५०१)

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय ।
एकै अच्छर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥

पुस्तक पढ़ पढ़ कर सारा संसार मर गया। जन्म-मरण में रहा। मुक्त नहीं हुआ। कोई पण्डित होने नहीं पाया। ज्ञान किसी को नहीं हुआ। प्रेम का एक ही अक्षर 'ॐ' है। इसको जो पढता है वही पण्डित (ज्ञानी) होता है। 'तत्त्वमसि' तथा 'सोऽहम्' आदि महावाक्य के समान 'ओम्' रूप एक अक्षर का विवेक करने से तुरीय चेतन का साक्षात्कार हाता है। जिससे मोक्ष होता है। मध्यम अधिकारी एक अक्षर ओङ्कार को प्रतीक बना कर उसका (ओम् का) वाच्य परमात्मा का चिन्तन करने से ज्ञान और उससे मोक्ष होता है। ॐकार का चिन्तन परमात्मविषयक प्रेमलक्षणा भक्ति है। भक्ति से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति होती है। जिसको ओङ्कार के विवेक से वा चिन्तन से तुरीय चेतन

का ज्ञान प्राप्त हुआ हो वही पण्डित है और जिसको पोथी पढने पर भी यथोक्त ज्ञान न हुआ हो वह पण्डित होते हुए भी पण्डित नहीं है।

किसी किसी पुस्तक में 'एकै अच्छर' के स्थान में 'ढाइ अच्छर' और कहीं 'अरधा अच्छर' पाठान्तर मिलता है। सो चिन्त्य है ॥५०१॥



(५०२)

पढ़े गुने सीखे सुने, मिटी न संसय सूल।
कह कबीर कासों कहूँ, ये ही दुख का मूल ॥

सद्‌गुरु कबीर कहते हैं कि मैं किससे कहूँ ? पढ़ने गुनने से ओर सीखने सुनने से जब आत्मविषयक संशय रूप शूल मिटा नहीं तो यही तो दुःख का मूल (कारण) है। जन्म-मरण रूप संसार का हेतु है। पढ़ने, गुनने, सीखने, सुनने से निश्चयात्मक ज्ञान होता है और निश्चय संशय का विरोधी है। जब पढ़ने पर भी निश्चयात्मक ज्ञान न होने पर संशय रह ही गया तो पढ़ने का क्या फल ? कुछ नहीं ॥ ५०२ ॥



(५०३)

पण्डित और मसालची, दोनों सूझे नाहिं।
औरन को कर चाँदना, आप अँधेरे माहिं ॥

पण्डित और मसालची इन दोनों को सूझता नहीं है। ये दोनों दूसरे के लिये प्रकाश प्रदान करते हैं परन्तु आप स्वयं अन्धेरे में रहते हैं। मसालची रात्रि में मसाम लेकर आगे-आगे चलता है। पीछे से और सब लोग चलते हैं। पर मशाल के नीचे अन्धकार रहता है। वैसे ही शास्त्र पढ़कर पण्डित लोग दूसरे को उपदेश देते हैं पर स्वयं अज्ञानी

देखे जाते हैं। केवल पढ़ने से ही ज्ञान नहीं होता है किन्तु पढ़ने के बाद श्रवण मननादि से ज्ञान होता है। शास्त्र पढ़ने से जो ज्ञान होता है वह परोक्ष ज्ञान है। अपरोक्ष नहीं। अपरोक्ष (साक्षात्कार) ज्ञान से मोक्ष होता है। परोक्ष ज्ञान से नहीं ॥ ५०३ ॥

—:o:—

(५०४)

आपा तजो औ हरि भजो, नख सिख तजो विकार।

सब जिउते निरवैर रहु, साधु मता है सार॥

सद्‌गुरु कहते हैं कि, हे जीव! तुम आपा तजो=अपने जाति कुलाभिमान को त्याग करो। नख से शिखा तक व्याप्त हो कर रहे हुए कामादि विकारों का त्याग करो और सब जीवों से निर्वैर रहो। किसी के साथ वैरभाव न रखो। यह साधुओं के मत अर्थात् सिद्धान्तों का सार है। अभिमान, कामादि विकार और वैरभाव आदि दुर्गुण असाधुगुण हैं॥ ५०४॥



(५०५)

बहु बंधन ते बाँधिया, एक बिचारा जीव।

का बल छूटे आपने, जो न छुड़ावै पीव॥

एक बिचारा जीव बहुत बन्धनों से बँधा हुआ है। यदि उसको प्रियपति परमात्मा न छुड़ावे तो क्या वह कभी अपने बल से छूट सकता है? कभी नहीं। माया तत्कार्य स्त्री धन पुत्रादि अनेक बन्धन हैं।५०५।



(५०६)

समुझाए समुझै नहीं, परहथ आप बिकाय ।
मैं खैंचों सतलोक को, बाँधे जमपुर जाय ॥

सद्गुरु उपदेश देते हैं कि यह जीव समझाए से भी नहीं समझता है। स्वयं दूसरे के हाथ में बिकाया करता है। मैं इसको उपदेशरूपी रस्सी से बाँध कर सत्यलोक ले जाने के लिये खींचता हूँ। परन्तु यह मायातत्कार्य कर्मबन्धन से बँधा हुआ यमपुरी को जा रहा है। सद्गुरु के उपदेश को सुनकर उसके अनुसार चलने से मुक्त होकर भगवद्धाम सत्यलोक को जाता है। अन्यथा नहीं ॥ ५०६ ॥

—:०:—

(५०७)

वोहू तो वैसहि भया, तू मति होय अयान ।
तू गुणवंत वे निर्गुणी, मति एकै में सान ॥

वह तो अज्ञानी था, उसके जैसा ही हुआ। परन्तु तू अजान (अज्ञानी) न हो। क्योंकि, तू गुणवान और वह निर्गुणी है। गुण और अवगुण दोनों को एक में न सान = न मिलाओ ॥ ५०७ ॥

—:०:—

(५०८)

पूरा साहब सेइये, सब विधि पूरा होय ।
ओछे नेह लगायके, मूलहु आवै खोय ॥

पूरा साहब = पूर्ण परमात्मा की भक्ति करनी चाहिये तब भक्त भी सर्व प्रकार से पूर्ण हो सकता है और ओछे = अपूर्ण देवादि से स्नेह

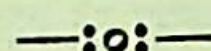
करके मूल भी खोकर आना पड़ता है। अपनी अन्दर जो कुछ थोड़ा बहुत अधिकार प्राप्त हुआ था वह भी चला जाता है ॥ ५०८ ॥



(५०९)

पहिले बुरा कमाइके, बाँधी विष की मोट।
कोटि कर्म मिट पलक में, आवै हरि की ओट ॥

इस अज्ञानी जीव ने प्रथम शास्त्रप्रतिषिद्ध कर्म करके विष की गठरी बाँधी है। जन्म मरण का साधन बनाया है अभी भी यदि यह हरि की शरण में आ जाय तो एक पल में करोडों कर्म इसके मिट सकते हैं और जन्म मरण से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त हो सकता है ॥ ५०९ ॥



विविध

(५१०)

साहेब तेरी साहबी, सब घट रही समाय।
ज्यों मेहदी के पात में, लाली लखी न जाय ॥

हे साहब ! हे परमात्मन् ! आप का अस्तित्व (सत्ता) घट घट में समाया हुआ है। ऐसी कोई जगह नहीं जहां आप न हों। जैसे मेंहदी के पत्र में लालिमा है परन्तु दिखाती नहीं है वैसे ही आप सर्वत्र विद्यमान हैं परन्तु दिखाते नहीं हैं। जब परिश्रमपूर्वक मेंहदी के पत्र को पीस कर हाथ में लगाया जाता है और कुछ काल रहने दिया जाता है तब

उसकी लालिमा प्रतीत होती है। वैसे ही जब परिश्रम पूर्वक श्रवणादि तथा शमदमादि साधन किया जाता है तब आप का ज्ञान होता है।५१०।



(५११)

सब घट मेरे साँइयाँ, सूनी सेज न कोय।

बलिहारी उस घट हि की, जा घट पर घट होय ॥

मेरे सँइयाँ परमात्मा सब घट में समाया हुआ है। हृदयरूपी शय्या कोई सूनी = उसके बिना नहीं है। जैसे स्त्री की शय्या पर पुरुष विद्यमान रहता है वैसे ही जीवरूपी स्त्री की अन्तःकरण रूप शय्या पर परमात्मा विद्यमान है सबके हृदय में अन्तर्य्यामी रूप से स्थित है। छिपा हुआ है। परन्तु उस घट की बलिहारी (प्रशंसा) है जिसमें वह प्रगट होता है। जिस महात्मा के हृदय में वह प्रगट होता है उस महात्मा की बलिहारी है ॥ ५११ ॥



(५१२)

एक कहूँ तो है नहीं, दो कहूँ तो गारि।

है जैसा तैसा रहै, कहैं कबीर विचारि ॥

सद्गुरु कहते हैं कि, उस परमात्मा को यदि हम एक कहैं तो यह एक है नहीं। क्योंकि, एक शब्द अपने निरूपकांश में सापेक्ष है। यदि कोई दो हो तो उसकी अपेक्षा एक कहा जा सकता है। और यदि दो कहैं तो गाली हो जाती है। क्योंकि आत्मा के सदृश किसी दूसरे मिथ्या पदार्थ को बताना आत्मा का अपमान करना है। अतः विचार करके कहना पड़ता है कि, यह आत्मा जैसा है वैसा ही है। उसके विषय में

एक या दो कुछ कहा नहीं जा सकता । वह मन और वाणी का विषय नहीं है । 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' अर्थात् जहां से मन सहित वाणी उसको विषयरूप से जाने विना लौट आती है उस भूमिका पर पहुँचने पर बोलना बन्द हो जाता है ॥ ५१२ ॥



(५१३)

भजूँ तो को है भजन को, तजूँ तो को है आन ।
भजन तजन के बीच में, रहा कबीर समान ॥

यदि भजन करूं तो किसका करूं और त्याग करूं तो मेरे से अन्य दूसरा कौन है जिसका त्याग करूं । ग्रहण और त्याग द्वैत में होता है। अद्वैत में नहीं । अतः भजन और तजन दोनों के बीच में कबीर (मैं) समा रहा है । ज्ञान की अन्तिम भूमिका पर पहुंचने पर भजन करना और न करना दोनों छूट जाता है । उस समय 'सोऽहं सोऽहम्' इस प्रकार की अभेदभावना ही होती रहती है । जिसको स्वरूप नुसन्धान कहते हैं ॥ ५१३ ॥

—:o:—

(५१४)

पाया कहैं ते बावरे, खोया कहैं ते कूर ।
पाया खोया कछु नहीं, ज्यों का त्यों भरपूर ॥

'मैंने परमात्मा को पाया' यह कहने वाला पागल है । और 'मैंने परमात्मा को खो दिया' यह कहने वाला भी क्रूर (खराब) है । वस्तुतः पूछो तो न उसको पाया और न खोया । क्योंकि, वह तत्त्व तो सर्वत्र

जैसा था वैसा ही भरपूर=व्यापक रूप से परिपूर्ण है और रहेगा, सदा सर्वत्र एकरस है। अपने से भिन्न एकदेशी पदार्थ का ग्रहण और त्याग हो सकता है। अपने स्वरूप का ग्रहण और त्याग नहीं हो सकता ॥ ५१४ ॥

—:o:—

(५१५)

अति का भला न बोलना, अति का भला न चूप ।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ॥

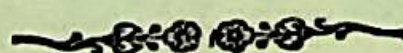
बहुत बोलना अच्छा नहीं, बिलकुल न बोलना भी अच्छा नहीं, आवश्यकता से अधिक वर्षना भी अच्छा नहीं एवं बहुत धूप भी अच्छी नहीं। नीति शास्त्र में भी कहा है—'अति सर्वत्र वर्जयेत्' ॥ ५१५ ॥

—:o:—

(५१६)

नाम अनंत जो ब्रह्म का, तिन का बार न पार ।
मन मानै सो लीजिये, कहैं कबीर विचार ॥

ब्रह्म=परमात्मा का अनन्त=असंख्य नाम हैं। उनका वार पार नहीं है। प्रारम्भ और समाप्ति नहीं है। सहस्रनाम का अर्थ है हजारों नाम। हे सज्जनगण ! उनमें से जो मन में भावे सो लीजिये। इसमें आग्रह नहीं। विशेष कर जो गुरु द्वारा प्राप्त हुआ हो उसको लीजिये। यह कबीर स्वामी 'मैं' विचार द्वारा निश्चय करके कहते हैं। जो यह कहते हैं कि, अमुक नाम अच्छा है और अमुक नहीं वह नामापराधी है। नामापराध बड़ा भारी पाप माना गया है ॥ ५१६ ॥



(५१७)

सत्यनाम को सुमरि के, तर गए पतित अनेक ।

ताते कबहु न छोड़िये, सत्यनाम को टेक ॥

परमात्मा सत्य है। उसका 'सत्य' यह नाम यथार्थ है। इसका स्मरण करके अनेक पतीत जीव संसार सागर से तर गये हैं। अत एव सत्यनाम लेने की टेक (नियम) कभी छोड़ना नहीं चाहिये। नामस्मरण कल्याण का हेतु है॥५१७॥

—:०:—

(५१८)

सतिया सत्य न छोड़ियो, सत छोड़े पत जाय ।

सत्त की बाँधी लच्छमी, फिरि फिरि फेरा खाय ॥

हे सती देवियो! तुम लोग सत्य का परित्याग न करना क्योंकि, सत्य का परित्याग करने से पत=लज्जा=इज्जत जाती है। साथ ही सत्य की बाँधी हुई लक्ष्मी फिर फिर फेरा खाती है। लक्ष्मीवान को छोड़कर चली जाती है और सत्य यदि सत्यवान् के पास ही रहता है तब लक्ष्मी को घूम कर सत्य के पास आना पड़ता है। सत्य परमात्मा पति है और लक्ष्मी सत्य की पत्नी है। पति को छोड़कर पत्नी कहीं जा नहीं सकती। यदि लक्ष्मी को रखना हो तो सत्य को न छोड़ो। यहां सती का अर्थ भक्त और सत्य का अर्थ भगवान् है। अन्योक्ति है।५१८।

—:०:—

(५१९)

कबीर खड़े बजार में, सबकी मनावै खैर ।

ना काहू सों दोसती, ना काहू सों बैर ॥

सद्गुरु कबीर बाजार में खड़े हैं। बीच बाजार में खड़े रह कर सब की खैर (कुशलता) मनाते हैं। सब सुखी रहें ऐसा चाहते हैं। न किसी से मित्रता और न किसी से शत्रुता करते हैं। साधु को चाहिये कि, न किसी से शत्रुता और न किसी से मित्रता करें किन्तु सब की भलाई चाहें। शास्त्र में भी कहा है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

अर्थात् संसार में सभी सुखी होवें, सभी नीरोग रहें और सभी कल्याण देखें। कोई दुःखभागी न हो॥ ५१८॥



(५२०)

कबीर का घर चौक में, गलकटियों के पास।

करेगा सो भरेगा, तू क्यों भया उदास॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि मेरा घर गला काटने वाले कसाइयों के पास है। जो नित्य प्रति पशुओं के गले को काटते रहते हैं सद्गुरु अपने को कहते हैं कि—रे जीव! जो करेगा वह भरेगा, जो जैसा कर्म करता है उसी को उसका फल भोगना पड़ता है तू क्यों उदास हुआ। यह साखी कहावत के रूप में प्रसिद्ध है॥ ५२०॥



(५२१)

जो तू आया जगत में, तो ऐसा कर लेय।

कर साहेब की बंदगी, भूखे को कुछ देय॥

सद्गुरु मनुष्य को उपदेश देते हैं कि हे मनुष्य ! जब तू मनुष्य-शरीर = कर्म शरीर धारण कर संसार में आया है तो इतना अवश्य करना। एक परमात्मा की भक्ति और दूसरा भूखे को कुछ देना, अन्न दान करना। मनुष्यशरीर कर्मशरीर कहा जाता है। अन्य सब शरीर भोगशरीर है। मनुष्यशरीर से जो शुभाशुभ कर्म करता है उसका फल भोगने के लिये अन्य शरीर में जाना पड़ता है। अतः वे सब शरीर भोगशरीर हैं। मनुष्यशरोर ही कर्मशरीर है। कर्म कहते हैं धर्म को। धर्म तीन प्रकार का है योग, दान और होम। सद्गुरु कहते हैं कि याग और होम यदि न हो सके तो दान अवश्य करना। दान भी बहुत प्रकार के हैं। भूमिदान, सुवर्णदान तथा विद्यादान आदि। परन्तु 'भूखे' शब्द के प्रयोग से यह प्रतीत होता है कि उक्त सब दानों में अन्नदान अधिक श्रेष्ठ है ॥ ५२१ ॥



(५२२)

भक्त कहावै जगत में, चपटी चून न देय।
सिस जोरू का हो रहै, नाम गुरु का लेय ॥

संसार में लोग भक्त तो कहलाते हैं। परन्तु किसी भिखारी को चपटी चून भी नहीं देते हैं। किसी दरिद्र नारायण को मूठी अनाज भी नहीं देते हैं। ऐसे लोग शिष्य तो अपनी स्त्री के बने हुए है और नाम गुरु का लेते हैं कि मैं गुरु का शिष्य हूँ। स्त्री का कहना मानकर सब कुछ करते हैं और गुरु का कहना (दान धर्म करना) नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति में कल्याण हो तो कैसे हो ॥ ५२३ ॥



(५२३)

नवन-नवन बहु अन्तरा, नवन-नवन बहु बान।
ये तीनों बहुत नवैं, चीत्ता चोर कमान॥

नमन नमन में बहुत अन्तर है और नमन नमन के बहुत प्रकार है। देखिये—चीत्ता, चोर और कमान ये तीनों बहुत नमन करते हैं। परन्तु इनका नमना घात करने के लिये होता है। चीत्ता व्याघ्र साष्टाङ्ग प्रणाम के समान जमीन में लम्बा सो जाता है। ऐसा ही चोर भी किसी को देखकर ये मुझे देख न लें इस ख्याल से जमीन में लम्बा सो जाता है और धनुष पर बाण रखकर जब खीचा जाता है तब धनुष भी बहुत नमता है। परन्तु ये तीनों घात करने के लिये नमते हैं। जैसे पुत्र तथा शिष्यादि पिता तथा गुरु आदि को नमते हैं वैसा इन तीनों का नमना नहीं है। किन्तु जीव लेने के लिये है। वैसे ही कुछ लोग ऐसे होते हैं जो प्रथम नमन =लम्बा दण्डवत् प्रणाम करते हैं। बाद में मौका देखकर घात करते हैं॥ ५२३॥

---

(५२४)

गई पूनली लौन की, थाह समुदर लेन।
अनाथ नाथ आपे भई, पलटी कहे को बैन॥

लवण अर्थात् नमक को पुतली (मूर्त्ति) समुद्र की थाह लेने गई, समुद्र कैसा है और समुद्र में पानी कितना है इसका पता लगाने गई। परन्तु स्वयं वह अनाथ नाथ रूप हो गई गलकर पानी हो गई तो पीछे आकर कौन कहे कि समुद्र कैसा है एवं समुद्र में पानी कितना है ?। साधक जीव ब्रह्म=परमेश्वर को देखने गया कि वह कैसा है ? साधन

पूरा होने पर वह ब्रह्मरूप हो गया। पृथक् रहा ही नहीं तो पीछे लौटकर कौन कहेकि ब्रह्म कैसा है। इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुक्तावस्था में जीव ब्रह्मरूप हो जाता है। जो भिन्न मानते हैं उनको यह साखी ध्यान से पढ़ना चाहिये ॥ ५२४ ॥

—:o:—

(५२५)

जूआ चोरी मुखबिरी, ब्याज घूप परनार।
जो चाहै दीदार को, एती वस्तु निवार ॥

जूआ खेलना, चोरी करना, पान खाना, ब्याज (सूद) का धन्धा करना, घूस लेना (रिस्वत खोरी) और पर स्त्री गमन करना ये सब कर्म पापजनक हैं। जो मुक्ति के लिये भगवत् तत्त्व साक्षात्कार करना चाहे वह इन वस्तुओं का त्याग करे। तब कल्याण होगा। अन्यथा नहीं ॥ ५२६ ॥

—:o:—

(५२६)

नाचै गावै पद कहै, हरि गुरु सों नहि हेत।
कह कबीर क्यों नीपजै, बीज विहूनो खेत ॥

बहुत लोग मुक्ति के लिये पद गाते हैं और नृत्य करते हैं। परन्तु हरि तथा गुरु से प्रेम नहीं करते हैं तो कबीर कहते हैं कि, बीज बोये विना खेत कैसे उपजेगा ?। जैसे बीज बोये विना खेत में से अनाज उत्पन्न नहीं होता है वैसे ही हरि गुरु की भक्ति विना मोक्ष प्राप्त नहीं होता है ॥ ५२७ ॥

(५२७)

बिन देखे उस देस की, बात कहै सो कूर ।
आपै खारी खात है, बेचत फिरत कपूर ।।

विना देखे परमात्मा रूपी देश की या भगवद्धाम की बात जो करे वह क्रूर = खराब आदमी है। क्योंकि यह आप तो खारी = काला रंग का कोयला खाता है और दूसरे के लिये सफेद रंग का कपूर बेचता फिरता है। जैसे कोयला खाकर कपूर बेचने वाला अच्छा नहीं कहा जाता है वैसे ही अनुभव किये विना आत्मा परमात्मा की बात करने वाला अच्छा नहीं कहा जाता है ।। ५२७ ।।



(५२८)

करु बहियाँ बल आपनी, छाँड़ बिरानी आस ।
जाके आँगन नदी है, सो कस मरै पियास ।।

अपने बाहुबल से सब कार्य करो। दूसरे की आशा छोड़ दो। जिसके घर के आँगन में नदी वह रही है वह पियास से कैसे मर सकता है ?। भाव यह है कि, व्यावहारिक या पारमार्थिक कोई भी काम हो स्वयं अपने बाहु बल से कर लेना चाहिये। दूसरे की आशा नहीं करनी चाहिये। विशेष कर आत्मकल्याण का साधन तो अपने ही से होता है। दूसरे से नहीं। जैसे स्वयं भोजन करने से भूख और स्वयं पानी पीने से प्यास जाती है। दूसरे के खाने पीने से नहीं, वैसे ही परमपद की प्राप्ति भी स्वयं साधन करने से होती है दूसरे के करने से नहीं। इसी बात को भगवान ने भी कहा है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।। गी. ६,५ ।।

अर्थात् मनुष्य को चाहिये कि, अपने द्वारा आप का संसार सागर से उद्धार करे और अपनी आत्मा को अधोगति में न पहुँचावे, क्योंकि, यह जीवात्मा आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है ॥ ५२८ ॥



(५२९)

गुणियाँ ता गुण को गहै, निर्गुण गुणहिं घिनाय।
बैलहिं दीजै जायफल, क्या बूझै क्या खाय॥

गुणी पुरुष गुण को ग्रहण करता है और निर्गुणी गुण को देख कर घृणा करता है। क्योंकि, बैल को जायफल दिया जाय तो वह क्या समझेगा ? और क्या खायगा ? कुछ भी नहीं ॥ ५२९ ॥



(५३०)

बना बनाया मानवा, बिना बुद्धि बेतूल।
कहा लाल लै कीजिए, बिना बास का फूल॥

बुद्धि और तुलना के विना बना बनाया भोन्दू मनुष्य है। उसको लेकर क्या करोगे ? कुछ भी नहीं। बहुत लाल पुष्प है। उसको लेकर क्या करोगे ? कुछ भी नहीं। क्योंकि, उसमें सुगन्धी तो है नहीं। जैसे–गन्ध विना का पुष्प निकम्मा है वैसे ही गुण विना का मनुष्य भी निकम्मा है ॥ ५३० ॥



(५३१)

मानुष तेरा गुण बड़ा, माँस न आवै काज।
हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजत बाज॥

हे मनुष्य! तेरा गुण ही बड़ा है। माँस तो किसी काम में आने वाला है नहीं। हड़ का कोई आभूषण बनने वाला नहीं है और न त्वचा (चर्म) का कोई बाजा ही बजता है। पशु के माँस को माँसाहारी खा जाते हैं। हाथी की हड्डी का आभूषण बनता है और बकरी आदि के चर्म का वाद्ययन्त्र बनता है। अतः ये सब किसी न किसी उपयोग में आ जाते हैं। मनुष्य के मांस, अस्थि और चर्म किसी काम में नहीं आते हैं। एक गुण ही ऐसी वस्तु है जो सब काम में आती है। सो जब नहीं है तो मनुष्य किसी काम का नहीं। निरुपयोगी प्राणी है। मनुष्य को कोई निरुपयोगी न कहे इसके लिये गुणसम्पादन करना चाहिये॥ ५३४॥

—:०:—

(५३२)

पद गावै लवलीन ह्वै, कटै न संसय फाँस।
सबै पिछोरा थोथरा, एक बिना बिश्वास॥

सब कोई लवलीन होकर महात्माओं के बनाये हुए पदों को गाते हैं। परन्तु निश्चयज्ञान के विना आत्मविषयक संशय तो कटता नहीं है। एक ईश्वर पर विश्वास के विना सब कोई थोथरा (भूसा) पिछोरते हैं। उसमें से क्या निकलेगा?। कुछ भी नहीं। मोक्ष के हेतुभूत भगवद्विषयक यथार्थ ज्ञान के विना सब क्रियायें निःसार हैं। संशय निवृत्त न होने से जन्म मरण छूटता नहीं है। "संशयात्मा विनश्यति" गीता॥ ५३२॥

—:०:—

(५३३)

घर कबीर का शिखर पर, जहाँ सिलिहिली गैल ।
पायँ न टिकै पिपीलिका, खलकन लादै बैल ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, मेरा घर पर्वत के शिखर समान ऊँचा स्थान (परमधाम) पर है। जहाँ जाने के लिये मार्ग बहुत सिलहिला = रपटिला है। फिसल कर गिर जाने लायक है। वहां पिपीलिका(चिउँटी) का भी पाँव टिक नहीं सकता है तो खलकन = दुनिया बैल के ऊपर सामान लाद कर जा रही है। कैसे जा सकेगी ?। मनरूपी बैल पर अनेक प्रकार का वासनारूपी सामान लादकर परमात्मा के यहाँ जा रही है। कैसे जा सकेगी ?। इसी बात को श्रुति भी कहती है—'दुर्गान् पथस्तत्कवयो वदन्ति' अर्थात् परमात्मा के यहां जाने का मार्ग अति दुर्गम है इस बात को विद्वान् लोग कहते है ॥ ५३३ ॥

—:-०-:—

(५३४)

ऊपर को दोऊ गईं, हिय की गई हेराय ।
कह कबीर चारिउ गईं, तासों कहा बसाय ॥

जिस पुरुष की ऊपर की दोनों आँखें चली गईं हों और हृदय के दोनों ज्ञानचक्षु भी खो गये हों। कबीर गुरु कहते हैं कि, इस प्रकार जिसकी चारों आँखें चली गईं हो—

उसका क्या बस चल सकता है। क्या जान सकता है ? वह स्थूल वस्तु को नहीं जान सकता है तो आत्मा को न जान इसमें कहना ही क्या है ? ॥ ५३४ ॥

—: ० :—

(५३५)

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो तू सेवै मूल को, फूले फलै अघाय॥

एक को सिद्ध करने से सब सिद्ध हो जाते हैं। एक आत्मा अभिन्न परमात्मा को जान लेने से सभी पदार्थ जाने जाते हैं। एक आत्म-सुख के अन्दर सब सुख आ जाते हैं। सबको सिद्ध करने लग जाने से सब चले जाते हैं। सद्‌गुरु कहते हैं कि हे जीव? यदि तू एक वृक्ष के मूल का ही सेवन करे तो भरपूर होकर फूले भी और फले भी। वृक्ष के मूल सिक्त होने से शाखा पत्र आदि सब सिक्त हो जाते हैं और पूर्णरूप से फूलते भी और फलते भी हैं। विश्ववृक्ष का मूल परमात्मा है। उसकी भक्ति कर लेने से अन्य की भक्ति करने की आवश्यकता नहीं रहती है। छान्दोग्य उपनिषद् में एक विज्ञान से सर्वविज्ञान की सिद्धि कही है— "यथा हि सौम्य एकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात्" अर्थात् जैसे एक मृत्पिण्ड के जान लेने से सबही मृद्विकार जाने जाते हैं। वैसे एक परमात्मा को जान लेने से विकारमात्र जाने जाते हैं। अतः एक ही ईश्वर की अनन्य भक्ति करनी चाहिये॥ ५३५॥

—:o:—

(५३६)

यार बुलावै भाव से, यो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सकूँ पाय॥

स्त्री कहती है कि मेरे पति मुझे बड़े भाव से बुलाते हैं परन्तु मेरे से जाया नहीं जाता है। क्योंकि, मैं मलिन हूँ और पति ऊजला है।

इसलिये मैं पाँव पड़ नहीं सकती हूँ। यहाँ स्त्री के स्थान पर भक्तात्मा (जीव) और पति के स्थान पर परमात्मा लेना चाहिये। जीव अपवित्र और परमात्मा पवित्र है ॥ ५३६ ॥

—:o:—

(५३७)

प्रेम प्रीति से जो मिलै, तासों मिलिये धाय।
अंतर राखे जो मिलैं, तासों मिलै बलाय ॥

सज्जनगण ! संसार में जो कोई अपने से प्रेमप्रीति से मिलने आता हो उससे तो दौड़कर मिलिये। और जो अन्तर (भेद भाव) रखकर मिलने आता हो उससे बलाय मिले। अर्थात् उससे नहीं मिलना चाहिये। यह व्यावहारिक उपदेश है ॥ ५३७ ॥

—:o:—

(५३८)

जब दिल मिला दयाल सों, तब कछु अंतर नाहिं।
पाला गलि पानी भया, यों हरिजन हरि माहिं ॥

जब साधनवश अपना हृदय दयालु परमात्मा से मिल गया तब मेरे में और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रहा। जीवात्मा और परमात्मा एक हो गया। जैसे–पानी से उत्पन्न पाला बरफ) गलकर पानी हो जाता है वैसे ही हरि से उत्पन्न (पृथक् हुआ) हरिजन हरि हो जाता है। हरि में मिल जाता है। मोक्ष अवस्था में सर्व उपाधि विनिर्मुक्त आत्मा परमात्मा रूप हो जाता है। अभेद को प्राप्त होता है। यह श्रुतिसिद्ध केवलाद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त है। जो कहते हैं कि कबीर

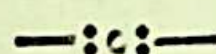
का सिद्धान्त वेदान्त से जुदा है। उनको मत्सरता को त्यागकर इस साखी को ध्यान से पढ़ना चाहिये ॥ ५३८ ॥



(५३९)

मो में इतनी शक्ति कहँ, गाओं गला पसार ।
बंदे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार ॥

मेरे में इतनी शक्ति कहाँ कि, गला पसार कर भगवान् के गुणानुवाद करूँ। बन्दे को तो इतना ही बहुत है कि भगवान् के दरबार में पड़ा रहे। इस साखी में निरभिमानी भक्त का भाव दिखाया गया है। सद्गुरु तो सर्वशक्तिमान महान समर्थ सत्पुरुष परमात्मा के ज्ञानी भक्तावतार ही थे॥ ५३९ ॥



(५४०)

रचनहार को चीन्हि ले, खाने को क्यों रोय ।
दिल-मन्दिर में पैठकरि, तानि पिछोरा सोय ॥

जीव ! संसार के रचने वाले परमेश्वर को पहचान ले। यदि पहचान लिया हो तो खाने के लिये क्यों रोता है ? यह सबको देता है तो क्या भक्त को भूल जायगा ? कभी नहीं। विश्वास रख। अन्तःकरण-रूपी मन्दिर में बैठकर निश्चिन्त होकर एवं पिछोरा (चद्दर) तान कर सो रह ॥ ५४० ॥



(५४१)

सब से भलो मधूकरी, भाँति भाँति का नाज ।
दावा काहू का नहीं, विना राज्य का राज ॥

साधुओं के लिये सबसे उत्तम मधुकरी भिक्षा है। क्योंकि, उसमें अनेक प्रकार के अनाज आते हैं और किसी का दबाव नहीं। साधु विना राज्य का राजा हो जाता है—मधुकरी से जीवन निर्वाह करने वाला साधु स्वतन्त्र होता है। किसी का उस पर दबान नहीं रहता है। खुदमस्ती में मस्त रहता है। पूरे पूरा साधु वही है जो मधुकरी से जीवन निर्वाह करता है॥ ५४१॥

—:o:—

(५४२)

जाति न पूछो साधु की, जब पूछो तब ज्ञान ।
मोल करो तरवार की, पड़ा रहन दो म्यान ॥

साधु की जाति पूछनी नहीं चाहिये। जब पूछना हो तब ज्ञान ही पूछना चाहिये। साधु के पास तत्त्वज्ञान के विषय में प्रश्न करना चाहिये। क्योंकि, तलवार की मोल करो। म्यान को पड़े रहने दो। जैसे क्षत्रिय कुमार दुकानदार से तलवार की कीमत पूछता है। म्यान की नहीं। वैसे ही जिज्ञासु साधु से आत्मज्ञान विषय में चर्चा करनी चाहिये। जात्यादि विषय में नहीं। म्यान असार और तलवार सार है। जात्यादि अनात्म पदार्थ असार और ज्ञान सार है। जिज्ञासु को सार-ग्राही होना चाहिये॥ ५४२॥

—:o:—

(५४३)

रवि का तेज घटे नहीं, जो घन जुरै घमण्ड ।
साधु वचन पलटै नहीं, पलटि जाय ब्रह्मण्ड ॥

मेघ आकाश में चाहे जितना घमण्ड करके घनीभूत हो गया हो तो भी सूर्य का तेज घटता नहीं है वैसे ही साधु का वचन पलटता नहीं है। मिथ्या नहीं होता है। चाहे ब्रह्माण्ड उलट जाय तो भी सन्त का आशीर्वादात्मक या शापात्मक वचन अन्यथा नहीं हो सकता है। 'मिथ्या न होइ देव ऋषि वानी' ॥ ५४३ ॥

—: ० :—

(५४४)

पानी तो बहता भला, बंधा गंदा होय ।
साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय ॥

बहता पानी अच्छा (निर्मल) और बन्धा गन्दा होता है। वैसा ही रमता साधु अच्छा और मठधारी मन्द होता है। क्योंकि रमता को परिचय न होने से वह निष्कलङ्क होता है ॥ ५४४ ॥

—:०:—

(५४५)

बंधा पानी निर्मला, जो बहु गहिरा होय ।
साधु जन बैठा भला, जो कछु साधन होय ॥

यदि बहुत गहरा पानी हो तो बंधा भी हो तो निर्मल होता है। वैसे ही यदि आत्म कल्याण का साधन होता है तो मठ में बैठा साधु

हो तो भी निष्कलङ्क होने से निर्मल होता है। साधननिष्ठ साधु को अनर्थ करने का अवसर ही नहीं प्राप्त होता है ॥ ५४५ ॥

—:o:—

(५४६)

हीरा सोइ सराहिये, सहे घना की चोट।

कपट कुरंगी मानवा, परखत निकसै खोट ॥

प्रशंसा करने लायक असली हीरा वही होता है जो घन की चोट को सह लेता है। एरन पर रखकर घन मारने से टूटता नहीं किन्तु धस जाता है। एरन में प्रविष्ट हो जाता है वैसे ही प्रशंसा करने लायक असली मनुष्य वही होता है जो निष्कपटी होता है। जो कपटी एवं कुरङ्गी मनुष्य होता है वह परीक्षा करते ही जनाई आता है कि, यह खोटा है, खरा नहीं। शीघ्र ही पहिचान में आ जाता है कि यह विश्वासु नहीं किन्तु कपटी है ॥ ५४६ ॥

(५४७)

राम कहत कोढो भला, चुइ चुइ चूवत चाम।

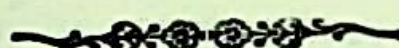
कंचन तनु किस काम की, जा मुख निकसे न राम ॥

जिसके शरीर के चर्म चू चू कर गिरता हो ऐसे राम कहने वाला कोढी पुरुष (कुष्टी) हो तो भी अच्छा है जिसके मुख से राम राम नहीं निकलता हो ऐसे कञ्चन जैसी काया वाला पुरुष किस काम का ? व्यर्थ है ॥ ५४७ ॥

(५४८)

साधुन की कुतिया भली, बुरी साकट की माय।
यह बैठी हरि जस सुनै, (वह) निन्दा करन को जाय ॥

साधु की पाली हुई कुतिया भी अच्छी है परन्तु साकट (शाक्त मांसाहारी निगुरा) की माता अच्छी नहीं। क्योंकि यह (कुतिया) बैठी बैठी हरि के यश (कथा) को सुनती रहती है। और वह (साकट की माता) साधुओं की निन्दा करने के लिये साधुओं के पास जाती है। इस लिये कुतिया अच्छी पर माता अच्छी नहीं ॥ ५४८ ॥



(५४९)

हरि सों तू मति हेत कर, कर हरिजन सों हेत।
माल मुल्क हरि देत है, हरिजन हरि ही देत ॥

हे भगवत्प्राप्ति चाहने वाले जीव! तू हरि से उतना प्रेम न कर जितना हरिजन से करता है। क्योंकि, हरि तो माल मिलकियत तथा मुल्क सब देते हैं। योग क्षेम का वहन करते हैं। सबका पालन करते हैं। परन्तु हरिजन महात्मा लोग तो हरि को ही दे देते हैं! जिसमें माल मिल्कियत और मुल्क (देश) भी आ जाते हैं। जब हरि ही मिल गये तब बाकी क्या रहा। सन्त की भक्ति में हरि-भक्ति आ जाती है ॥ ५४९ ॥



(५५०)

मेरा मन पंछी भया, उड़ि के चढ़ा अकास।
वैकुण्ठ हूं खाली पड़ा, साहेब सन्तों पास ॥

सद्गुरु कहते हैं कि, मेरा मन पक्षी हो गया। उड़कर आकाश (ब्रह्माकाश) में चढ़ गया। ब्रह्म-ध्यान में लग गया। साहेब परमात्मा ब्रह्म ध्यान करने वाले सन्तों के पास चले आए। वैकुण्ठ खाली पड़ गया। भगवान् भक्त के पास रहते हैं॥ ५५०॥

—:o:—

(५५१)

हिन्दू कहो तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पांच तत्त्व का पूतला, गैबी खेलै माहिं॥

सद्गुरु कबीर स्वामी कहते हैं कि, मुझे हिन्दू कहो तो मैं हिन्दू नहीं हूँ। मुसलमान कहो तो मुसलमान भी नहीं हूं। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पांच तत्त्व का बना हुआ शरीररूपी पुतला (मूर्ति) है। जिसमें गैबी जीवात्मा खेल रहा है। वह (जीवात्मा) न तो हिन्दू है और न मुसलमान। पशु पक्षी कीट पतंगादि भी नहीं है। किन्तु शरीर से पृथक् चेतन ब्रह्म-स्वरूप है।

इस साखी को देखकर कतिपय नवीन कबीर पन्थी लोग यह कहते हैं कि हम लोग न हिन्दू हैं और न मुसलमान। किन्तु कबीरपन्थी हैं। अर्थात् दोनों से भिन्न तीसरा कबीर पन्थी हैं केवल इतना ही नहीं किन्तु उनको कोई हिन्दू न कहे इसके लिये उन्होंने हिन्दुओं का चिह्न शिखा सूत्र को त्याग किया हैं। सो समीचीन नहीं। क्योंकि, शिखा सूत्र न रखना मुसलमान का चिन्ह है। यदि यह कहें कि, हम कण्ठी रखते हैं। मुसलमान कण्ठी नहीं रखते हैं। तो यह भी कहना ठीक नहीं। क्योंकि, कण्ठी हिन्दू का चिह्न होने से 'पुनरपि घट्टकुटी प्रभात वृतान्त' की सिद्धि होती है। क्योंकि, उनको कोई हिन्दू न कहे इसके लिये तो शिखासूत्र का त्याग किया था सो दोष तो गले पड़ा ही रहा

वस्तुतः प्रकृत साखी तृतीय कबीर पन्थी जाति प्रतिपादक नहीं। किन्तु देह से आत्मा को पृथक् प्रतिपादक है। आत्मा न तो हिन्दू है और न मुसलमान। हिन्दू और मुसलमान शरीर है। आत्मा जड शरीर से भिन्न चेतन है ॥ ५५१ ॥

—:o:—

(५५२)

एक एक निरुवारिये, जो निरुवारी जाय।
मांदर दो मुख बाजता, घना तमाचा खाय ॥

मांदर एक प्रकार का ढोलक तथा मृदंग जैसा बाजा होता है। वह दोनों तरफ बजता है। इसी लिये उसको बहुत तमाचे खाने पड़ते हैं। जब उसको थापरूप तमाचा लगता है तब वह बजता है। मनुष्य को चाहिये कि, एक एक ही बोलना चाहिये। दो दो नहीं। तब निरुवारण = निश्चय होगा। कभी कुछ कभी कुछ बोलने से निश्चय नहीं होता है। एक मुख से एक ही ईश्वर का नाम लेना चाहिये। अनेक का नहीं ॥ ५५२ ॥

—:o:—

(५५३)

नर पशु गुरु पशु वेद पशु, त्रिया पशु संसार।
कहैं कबिर सो पशु नहीं, जाके विमल विचार ॥

नर के अधीन नर पशु, बैल आदि, गुरु के अधीन गुरु पशु, अज्ञानी गुरु के अज्ञानी शिष्य, वेद के अधीन वेदपशु हिंसा करने वाला और चौथा स्त्री के अधीन स्त्रीपशु स्त्री के गुलाम, ये चार प्रकार के

पशु संसार में होते हैं। सद्गुरु कबीर स्वामी कहते हैं कि वह पुरुष पशु नहीं है जिनका विचार निर्मल है। यहां विवेकहीन अन्धश्रद्धालु को पशु कहा गया है॥ ५५३॥

—:o:—

(५५४)

चारि भुजा के भजन में, भूलि परे सब सन्त।
कबीर सुमिरे तासु को, जाके भुजा अनन्त॥

चार भुजा वाले वैकुण्ठ वासी विष्णु भगवान् के भजन में सब सन्त लोग भूले पड़े हैं। उन्हीं को शुद्ध ब्रह्म समझ कर भज रहे हैं। वस्तुतः वे उपाधिविशिष्ट एकदेशी हैं। शुद्ध व्यापक नहीं। कबीर स्वामी कहते हैं कि, मैं उनका स्मरण = भजन करता हूं जिनकी अनन्त भुजायें हैं। अनन्त भुजा वाले व्यापक विराट् ब्रह्म हैं। सगुण ब्रह्म-स्वरूप विष्णु भगवान् की उपाधि माया परिच्छिन्न (एकदेशी) होने से वे भी परिच्छिन्न ही हैं। व्यापक ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये।

पहले ५५० वीं साखी में यह कहा गया है कि, भगवान् भक्त के पास आ जाते हैं। वैकुण्ठ खाली पड़ जाता है और यहां यह कह रहे हैं कि, चार भुजा वाले विष्णु के भजन में सब सन्त भूले पड़े हैं। मैं तो अनन्त भुजा वाले को भजता हूं। अतः परस्पर दोनों साखियों में विरोध प्रतीत होता है। इसका परिहार यह है कि, भगवान् तो एक ही हैं। उनके सोपाधिक स्वरूप अनन्त हैं। वे ही जीवों पर अनुग्रह निग्रह भी करते हैं। सोपाधिक की उपासना करने वाले वैकुण्ठादि भगवद्धाम में जाते हैं। वे ही भक्तिवशभक्त के पास आते हैं। तब वैकुण्ठ खाली हो जाता है। यह ५५० वीं साखी में कहा गया है। और जो निरुपाधिक

निराकार निर्गुण विशुद्ध ब्रह्म हैं उनकी उपासना करने वाले कहीं जाते आते नहीं यहीं ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। 'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति' अर्थात् शुद्ध ब्रह्म के उपासक के प्राण लोकान्तर में नहीं जाते हैं। सोपाधिक ब्रह्म के उपासक मध्यमाधिकारी और निरुपाधिक ब्रह्म के उपासक उत्तमाधिकारी होते हैं। दोनों ब्रह्म परमात्मा हैं। अतः उनके खण्डन में तात्पर्य नहीं। चार भुजा सगुण में और अनन्त भूजा या अभुजा निर्गुण में समझना चाहिये ॥ ५५४ ॥



(५५५)

साँई इतना दीजिये, जा में कुटुम समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाय ॥

स्वल्प प्रार्थना – हे स्वामिन्! इतना अवश्य दीजिये। जिसमें कुटुम्ब समा जाय। अर्थात् जितने में कुटुम्ब का भरण पोषण होता रहे। साथ ही मैं भी भूखा न रहूँ और मेरे घर आए हुए साधु ब्राह्मण भी भूखा न जाय। गृहस्थ का धर्म है कि अपने सहित कुटुम्ब का भरण पोषण करे और आए हुए अतिथि साधु ब्राह्मण की सेवा करे। इतना ही परमात्मा से मांगे। इतना ही सञ्चय करे। इतना मात्र धन प्रतिग्रह नहीं कहा जाता है ॥ ५५५ ॥



(५५६)

मेरा मुझमें कछु नहीं, जो कछु है सो तोर ।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागत है मोर ॥

समर्पण—मेरे पास जो कुछ है उनमें से मेरा कुछ भी नहीं। जो कुछ है सो तेरा ही है। तेरा दिया हुआ तुझे सौंपने से मेरा क्या लगता है। मेरा क्या जाता है। कुछ भी नहीं॥ ५५६॥

---

(५५७)

बुरा जु देखन मैं चला, बुरा न देखा कोय।
जो घट देखा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥

मैं बुरी वस्तु को देखने चला था। अर्थात् संसार में सबसे अधिक बुरा कौन पुरुष है इसको देखने चला था। परन्तु मुझे कोई बुरा देखने में नहीं आया। जब मैंने घूम कर अपनी तरफ देखा तो मेरे से अधिक बूरा कोई नहीं दिखाई दिया। मैं ही सबसे अधिक बुरा हूँ ऐसा प्रतीत हुआ। सबसे अधिक मेरे में ही अवगुण है। ऐसा भाव यदि प्रत्येक व्यक्ति में हो तो बेड़ा पार हो सकता है। क्योंकि निरभिमान होना ही तो कल्याण का हेतु है॥ ५५७॥

---

(५५८)

साहेब से सब होत है, बंदे से कछु नाहिं।
राई से पर्वत करै, पर्वत राई माहिं॥

साहेब से=परमात्मा से सब कुछ होता है। ऐसा कोई कार्य संसार में नहीं है जो परमात्मा से न हो सके। बंदे से = जीव से कुछ भी नहीं हो सकता है। जीव से होते हुए जो कुछ कार्य देखा जाता है वह ईश्वर की सत्ता से देखा जाता है। वह परमात्मा राई से पर्वत और

पर्वत से राई कर सकता है। छोटे से बड़ा और बड़े से छोटा कर सकता है। वह कर्तुम्, अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् समर्थ है अर्थात् जिसको करना है उसको कर सकता है और जिसको न करना है उसको नहीं भी कर सकता है एवं जिसको अन्यथा करना है उनको अन्यथा भी कर सकता है। वह स्वतन्त्र है। सर्वशक्तिमान् है। सर्वव्यापक है और सर्वज्ञ है ॥ ५५८ ॥



(५५९)

कबीर जब ते जनमिया, कितै न पाया सुख।
डारि डारि में मैं फिरा, पात पात में दूख ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि, जब से जन्मा तब से कहीं सुख नहीं पाया। मैं दुःख से बचने के लिये डाल डाल में फिरा। परन्तु दुःख तो पात पात में दिखाई दिया। दुःख से बचने के लिये जहां जहां गया, दुःख आगे ही रहा। संसार दुःखरूप है। यहां सुख नहीं। संसार के प्रति वैराग्य के लिये यह वचन है ॥ ५५९ ॥



(५६०)

रे मन कछु नहि करि सका, सरा न एको काम।
दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम ॥

रे मन! तू संसार में आकर कुछ नहीं कर सका और जो कुछ किया भी तो उससे एक भी कार्य सिद्ध नहीं हुआ। तू कभी माया तरफ जाता है और कभी राम तरफ। इस प्रकार की दुविधा में तेरे दोनों चले गए न मिली माया और न राम।

दुविधा अर्थात् द्विधा। एक में दो प्रकार का ज्ञान। जैसे एक स्तम्भ (खम्भा) में 'यह स्तम्भ है या चोर' इस प्रकार का दो ज्ञान। निश्चय विना संशय दूर नहीं होता है। संशय संकल्प विकल्प आत्मक मन का धर्म है। अतः मन को सम्बोधन किया गया है। जब तक मन संशय करता रहता है तब तक एक भी कार्य सिद्ध नहीं होता है। न विषय सुख और न ब्रह्मसुख ही इसको प्राप्त होता है। मनुष्यशरीर प्राप्त करना निष्फल हो जाता है। इसलिये सद्गुरु ने इस साखी में एक निश्चयी बनने का उपदेश दिया है। गीता में भी कहा है—"संशयात्मा विनश्यति" ॥ ५६० ॥

---

(५६१)

चींटी चावल ले चली, बिच में मिल गइ दाल।
दोनों लेते ना बनै, इक ले दूजो डाल ॥

चींटी अर्थात् पिपीलिका चावल लेकर चली जा रही थी। बीच में उसको दाल मिल गई। उसके शरीर में एक चीज ले जाने की शक्ति है अतः चावल लेकर चलती है तो दाल रह जाती है और दाल लेकर चलती है तो चावल रह जाता है। इस लिये सद्गुरु कहते हैं—रे चींटी ! तुमसे दोनों ले जाते तो बनता नहीं है। एक ले और दूसरे को छोड़ दे। यहाँ कहना है मनुष्य शरीर धारी जीव को और कहते हैं चींटी को। अतः अन्योक्ति अलङ्कार है। जीव नित्य आत्म सुख लेने जा रहा है। बीच में विषय सुख मिल गया। एक ही साधन कर सकता है। विषय सुख का या आत्म सुख का। सद्गुरु कहते हैं—हे मुमुक्षुजन आप लोग आत्मसुख को ले लो और विषयसुख को छोड़ दो ॥ ५६१ ॥

मिला जिससे लगा रहूँ। अर्थात् ऐसा कोई पुरुष नहीं मिला, जो स्वयं जलता न हो और उसकी शरण में जाने से मुझे जलने से बचा सके। भाव यह है कि, संसाररूपी वन के दावानल से सब संसारी लोग जल रहे हैं। ये लोग स्वयं जल रहे हैं तो दूसरों को जलने से कैसे बचा सकते हैं ?। एक सद्गुरु कबीर ही ऐसे सत्पुरुष हैं जिनके आश्रम में जाने से जीव बच सकता है ॥ ५६६ ॥

---

(५६७)

जिन ढूँढा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठ।
मैं बौरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठ ॥

गहिरे पानी में पैठ कर जिसने ढूँढा उसने पाया। मैं पागल बूड़ने से डरा और किनारे पर बैठा रहा तो कैसे पा सकता था। मरजीवा ने गम्भीर समुद्र में डूब कर खोजा तो मूठी में रत्न लेकर आया। जो डूबने से डरा और किनारे बैठा रहा वह रत्नों से वञ्चित रहा। उसको रत्न नहीं मिला। जिसने वेद शास्त्ररूपी गम्भीर समुद्र में डूब कर अन्वेषण किया उसने ज्ञान रत्न प्राप्त किया और जिसने क्लेश जानकर शास्त्र अवलोकन नहीं किया उसको ज्ञान रत्न नहीं मिला। जिसने अन्वेषण नहीं किया उसको परमात्मा नहीं मिले ॥ ५६७ ॥

---

(५६८)

सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सरबस देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिष से कछू न लेय ॥

शिष्य तो ऐसा चाहिये कि, गुरु को सर्वस्व दे दे और गुरु तो ऐसा चाहिये कि शिष्य से कुछ भी न ले। शिष्य के पास जो कुछ द्रव्यादि

हो सो सब गुरु को अर्पण कर दे और गुरु उसको ले नहीं। किन्तु परमार्थ में लगा दे। ऐसा करने से दोनों का कल्याण होता है ॥ ५६८ ॥

---

(५६९)

गुरु लोभी सिष लालची, दोनों खेले दाव।

दोनों बूड़े बापड़े, चढि पत्थर की नाव ॥

गुरु लोभी और शिष्य लालची हो। दोनों अपना अपना दाव खेलते हों तो वे विचारे दोनों संसार सागर में लोभ और लालच रूपी पत्थर की नाव पर चढ़ कर डूब जाते हैं। जन्मते मरते रहते हैं ॥ ५६९ ॥

---

(५७०)

राम झरोखे बैठ के, सब का मुजरा लेय।

जैसी जिसकी चाकरी, तैसा तिसको देय ॥

राम=परमात्मा स्वमहिमा रूपी झरोखा के ऊपर बैठकर सबका हिसाब लेते रहते हैं। जिसको जैसी चाकरी अर्थात् जो जसा कर्म करता है उसको वैसा हो फल देते हैं ॥ ५७० ॥

—:०:—

व्यापक ब्रह्म

(५७१)

घट बढ़ काहु न देखिये, ब्रह्म सकल भरपूर।

जिन जाना तिहि निकट है, दूर कहै तिहि दूर ॥

ब्रह्म को घटने वाला और बढने वाला कभी नहीं देखना चाहिये। क्योंकि, वही ब्रह्म परिपूर्ण (व्यापक) रूप से सर्वत्र विद्यमान है। जिसने उसको जाना उसके तो वह पास है और जिसने उसको दूर कहा उससे दूर है। एकदेशी पदार्थ घटने वाला वढने वाला और समीप तथा दूर होता है। व्यापक नहीं। ब्रह्म व्यापक है। अतः उसमें घट बढ़ तथा दूर समीप नहीं ॥ ५७१ ॥



(५७२)

सबै खिलौने खाँड के, खाँड खिलौना माहिं।
तैसे सब जग ब्रह्म में, ब्रह्म जगत के माहिं ॥

लड़कों को खेलने के लिये खाँड़ के खिलौना बनाये जाते हैं। वे सब खाँड़ के कार्य होते हैं। खाँड़ उनका उपादान कारण है। उपादान कारण कार्य में अन्वित होता है यह—नियम है। अतः उपादान कारण खाँड़ उपादेय कार्य खिलौना में अन्वित होता है खाँड़ खिलौना में और खिलौना खाँड़ में हैं। वैसे ही संसार के सभी पदार्थ ब्रह्म के कार्य हैं। ब्रह्म सब का उपादान कारण है। अतः ब्रह्म संसार के सभी पदार्थ में अन्वित है। ऐसा एक भी पदार्थ नहीं जहाँ ब्रह्म न हो और ऐसा एक भी पदार्थ नहीं जो ब्रह्म में न हो। अत एव जगत् ब्रह्म में और ब्रह्म जगत् में है यह कहा गया है ॥ ५७२ ॥



(५७३)

ज्यों जग एके महल में, प्रतिमा विविध प्रकार।
कहै कबीर त्यों ही बसै, ब्रह्म मध्य संसार ॥

जैसे संसार में एक ही महल में नाना प्रकार की प्रतिमायें (मूर्त्तियाँ) रहती हैं, कबीर कहते हैं कि वैसे ही ब्रह्म में सारा संसार रहता है। जैसे मूर्त्तियों का अधिष्ठान महल है वैसे ही जगत का अधिष्ठान ब्रह्म है। दूसरा दृष्टान्त जैसे रज्जु में कल्पित सर्प का अधिष्ठान रज्जु है वैसे ही ब्रह्म में कल्पित संसार का अधिष्ठान ब्रह्म है ॥ ५७३ ॥

—:०:—

(५७४)

ज्यों मृतिका घट फेन जल, कुण्डल कनक सोआय।

त्यों कबीर जग ब्रह्म ते, भिन्न कहूं न दिखाय ॥

जैसे मृत्तिका स्वरूप घट है, जल स्वरूप फेन है, कनक स्वरूप कुण्डल है। भिन्न नहीं दिखाता है। कबीर कहते हैं कि वैसे ही ब्रह्म स्वरूप जगत् है। ब्रह्म से भिन्न जगत् कहीं नहीं दिखाई देता है। रज्जु के ज्ञान होने पर रज्जु से भिन्न सर्प नहीं दिखाई देता है वैसे ही ब्रह्म के ज्ञान होने पर ब्रह्म से भिन्न जगत नहीं दिखाई देता है। जैसे सर्पकल्पित और रज्जु परमार्थ है वैसे ही जगत् कल्पित और ब्रह्म परमार्थ है। घटादि कल्पित और मृत्तिकादि सत्य है ॥ ५७४ ॥

—:०:—

(५७५)

मोमें तोमें सरब में, जहँ देखूँ तहँ राम।

राम बिना छिन एकहुँ, सरै न एकौ काम ॥

मेरे में, तेरे में और सर्व में जहां देखो वहां राम है। राम के विना तिलमात्र जगह खाली नहीं है। राम के विना एक क्षण भी कोई कार्य

सिद्ध नहीं हो सकता है। प्रकृति तत्कार्य पञ्चमहाभूत आदि जड़वर्ग चेतन ईश्वर से अनधिष्ठित होकर कोई कार्य नहीं कर सकते हैं। अतः एक ईश्वर ही जगत् के प्रति अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। एकदेशी कोई भी पदार्थ समस्त जगत् का निमित्त या उपादान कारण बन सकता है अतः ईश्वर व्यापक है यह सिद्ध हुआ ॥ ५७५ ॥

—:o:—

(५७६)

जिनके मुख से नीकरी, मैं तैं बुरी बलाय ।
कहैं कबीर ते ब्रह्म है, सकै कौन भरमाय ॥

कबीर स्वामी कहते हैं कि जिसके मुख से 'मैं' और 'तू' इस प्रकार की बुरी बलाय निकल गई है वह ब्रह्म है। उनको फिर भ्रम में कौन डाल सकता है ? अर्थात् कोई नहीं। अज्ञान तत्कृत विकार निकलने के बाद जीव ब्रह्म रूप है। इस कथन से सद्गुरु कबीर का श्रुतिसिद्ध अद्वैत सिद्धान्त है यह निश्चय होता है। जो यह कहते हैं कि सद्गुरु कबीर का द्वैत सिद्धान्त है उन्होंने कबीर साहित्य तथा वेदादि शास्त्रों का अवलोकन नहीं किया है। ऐसा समझना चाहिये। श्रुति भी कहती है—'अयमात्मा ब्रह्म" अर्थात् यह आत्मा ब्रह्म है। 'आत्मा ब्रह्म' कहने से चलता। 'अयम्' पद अपरोक्ष जीवात्मा ब्रह्म रूप है इस अर्थ को बोधन करता है ॥ ५७६ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥



श्रीहरिवनविचरणकाव्यम्

सर्ग ४३



[श्री सहजानंदस्वामीजी ने श्रीसद्गुरु कबीर स्वामी के प्राकट्य की कथा हरिवन विचरण काव्य के पृष्ठ ६१३ से ६२० में कही हैं उसको यहाँ साभार प्रकाशित की जा रही है]

कबीरभक्ततोषार्थं कृतं श्रीशेन शोभनम् ।
चत्वारिंशे त्रयाधिक्ये कबीरस्यास्ति वर्णनम् ।। ८५ ।।

श्री कबीर के भक्त के प्रश्न को लक्ष्य करके उनके सन्तोष के लिए श्री हरि ने श्री कबीर का वर्णन किया है। उस कथा को इस ४३ वें सर्ग में कही जायगी।

श्रीवर्णी जगाद—

काशीपुर्याः समीपेऽभूत् सरोवरं सुखावहम् ।
लहरं नाम कम्रं तत् पद्ममण्डलमण्डितम् ।। १ ।।
भ्रमराणां सहस्रैश्च कारण्डवखगैर्युतम् ।
सरस्तत् स्वच्छवार्भिश्च मण्डितं नात्र संशयः ।। २ ।।
सुधासमं सुमिष्टं च जलं तस्यातिशोभनम् ।
शीतोदकं च पातुं वै तत्रागच्छन्ति पक्षिणः ।। ३ ।।

श्री हरि ने कहा—प्रसिद्ध काशीपुरी के पास एक सुखदायी सरोवर है, जिसका नाम "लहर" है वह मनोहर एवं कमलों से सुशोभित है,

यह सरोवर हजारों भ्रमरों से एवं वगूले इत्यादि पक्षियों से युक्त है। और निर्मल जल से सुशोभित है इसमें कोई संशय नहीं। इस सरोवर के अमृत समान मधुर. स्वच्छ, शीतल जल को पीने के लिये पक्षी गण वहाँ आते हैं ॥ २–३ ॥

मानुषा मनुजश्रेष्ठाः पशुपंक्तिश्च भक्तितः।
जम्बूप्लक्षरसालानां वृक्षास्तीरे तथोत्तमाः ॥ ४ ॥
स्वशैत्येनात्र संस्थानां तेने शान्ति सुखं तथा।
सरो ह्यासीन् महत् तत्र भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ५ ॥

उच्चकोटि के मनुष्य पशु-पक्षी इत्यादि प्रेमपूर्वक जल पीने के लिये वहाँ आते थे, उस सरोवर के किनारे जामुन पीपल, आम्र, वृक्ष सुशोभित थे। यह सरोवर अपनी शीतलता से प्राणी मात्र को भुक्ति मुक्ति का सुख प्रदान करता था ॥ ४–५ ॥

पवित्रे भारते वर्षे धर्मस्यासीन् महाक्षतिः।
महाजनः परोऽन्यस्मै दुःखं दातुं समुद्यतः ॥ ६ ॥

पवित्र इस भारतवर्ष में धर्म का बहुत ह्रास हो रहा था, मनुष्य एक दूसरे को दुःख देने में लगा हुआ था ॥ ६ ॥

ततस्तान् रक्षितु सम्यक् तत्त्वं दातुं सदा मुदा।
एकस्मिन् दिवसे चात्र सर्वश्रेष्ठे सरोवरे।
पद्मपत्रे सुखाधारे ददृशे चैकबालकः ॥ ७ ॥

उन दुखिओं की रक्षा करने के लिये एवं प्रसन्नतापूर्वक तत्त्वज्ञान का उपदेश देने के लिये यहाँ एक दिन इस सर्वश्रेष्ठ सरोवर में सुखदायी कमलपत्र में एक बालक दिखायी पड़ा ॥ ७ ॥

नीमा नीरुश्च दृष्ट्वैव बालं तं मोदमापतुः ।
नीतोऽसौ स्वगृहं ताभ्यां वर्धितश्च सुखावहः ॥ ८ ॥

निमा और नीरू ने उस बालक को देखते ही प्रसन्नता का अनुभव किया और उस बालक को अपने घर ले गये और उसका पालन पोषण करने लगे ॥ ८ ॥

कबीरनामको बालो दिव्यतेजोविराजितः ।
लोकानामुपकाराय सर्वेषां बोधमावहत् ॥ ९ ॥
महात्मायं महान् आसीद् रामानन्दस्य शिष्यकः ।
दीक्षां धृत्वा सुसाधूनां कल्याणमकरोदसौ ॥ १० ॥

दिव्य तेज से देदीप्यमान् कबीर नाम का यह बालक लोगों के उपकार के लिये सबको ज्ञान की बातें कहने लगा। यह बालक एक बहुत बड़ा सन्त था। गुरु रामानन्द से दीक्षा लेकर उसका शिष्य हुआ और वह साधु पुरुषों का कल्याण करने लगा ॥ ९–१० ॥

यवना हिन्दवश्चैव सर्वे मानवजातिकाः ।
विरोधं च विहायैव भ्रातृभावेन चेत् सदा ॥ ११ ॥
वर्तेरन् विभवैः सार्धं भवेद् देशोन्नतिः शुभा ।
इत्येवं स प्रयत्नेन प्रचचारात्र भारते ॥ १२ ॥

हिन्दु, मुसलमान, सब जाति के लोग परस्पर के विवाद विरोध को दूरकर भाईचारा के साथ रहने लगे तो भारत का अभ्युदय और भारत में समृद्धि, सुख शान्ति बढ़े, इस प्रकार का वे इस भारत वर्ष में प्रयत्नपूर्वक प्रचार करने लगे ॥ ११–१२ ॥

कर्तव्या चेशभक्तिर्वै भजनं शुभभावुकम् ।
चेतनोऽयमसावात्मा ध्यानं तस्य शुभं मतम् ॥ १३ ॥

भगवान का भजन करना, शुभ भावना रखना, यह आत्मा चेतन है इसी का ध्यान करने से शुभ फल मिलता है । यहीं उनका मत था ॥१३॥

एकदा श्रीजगन्नाथमन्दिरे पक्वमोदनम् ।
दग्धं जातं शरीरं स्वं पाचको दुःखितोऽभवत् ॥ १४ ॥
कबीरोऽसौ सुकाश्यां वै वीरसिंहस्य राजके ।
तिष्ठन् स्वपादयोः पृक्तं जलं स्वदः सुखं गतः ॥ १५ ॥

एक समय जगन्नाथ के मन्दिर में भोजन पकाते समय एक भंडारी जल गया । उसके शरीर में पीड़ा होने लगी । उसी समय वाराणसी में वीर सिंह राजा की सभा में महात्मा कबीर बैठे हुए थे । उन्होंने अपने पैर पर पानी छिंटका और जगन्नाथजी के जले हुए पाचक को जलन की जो पीड़ा थी वह दूर हो गई ॥ १४–१५ ॥

तत्त्वाजीवाख्यभक्तो द्वौ साधुसेवाकृते रतौ ।
कोऽपि साधुर्गृहे तस्य समागच्छेत् सुसेवकौ ॥ १६ ॥
वारिणांघ्रिं समाक्षाल्य शुष्कारोपितकाष्ठके ।
तज्जलं सेचितं कृत्वा काष्ठं ददृशतुर्मुदा ॥ १७ ॥
पादाम्बुसेचनेनार्द्रं भवेत् पल्लवितं यदा ।
तमेव गुरुदेवं च मन्यावहे न चान्यथा ॥ १८ ॥

तत्त्वा और जीवा नाम के दो भक्त थे । वे साधु सन्तो को मानते थे और अपने घर आये हुये साधु सन्तों की सेवा में तत्पर रहते थे । सन्तों

के चरणों को पानी से धोकर उस पानी को सुखे हुए खूट (स्थाणु) लकड़ी पर डाल देते थे और इसी प्रतीक्षा में रहते थे कि जिस सन्त के चरणोदक से यह खूट हरा भरा हो जायेगा उस सन्त को हम गुरु मानेंगे दूसरे को नहीं ॥ १६-१७-१८ ॥

एकदा श्रीकबीरोऽसौ भ्रमन्नागतवान् स्वयम् ।
ताभ्यां चरणयोस्तस्य क्षालनं कृतमार्तिहा ॥ १९ ॥
तज्जलेन वटस्यासौ वृक्षः पल्लवितस्तथा ।
कबीरवृक्ष इत्येतां ख्यातिं नाम्ना गतः सदा ॥ २० ॥

एक बार घूमते-घूमते सन्त कबीर वहाँ आ पहुचे। उन भक्तों ने कबीर का पादप्रक्षालन किया और उस जल को उस खूट पर छोड़ दिया। वह खूट हरा भरा पेड़ बन गया और आज वह "कबीर वड़" के नाम से प्रसिद्ध है ॥ १९-२० ॥

इत्येवं स चमत्कारं दर्शयित्वा गतस्ततः ।
तौ कबीरं गुरुं मत्वा चेरतुर्मोदतां सदा ।
चमत्कारास्तथा चान्ये सन्त्यनेके सुविस्तराः ॥ २१ ॥

इस प्रकार के चमत्कार को दिखाकर सन्त कबीर वहाँ से चले गये। तत्त्वा और जीवा ने श्रीकबीर को गुरु माना और गुरु मानकर उनके उपदेश पर चलने से सुखी हुये। इसी प्रकार के अनेक चमत्कार कबीर ने स्थान स्थान पर दिखाये हैं ॥ २१ ॥

स योगेन शुभां कीर्तिमवाप्य साधुतापदम् ।
सर्वदः सुखदोऽप्यासीद्द धर्मज्ञानरतस्तथा ॥ २२ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं तथा शुभम् ।
दया सर्वत्र कर्तव्या चेति देशनता कृता ॥ २३ ॥

कबीर सन्तों के सम्पर्क से शुभकीर्ति एवं साधुता को प्राप्त हुए। वह सबको सुख देनेवाले एवं धर्म तथा ज्ञान में ही सदा लगे रहते थे। अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, सत्कर्म, प्राणिमात्र पर दया करना ये इनकी आज्ञा थी ॥ २२-२३ ॥

कृत्वेदं निजकर्तव्यं मानुषान् प्रेम दर्शयन् ।
धर्मैक्यं चातिसंदर्श्याऽदृश्यो मगहरे स्थले ॥ २४ ॥

अपना कर्तव्य पालन करते हुये, मनुष्यों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हुये एवं धर्म की एकता दिखाकर वे "मगहर" नाम के स्थान में अन्तर्धान हो गये ॥ २४ ॥

अन्तर्ध्यानं गतो यत्र कबीरो लोकवत्सलः ।
मृतं देहं समादातुमायाता हिन्दुमुस्लिमाः ॥ २५ ॥

अग्निदाहस्तथाहोस्वित् पृथ्वीखनननिक्षिपः ।
किंकार्यमिति तौ शिष्यौ चर्चायां पतितौ तदा ॥ २६ ॥

लोकवत्सल कबीर जिस स्थल में अदृश्य हो गये उनके मृतदेह को हिन्दू एवं मुसलमान लेने को आये और दोनों परस्पर वादविवाद करने लगे कि कबीर के शरीर को जलाया जाय या पृथ्वी में गाड़ दिया जाय ॥ २५-२६ ॥

देहस्याच्छादकं वस्त्रं दूरीकृत्यावलोकितम् ।
पुष्पाणां चयकं दृष्ट्वा गुरोर्हि गुरुता मता ॥ २७ ॥

उनके शरीर पर ढके हुवे वस्त्र को दूर कर जब उन लोगोने देखा तो शरीर के स्थान पर पुष्पों का ढेर नजर आया और इससे गुरु की गुरुता का महत्त्व उन लोगो ने माना ॥ २७ ॥

भक्तिमार्गं जनान् सर्वान् दर्शयित्वा दिवं गतः ।
भारतेऽस्मिन् महादेशे सन्तः सन्ति परार्थकाः ॥ २८ ॥

सब मनुष्यों को भक्तिज्ञान का उपदेश देकर वह महात्मा स्वर्ग चला गया। इस भारत नाम के महान देश में परोपकारी बहुत से सन्त हो हो गये हैं और हैं ॥ २८ ॥

इत्येवं वै कबीरस्य वार्तां श्रुत्वा ततोऽथ च ।
भक्तोह्यभूत् प्रसन्नात्मा श्रीहरेः पादयोर्नतः ॥ २९ ॥

कबीर का भक्त इस प्रकार श्री हरिमुख से कबीर की जन्मकथा सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और श्री हरि के चरणों में गिर पड़ा ।२९।

कथा च सत्कबीरस्य कृता येन सुखप्रदा ।
नीलकंठः सदा पातु नम्रं मां भक्तिभावतः ॥ ८६ ॥

सुखदेने वाली संत कबीर की सत्कथा जिस श्रीहरि ने कहीं वह नीलकंठ भक्ति भाव से भरे हुवे मेरी सदा रक्षा करें ॥ ८६ ॥

इति श्रीस्वामिनारायणभगवच्छिष्यब्रह्मानन्दस्वामिशिष्यपरंपरागत-
श्रीगोपालचरणदासशास्त्रिविरचिते श्रीहरिवनविचरणकाव्ये
त्रिचत्वारिंशः सर्गः ।

—:o:—

❀ ॐ सोऽहम् ❀

❀ संकलन ❀

[श्री सद्‌गुरु कबीर स्वामी के अप्रतिम प्रभाव को प्रदर्शित करने वाले काव्य एवं सदगुरु की अदमुत ज्ञानशक्ति के लिए प्राचीन अर्वाचीन महापुरुषो ने जिस जिस अभिप्राय को व्यक्त किया है उनका यहां संकलन किया गया है। गत ५०० वर्ष की लम्बी अवधि में अनेक विद्वानो ने एवं इतिहासकारों ने भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से सद्‌गुरु की महत्ता का मूल्यांकन किया है, जिज्ञासु पाठको के लिए इसका यहां यत्किंचित् दिग्दर्शन कराया गया है। उन उन विद्वान आलोचको के आंशिक विचारमात्र यहां दिया गया है। ये विचार या उल्लेख अपने मत से विरुद्ध हो उसका उत्तरदायित्व उन उन लेखकों पर है। इस पुस्तक के अनुवादकर्ता एवं प्रकाशक को ये विचार मान्य है एवं इसके लिए अनुवादकर्ता एवं प्रकाशक उत्तरदायी हैं ऐसा मानने की कोई कृपा न करें]

प्रस्तुत लेखों के लेखक

श्रीमद्‌नाभादास जी महाराज (सं० १६४२ वि०) के उद्‌गार

कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षटदरसनी ॥
भक्ति बिमुख जो धर्म ताहि अधरम करि गायो।
जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो ॥
हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी शब्दी साखी।
पच्छपात नहिं वचन सबहि के हित की भाखी ॥
आरूढ़ दशा ह्वै जगत पर मुख देखो नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नही वर्णाश्रम षटदरसनी ॥

(भक्तमाल)

प्रसिद्ध इतिहासकार श्रीयुत पण्डित सुन्दरलालजी के विचार

कबीर की गणना निस्सन्देह भारत के महान से महान तत्वदर्शियों, धर्माचार्यों और समाज सुधारकों में की जानी चाहिये। कबीर एक अत्यन्त स्वतन्त्र विचारों के महापुरुष थे। वह मत-मतान्तरों के भेद और हर तरह के कर्मकाण्ड और रूढ़ियों के कट्टर विरोधी थे। इस देश के अन्दर हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता के वह सबसे पहले प्रचारक और सबसे महान समर्थक थे।.......

कबीर के विचार इतने स्वतन्त्र थे कि शुरू में मुसलमान मौलवी और हिन्दू पण्डित दोनों उनसे बेहद नाराज हुए। इन लोगों ने हर तरह से कबीर को कष्ट पहुँचाने और परेशान करने की कोशिश की। अन्त में हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों में कबीर के हजारों अनुयायी हो गए।.......

कबीर हिन्दुओं के वर्णाश्रम धर्म या जातिभेद के कट्टर विरोधी थे। वेदों, शास्त्रों या कुरान में से किसी को भी वह निर्भ्रान्त या हर बात में प्रमाण न मानते थे।

कबीर ने हिन्दूमत और इस्लाम दोनों में से सामान्य सचाइयों को एक समान ग्रहण किया। संस्कृत और फारसी उर्दू और हिन्दी चारों भाषाओं के शब्दों का अपने पद्यों में उन्होंने एक समान उपयोग किया।

कबीर पहले भारतवासी हैं, जिन्होंने हिन्दू और मुसलमानों दोनों के लिये, बल्कि सारी मानव जाति के लिये एक सामान्य धर्म का निर्भीकता के साथ उपदेश दिया।

मुगल साम्राज्य के दिनों में कबीर के विचार बराबर फैलते गए, यहाँ तक की दूरदर्शी सम्राट् अकबर ने 'दीने इलाही' के रूप में उन्हें सर्व स्वीकृत कराने की कोशिश की। वास्तव में कबीर ही अकबर के मानसिक पिता थे। विधि ने देश के भीतर तथा भारत की परिस्थिति ने कबीर और अकबर को पूरी तरह सफल न होने दिया, किन्तु भारत की आत्मा भीतर से पुकार

रही है— यदि सत्य है तो यही है, और यदि भविष्य के लिये कोई मार्ग है तो केवल यही है।

कबीर के विचारों की मौलिकता और महानता के कारण कबीर के समय से फिर एक बार उत्तर भारत ने धार्मिक विचारों के मैदान में सारे भारत का नेतृत्व अपने हाथ में लिया और कबीर ही के विचार अनेक सन्तों और महात्माओं द्वारा एक बार उत्तर से दक्षिण तक समस्त भारत में फैलने लगे। (भारत में अंग्रेजी राज्य : मानव धर्म)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय : हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० श्रीयुत हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार

कबीर धर्मगुरु थे। इसलिये उनकी वाणियों का आध्यात्मिक रस ही आस्वाद्य होना चाहिये, परन्तु, विद्वानों ने नाना रूप में उन वाणियों का अध्ययन और उपयोग किया है। काव्यरूप में उसे आस्वादन करने की तो प्रथा ही चल पड़ी है। समाजसुधारक के रूप में, सर्वधर्म समन्वयकारी के रूप में और वेदान्त-व्याख्याता दार्शनिक के रूप में भी उनकी चर्चा कम नहीं हुई है। यों तो 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता, विविध भांति गावहिं श्रुति सन्ता' के अनुसार कबीर-कथित हरि कथा का विविध रूप में उपयोग होना स्वाभाविक ही है, पर कभी-कभी उत्साहपरायण विद्वान् गलती से कबीर को इन्हीं रूपों में से किसी एक का प्रतिनिधि समझकर ऐसी-ऐसी बातें करने लगते हैं जो असंगत कही जा सकती हैं।

भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है,–बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामनें लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके।······वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य-रसिक काव्यानन्द का

आस्वाद करानेवाला समझें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। फिर व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में भी कबीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। पंडित और काजी, अवधू और जोगिया, मुल्ला और मौलवी सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते हैं। अत्यन्त सीधी भाषा में वे ऐसी गहरी चोट करते हैं कि चोट खानेवाला केवल धूल झाड़ के चल देने के सिवा और कोई रास्ता ही नहीं पाता। इस प्रकार यद्यपि कबीर ने कहीं काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की तथापि उनकी आध्यात्मिक रसकी गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है।

हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वन्द्वी जानता है, तुलसीदास। परन्तु तुलसीदास और कबीर के व्यक्तित्व में बड़ा अन्तर था।··· मस्ती फक्कड़ाना स्वभाव और सब कुछ को झाड़-फटकार कर चल देने वाले तेज ने कबीर को हिन्दी साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है। उनकी वाणियों में सब कुछ को छा कर उनका सर्वजयी व्यक्तित्व विराजता रहता है। उसी ने कबीर की वाणियों में अनन्य-साधारण जीवन-रस भर दिया है। कबीर की वाणी का अनुकरण नहीं हो सकता। अनुकरण करने की सभी चेष्टायें व्यर्थ सिद्ध हुई हैं। इसी व्यक्तित्व के कारण कबीर की उक्तियाँ श्रोता को बलपूर्वक आकृष्ट करती हैं। इसी व्यक्तित्व के आकर्षण को सहृदय समालोचक सँभाल नहीं पाता और रीझ कर कबीर को 'कवि' कहने में सन्तोष पाता है। ऐसे आकर्षक वक्ता को 'कवि' न कहा जाय तो और कहा क्या जाय? परन्तु यह भूल नहीं जाना चाहिये कि यह कवि रूप घलुए में मिली हुई वस्तु है। कबीर ने कविता लिखने की प्रतिज्ञा करके अपनी बातें नहीं कही थीं। उनकी छन्दयोजना, उक्तिवैचित्र्य और अलंकार-विधान पूर्णरूप से स्वाभाविक और अयत्नसाधित हैं।

(कबीर, पृ० २१६-२१७)

युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और एक वाक्य में उनके व्यक्तित्व को कहा जा सकता है, वे सिर से पैर तक मस्तमौला थे—वेपरवाह, दृढ़, उग्र, कुसुमादपि कोमल, वज्रादपि कठोर। (कबीर,पृ०१६६)

श्रीयुत डा० श्याम सुन्दरदास जी के विचार

"कबीर पहुँचे हुए ज्ञानी थे। उनका ज्ञान पोथियों से चुराई हुई सामग्री नहीं था और न वह सुनी-सुनायी बातों का बेमेल भण्डार ही था।"

"जैसे कबीर का जीवन संसार से ऊपर उठा था, वैसे ही उनका काव्य भी साधारण कोटि से ऊँचा था।"

"पर साथ ही कबीर में प्रतिभा थी, मौलिकता थी, उन्हें कुछ सन्देशा देना था और उसके लिये शब्द की मात्रा गिनने की आवश्यकता न थी। उन्हें तो इस ढंग से अपनी बातें कहने की आवश्यकता थी जो सुनने वालों के हृदयों में पैठ जायँ और पैठ कर जम जायँ। तिस पर वह हिन्दी कविता के आरम्भ के दिन थे। (भूमिका: कबीर ग्रन्थावली)

श्रीयुत भगवानदीन जी लिखते हैं—

"श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलना हो गया। बातों-बातों में संस्कृत की चर्चा चल पड़ी। वह बोले 'हम बंगालियों ने तो संस्कृत इसलिये अपनाई कि हमारे पास शब्द नहीं थे। आध्यात्म के लिये जितने शब्द चाहिये, उतने शब्द बंगला भाषा नहीं दे सकती। पर तुमने कबीर जैसे संत के रहते संस्कृत क्यों अपनाई? कबीर ने तो हिन्दी भाषा में अध्यात्म की सभी बातें लिख दीं और सारी शब्दावली तुम्हें देदी।

(सरिता पत्रिका, सितम्बर १९५९, पृ० १०)

श्रीयुत डा० पीताम्बर बड़थ्वाल जी के विचार

अपनी सन् १९३५ ई० की हरिजन-यात्रा में जब महात्मा गाँधी काशी पहुँचे थे, तब कबीर मठ में उनसे यह सुनकर कि मेरी माता कबीरपन्थी थीं,

उपस्थित जन समुदाय को विस्मय-सा हुआ था, परन्तु जो लोग महात्मा गाँधी और कबीर की विचार धारा से परिचत हैं, उनके लिये उसमें विस्मय की कोई बात नहीं, क्योंकि वे जानते हैं कि उन दोनों में कितना अधिक साम्य है। उनके लिये तो आश्चर्य की बात यही है कि लोग महात्मा गाँधी की विचारधारा का मूलस्रोत ढूढ़ने के लिये रूस, इंगलिस्तान और अमरीका जाते हैं। गाँधी के निर्माण में टाल्स्टाय[1], रस्किन और सम्भवत: लायड गैरिसन आदि के विचारों का भी हाथ रहा है सही, पर गौण रूप में। गाँधीत्व की गंगा का गोमुख मूलत: कबीर की शिक्षाओं में है, जिन्हें उन्होंने माता के दुग्ध के साथ पान किया था और जो इसी कारण उनकी नस-नस में व्याप्त है। टाल्स्टाय आदि के विचार तो उनके हृदय में सोती हुई उस चिनगारी को सुलगाने मात्र में कारण रूप हुए हैं, जिसे उन्होंने अपनी माता के द्वारा कबीर से आध्यात्मिक दाय में प्राप्त किया था।

* * *

उसके दर्शन ने उनको सत्य का सबसे बड़ा समर्थक बनाया था। कबीर की ही भाँति उनके सत्य की सहानुभूति के प्रकाश में ही वे जगत् की सब बातों को देखना चाहते थे। उनके लिये कार्याकार्य का वही एक मापदण्ड था, अपने प्रत्येक कार्य के लिये उसी की अनुज्ञा चाहते थे। उसी के भीतरी शब्द की ओर वे हमेशा अपने कान लगाये रहते थे और उसी के आदेश के अनुसार आचरण करने का प्रयत्न करते थे, फिर चाहे ऐसा करने में 'सारी दुनिया के विरुद्ध जाना पड़े। इसी अभिप्राय से कबीर अपने को सत्यनाम का उपासक और गांधी अपने जीवन को सत्य के प्रयोग कहते थे।

* * *

१—टाल्स्टाय रूसी उपन्यास-लेखक तथा समाज सुधारक, इसका जीवन काल १८२८–१९१० है।

रस्किन—अंग्रेज आलोचक और लेखक। समय १८१९–१९००।

विलियम लाइड गैरिन—अमेरिकन सम्पादक, जिसने दासप्रथा का भयंकर विरोध किया। समय १८०५–१८७९।

गाँधी और कबीर दोनों कथनी और करनी में पूर्ण साम्य के समर्थक हैं। जो कहते हैं वही करते भी हैं। वे मन, वचन और कर्म सबमें सामंजस्य बनाये रखते हैं। जीवन की वह शुद्धता, जिसको वे लक्ष्य करते हैं, वाणी तक ही सीमित नहीं, वे उसे कर दिखाते हैं। यही कारण है कि उनके विरोधी को भी उनकी सत्यता में अविश्वास नहीं होता और यही कारण है कि जगत् के कोने-कोने में उनकी सत्य प्रसारक वाणी श्रद्धा के साथ सुनी जाती है।

* * *

इस प्रकार गांधी जी के हरिजन आन्दोलन का आरम्भ कबीर ही ने कर दिया था। कबीर के लिये हरिजन होने से बढ़कर जाति नहीं—"हरिजन सवीं न जाति"। इसीलिये शूद्रों को उन्होंने हरिजन बनने का आदेश दिया। गाँधी भी उन्हें हरिजन कहकर यही जता रहे हैं कि हरिजन का पद सब जातियों से ऊपर है। पर कबीर ने हरिजन शब्द को शूद्र का पर्याय नहीं बनाया है। सब शूद्रों को हरिजन न कहते हुए भी उन्होंने शूद्रों को नीच समझने के लिये हिन्दुओं को खूब फटकारा है।

(गाँधीं और कबीर)

श्रीयुत राजनाथ शर्मा एम० ए० के विचार

हिन्दीं साहित्य और हिन्दू समाज में कबीर 'जागरण युग' के अग्रदूत माने जाते हैं। आज कबीर जनता के हृदय में व्यक्ति के रूप में नहीं, प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।······शुद्ध मानव-प्रेमी होने के कारण इन्होंने निर्भय होकर धार्मिक और सामाजिक विषमताओं पर निर्मम प्रहार किये। बुराइयों की कटु-आलोचना कर सद्गुणों का उपदेश दिया।···कबीर के पदों का रवि बाबू का अनुवाद भूमिका के रूप में उनकी कबीर के प्रति श्रद्धांजलि तथा विदेशी साहित्य महारथियों-द्वारा उनकी प्रशंसा कबीर को विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में बैठाने वाली है।···साहित्य में शक्ति, शील, सौंदर्य को अपना आलोचनात्मक मानदण्ड मान कर चलने वाले आलोचक आचार्य शुक्ल से, हिन्दी साहित्य में अपनी प्रखर प्रतिभा की धाक मनवाने वाले एकमात्र

कबीर ही ऐसे हैं, जिनकी शुक्ल जी ने विरोध करते हुए भी प्रशंसा की है। यह कबीर की सबसे बड़ी विजय है।……हिन्दू-मुसलिम ऐक्य की जो विचारधारा आज इतनी प्रबल हो उठी है उसके मूल प्रवर्तक कबीर ही थे।

कबीर युगद्रष्टा थे। अपने समय के सम्पूर्ण गतिविधियों पर उनकी नजर रहती थी। गाँधी आधुनिक युग के द्रष्टा थे। युगद्रष्टा शाश्वतकाल से विषमताओं का खण्डन कर मानवता का प्रचार करते आये हैं। कबीर गाँधी की तुलना और उनकी समान भावनाओं का विश्लेषण यह सिद्ध कर देगा कि गांधी के समान कबीर भी अपने समय की जनता के एकमात्र प्रतिनिधि और पथ-प्रदर्शक थे। महात्मा गांधी की माँ कबीरपन्थी थीं। गांधी जी पर उनकी शिक्षा का बहुत प्रभाव पड़ा। (साहित्यिक निबन्ध)

गोरखपुर से निकलते हुए समाचार-पत्र "पूर्वी टाइम्स" के सम्पादकों ने जून १९६६ ई० में "कबीर-अंक" नाम का एक विशेषांक निकाला था। उसमें आये हुए कुछ वरिष्ठ लेखकों के लेखों के आंशिक उद्धरण अविकल रूप से दिये जाते हैं, जो विचारणीय और मननीय हैं।

उपर्युक्त पत्रिका के प्रधान सम्पादक श्री जकीसाहब हैं, अब आप उसे बन्द करके 'पूर्वी सन्देश' का संचालन तथा सम्पादन करते हैं। आपकी सहर्ष अनुमति से प्रस्तुत लेख यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। आपके इस सौजन्य का मैं आभारी हूँ। —संकलनकर्ता

प्रधान सम्पादक श्रीयुत मुहम्मद जकी के विचार

……इस शताब्दी में पंडित सुन्दरलाल, डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी और दूसरे कई विद्वानों ने कबीर की फिर से खोज करने या उनके पुनर्मूल्यांकन के प्रयास किये हैं और उनकी महानता को एक स्वर में स्वीकार किया है लेकिन इन सबके प्रयास कबीर के पुनर्मूल्यांकन की दिशा में प्रारम्भिक कड़ीमात्र हैं और सम्भवतः इसीलिये बहुत आगे न पहुँचकर स्वाभाविक रूप से समाज सुधार और रहस्यवाद की चादर में लिपटे हुए

से हैं। कबीर के वास्तविक क्रान्तिकारी विचारों का पुनर्मूल्यांकन तो अभी भी होना बाकी है जो कि श्री रघुपति सहाय "फ़िराक गोरखपुरी" के अनुसार आने वाले भारत के आदर्श और स्वप्न हैं।…… (क० अं०)

प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत यशपाल महोदय के विचार

…विभिन्न साम्प्रदायिक विश्वासों में जकड़े हुए हमारे देश की प्रवृत्तियों और संस्कारों पर अनेक संतों का गहरा प्रभाव पड़ा है। हमारे अधिकांश संतों ने अपने-अपने क्षेत्रों में मानव समाज व्यवस्था की इमारत को श्रद्धा भक्ति की चट्टानों पर रूढ़ियों और विश्वासों की दीवारों से सुरक्षित और अभेद्य बनाने का यत्न किया है। इन संतों ने प्रायः ही मनुष्य को सोचने की अपेक्षा विश्वास करने का उपदेश दिया है। कबीर ही ऐसे संत थे जिन्होंने मानव समाज व्यवस्था की इमारत की रूढ़ियों, संस्कारों और विश्वासों की दीवारों में जिज्ञासा और तर्क के झरोखे खोलकर मानव के विचार को गति की प्रेरणा देकर आत्मनिर्भरता से विकसित होने का उत्साह दिया है। यदि हमारे समाज पर कबीर का प्रभाव अधिक व्यापक और गहरा पड़ा होता, यदि हमारे देश के समाज में जिज्ञासा से तर्क द्वारा आत्मनिर्भर चिंतन की प्रवृत्ति सबल हो सकती तो शायद इस भूखण्ड का भूगोल इस प्रकार न बदला होता और हमारे समाज के बहुजन वर्तमान की अपेक्षा मानसिक रूप से अधिक विकसित और बेहतर इन्सान हो सकते। (क० अं०)

सोवियत (रूस) वासी "श्रीयुत ई० चेलीशेव, डी० लिट० महोदय" के विचार

आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व सर्व प्रथम सोवियत के विद्वान अध्यापक ए० पी० बरान्निकोव ने, जिन्होंने आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य को जनप्रिय बनाया, मध्ययुग के महान भारतीय कवि कबीर का अध्ययन प्रारम्भ किया था। ए० पी० बरान्निकोव ने कबीर के काव्य का पहला संक्षिप्त

मूल्यांकन लल्लू जी लाल के 'प्रेम सागर' की भूमिका में किया था, जिसे सोवियत संघ ने १९३७ में प्रकाशित किया था।

कबीर के ग्रन्थों का विस्तृत और सांगोपांग अध्ययन तो यहाँ विशेष रूप से इस दशक में हुआ है। जब सोवियत संघ और भारत के बीच सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक सहयोग का बहुत अधिक विस्तार हुआ।

कबीर की आश्चर्यचकित कर देने वाली कवितायें, यद्यपि आज से पाँच शताब्दी पहले लिखी गयी थीं, उनमें एक समसामयिक गूँज है। वे भारत की प्रगतिशील शक्तियों द्वारा साहित्य और कला में उच्चस्तरीय प्रवृत्तियों का पोषण करने के संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

...सोवियत पाठकों को कबीर के काव्य की निधि मुख्य रूप से सुन्दर ग्रन्थ "बीजक" से अवगत कराने का निश्चय किया गया है।

सबसे बड़े सोवियत प्रकाशन गृह, मास्कोस्थित गल्प और कविता के राजप्रकाशन गृह, ने १९६५ में 'गीत काव्य कोष' सीरिज के अन्तर्गत कबीर की कविताओं के अनुवाद का एक सुरुचिपूर्ण संग्रह प्रकाशित किया था। इसके अनुवादक एस० लिप्किन नामक कवि थे।.......

कबीर की कविता की मुख्य विशेषता भाषागत साधनों के उपयोग में अधिक से अधिक मितव्ययिता है। लेकिन, देखने में सरल और संक्षिप्त होते हुए भी उनकी कविताओं में गहरी दार्शनिकता है। अनुवादकों ने कवि के कृतित्व की इस विशेषता को सावधानी के साथ सुरक्षित रखा है। रूसी पाठकों के लाभार्थ उन्होंने कविताओं के अनुकरणीय संगीत और विशिष्ट भावनात्मक तत्त्व को भी बचाये रखा है।...

कबीर का काव्य भारत की मिट्टी पर उपजा और बढ़ा। वह जनमानस एवं मध्यकालीन भारत की सम्पूर्ण संस्कृति में भक्ति आंदोलन के प्रभाव के अन्तर्गत होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तनों को प्रतिबिंबित करता है।...

कबीर कहते हैं :—काबा में, मक्का में, मस्जिदों में, हिन्दू के मन्दिरों में कहीं ईश्वर नहीं है। और वह पुकार लगाते हैं कि 'उसके लिये ईश्वर का

कोई उपयोग नहीं जिसका हृदय सत्य से खाली पड़ा हुआ हो।' सच्ची पवित्रता एवं शुद्धता न मस्जिदों और मन्दिरों में बसती है और न वेदों, अथवा कुरान में। वह मनुष्य में व्याप्त है, उसके पार्थिव जीवन में उसकी स्वार्थहीनता, दयालुता, ईमानदारी और सच्चाई में। इसलिये, सामूहिक प्रार्थनाओं, तीर्थयात्राओं और देवताओं की निरर्थक पूजा में समय वरबाद न करो। मनुष्य की ओर अपनी निगाह घुमाओ, सत्य की खोज में उसकी सहायता करो। और उसे दिखाओ कि सच्चा सौंदर्य और आनन्द कहाँ हैं।....

महान कवीर की साहित्य परम्परा, शीघ्र ही सोवियत वासियों की पहुँच में लायी जायेगी और इस प्रकार भारतीय संस्कृति के एक और चमकदार पृष्ठ से उनका परिचय होगा। (क० अं०)

सोवियतवासी "एस० आई लिप्किन" द्वारा मास्को से भारत (पूर्वीटाइम्स गोरखपुर) को भेजे गये एक पत्र का अंश

...कवि अनुवादक के लिये इससे अधिक प्रसन्नता की बात नहीं हो सकती कि मूल के देश वासियों का स्वीकारात्मक समर्थन उसे मिले। कवीर काव्य को रूसी भाषा में रूपान्तरित करने के हमारे विनम्र प्रयत्न को आपके प्रेममय सम्बन्ध से मुझे और मेरे सहयोगियों को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

समकालीन रूप से दूर के युग और वातावरण में उत्पन्न कविता का अनुवाद स्वभावतः कठिन था। संयोग की बात यह थी कि कवीर की अमर काव्यात्मक चिन्ता के प्रति मेरे मन में निरन्तर सच्ची प्रेरणा बनी हुई थी। प्रसिद्ध भारतीय भाषाविद ई० रविनेविच और ई० सेरेब्रेयाकोव ने अपने मूल्यवान परामर्श से हमारी बड़ी सहायता की। मुझे यह लिखते हुए हार्दिक प्रसन्नता है कि हमारे वयोवृद्ध लेखक, आलोचक एवं कवि ने अपने पत्र में मुझे कवीर के विषय में लिखा :—"मैं चकित रह गया यह देखकर कि अब से लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व अर्थात् १५ वीं शताब्दी में ऐसी स्वतंत्र व्यापक प्रतिभा का उद्भव हुआ था।"

आप यह जानकर प्रसन्न होंगे कि कबीर काव्य संकलन की हमारे यहाँ से 'प्रगीत काव्य-ग्रन्थ माला' से २५००० प्रतियाँ पहले संस्करण के रूप में प्रकाशित की गयीं और देखते-देखते बिक गयीं।······ (क० ग्रं०)

संत साहित्य के सुविख्यात मर्मज्ञ आचार्य "श्री परशुराम चतुर्वेदी" के विचार

संत कबीर और उनका क्रान्तिकारीपन

संत कबीर साहब का नाम बहुधा किसी एक विशिष्ट क्रान्तिकारी के रूप में बड़े श्रद्धा भाव के साथ लिया जाता है। कहते हैं कि अपने समय के विभिन्न परिस्थितियों के विकट बने रहते हुए भी, उन्होंने अपने विचार बड़े स्पष्ट शब्दों में, एवं निर्भीकता के साथ प्रकट किये जिस कारण उनके द्वारा एक महान भावी आन्दोलन को प्रगति मिली। उन्होंने किसी वर्गविशेष के प्रति कोइ मुहब्बत जाहिर नहीं की। उनमें आगयी त्रुटियों की ओर अंगुलि निर्देश करते हुए, उन्हें उन पर निष्पक्ष भाव से विचार करने का प्रबल आग्रह किया तथा किसी प्रथा, परम्परा विशेष के साथ आँख मूँद कर चिपके रहने वालों को उन्होंने कड़े से कड़े शब्दों में फटकार बतलाई। उन्हें इस बात की कदाचित् कुछ भी परवाह न थी कि इसके कारण मेरे प्रति उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया जा सकता है, मेरा सामाजिक बहिष्कार किया जा सकता है अथवा मुझे अधिकारियों की ओर से दण्ड का भाजन तक भी बनना पड़ सकता है।

कहा तो यहाँ तक जाता है कि संत कबीर को इसके कारण सचमुच अनेक प्रकार की यातनायें सहनी पड़ गयीं, किन्तु उन्होंने अपने मार्ग से डिगना उचित नहीं समझा। न केवल समाज के भीतर उनकी हँसी उड़ाई गयी, प्रत्युत उनके प्रति विविध कठोर शब्दों के प्रयोग भी किये गये। उन्हें किसी मतवाले हाथी द्वारा कुचले जाने के लिये सामने लाया गया और उनके हाथ-पैर बाँधकर पानी में डुबोने के लिये छोड़ने की चेष्टा की गयी। जिस

बात की चर्चा उनके स्वरचित समझे जाने वाले एकाध पदों तक में की गयी दिखाई पड़ती है और यद्यपि वहाँ पर उनका किसी दैवी चमत्कार के बल सुरक्षित रह जाना भी बतलाया गया है, फिर भी, केवल इसी कारण, उनके एक महान क्रान्तिकारी विचारक होने में कोई सन्देह करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होगी।

........संत कबीर की गणना उन इने-गिने महान पुरुषों में निःसन्देह की जा सकती है जिन्होंने अपने समसामयिक समाज की गतिविधि को भली भाँति परखना तथा आवश्यक मोड़ देना अपना परम कर्त्तव्य समझा।

(क० अं०)

भारतीय संस्कृति और इतिहास के सुविख्यात विद्वान् महामहिम "डा० सपूर्णानन्द जी" के विचार

हीरे के कई पहल

कबीर जैसे महापुरुष का जीवन उस हीरे के समान है जिसके कई पहल होते हैं। हर पहल अपने में सम्पूर्ण सुन्दर और ज्योतिर्मय होता है। इसी प्रकार महापुरुष के जीवन का प्रत्येक पहलू महत्त्वपूर्ण होता है और अध्ययन विषय बनाया जा सकता है।......

......जिसने पोथी में पढ़कर नहीं, पण्डितों के मुँह से सुनकर नहीं वरन्, अपनी साधना के बल से सत्य का साक्षात्कार किया वह भला किस सम्प्रदाय से द्वेष करेगा ? ऐसे व्यक्ति, मनुष्य की दुर्बलताओं को पहचानते हैं। कभी-कभी कड़े शब्दों में उनकी भर्त्सना भी करते हैं, परन्तु उसी प्रकार जैसे कि माता-पिता या गुरु छोटे बच्चों की भर्त्सना करते हैं। एकमात्र उद्देश्य उनका कल्याण होता है उनकी निन्दा करना नहीं।

मेरी दृष्टि में तो कबीर के जीवन का यही पहलू मुख्य है, उनकी आध्यात्मिकता। इस आध्यात्मिकता से गौण रूप से वह सब बातें निकलती हैं जिनकी ओर कुछ लोगों का विशेष रूप से ध्यान जाता है।

कबीर के बाद कई दूसरे संत हुए जिन्होंने उनके मार्ग का अवलम्बन किया। नानक, जगजीवन, पलटू, दादू, दरिया, कितनें नाम लिये जायें। वह दीपक आज भी बुझा नहीं है। कबीर को आदि संत कहा जाता है इसलिये नहीं कि उन्होंने कोई नया पंथ चलाया वरन् इसलिये कि उन्होंने लोगों को उस सनातन योगदीक्षा की ओर आकृष्ट किया जो उस परतन्त्रता-जनित धार्मिक दैन्यता की आँधी में बुझ-सी रही थी। एक और बात थी। उन्होंने जो उपदेश दिया वह उस लोकभाषा में दिया, हिन्दी में जनता के सामने रखा। उस समय हिन्दी नाम प्रचलित नही था। उसे भाखा कहा करते थे।······ (क० अं०)

राजनीति क्षेत्र के एक महापुरुष "केशवदेव मालवीय" के विचार

कबीर : एक तेजस्वी व्यक्तित्व

भारतीय साहित्य और धर्मसाधना के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा तेजस्वी व्यक्तित्व नहीं हुआ। समय जितना ही आगे की तरफ बढ़ रहा है कबीर को हम उतना ही अपने नजदीक पाते हैं। इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि बीसवीं सदी में होने वाले महात्मा गांधी के विचारों का मेल पाँच सौ वर्ष पहले के कबीर से बैठता है···उनके साहित्य में संघर्ष की चेतना स्पष्ट है। वे झुकते नहीं हैं, गलत समझौता नहीं करते और दीनता उनके स्वभाव में नहीं है। उनके मन में साफ है कि आदमी, आदमी के बीच में दीवार नहीं है।···

कबीर की भाषा डाँट-फटकार की है—उसमें मुरव्वत नहीं है। वह सीधे दिल से निकलती है और दिल पर चोट करती है। समाज और धर्म की झूठी मान्यताओं के प्रति उसमें खुला विद्रोह है। कबीर की खोज सत्य की खोज है।

कबीर की भाषा में रहस्यवादी वातावरण है, रहस्यवादी प्रतीक हैं, उपमायें हैं, लेकिन उसमें उनके आगे जाने की संभावना भी है। अपने में ही

ईश्वर को देखने और पाने का उनका तर्क इतना सीधा है कि सारे आडम्बर छिलके की तरह उतर जाते हैं[१]।

...लेकिन कबीर का रास्ता प्रेम का ही रास्ता है, घृणा का नहीं। वे खरी-खरी बातें सुनाते हैं—राह पर लाने के लिये, कबीर का प्रेम पूरी मानव जाति के लिये है, उनकी चिन्ता पूरे मनुष्य समुदाय के हित की चिन्ता है।

कबीर में आत्मविश्वास इतना अधिक है कि वह दम्भ का पर्याय जान पड़ता है पर है नहीं। वह सच्ची आत्मा और साफ दिल से निकलने वाला स्वाभाविक स्वर है। (क० अं०)

उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री (१९६६) श्रीमती सुचेता कृपलानी के विचार

कबीर की देन : भारतीय समाज को

चादर उठाई गयी। लाश के स्थान पर ताजे, सुगन्धित फूल निकले। आधे-आधे बाँट दिये। हिन्दुओं ने उन फूलों का दाह संस्कार किया मुसलमानों ने दफना दिया। यह था अन्त भारत के उस महान संत कवि का जिसने जीवन भर हिन्दू-मुस्लिम एकता का उपदेश दिया और मरने पर भी दोनों जातियों को एक होकर रहने का सन्देश दिया।

यदि हम सन्त कवि कबीर को हिन्दू-मुस्लिम एकता का नारा देने वाला पहला भारतीय महापुरुष कहें तो अनुचित न होगा। गुरु नानक ने उन्हीं से प्रेरणा पाकर हिन्दू-मुसलिम एकता पर जोर डाला और ऐसे धर्म की स्थापना की जिसमें जात-पाँत का कोई भेद-भाव न था। आधुनिक युग में महात्मा गांधी के भी प्रेरणास्रोत कबीर ही थे। "ईश्वर अल्ला तेरा नाम" के मन्त्र की उत्पत्ति कबीर के "राम-रहीम, कृष्णकरीम" से हुई।

भारत जैसे विभिन्न सम्प्रदाय वाले देश में ऐसे मानवता प्रेमी सन्त कवियों की सदा आवश्यकता रहेगी; क्योंकि जहाँ चार बर्तन होते हैं वे प्रायः

१—दिलमा खोज दिलहिमा खोजो, इहै करीमा रामा (बीजक, शब्द ९७)

आपस में टकराते रहते हैं। उन्हें सभालकर रखना मानवतावादी महापुरुषों का कार्य है। कबीर, नानक और गांधी जी ऐसे ही महापुरुष थे जिन्होंने अपने सुन्दर और सरल उपदेशों द्वारा हमेशा विभिन्न संप्रदायों को मिल-जुल कर प्रेम से रहना सिखाया। ऐसे महापुरुषों का जन्मदिवस मनाना देश को एकता के सूत्र में बांधने की दिशा में बड़ा शक्तिशाली कदम है। आज जब देश में विघटनकारी तत्त्वों की बाढ़ आ गयी है लोग धर्म और भाषा के नाम पर देश के टुकड़े करने को तैयार हैं ऐसे महापुरुषों का जन्मदिवस मनाना उनके उपदेशों का प्रचार करना और भी आवश्यक हो गया है।····

जहाँ तक साहित्य-सेवा का प्रश्न है यह कहा जाता है कि कबीर अनपढ़ थे। उन्हें संस्कृत का ज्ञान न था, पर सच पूछा जाय तो कबीर की टूटी-फूटी भाषा में वह जादू था, वह लोच था जो अलंकारों से सुसज्जित और व्याकरण के नियमों में बँधी हुई भाषा में आ ही नहीं सकता। वे भाव-प्रधान कवि थे और आधुनिक युग में यह निस्संकोच माना गया है। भावविहीन भाषा उस शव के समान है जो इत्र और वस्त्रों से सजाया गया हो पर जो बोल न सके और न देख सके। उनकी भाषा, उनके मुहावरे लोगों के दिलों में सीधा प्रभाव डालते हैं। कबीर ही वे कवि हैं जिन्होंने हिन्दी भाषा में कुरान की अनेक शिक्षाओं को स्थान दिया है। उनका इस्लाम धर्म का ज्ञान काफी गहरा था। हिन्दी साहित्य को कबीर की यह महान देन है। उनकी सीधी-सादी भाषा से कविता उस प्रकार निकलती थी जिस प्रकार झरने से पानी झरता है। उन्होंने इतनी सुन्दर कवितायें लिखी हैं कि हम उन्हें हिन्दी के आदि कवियों में स्थान दे सकते हैं। सच पूछिये तो हिन्दी के केशवदास, बिहारी आदि अनेक महान कवि भाव अथवा भाषा के क्षेत्र में कबीर के ऋणी हैं।

···मैं यह जानती हूँ कि आज भी प्रत्येक भारतीय चाहे वह किसी भी धर्म का मानने वाला हो, कबीर का अपने हृदय से आदर करता है और उसको अपने दिल में स्थान दिये हुए है। (क० अं०)

श्रीयुत अमृतलाल नागर महोदय के विचार

कबीर की निर्भीकता एवं सत्यवादिता

""मुझे यह हैरत होती है कि इस देश के प्रारम्भिक मुसलमानी शासन के दौर में, जब काजीकठमुल्लों का अन्धा न्याय ही पुजाता था, इस प्रकार निर्भीक और मुखर रहते हुए भी इतने वर्षों तक कबीर साहेब का सिर अपनी जगह पर क्यों कर कायम रह सका। यह मुम्किन क्यों कर हुआ ? कबीर ही के जीवन काल में लखनऊ में लोधन नामक एक ब्राह्मण को महज़ यह घोषणा करने पर ही फाँसी दी गयी कि अपने मूल रूप में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म सच्चे हैं। फिर भी यह निर्भीक सत्यवादी""जन्म भर एक सांस में पंडितो और मौलवियों को फटकारता और ललकारता रहा, मगर कोई उसका एक बाल भी बाँका न कर सका। इस निर्भीकता और सत्यवादिता पर मैं निसार हूँ।

"'वे गरीबों और मजलूमों[1] के साथी थे, इसीलिये उनके भक्तों और शिष्यों में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही थे। आभिजात्य वर्ग के लोगों और उनके धर्मगुरुओं के झूठे दम्भ से जो आम जनता बुरी तरह से पीड़ित थी वह मानो अपनी सुरक्षा के लिये ही कबीर जैसे निर्भीक, सत्यवादी, धर्मनिरपेक्ष, प्रेमयोगी, कर्मयोगी की शरण में आयी थी। (क० अं०)

प्रसिद्ध प्रगतिशील आलोचक श्रीयुत प्रकाशचन्द्र गुप्त के विचार

कबीर की विद्रोह भावना : एक तेज अस्त्र

कबीर हिन्दी काव्य-परम्परा के एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। भारतीय इतिहास के वे एक महान क्रान्तिकारी व्यक्तित्व हैं। वे जातिवाद, अन्धविश्वासों और सामन्तवाद के विरोध में विद्रोही के रूप में खड़े हुए कबीर के काव्य में हम धार्मिक, रहस्यवादी तत्व भी पाते हैं, किन्तु इन तत्वों ने कबीर को मनुष्य

१—जो सताया गया हो, जिस पर अत्याचार किया गया हो, पीड़ित।

की पीड़ा समझने में मदद दी, उन्हें ये तत्त्व मनुष्य के समीप लाये। धार्मिक विचारों की यह भूमिका कबीर के जीवन में असाधारण थी। सामान्यतः धर्म ने मनुष्य और मनुष्य के बीच ऊँची दीवारें खड़ी की हैं। कबीर साम्प्रदायिक सीमाओं के ऊपर उठकर मानवतावादी विचारों को महत्त्व दे सके।

भारतीय सामाजिक ढाँचे में अनेक भेदभाव अन्तर्निहित हैं। जब यह ढाँचा टूटकर एक नवीन जनवादी व्यवस्था को जन्म देगा, तभी यह भेदभाव दूर हो सकेंगे। नयी व्यवस्था के लिये जीवन-मरण के संघर्ष में सन्तकालीन साहित्य हमारा सम्बल है। सन्त कवि समाजचेता कवि थे। वे जनकवि थे और जन-जन की पीड़ा से दुखित होते थे।....

...सुकरात के समान उनकी कड़वी बातों में असीम सत्य था। उनके हृदय का विद्रोही स्वर तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर तीव्रतम आघात था और व्यवस्था के अवशेषों पर आज भी तीव्र आघात करता है।

आज भारतीय एकता को दृढ़ बनाने में यही सामन्ती अवशेष बाधक हैं। इनके विरोध में हमें कबीर की वाणी से बड़ा बल मिलता है।

कबीर सीधी-सादी भाषा में दो-टूक बात कहते हैं और यह शब्द अनायास ही जनता के हृदय में घर बना लेते हैं। उनके काव्य की शक्ति उनके हृदय की भावना है। उन्होंने सत्य का मोती पा लिया था और इसे ही अपने काव्य की माला का आभूषण उन्होंने बनाया।

कबीर की उपमायें भी सामान्य जीवन से ली गयी हैं। व्यापारी, तराजू, खाला का घर, चक्की के पाट, कुम्हार, माटी, जौहरी, बिरहिन, पति, बहू— इन्हीं उपमाओं और शब्दचित्रों का खज़ाना हमें कबीर के काव्य में मिलता है। वास्तविक अर्थ में कबीर भारतीय जनता के प्रमुख कवि हैं।

आज के संघर्षों में कबीर का काव्य हमारा तेज अस्त्र है। कबीर की निर्भीकता, अन्याय के विरुद्ध उनकी तीव्र विद्रोह की भावना, उनके स्वर की सहज सचाई—यह सभी तत्व हमारे अमूल्य उत्तराधिकारी हैं। शोषण के ऊँचे दुर्गों के विरोध में कबीर ने विद्रोह का झंडा सदैव ऊँचा रखा। अन्त में

वे काशी छोड़कर मगहर में जाकर शरीर छोड़े। यह उनके जीवन का अन्तिम विद्रोह था।

"जो काशी तन तजै कबीरा। तो रामहिं कहु कौन निहोरा॥"(क०अं०)

श्रीयुत अली सरदार जाफरी के विचार

महान कविता की यह अनोखी विशेषता है कि बहुधा वह अपने रचयिता से सम्बद्ध हो जाती है। फ़िर उसके अस्तित्व से कवि का अस्तित्व पहचाना जाता है क्योंकि उसके जीवन के हालात बीते हुए समय के धुँधुल के में खो जाते हैं और घटनायें कहानियों का रूप धारण कर लेती हैं।

पुरानी इतिहास लिखने की कला चूँकि वादशाहों, पुरोहितों और सूरमाओं के इर्द गिर्द घूमती थी और उन्हीं की गाथाओं को अपनी पूँजी समझती थी इसलिये उसने हमेशा विद्रोहियों, कवियों और कलाकारों की उपेक्षा की और सिर्फ दण्ड और पुरस्कार के किस्से बाकी रह गये। किसका मुँह मोतियों से भरा गया और किसकी गुस्ताख जवान गुद्दी से खींच ली गयी। लेकिन समय का प्रतिशोध वड़ा क्रूर होता है। वादशाहों के कारनामें इतिहास की कितावों में बन्द हैं और कवियों के कारनामें दिल के अन्दर पीड़ा और उल्लास की लहरें बनकर उतर गये हैं। लक्ष्मी और सरस्वती की प्रतिद्वन्द्विता में जीत सरस्वती की हुई और गुण लक्ष्मी के गाये गये।

यह बात शायद पुराने इतिहासकारों को नहीं मालूम थी कि इतिहास केवल घटनाओं का वर्णन नहीं बल्कि सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों के परिवर्तन की कहानी भी है और विचार चेतना की प्रगति भी। इस वातावरण में आते जाते पात्र-परछाइयों की तरह घमते रहते हैं और अगर परछाइयों का नाम लोग भूल भी जायें तो कोई फ़र्क नहीं पड़ता। विचार और चेतना की प्रगति जारी रहती है। यही कारण है कि परिस्थितियों और घटनाओं का कबीर, भावनाओं और अनुभूतियों का कबीर, कविता और गीत का कबीर जिन्दा है। हर दोहा उसका अस्तित्व है, हर पद उसका व्यक्तित्व, हर विचार उसकी जवान है।

""उनकी मृत्यु के वारे में उनके प्रशंसकों ने जो कहानी वनायी है वह कबीर के लिए जन साधारण की सवसे वड़ी श्रद्धांजलि है। उनकी शिक्षा का सार वह शुद्ध मानव-प्रेम है जो धर्म के भेद-भाव और जात-पाँत के झगड़ों से मुक्त है।......

"'डाक्टर ताराचन्द के शब्दों में 'कबीर पहला व्यक्ति है। जिसने एक केन्द्रीय धर्म एक मध्य मार्ग का निस्संकोच आगे आकर एलान किया। उसका नारा सारे हिन्दुस्तान में गूँज उठा और सैकड़ों जगहों से उसकी प्रतिध्वनि सुनी गयी। कवीर धर्मानुयायियों की संख्या उतना महत्त्व नहीं रखती जितना कि कवीर का वह असर जो पंजाव, गुजरात और वंगाल तक फैल गया और मुगल काल में बढ़ता गया।" (भारतीय संस्कृति पर इस्लामी प्रभाव, पृष्ठ २७०।)

"'कवीर की शिक्षायें और विचार उत्तरी भारत की लगभग सभी भाषाओं के साहित्य का अंग बन गये। उनके प्रत्यक्ष प्रभाव का संकेत गुरु नानक की शिक्षाओं में भी मिलता है और आधुनिक युग में टैगोर के विचारों में भी। किसी कवि को इससे वड़ी श्रद्धांजलि क्या मिल सकती है।

(क० अं०)

उर्दू के अत्यन्त प्रसिद्ध कवि और विचारक श्रीयुत रघुपति सहाय 'फ़िराक़' गोरखपुरी के विचार

आने वाले हिन्दुस्तान का सपना : कबीर की वाणी

"'जव हम कवीर के वचपन पर सोच-विचार करते हैं तो यह फैसला करना मुस्किल हो जाता है कि हम कवीर को एक साधारण-सा बच्चा समझें या इतिहास का एक करिश्मा' अथवा जादू समझें या भारत के आकाश पर एक जगमगाते हुए सितारे की वृद्धि समझें। ऐसा मालूम होता है कि यह बच्चा देखने में ही हड्डी-मांस का बना हुआ था और वास्तव में यह बच्चा

छुपी हुई दुनिया की पवित्रताओं और प्रकाशों, खैरों और बरकतों और देवताओं के तमाम गुणों का मुजस्समा[2] था।

उस समय के हिन्दुस्तान में हिन्दू धर्म और इस्लाम के संगम और मेल-जोल से एक नयी आत्मा जन्म ले रही थी। जिस तरह हजारों वर्ष पहले भगवद्गीता में दुनिया भर के मत-मतान्तरों, दीनों और धर्मों को एक ही लड़ी में पिरो दिया गया है, उसी तरह कबीर के जमाने में सन्त-आन्दोलन ने हिन्दू धर्म और इस्लाम की एकता का पता लगा लिया था और हजारों हिन्दुओं और मुसलमानों को इस एकता के अनुभव से मस्त कर दिया था। इस आन्दोलन का सबसे बड़ा प्रतिनिधि हम कबीर को कह सकते हैं, सच्चे हिन्दू धर्म और सच्चे इस्लाम की एकता का अनुभव कराना महात्मा कबीर का पहला काम और पहला पैगाम था। 'राम-रहीम' एक ही हैं, यह शिक्षा कबीर के जीवन और रचनाओं में हिन्दुस्तान को नई जागृति देती हुई सुनाई देती है।

कबीर के बाद से पुराने विश्वासों, ढकोसलों और सामाजिक शिक्षा ने बार-बार नये रूप धारे और नया जन्म लिया। गुरु नानक और सिख धर्म अकबर का 'दीन-ए-इलाही' बड़े-बड़े मुसलमान फकीर जैसे ख्वाजा, मुईनुद्दीन चिश्ती, शेख सलीम चिश्ती हमारे जमाने में समय के सबसे बड़े फकीर वारिस शाह और इनके अलावा सन्त तुकाराम, चण्डीदास, चैतन्य देव, वैष्णव महात्मा, यहाँ तक कि महात्मा गान्धी, इन तमाम हिन्दुस्तान के निर्माताओं और इतिहास बनाने वाली हस्तियों के पास वही शिक्षा थी, जिसके सबसे बड़े प्रतिनिधि या गुरु महात्मा कबीर थे। महान कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने हिन्दुस्तान की तमाम भाषाओं की अच्छी-से-अच्छी कविता में कबीर ही की रचनाओं को इस योग्य समझा कि उनकी सौ कविताओं का अंग्रेजी में अनुवाद कर डाला और यह अनुवाद बीसियों लाख पढ़ने वालों ने अंग्रेजी में पढ़ा और पश्चिम की दूसरी भाषाओं में अनुदित होकर टैगोर का यह अनुवाद करोड़ो आदमियों तक पहुँच गया।

१—चमत्कार। २—शरीर।

जीता जागता दिल

कबीर ने बहुत जीता-जागता दिल और दिमाग पाया था। ऐसा मालूम होता है कि इस आश्चर्यजनक व्यक्ति के सिर ही नहीं, बल्कि एड़ी से चोटी तक तमाम शरीर में आँखें-ही-आँखें थीं जो कभी सोती नहीं थीं, झपकती नहीं थीं और जिसमें सबसे शक्तिशाली एक्सरे-मशीन की योग्यता थी। हिन्दुस्तानी जिन्दगी, हिन्दुस्तानी रस्मों, हिन्दुस्तानी विश्वासों, अन्ध-विश्वासों, बुराइयों और खतरों, हिन्दुस्तानी जिन्दगी की बीमारियों-खराबियों धोखों और हिमाकतों का आंशिक व सम्पूर्ण विश्लेषण महात्मा कबीर ने किया है।

आध्यात्मिक और नैतिक जीवन के गहरे, कोमल और उलझी हुई गुत्थियों और उलझनों पर महात्मा कबीर ने प्रकाश डाला है, उसका उदाहरण हिन्दुस्तान के साहित्य में हमें नहीं मिलता। मुझे तो कबीर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के लेखक वाल्तेयर की याद दिलाता है। अंग्रेजी साहित्य में यदि हम कबीर का उदाहरण ढूंढ़ें तो बेनियन और बर्नाडशा के नाम हमें याद आते हैं। रूसी साहित्य में कबीर की कुछ झलकियाँ गोगोल और टालसटाय के कारनामों में मिलती है। कबीर ने बुद्धिवाद को धर्म के नाम पर कभी बलिदान नहीं किया। उनका धर्म-उपदेश कोई अफीम नहीं है। न कोई नशीली चीज है, बल्कि यह एक बेहोश समाज को होश में लाने वाली दवा या रामबाण है। यह वाणी सूझ-बूझ की जीती-जागती आवाज है। हिन्दुस्तान की किसी भाषा का कोई लेखक हमें रह-रह कर अपने कचोकों, चुटकियों, कुरेदों से इस तरह नहीं चौंकाता, इस हमदर्दी और बेदर्दी के साथ हमें होशियार नहीं करता जैसा कि कबीर ने किया है। कबीर की वाणी और उपदेश एक शीशमहल है या एक महान स्नान-गृह जिसमें सारा हिन्दुस्तान अपनी नंगी सूरतें देख लेता है।

इतनी पवित्र आध्यात्मिकता के साथ-साथ कबीर ने जो दृष्टि पायी थी वह हमारे अस्तित्व के दिल को चीरती चली जाती है। सकारात्मक मूल्यों के

साथ-साथ महात्मा कबीर की वाणी एक ही समय व्यङ्ग व चमत्कार, प्रेम और बेलाग आलोचना से इस तरह भरपूर है कि छः-सात सौ वर्ष के काल में किसी और बड़े-से-बड़े हिन्दुस्तानी लेखक की रचना इस तरह हमारे जीवन की लगातार चुटकियाँ नहीं लेती रही हैं जैसा कि कबीर की वाणी सात सौ वर्ष से हमारे जीवन की चुटकियाँ लेती रहीं। इसी से तो कबीर की उल्टी या उल्टवासी प्रसिद्ध है। कबीर रह-रह कर हमें यह अनुभव कराते हैं कि हम अपने पैरों पर नहीं खड़े हैं। हम सीधे नहीं चल रहे हैं, टेढ़े चल रहे हैं। हम सच के नाम पर झूठ की तरफ बढ़ रहे हैं और हम जान-बूझ कर अपने आप को धोखा दे रहे हैं। कबीर ने अपने युग के सिर पर फूल बरसाये और इस युग की पीठ के लिये कबीर की वाणी और उनका जोश दवा भी थी।

सबसे बड़ा कवि

कबीर के जितने दोहे छः सात सौ वर्ष की लम्बी अवधि के बाद लोगों को आज भी याद हैं, उतने किसी और कवि के दोहे इतने लोगों को याद नहीं हैं। कबीर की कविता वही काम करती है जो सरकार में जासूसी या खुफिया पुलिस के कर्तव्य का पालन करती है। इतना बड़ा जीवन का आलोचक, इतना बड़ा पर्यवेक्षक और आदर्शवादी कवि और उसके साथ ही साथ घटनाओं का इतना बड़ा चित्रणकर्ता कवि हिन्दुस्तान ने आजतक नहीं पैदा किया। कबीर की वाणी में चुभन और आनन्द का वह सामान है, इसमें ऐसी डंक और मिठास घुली हुई है कि हर दिल पर चोट भी लगती है और हरदिल में गुदगुदी भी पैदा हो जाती है। कबीर ने हमें अपने आप पर हँसना सिखाया। हमें स्वयं अपना मजाक उड़ाना सिखाया। हममें स्वयं आलोचना की प्रतिभा पैदा की। हमें अपने दिलों को टटोलना सिखाया। इतनी निडर और बेखौफ कल्पना शायद ही दुनिया में किसी और कवि को नसीब हुई हो। कबीर का हर दोहा निशाने पर बैठता है। उसकी दृष्टि कभी चूकती नहीं।.......

......कबीर हिन्दुस्तानी साहित्य का सबसे बड़ा हास्य लेखक है। इतना बड़ा हँसने वाला और इतना गहरा हँसाने वाला हमारे साहित्य के इतिहास में आज तक पैदा नहीं हुआ।.......

······जब तक हिन्दुस्तान जिन्दा है बल्कि जब तक सभ्यता जिन्दा है कबीर की सदाबहार रचना कभी बुझ ही नहीं सकती। इस अमर रचना, इस अमर वाणी का राज है कबीर की वर्णनशैली और उसका दो-टूक वर्णन का ढंग। कबीर लगी-लिपटी रखना नहीं जानते थे। कबीर की वाणी आने वाले हिन्दुस्तान का सपना है जिसमें दुनियादारी और दुनिया का त्याग, आध्यात्मिक और आत्मिक जीवन का खूबसूरत संगम बनने वाला है।·······

(क० अं०)

उत्तर प्रदेश के कर्मनिष्ठ राजनीतिज्ञ एवं कांग्रेस के अध्यक्ष पं० श्री कमलापति त्रिपाठी के विचार

संत कबीर—

मध्यकाल के ऐसे स्वतन्त्रचेता के रूप में संत कबीर का प्रादुर्भाव हुआ जिनके कृतित्व से तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का संवर्द्धन तो हुआ ही, भविष्य में भी उनके मार्ग का अनुगमन कर लोक का कल्याण हुआ। जीवन-काल में ही भक्त, साधक, समाज सुधारक एवं मतप्रवर्तक के रूप में उन्हें कीर्ति मिली। ऐसे समय उन्होंने समाज को क्रान्तिदर्शी तत्त्वों से आंदोलित किया जब देश में हिन्दू-मुसलमान सभी धर्म लोकाडंबर से ग्रसित हो ऐसे नवोन्मेष के अभिलाषी हो रहे थे जहाँ भेद एवं वर्ग की संकुचितसीमा किसी के अभ्युदय में बाधक न हो।·······

·······इसीलिये तो उन्होंने जाति-पाँति, ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र, धनी—गरीब, मुल्ला-पण्डित आदि के भेद-भाव-परक तत्त्वों पर निर्भय हो निर्मम प्रहार किया। इसके लिये उन्हें समर्थ लोगों का कोप-भाजन बनना पड़ा, उत्पीड़न-प्रताड़न सहनी पड़ी, तो भी वे सत्य के लिये अक्खड़ एवं अडिग व्यक्ति की भाँति संघर्षशील रहे। उस युग में ऐसे अक्खड़ व्यक्तित्व का होना उनके असाधारण पौरुष का परिचायक है।

……वह परम सत्य को अपनी गुह्य संपदा न मानकर समाज को भी उसका साक्षात्कार कराने के विह्वल सत्यद्रष्टा थे। पददलितों को उत्थानोन्मुख करने के लिये वे मतवाले थे। वे निराश्रयों के आश्रय दाता एवं तत्कालीन तिमिराच्छन्न समाज में आलोक के स्तम्भ थे। उन्होंने सत्य के प्रचार एवं प्रसार के लिये देश के कोने-कोने की यात्रा की और समाज को उदबोधन दे चेतना-मण्डित किया। उन्होंने केवल धार्मिक एवं सामाजिक मर्मस्पर्शी तत्वों का ही समन्वय नहीं किया, भाषा एवं रचना—विधा के क्षेत्र में उन्होंने संस्कृत, फ़ारसी से जहाँ शब्द-चयन किया, वहीं पूरव-पश्चिम के लोक-प्रचलित शब्दों का भी ग्रहण किया। साथ में अपढ़ जनता में प्रचलित छन्दों में भी अपने भावों को अभिव्यक्ति दी।

उनका देश और काल तो उनसे लाभान्वित हुआ ही उनकी उपलब्धि से वाद के संतों ने भी तत्व एवं प्रेरणा ग्रहण की। संत दादू, महात्मा सुन्दर दास एवं रज्जबदास आदि ने उनसे आलोक पाया और आज भी सामाजिक जीवन में कार्य करने वाले कवीर की साखियों में सत्य का साक्षात्कार कर अपने लिये संवल पाते हैं।……

राजनीति-क्षेत्र की कर्मनिष्ठा श्रीमती सुभद्राजोशी के विचार

कबीरः सामाजिक आवश्यकता के कवि

कबीर मूलतः सन्त थे साधना या भक्ति ही उनका लक्ष्य था परन्तु भारतीय समाज की रूढ़ियों को जिस हद तक कवीर ने तोड़ा, उसकी कोई तुलना उपलब्ध नहीं है। इसीलिये उनके व्यक्तित्व के साथ सुधारवादी पहलू स्थायी रूप से जुड़ गया है—कुछ विद्वानों के आगाह करने के वावजूद कि कवीर सुधारक नहीं थे। मैं यह मानती हूँ कि परिणाम देखते हुए ही किसी व्यक्तित्व का सही मूल्य आँका जा सकता है। कवीर कवि पहले थे या सन्त या सुधारक—इसके बारे में बहस करना व्यर्थ है। सन्त तो वे थे ही—जिस परम्परा की वे कड़ी हैं वह सन्तों की ही है—निर्गुणी सन्तों की—सन्तों को ही लक्ष्य कर वे अपनी बातें भी करते हैं।

सन्तो देखत जग बौराना।

साँच कहौं तो मारन धावै, झूँठे जग पतियाना।

* * *

सन्तो पाँड़े निपुण कसाई।

बकरा मारि भैंसा पर धावैं, दिल में दर्द न आई॥

* * *

सन्तो एक अचरज भौ भारी, कहौं तो को पतियाई।

लेकिन बातें कहने के लिये वे कविता का साधन चुनते हैं—'सबद, साखी, साधन हैं उस सत्य को कहने के, जिसे कबीर ने साधना से प्राप्त किया है। बाहरी आचारों की निन्दा करके सहज धर्म की शिक्षा जब वे समाज को देते हैं तो भक्ति या साधना की ही जरूरत पूरी करते हैं। कबीर समाज की सच्चाइयों में आँख मूँदने वाले सन्त नहीं हुए थे—वे समाज की विकृतियों पर जबर्दस्त चोट करने पर तुले हुए थे इस या उस धर्म के प्रति उनका कोई दुराग्रह नहीं था लेकिन मिथ्याचारों से उन्हें सख्त शिकायत थी। उनमें एक कठिन साहस था। यही कारण है बीच में आकर केन्द्र में आकर अपनी खरी खरी बातें कहते थे। कविता उनके लिये उस तेज औजार की तरह थी जिससे वे समाज को बराबर तराश रहे थे और उसके भीतर से एक सहज स्वस्थ मानवीय समाज निकाल रहे थे।

कबीर में असाधारण जिज्ञासा है उस विराट सत्य के लिये जो साधारण व्यक्ति की पहुँच से परे है लेकिन वे उसे बराबर तैयार हैं। आत्मसाक्षात्कार का रहस्य बताते हैं परम सत्य का सन्देश देते हैं।

कबीर का साहस और विवेक आज भी विकृतियों के खिलाफ लड़ने वाले व्यक्ति के लिये जरूरी है। जिन सामाजिक आवश्यकताओं के कवि कबीर हैं

वे आज भी बनी हुई हैं बल्कि आज वे ज्यादा जटिल हो गयी हैं। स्वाभाविक रूप से आज ऐसे कवियों की आवश्यकता है जिनमें कबीर का नैतिक साहस या मनोबल हो जो कबीर की संघर्षशील परम्परा को आगे बढ़ाने में समर्थ हों। (क० अं०)

प्रसिद्ध विचारक डा० श्री जगदीशचन्द्र जैन के विचार

क्रान्तिकारी कबीर

कबीर पन्द्रहवीं शताब्दी के एक प्रमुख सन्त हो गये हैं जिन्होंने अपनी तिलमिला देने वाली व्यंगपूर्ण वाणी द्वारा तत्कालीन समाज में प्रचलित बाह्याचार और मिथ्या आडम्बरों पर चोट कर क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया।...

सामाजिक क्रान्ति का जन्मदाता

जैसे बुद्ध और महावीर ने वैदिक क्रियाकाण्ड का विरोध करते हुए भारतीय तत्वज्ञान को एक नयी दिशा प्रदान की थी, उसी प्रकार सन्त कबीर ने तत्कालीन बाह्याचार और पाखण्ड का खण्डन करते हुए सरल और बोधगम्य भाषा में अपने कल्याणप्रद उपदेशों को सर्वसाधारण तक पहुँचा कर सामाजिक क्रान्ति को जन्म दिया।......

समाजगत वैषम्य के कारण कष्ट पाने वाली जनता के दुःख से वे दुःखी थे। हिन्दू मुसलमान के विरोध के मूलभूत सामाजिक अन्धविश्वास को नष्ट कर मानवतावाद का उपदेश देने वालों में वे अग्रगण्य थे। धर्म के नाम पर प्रचलित अन्धविश्वासों और बाह्याण्डम्बरों पर कुठाराघात करने के लिये वे जीवन-भर जूझते रहे, जिससे उनके अदम्य साहस का परिचय मिलता है।

इसी अर्थ में कबीर एक सन्त होकर भी महान क्रान्तिकारी थे।

(क० अं०)

श्रीयुत प्रभाकर माचवे के विचार

धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद का क्रान्तिकारी प्रतिष्ठापक

मराठी के नामदेव और हिन्दी के कवीर भारत के सन्तों में वहुत वड़े नाम हैं। इन सन्तों ने उस जमाने को देखते हुए वहुत वड़ा काम किया, जो कभी बुद्ध ने किया था, या आजकल के जमाने में कुछ हद तक गांधी जी ने किया।.......

.......इस तरह से मैं कवीर को धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद का अपने युग का सर्वश्रेष्ठ क्रान्तिकारी प्रतिष्ठापक मानता हूँ।.......

...मैं कवीर का वहुत अधिक भक्त हूँ। जितना ही उन्हें पढ़ता हूँ मुझे और आनन्द और गहरा अर्थ मिलता है। मेरा तो यह मत है कि रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद पर भी कवीर और दादू का गहरा प्रभाव है।...

(क० अं० ७)

आधुनिक कवि श्रीयुत डा० परमानन्द श्रीवास्तव के विचार

सत्य का साक्षात्कार कबीर की कविता

धार्मिक एवं जातीय विद्वेष की चरम स्थिति में जब मुसलमान शासकों के अत्याचार के सम्मुख हिन्दू जनता के समक्ष आत्मघात या धर्मपरिवर्तन के अतिरिक्त कोई विकल्प ही नहीं रह गया था—कवीर का जन्म हुआ। कवीर के काव्य का मुख्य वक्तव्य यदि जातीय एकता और धार्मिक सामंजस्य ही है तो उसकी यही भूमिका है। कवीर का सारा प्रयत्न उस वुनियादी सत्य के साक्षात्कार की दिशा में है जो विभाजित इकाइयों में निवास नहीं करता- हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण और शूद्र, वैष्णव और वौद्ध, स्त्री-पुरुष—ऐसे विभाजित प्रत्यय...या इकाइयाँ कवीर के मस्तिष्क में नहीं थीं।...

हिन्दी काव्य-परम्परा में कबीर शायद पहले कवि हैं जो 'प्रामाणिक अनुभव' की सार्थकता वताते हैं। जिन्हें कवीर का वक्तव्य रूखा जान पड़ता

है और उनकी कविता अटपटी 'स्वल्थ कविता' जान पड़ती है, उन्हें अपने पूर्व आग्रहों का पता लगाना चाहिये। वे पूर्वाग्रह उस गलत समीक्षा-बुद्धि से पैदा होते हैं जो कला में अलंकृति का पक्ष लेती हैं। कबीर खरी भाषा के कवि थे - 'प्रखरता' को पहली बार एक सार्थक 'मूल्य' के रूप में उनकी कविता प्रतिष्ठित करती है। उनके रहस्यवाद और योगमूलक प्रतीकों की छानबीन करने वाले पांडित्यधर्मी आलोचकों को एक बार उनकी 'कविता' की शक्ति भी परखनी चाहिये। इसका संकेत 'कबीर ग्रन्थावली' का सम्पादन करने वाले बाबू श्यामसुन्दर दास ने बहुत पहले किया था।

'अक्खड़ ढंग से कही होने पर भी उनकी बेलाग बातों में एक और मिठास है जो खरी-खरी बातें कहने वाले ही की बातों में मिल सकती है।··· हार्दिक उमंग की लपेट में जो सहज विदग्धता उनकी उक्तियों में आयी है वह अत्यन्त भावापन्न है।'···समय आ गया है कबीर की कविता का पुन-मूर्ल्यांकन किया जाय क्योंकि सन्त होकर भी वे जिस सत्य के साक्षात्कार का महत्व बोध कराते हैं वह कवि या कृतिकार का भी पहला और अन्यतम उद्देश्य होता है।

कबीर का जीना सार्थक जीना था और उनकी कविता सार्थक कविता है। यही कारण है कि छायावाद के नाम पर लिखी गयी बहुत सी रचनायें जहाँ निरर्थक जान पड़ती हैं। वहाँ उलटवासियों के अन्दाज में लिखी गयी कबीर की काव्य-पंक्तियाँ भी अधिक और महत्त्वपूर्ण···जान पड़ती हैं।

(क० अं०)

हिन्दी के लेखक श्रीयुत कृष्णनारायण कक्कड़ के विचार

हिन्दी के प्रथम आधुनिक कवि कबीर

······इन सभी बातों के पृष्ठ में जब हम आज के वर्तमान साहित्य को पुराने साहित्य से जोड़ते हैं तो एक-विचारक का नाम हमारे सामने अनिवार्य रूप से आता है। वे हैं हिन्दी के प्रथम आधुनिक कवि कबीर। जिन

ऐतिहासिक परिस्थितियों में उनका जन्म हुआ वे परिस्थितियाँ कबीर ऐसे व्यक्तित्व को पैदा करने में सहायक हुई। वह युग था भारत के लिये बहुत बड़ी संक्रान्ति का युग और उस संक्रान्ति में एक ऐसे शक्तिशाली व्यक्तित्व ने जन्म लिया जो बाध्य हुआ सारे पाखण्डों, अनावश्यक भेदों, व्यवस्थाओं, आश्रमों, मताग्रहों का साक्षात्कार करने के लिये, ऐसा साक्षात्कार जो हमारे लिये आज उतना ही आवश्यक है और सजीव है जितना उस समय था।...

केवल इस दृष्टि से ही कबीर हमारे साथ जीवित नहीं हैं। अन्य कारण हैं, जो हमको कबीर की ओर आकृष्ट करते हैं। कबीर के साहित्य की दो प्रमुख विशेषतायें रहीं। यानी यथार्थ पक्ष और रहस्य पक्ष, जो वैसे तो अन्तर्विरोधी मालूम पड़ते हैं लेकिन यदि हम उनको गहराई से देखें तो वे उतने अन्तर्विरोधी नहीं हैं।

कबीर के पैर जमीन पर थे और यह अतिशयोक्ति न होगी, यदि हम कहें कि वे अकेले कवि हैं जिनका हर शब्द, यथार्थ तथा अनुभव से जुड़ा हुआ है। हमको कबीर की वाणी इसलिये भी प्रभावित करती है कि वह वास्तविक अनुभव या अनुभूत विचार को ही प्रेषित करती है। इसके साथ-साथ यह कहा जाता है कि कबीर की वाणी में बहुत से ऐसे तत्त्व हैं जो अगोचर हैं, जो रहस्यवादी हैं और जो पकड़ में न आने वाले हैं।....

चाहे हम नितान्त सामाजिक दृष्टि से ही कबीर का विवेचन करें या धर्म दर्शन के स्तर पर कबीर का आकलन करें या हम उनके काव्य तत्त्व और उनकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से कबीर को समझें, हमें निश्चित ऐसा लगेगा कि पुराने कवियों में कबीर हमारे सबसे अधिक निकट हैं और वे उस ऐतिहासिक-क्रम का अंग हैं जो हमारे लिये आज अधिक जीवित है।

(क० अं०)

श्रीयुत डा० रामचन्द्र तिवारी के विचार

कबीर : एक प्रज्वलित व्यक्तित्व

......कबीर ने सारे आडम्बरों और मिथ्याचारों को ध्वस्त कर उसके भीतर से मनुष्य निखालिस मनुष्य को ढूंढने की चेष्टा की, कबीर—एक

पारदर्शी अस्तित्व; एक प्रकाशपुञ्ज एक प्रखर प्रज्वलित आत्मा थे। सुना है—वालि के सम्मुख जो भी युद्ध के लिये जाता था उसका आधा बल वालि में चला जाता था। भगवान को भी इसलिये उसे छिपकर मारना पड़ा था। पता नहीं इस कथा में क्या रहस्य है? लेकिन इसका अर्थ थोड़ा बहुत समझ में आता है। सत्य के सामने असत्य, प्रकाश के सम्मुख अन्धकार न्याय के सामने अन्याय हमेशा छोटे हो जाते हैं।

कबीर का व्यक्तित्व भी ऐसाही था। उनके सामने जो भी गया, छोटा हो गया। होता क्यों न? कोई अहंकार में चूर, कोई दम्भ में खोया हुआ और कोई मद में मस्त। सभी तो आडम्बर में पड़े थे। सभी उलझने वाले थे। समझ में आने वाली सीधी-सच्ची बात कोई नहीं कहता था। अजब अजब साधक थे। हाथी पर चढ़ कर, तोप-बन्दूक लेकर आडम्बर के साथ जुलूस लेकर चलते थे। कहने को योगी थे। महन्त थे। वैराग्य ही उनका जीवन था। सर्वन्यस्त करके, सबकुछ छोड़कर संन्यासी बन गये थे। नारद और दत्तात्रेय की परम्परा से अपना सम्बन्ध जोड़ते थे और वास्तविकता यह थी कि राजाओं की तरह वैभव-विलास का जीवन व्यतीत करते थे।

कबीर दबने वाले नहीं थे। वैभव थे चकाचौंध होंना उनका स्वभाव ही नहीं था। वह हर एक की दुर्बलता पर प्रबल प्रहार करते थे।.......

कबीर ने सोचा अकेले होने से क्या होता है? इन सारे झगड़ों को समाप्त करना होगा। सड़ी-गली समाज व्यवस्था पर प्रहार करना होगा। भेद की दीवारों को ढहाना होगा। रूढ़ियों को तोड़ना होगा। भेदों के भीतर विलुप्त होती हुई मानवता का उद्धार करना होगा। मनुष्य को ऊपर उठाना होगा। सबको साथ लेकर चलना होगा। तभी कुछ हो सकेगा। इस लिये सच्चा विद्रोही बनना होगा। कहीं कोई समझौता नहीं। कहीं कोई लगाव नहीं। सबसे पहले अपने ही घर में आग लगानी होगी। घर ही तो बाँधता है। घरौंदे ही तो आसक्ति उत्पन्न करके क्रान्ति विरत करते हैं। नहीं कोई आसक्ति, कोई ममता, कोई आकर्षण, कोई प्रलोभ रोक सकता।

जलना होगा। अंगार बन कर दिगन्त दाह करना होगा। उल्कापिण्ड बनकर समाज के आकाश में प्रज्वलित होना होगा। जो उपयोगी नहीं है, मानव-कल्याण में बाधक हैं, जो मनुष्य को खण्ड-खण्ड करके दुर्बल बनाता है, वह धर्म हो चाहे समाज उसे भस्मीभूत कर देना होगा।··· (क० अ०)

एक नये कवि श्रीयुत देवेन्द्रकुमार जी के विचार

एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म-स्वर

कबीर सच्ची मानवता के पक्षधर थे। समन्वय का मतलब होता है समझौता, जो उनके स्वभाव के विरूद्ध था। समाज में जहाँ भी उन्होंने नुक्स पाया, उसका खुलकर विरोध किया। आज के संदर्भ में जब हम कबीर पर विचार करते हैं तो शुरू से अन्त तक उनका स्वर एक विद्रोही का स्वर लगता है। एक ऐसा विद्रोह जो ध्वंसात्मक न होकर रचनात्मक था।···

·········कबीर की वाणी में एक ऐसा जादू था कि वे अप्रिय सत्य को सत्य कहकर समर्थन प्राप्त कर चुके थे, जब कि ऐसा बहुत कम होता है। विद्रोह करना—कराना और विद्रोह के समक्ष खड़ा होना बड़े साहस का काम है। यह वही कर सकता है जिसमें अपार चारित्रिक, आध्यात्मिक और जनतांत्रिक शक्ति हो। उन्हें अपनी शक्ति का ज्ञान अच्छी तरह था। वे जानते थे कि किसी भी समय इन्द्र के कुपित होनेपर अकेले कृष्ण की तरह पहाड़ को उँगली पर उठाकर जल-प्रलय से स्वजनों की रक्षा कर सकते हैं और उनका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। जब एक सामान्य आदमी कच्चे घड़े का सौदा खूब ठोंक ठोंककर कर सकता है, तो वे तो दस जगह घूमें थे, दस लोगों के बीच रहे थे, साधु-सन्तों से सम्पर्क साधा था आत्मानुभव की एक कठोर निर्णायक की बुद्धि रखते थे। यही कारण है कि वे सबकी कसौटी बने। जानकारी भर में कोई कच्चा काम उनसे नहीं ही होने को था। उन्हें सदस्य (अनुयायी) नहीं कर्मठ कार्यकर्ता की आवश्यकता थी। और निर्णय जो कुछ लेना था पहले ही लेलिया था।···

······कविता उनकी नियति नहीं थी लेकिन उस युग के मानव नियति वे जरूर थे। भाषा के पूर्वाग्रह को त्याग कर उन्होंने एक ऐसी भाषा को जन्म देना चाहा जिसे सभी समझ सकें। संस्कृत, फारसी, अरबी, हिन्दी, पंजाबी, बँगला, राजस्थानी के प्रचलित शब्द उनकी कविता में आते हैं। जिस उदारता का परिचय हम आज देने की बात सोचते हैं उसे कबीर ने वर्षों पहले कर दिखाया। उनकी खिचड़ी ही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। वे निन्दक से घबराते नहीं थे बल्कि उसे भी आत्म-परिष्कार का एक साधन मानते थे। यह व्यक्तिगत साधना का ही फल था कि कहीं-कहीं वे अपने को जन-सामान्य से ऊपर मानते हैं। जिसे लोग उनकी गर्वोक्ति कहते हैं मेरी समझ से यह उनका आत्मविश्वास है। इस ढंग से उन्होंने अपने को उठाया था कि अपने उपर पूरा-पूरा विश्वास था।·······

कबीर में कहीं से कोई हीन भावना नहीं दिखाती और न अन्य भक्त कवियों जैसी लचर ही। जो कुछ कहना था निर्भीक होकर उन्होंने कहा। कृत्रिमता के दुश्मन और सहजता के पोषक के रूप में आज भी कबीर स्मरणीय हैं। चाहे विरोध में या पक्ष में जो कुछ भी निकला, उनकी सरल आत्मा से निकला। यदि वे कटुता का ख्याल करते और सुविधाजनक कोई रास्ता चुनते तो शायद जिन्दगी भर कुछ नही कर पाते। कबीर का दुख अपने लिये नहीं है। वे कभी अपने लिये नहीं रोते संसार के लिये रोते हैं।

(क० अं०)

श्रीयुत विश्वनाथ तिवारी के विचार

विद्रोही की भाषा : जीवन्त भाषा के कुछ दूसरे पहलू

पन्द्रहवीं शताब्दी में कबीर ने जीवन और साहित्य के हर क्षेत्र में विद्रोह का जो स्वर बुलन्द किया वह युग की महान घटना है। समन्वय और समझौता उनका रास्ता नहीं था। उन्होंने चिन्तन और सृजन को एक नयी दिशा दी। कबीर लोक-आवश्यकता के कवि थे। कवि-कर्म उनकी मजबूरी

थी। उनके काव्य को जीवन-धारा से पृथक करके नहीं समझा जा सकता। कबीर की भाषा विद्रोह की प्रखर भाषा है—जिसमें कोमल और मन्द स्वरों की मुद्रायें भी हैं और प्रतीकात्मक।

पन्द्रहवीं शताब्दी में कबीर ने जीवन और साहित्य के हर क्षेत्र में क्रान्ति की जो पुकार लगायी वह इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना मानी जा सकती है।...

...उनका कोई अपना नहीं था इसलिये सब अपने थे। उनका दिल साफ़ था अतः जबान तेज थी। रास्ते में जो मिल गया दो-चार फटकार सुनाई और आगे चल दिये। रास्ते में हर सोनेवाले को झकझोर कर जगाया, उसे रास्ता और आगे निकल गये।

कबीर उस सुविधा-धर्म के विरोधी थे जिसमें जकड़कर आज के मनुष्य ने अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व नष्ट कर दिया है। काश कि आज के युग में कबीर होते सुविधाधर्म की एक रंगीन भाषा होती है मन को बहलाने वाली। वह भीतर की आग को बुझा देती है। कबीर की भाषा निरन्तर क्षुब्ध करती है, जलाती है।...उन्होंने जीवन में कभी भी लीक पकड़कर चलने की कोशिश नहीं की। उन्होंने चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में देखा और जैसा देखा वैसा कह दिया। दूसरा इस पर क्या सोचता है, इसकी उन्होंने कोई परवाह न की। उन्हें किसी का डर नहीं रह गया था। उन्होंने अपने ही हाथों अपना घर फूंक दिया था और हाथ में लुआठा लेकर चौराहे पर खड़े थे। उन्ही को अपने साथ चलने के लिये पुकारा भी जिनमें अपना घर अपने ही हाथों जला देने का साहस हो। दुस्साहस की हद तक तेज कबीर के पास एक जाग्रत भाषा भी थी।

वास्तव में कबीर ने जिसे 'धर्म' कहा है वह एक ऐसी सचाई है जो सभी धर्मों के मूल में है किन्तु जिसे वाह्याडंवरों और पाखण्डों ने आच्छादित कर लिया है। इन आडम्बरों के झाड़-झंखाड़ को साफ करना ही कबीर का लक्ष्य था इसके ही समानान्तर कृति साहित्यकार के रूप में कबीर के सामने आडम्बरों को काटने वाली खुरदुरी बेलौस भाषा के अन्वेषण का लक्ष्य था।

कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों की दुर्बलताओं पर अपनी आक्रोशमयी भाषा में टिप्पणियाँ की। कबीर के विचारों में या उनकी भाषा में संकोच या भ्रम नहीं है।

कबीर साहब उन कवियों में नहीं थे जो धन और झूठी वाहवाही के लोभ में राजदरबारों में अपनी कला का कमाल दिखाने तथा दूर की कौड़ी लाने को कविता की सार्थकता समझते हैं। कबीर उस कवि को कोई महत्त्व नहीं देते जो 'व्यर्थ में कविता करते-करते मर जाता है'— 'कवि कविनै कविता मूये।' उन्होंने पुस्तक-ज्ञान को कभी महत्त्व नहीं दिया। अपन अनेक साखियों में उन्होंने पुस्तक-ज्ञान का विरोध किया है। कबीर को ज्ञान पुस्तकों से नहीं मिला था। उन्होंने जो कुछ भी सीखा था सीधे जीवन से सीखा था।

कबीर की भाषा रिझाती उतनी नहीं जितनी खिझाती है। वह राह चलते टोक देती है। कविता के लिये कविता करना कबीर का उद्देश्य भी नहीं था। उन्होंने साहित्यिक परम्पराओं के विरुद्ध सीधा विद्रोह किया था। उनकी उल्टवासियों में यह विद्रोह लक्षित किया जा सकता है।

सच तो यह है कि कबीर की शक्ति उल्टवासियों से अधिक स्पष्ट है। उल्टवासियों का रास्ता कबीर के लिये सत्य को विपरीत स्रोतों से पकड़ने का चित्रित करने का रास्ता है।

कबीर की भाषा 'सधुक्कड़ी' है या 'पंचमेल खिचड़ी'—इस प्रकार के फ़तवे देने से पहले यह स्वीकार करने की जरूरत है कि यह जीवन्त भाषा है—सामान्य जनसमुदाय से सीधे सम्पर्क की भाषा है—सजीव भाषा है। यह वह भाषा है जिसमें कबीर का समकालीन जीवन साँस लेता है। अरूप को रूप देने में ही इस भाषा की सार्थकता नहीं है वस्तु सत्यों को तीव्रतम अभिव्यक्ति देने में भी इस भाषा की सफलता देखी जा सकती है।···

······सब मिलाकर कबीर की भाषा की शक्ति असीम है। वह मुख्यतः विद्रोह की है पर दूसरे रागमय सन्दर्भों की अभिव्यक्ति में भी असफल नहीं है। मन से सहज फूटने वाली यह भाषा सीधे मन में उतर जाती है।

प्रसिद्ध हिन्दी कथाकार राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के विचार

ढाई अच्छर प्रेम का पढ़ै सो पण्डित होय

आज से लगभग पाँच सौ वर्ष पहले कही हुई सन्त कबीर की यह सूक्ति सनातन सूक्तियों के बीच में आज भी अपने सत्य का मस्तक ताने हुये हिमालय की ऊँची चोटी की तरह ज्यों-की-त्यों खड़ी है—अचल, अडिग। पूरी साखी लीजिये—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय॥

शास्त्रों के ज्ञानी, पुस्तकों के विद्वान ही प्रायः पण्डित कहे जाते हैं। लेकिन कबीर जी के विचार से निरा पुस्तक-ज्ञान ही किसी को पण्डित की उपाधि नहीं दे सकता, अगर उसके रोम-रोम में प्रेम न हो। आखिर आंख का पानी ही न रहा, तो फिर चेहरे का पानी रहा, न रहा। मानी हुई बात हैं, इन्सान पहले, विद्वान पीछे।

...सच्चे प्रेमी का हृदय भेद-भाव से मुक्त हो जाता है। उनके सामने न जातिभेद ठहर पाता है, न वर्ग-भेद। तभी तो महात्मा कबीर ने जाति-भेद की धज्जियाँ उड़ा डाली हैं। जन्म से कोई ब्राह्मण या मुसलमान नहीं होता।

देखिये न, हम राम को हिन्दू मान बैठे हैं, अल्लाह को मुसलमान और गॉड को क्रिस्तान। एक का निवास मन्दिर है, दूसरे का मस्जिद और तीसरेका गिरजा। एक की जबान संस्कृत है, दूसरे की अरबी और तीसरे की अंग्रेजी। वाह रे यह रीझ और वाह रे यह बूझ, हद की भी हद है। मजहब की यह छीछालेदर—यह दलदल।....जभी तो जो पीर, पुरोहित, प्रीस्ट कठमुल्लों की बातों में पड़ मन्दिर, मस्जिद और गिरजा का ही नाज़ उठाता रह गया, वह कभी उस प्रेम की मंज़िल पर पहुँच नहीं पाता।...

...देखिये न, आज अपनी-अपनी जाति, अपना-अपना प्रान्त, अपनी-अपनी जुबान और अपना-अपना धर्म लेकर हमारे अन्दर राष्ट्रीय एकता पनप नहीं पाती।

हाँ, कबीर की वाणी में वह प्रेम की प्रेरणा है, जो हमारे राष्ट्र का वेड़ा आसानी से पार कर सकती है। वह प्रेरक शक्ति की अपनी निधि हो अपनी। तो यही तमन्ना है, यही प्रार्थना है। (क० अं०)

एक प्रगतिशील विचारक श्रीयुत श्रीकृष्णदास जी के विचार

अन्धा युग और कबीर

वाणी के तानाशाह, विद्रोह के प्रणेता, दर्शन और ज्ञान के मूलस्रोत, राष्ट्रीय और मानवीय एकता के अनन्य प्रतिष्ठाता, वैचारिक साम्यवाद के संस्थापक, निर्भीकता, सत्यवादिता, स्पष्टता के उद्‌घोषक फक्कड़ संत कबीर मंत्रद्रष्टा, दार्शनिक और कवि थे।...

कबीर की आवाज में जो इतना दर्द इतनी करुणा, इतना आक्रोश और इतनी विध्वंसकारी क्षमता है, उसका कारण यह है कि वह गरीब, परवश, शोषण और अज्ञानत के शिकार, पण्डितवर्ग द्वारा उपेक्षित और राजसमाज द्वारा पदमर्दित समाज के बहु संख्यक प्राणियों के हृदय और आत्मा की आवाज है। इस आवाज की चुनौतीपूर्ण कर्कशता से कोई चिढ़ भले जाय, परन्तु उसे दबाया नहीं जा सकता।...

फक्कड़ कबीर ने अपनी...भाषा में जीवन के मौलिकतत्त्वों पर प्रकाश डाला, सामाजिक मिथ्याचार का भण्डाफोड़ किया, जातीय जीवन में अन्तर-निहित एकता की धारा को पुष्ट किया, राष्ट्रीयता की भावना कों प्रोत्साहित किया। वह गरीब के, निर्बल के पक्षधर थे। राज समाज से उनकी पटती नहीं थी, पट नहीं सकती थी।

कबीर गम्भीर चिन्तक और विचारक थे। उनकी अन्तर्दृष्टि बड़ी पैनी थी। वह गहराइयों में उतर जाने के आदि थे। ईसा मसीह, की भाँति सारे संसार की पीड़ा और कष्ट अपने में समा लेने के लिये उतावले रहते थे।...

गौतमबुद्ध, ईसामसीह हजरतमुहम्मद सभी का यही हाल था—'जागै औ रोवे !' इन महाप्रभुओं ने, मानवजाति के इन मंत्रद्रष्टाओं ने, उद्धारकों ने, इन अवतारों ने मानवहित चिन्तन में जाग-जाग कर रातें बितायीं। रोये मानव प्राणी के प्रति करुणा से विगलित हो। कबीर का भी यही हाल था।

कबीर हिन्दी के एकलौते कवि हैं जो अपने 'स्व' को मिटाकर 'पद' में लीन हो गये थे। विराट व्यापक जन समाज के दु.ख, पीड़ा, आर्तनाद को उन्होंने सुना था। उन्होंने अन्याय, अत्याचार का डटकर मुकाबिला किया था। उनकी निर्भीकता, उनके साहस की सीमा न थी। कबीर की निम्नांकित पंक्तियाँ उनके व्यक्तित्व पर पूरा प्रकाश डालती हैं :—

कबीर खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ।
जो घर जारो आपना, चलै हमारे साथ॥
हीरों की ओबरो नहीं, मलयागिर नहिं पाँति।
सिंहों के लेहड़ा नहीं, साधु न चलै जमाति॥

युग प्रणेता, विद्रोही कवि एवं मन्त्रद्रष्टा कबीर की पुण्यस्मृति में प्रणाम।

(क॰ अं॰)

श्रीयुत चन्द्रोदय दीक्षित जी के विचार

कबीर का मानववाद

कबीर का भारतीय चिन्तनधारा में और सन्त विचार परम्परा में शीर्ष स्थान है।

कबीर के विचारों में आज भी एक आधुनिकता मिलती है। आज के आधुनिकतम कवियों में जिनमें अस्तित्ववादी विचारकों को भी शामिल किया जा सकता है उनमें भी मानव के चिन्तन का ऐसा परिष्कार नहीं मिलता जैसा कबीर में मिलता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कबीर के एक सौ गीतों को अनुवाद करके उनके प्रभाव को स्वीकार किया। इतना ही नहीं उन्होंने बाद

में जिस मानवधर्म की व्याख्या की है उसमें भी कबीर का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। कहा जा सकता है कि कबीर ने मानवजीवन को जितना उदात्त स्वरूप देने का प्रयास किया वह आज भी प्रकाश-स्तम्भ की भाँति भ्रान्त मानव-जाति के लिये प्रेरणा का स्रोत है।

कबीर के जीवन को आप चाहे जिस-दृष्टि से देखें इतना तो सभी लोग स्वीकार करते हैं कि उनका अनुभव सभी दृष्टियों से विशाल था। भारत का प्रायः ऐसा कोई कोना नहीं जहाँ वे न गये हों। उनकी कविता की भाषा में समस्त उत्तर भारत और गुजरात महाराष्ट्र की बोलियों का संमिश्रण मिल जाता है। हिन्दू-मुसलमान दोनों सम्प्रदायों में उनकी शिष्य परम्परा है।...

मोक्ष के मार्ग में उनकी पद्धति सहज, उनका योग जन-जीवन में शुद्ध आचरण उनकी भाषा हृदय की और उनका प्रभाव हृदयग्राही है। प्रेम समस्त मानवता के प्रति प्रेम उनका यही एक व्यापार है। मानव की इस चेतना के आधार पर वे धर्म की परिभाषाओं से आगे बढ़कर रूढ़ि परम्पराओं और आडम्बरों को छोड़कर मानव को समान आधार पर लाकर खड़ा कर देते हैं। मानव की समानता को अपनाने के कारण कबीर सभी व्यक्तियों को मोक्ष के मार्ग पर आगे बढ़ाते हैं।........

यदि मानव जीवन और व्यक्ति के आचरण को सहज सम्बन्धों के आधार पर सन्तुलित न किया जा सका तो मानव जीवन नरक बन जायेगा। ऐसी स्थिति में आज भी कबीर समस्त मानव जाति को समानता, प्रेम, भ्रातृत्व और सदाचरण का रास्ता दिखाते हैं जिसको अपनाने से आधुनिक जीवन की विषमताओं और असंगतियों को दूर किया जा सकता है।

श्रीयुत श्रीपाल सिंह 'क्षेम' के विचार

कबीर और उनका युग

कबीर सच्चे अर्थों में एक क्रान्तिद्रष्टा कवि थे। सत्यों के मूल तक पहुंचने में उन्हें अद्‌भुत दृष्टि प्राप्त थी। भ्रम के अनेक आवेष्टनों एवं वाद-विवादों के

अनेक विधि कुहासों को वेधकर सचाई को पकड़कर उसे दो टूक कह जाने की क्षमता में बेजोड़ दिखाई पड़ते हैं।

......कबीर ने सत्यों को एक मौलिक दृष्टि और मूलभूत मूल्यों के सन्दर्भ में देखा था; और जो कुछ उन्होंने देखा, सुना और समझा, उसे आग्रह, दुराग्रह, पूर्वाग्रह और परिपाटी की लीकों का मोह छोड़कर जन-हित में निर्भीक भाव से जनता के सामने रख दिया।

सांस्कृतिक एवं लोकात्मक दृष्टि से कबीर और तुलसी का महत्त्व मध्यकाल के चिन्तकों में अविस्मरणीय है, किन्तु तुलसी और कबीर की दृष्टि और शैली में बड़ा अन्तर था।

तुलसी ने परम्परा के परिमार्जन और परिपोषण का कार्य किया, किन्तु महाप्राण कबीर ने परम्परा के मोह को त्यागकर एक स्वस्थ एवं मानवतावादी दृष्टिकोण को वरण किया। तुलसी ने परम्परा से प्राप्त चिन्तन को एक आदर्शवादी एवं समन्वयात्मक स्वरूप प्रदान करने का ऐतिहासिक कार्य किया और कबीर ने प्राचीन और नवीन की स्वस्थ मानवतावादी प्रेरणाओं को बटोर कर अनर्गल आचरणों और निहित स्वार्थों के लोक-ग्रासी जंजालों पर निर्भीकता और निर्ममता के साथ प्रहार करते हुए एक लोकवादी एवं कल्याणकारी विचारधारा को प्रोद्घाटन किया। तुलसी थे परम्परावादी और कबीर थे गतानुगतिका एवं अन्धानुसरण के कट्टर विरोधी।

दोनों महाकवियों में अपने-अपने उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के प्रति सच्ची निष्ठा थी। यही कारण है कि उनकी वाणियों में अपना-अपना निजी प्रभाव है, फिर भी कबीर का मार्ग तुलसी की अपेक्षा बीहड़ और संकटापन्न था। परम्परा के स्वस्थ और परिमार्जित रूप को युगानुकूल बनाकर समन्वय के मार्ग से चलने वाले तुलसी के समर्थन के पीछे विशाल प्राचीन पुराण, साहित्य और परम्परा पोषित वाङ्मय था, किन्तु कबीर को वे सुविधायें उस प्रकार नहीं प्राप्त थी। युग के साथ और युग के आस-पास और सम्पर्क में चलने वाले के साथ सहयोगियों और समर्थकों का विशाल समुदाय पहले से ही निश्चित

होता है, किन्तु युग के लकीरों को छोड़कर केवल निर्धूम सत्यों के सहारे चलने वाले पथिक का पथ बहुत-कुछ अकेला होता है और उस पर समर्थन की अपेक्षा विरोध पाने की सम्भावना ही बलवत्तर होती है। कबीर को युग के समर्थन और असमर्थन की चिन्ता नहीं थी, उनके सामने जनता और जन-जीवन को भूलाओं के मानव-निर्मित और वर्ग-सृष्ट दलदल से निकाल कर उसे सत्य और स्वस्थ सामाजिकता पर खड़ा कर देने का प्रश्न था।

कबीर जिस युग में उत्पन्न हुये थे वह भारतीय समाज के पराभव और अपकर्ष का युग था। धर्म की लोकोपकारी चेतना शास्त्र और पुराणों में आवेष्टित कर जन-जीवन से दूर कर दी गयी थी और धर्माचरण संकीर्ण मान्यताओं, विच्छिन्न सम्प्रदायों और महन्तों की अधिनायिका आज्ञाओं के रूप में प्रस्तरित हो चुका था। धर्म अब उदात्त जीवन, उच्च मानवता, ऐक्यमूलक प्रेरणा का स्रोत न रहकर एक बाह्य और दैनिक उपचार का जड़ जगड्वाल बन गया था। मन्दिर और मस्जिद एक ईश्वर तक पहुँच कर उच्च-जीवन-यापन के मार्ग न रहकर साम्प्रदायिक विद्वेष और बाह्या-डम्बर के अखाड़े बन गये थे। मुक्ति और मोक्ष अब उच्च जीवन की उदात्त अनुभूतियाँ न रहकर गुरु-सेवा की अचानक कृपा अथवा एक बँधे-बँधाये औपचारिक जीवन का यान्त्रिक प्रतिफल बन गये थे।

सत्याचरण का स्थान साम्प्रदायिक संकीर्णताओं ने ले लिया था और मानवता के उद्धार, जीवन के वास्तविक उन्नयन, चरित्र के यथार्थ औदात्य और दैनिक आचरण के स्थान पर शास्त्रों के रटे-रटाये वाक्य, पुराणों के इतिवृत्त, तन्त्रों के गुह्य प्रकरण और जनता को चकित कर देने वाले चमत्कार आ बैठे थे। संक्षेप में, धर्म, जीवन की उच्चानुभूति, उदार आचरण और सेवा-भाव की उन्नायक चेतना के स्थान से विघटन, खण्डन, विरोध, वितण्डा और प्रदर्शन की वस्तु बन गया था। बौद्ध-धर्म का लोकोपकारी यथार्थवाद महायान, हीनयान, वज्रयान आदि अनेक यान-उपयानों में विघटित होकर गुप्त तन्त्रों और कामोपासनाओं में बिखर चुका था। ब्रह्मसुख, रतिसुख

की समता करने लगा था। हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ शासक-शासित की दृष्टि से तो समाहित हो चुकी थी पर भीतर ही भीतर उनका पारस्परिक विरोध अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। धर्म की भूमि पर सारा देश प्रतिक्रिया अवसाद, विफलता और विग्रह का गलित प्रांगण बन गया था। एक साथ रहना, एक प्रकार का प्राकृतिक साहचर्य और एक प्रकार की समस्याओं से जूझते हुए भी देश की जनता और उनके धर्म के गुरुओं में एकता स्वस्थता, उदारता, सहिष्णुता और असत्य के विरोध की भावना कुण्ठित हो चली थी। धर्म मानवता का नियोजक, संयोजक और विकासक है यह दृष्टि उस अज्ञान के अन्धकार में लुप्त हो चुकी थी। मन्दिर और चन्दन तथा मस्जिद और नमाज के दैनिक उपचार के अतिरिक्त सारा जन-जीवन भयंकर भ्रान्तियों, विघटनकारी सन्देहों और अस्वास्थ्यवर्धक द्वैध की संग्राम-भूमि में परिणत हो गया था। 'नाद' और 'विन्दु' के विवेचनों, गोरखपन्थियों की योग-मुद्राओ, कठोर शास्त्रवादी तथा जीवन जगत के प्रति दायित्व-ही तथोक्त वेदान्तियों और दिन भर रोजा-नमाज करने के बाद सन्ध्या को हलाली करने वाले मुसलमानों के बीच कबीर का अवतरण एक अत्यन्त महनीय ऐसिहासिक आवश्यकता थी।

कबीर लोकवादी और जनवादी थे। वे सत्ता, धन और आडम्बर के भौतिक चाकचिक्य से दूर जनवाणी में जनता को जीवन के सहज सत्यों को सहज रूप से ग्रहण कराने वाले महानात्मा थे। सामन्ती प्रभावों और आभिजातिक विमोहों से दूर वे अपढ़ और असभ्य समझी जाने वाली जनता की आत्मा को उनकी हीं भाषा में जगाने की कला में पारंगत थे।

कबीर की सफलता का रहस्य

कबीर बौद्धिक चिन्तन तक ही सीमित न रहकर लोक-जीवन के नव निर्माण मार्ग के अन्वेषी थे। एकान्त साधना के स्थान पर जन-हित साधना और लोकोत्थान उनका लक्ष्य था। वे किसी वर्ग-विशेष के नहीं, वरन् सर्व वर्गों के उन्नायक तथा सर्वहारा के सच्चे मुक्ति-सन्धानी साहित्यकार थे।

मानवतावाद उनका उदार आशय था और जनता को एक स्वयं-स्फूर्ति, सक्रिय, स्वस्थ तथा मुक्तजीवन देना उनकी साधना का सामाजिक पक्ष था। अपनी आत्मा के कक्ष में यदि सबकुछ भूलकर वे प्रेम और मस्ती के गीत गाते थे तो दिन भर जीवन के कठोर कर्म-संघर्ष में जागते हुए कबीर समाज-सुधार, कु-प्रथा-विनाश, अन्ध-परम्परा के उच्छेद तथा जीवन-सत्य की स्थापना के संघर्ष-चेता, समाज-सेवी की भूमिका भी निभाते थे। समन्वय नहीं एकमात्र सत्पथ के प्रतिपादक कबीर आमूल परिवर्तन के मापक एक क्रान्तिकारी इतिहास-विभूति हैं, इससे कोई असहमत नहीं हो सकता। (क० अं०)

उत्तर प्रदेश के कृषिमन्त्री (१९६६ ई०) श्रीयुत गेंदा सिंह के विचार

एकता भावना का मूल प्रवर्त्तन

हिन्दी सन्त-साहित्य के निर्माताओं में कबीर का स्थान अप्रतिम एवं अग्रणी है। वे मानवता के प्रथम कवि हैं।······

कहा जाता है कि कवि सत्य के सरल रूप के स्रष्टा और सन्त सत्य के द्रष्टा होते हैं। सन्त कवि में बुद्धि की महिमा एवं हृदय की विशालता का अद्भूत सामञ्जस्य होता है। सन्त कवि का स्थान शुद्ध सन्त या सरसता बनकर पाठकों को मन्त्रमुग्ध कर लेती है। वे सत्य को ही परमात्मा मानते थे।······

कबीर का व्यक्तित्व प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्तिकारी था। उनका यह क्रान्तिकारी व्यक्तित्व, सुधारक, प्रेमी आदि विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ है। उनके प्रत्येक रूप में निर्भीकता, स्पष्टवादिता, प्रखरता एवं निश्छलता के दर्शन होते हैं। वे समाज के सजग एवं सतर्क प्रहरी थे। उन्होंने प्रत्येक मत एवं सम्प्रदाय की अच्छाइयों की प्रशंसा कर कुरीतियों एवं दम्भ के विरुद्ध क्रान्ति का शंखनाद किया।

कबीर धर्म के सच्चे पथ-प्रदर्शक थे। वे एकता की भावना को लेकर भटकती हुई जनता के सम्मुख आये तथा उसका सच्चा मार्ग दिखाने का प्रयत्न किया।.......इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू-मुसलिम ऐक्य की जो विचारधारा आज इतनी प्रबल हो उठी है, उसके मूल प्रवर्तक कबीर ही थे। उनका युग पारस्परिक संघर्ष का युग था। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से घृणा करते थे। इसलिए कबीर एक ऐसे धर्म की स्थापना करना चाहते थे जो इन सम्पूर्ण विषमताओं को दूर कर समाज में पूर्ण साम्य की स्थापना कर सके।

श्रीयुत श्रीचन्द्र अग्निहोत्री जी महोदय के विचार

सन्त परम्परा में सबसे निराले

कबीर सन्त परम्परा में सबसे निराले, हिमाद्रि शिखर से उन्नत, सबसे अलग दिखाई पड़ते हैं। यह गौरव कबीर को ही प्राप्त हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानों ने उनपर अपना समान रूप से दावा किया और किम्बदन्ती के अनुसार उनके फूल दोनों ने बराबर बाँट लिये।

विद्रोही, साथ ही समानद्रष्टा कबीर न हिन्दू के दोषों पर परदा डालते थे, न मुसलमान के जहालत को बख्शते थे।...

......कबीर अपनी मान्यताओं और आदर्शों के प्रति विन्ध्याचल से अडिग थे, परन्तु यथार्थ-ज्ञान-शून्य कोरे आदर्शवादी न थे। जीवनधारण की अपनी आवश्यकतायें होती हैं और उन्हें पूरा करना होगा, यह वह समझते थे।

पेट भरना होगा। यह यथार्थ है। इससे मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। लेकिन कबीर पेट को ही चरम या साध्य न मानते थे, यह क्षुधा को दी गयी उपमा से स्पष्ट हो जाता है। कबीर यथार्थवादी थे, परन्तु भोगवादी नहीं।

कबीर जन-कवि थे। ऊपर से थोपे हुए 'जनकवि' नहीं, जनता के बीच जन्में धरती के पूत जनकवि। उन्होंने जो कुछ कहा, अनुभव की तुला पर तोल कर, कोई कल्पना के प्रवाह में बहकर नहीं। (क० अं०)

उत्तर प्रदेश के कर्मनिष्ठ राजनीतिक विचारक तथा आर्यसमाज के परमभक्त श्रीयुत अलगूराय शास्त्री के विचार

उच्च आध्यात्मिकता और निर्भ्रान्त दृष्टि

……भगवान् कबीर की ओजस्वी वाणियों का सहारा लेकर उनके आशयों, सारों का अपने ढंग से गाकर लिखे कवि टैगोर ने जिस गीतांजलि का निर्माण किया वह हमारे देश के गौरव को बढ़ाने वाली बात है।

कबीर की प्रतिभा और उनकी कविदृष्टि जितनी ज्वलन्त और पैनी है उससे कम ज्वलन्त उनकी दार्शनिक दृष्टि नहीं है। कबीर का धर्म ओजस्वी आस्तिकवादी वैदिक धर्म के स्रोत से निकलता है।……

सन्त कबीर की उच्च आध्यात्मिकता का प्रभाव युग-युग के लिये सर्व साधारण पर पड़ा…हिन्दू मुस्लिम सभी उनके भक्त और शिष्य बने। सभी ने उनके काव्य साहित्य और संगीत के मधुर स्वर का आनन्द लिया।

आइये उस महात्मा को स्मरण कर हम सुत्तसाम्प्रदायिक एवं धार्मिक विद्वेष भावना को भूलें और मानव-समानता के महान मन्त्र को हृदयंगम करें।

(क० अं०)

श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा के विचार

कबीर : लोक हित की संभावना

जिस "चलती चक्की" को देखकर 'दिया कबीर रोय—'उस चलती चक्की के जमाने में बाबा कबीर को कौन पूछेगा। योग, वैराग्य, धर्म आदि की बात जाने दीजिये। लोग कहेंगे कि इतनी ऊँची बातें करने का जमाना नहीं है।……

अब रहा उस महान सन्त का और दूसरा उपयोग। जीवन भर वह मानवी एकता, सभी धर्मों की तात्विक एकता हिन्दू मुस्लिम ऐक्य—आदि के

अलख जगाता रहा। मरने पर भी उसके मुर्दे ने अद्भुत प्रकार से इस महामन्त्र को प्रचारित किया। पर वह भी कैसा पागल था कि आज न तो अधिकांश हिन्दू उसे मानते हैं, न मुसलमान। यदि मुसलिम जगत् उनकी कद्र करता होता तो पाकिस्तान में कबीर की याद जरूर की जाती। गुरु ग्रन्थ साहेब में कबीर के वचन भरे पड़े हैं। यदि सिख कबीर को जरा भी मानते होते तो आज पंजाब के दो टूकड़े न होते तथा पंजाबी सूबा न बनता। यदि पुराने जमाने में मुसलिम नरेश जरा भी श्रद्धालु या सुविज्ञ होते तो औरंगजेब की हुकूमत न चलती। पर, वह बिचारा योगिराज मूर्खों की दुनिया में न जाने कैसे आ गया और आज तो उसे कोई पूछने वाला भी नहीं है।

इसका कारण क्या है ? हमें अपने जी में एक महान वस्तु भूल गयी है। हम रोज देख रहे हैं कि एक महान विभूति या एक से एक जवान क्षण भर में संसार से उठते चले जा रहे हैं। कल का कोई ठिकाना नहीं है। पर जो भी जिन्दा है उसे जाने वाले के लिये भी क्षण भर दर्द जरूर होता है पर वह अपने जाने का कभी सोचता ही नहीं। यह नहीं सोचता कि चार दिन की जिन्दगी है, कुछ कर लें।.......

जो हो, यदि आज कबीर के एक लाख[1] भी सच्चे अनुयायी हो जायें तो संसार का बहुत बड़ा कल्याण हो सकता है।

(क० अं०)

१—अंग्रेजी राज्य काल में ही इतिहासकारों ने केवल उत्तरी भारत में एक लाख कबीरपन्थी बताये थे जबकि आज उसका कई गुणा प्रचार है। भारत में पूरब-पश्चिम तथा दक्षिण, तिसमें जहाँ कबीरपन्थ की खान है—मध्य भारत, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र आदि—उनकी कोई संख्या नहीं की गयी। अत एव कबीरपन्थी प्रचार या संख्या की दृष्टि में पर्याप्त हैं। हिन्दू-मुसलमान-सिख आदि कबीर साहेब को श्रद्धेय मानते भी हैं। यहाँ लेखक ने सद्गुरु कबीर की महानता पर रीझ कर हिन्दू-मुसलमान-सिख तथा कबीर-पन्थियों को व्यंगपूर्ण चुनौती दी है—यदि ये लोग कबीर साहेब को मानते हैं, तो उनके उपदेशों को जीवन में उतारें।

श्रीयुत विश्वनाथ सिंह जी के विचार

कबीर पन्थ

कबीर वास्तव में हिन्दू और इस्लाम दोनों धर्मों के पीर के रूप में आविर्भूत हुए। जब इन दोनों धर्मों के बाह्याचार, आडम्बर और पाखण्ड से मानवता कराह रही थी उस समय कबीर के कण्ठ से सबके लिये प्रेम की वाणी फूट पड़ी। उनके लिये न कोई ऊँच था न कोई नीच, न कोई काफिर था न चाण्डाल। मानव प्रेम ही उनके उपदेश का मूल मंत्र था। ढाई अच्छर प्रेम का ही उनका वेद था। इसी को भली भाँति समझने वाला पण्डित और ज्ञानी हो सकता है।

कबीर की सरल सुबोध वाणी से भारतीय समाज की त्रस्त और प्रताड़ित आत्माओं को अत्यधिक शान्ति मिली।······संयुक्त प्रान्त, विहार, मध्य प्रान्त और गुज़रात में कबीर विशेष रूप से लोकप्रिय हुए।

······काशी में कबीर साहेब की चर्चा दिनोंदिन बढ़ने लगी। अपने योग का चमत्कार दिखा कर उन्होंने वाममार्गी बाबा गोरखनाथ को प्रभावित किया। कई दिनों तक पण्डित श्री सर्वानन्द जी से उसका शास्त्रार्थ होता रहा। अन्त में जनता इन्हीं से प्रभावित हुई और सर्वानन्द भी कबीर साहेब के शिष्य हो गये जिनका नाम आगे श्रुतिगोपाल पड़ा।······

(क० अं०)

श्रीयुत एम० रहमान के विचार

कबीर ने अपने आदर्शों एवं सिद्धान्तों की पूर्ति के लिये किसी मर्यादा पुरुषोत्तम का चित्रण नहीं किया। उसका ब्रह्मकण्ठ मुल्लाओं के खुदा की तरह नर्क में आग नहीं दहकाये रहता। उनका ब्रह्म मनुष्य के हृदय पटल में अवश्य विराजमान है परन्तु इतना उदार है कि गुरु के आने पर वह अपना स्थान

वदल सकता है इसलिये कि वह ज्ञान का प्रेमी है अज्ञान की माया को गुरु ज्ञानरूपी ईश्वर में परिवर्तित कर मनुष्यों का मार्गदर्शन करता है।......

........सम्राट अकबर के मन में जो धार्मिक सहिष्णुता और समानता की भावना आयी थी और जिसके द्वारा उसने अपने 'दीन इलाही' का प्रतिपादन किया था वह कबीर और उसकी वाणी के द्वारा ही सम्भव हुआ। अतः कबीर के व्यक्तित्व के समकक्ष यदि हम कोई दूसरा व्यक्ति खड़ा कर सकते हैं तो वह प्रसिद्ध धर्म सुधारक मार्टिन लूथर नहीं है वरन् रोम एवं विश्व का प्रसिद्ध कवि "पवालियस वर्जिल" है जिसको आने वाली इसाई पीढ़ियों ने महात्मा और संत की उपाधि से गौरवान्वित किया। जिससे यूनानियों की कथाओं पर आश्रित एक नये ढंग एवं विचार से कविता लिखी और जिसके बारे में धारणा है कि उसने ईसामसीह के बारे में भविष्यवाणी की थी तथा उसने जो स्वप्न देखे थे और जिन भावनाओं की अभिव्यक्तियाँ की थी उनकी पुष्टि इसामसीह ने की। इसलिये जिस प्रकार बाद में आने वाली पीढ़ियों ने कबीर को अपना गुरु स्वीकार कर एक नये मार्ग का आविष्कार किया उसी प्रकार विश्व के दूसरे महान इटैलिन कवि दान्ते ने जब अपनी "डिवाइन कामेडी" की रचना की तो वर्जिल को अपना गुरु मानकर उसी के सहारे नर्क और स्वर्ग के बीच के रास्तों की सैर की। कबीर एवं वर्जिल की यह तुलना केवल व्यक्तित्व और आने वाले युगों में उनके प्रभावों पर ही आश्रित हैं। फिर भी यह काफी हद तक सच है कि कबीर समूची काव्य परम्परा के अकेले कवि हैं—अकेले और अलग—कबीर की तुलना सर्वांशतः यदि की जा सकती है तो कबीर से ही। (क० अं०)

श्रीयुत अघोरेश्वर महाप्रभु जी के विचार

.......समानधर्मा का दृष्टिकोण

जैसा कि प्रायः बहुत से लोगों को ज्ञात है कि संत कबीर इस्लामधर्म के अनुयायियों के शासन काल में, उस समय पर अवतरित हुए, जब हिन्दू धर्म में

रामानन्द युग था, तथा वैष्णव आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष पर भारत भूमि को प्रभावित कर रहा था। महात्मा कबीर के जीवन में स्वावलम्बन की जो विशेषता व गुण है, उससे मैं बड़ा प्रभावित हूँ।······

······कबीर ने माँगे हुए घर से दूर मगहर में जो शरीरत्याग किया, उसको देखते हुए, यदि मैं यह कहूँ कि वे मुसलमान, हिन्दू ईसाई, गृहस्थ एवं विरक्त की जो आलोचना अपनी वाणियों में की, वह केवल उन्हें जगाने के लिये, तो कोई अन्याय नहीं करूँगा। उनका एकमात्र परम लक्ष्य भेद-भाव-बुद्धि जैसे ग्रहण एवं त्याग के चक्कर में फँसे लोगों को उच्च से उच्चतर भूमिका में ले जाना ही था।

शासक वर्ग भी कबीर के क्रिया-कलापों से उदासीन रहा करता था। महात्मा कबीर उसकी कुछ भी परवाह न करके प्राचीन व वर्तमान दोनों की धुन को धुनते रहे। मुझे विश्वास है कि उनके उन्हीं गुणों के प्रभाव से उनके युग में ही उन्हें सफलता प्राप्त हुई। (क० अं०)

श्रीयुत इस्तफा हुसेन के विचार

सच्चे मजहब की ओर

कबीर ने अपने जमाने में जो उपदेश दिये थे उनकी आज भी बहुत जरूरत है। कबीर में एक जबरदस्त रूहानी ताकत थी। उसी की जोर से वह किसी की परवाह नहीं करते थे। चाहे वह मुल्ला हो या पण्डित। पीर हो या फकीर। किसी को उन्होंने नहीं छोड़ा। सबका डट कर विरोध किया।

शासकों ने उनपर अत्याचार किये लेकिन वह अपने विचारों का प्रचार बराबर करते ही रहे। वह अपने समय के बहुत बड़े इन्कलाबी थे। भगवान बुद्ध के बाद यानी दो हजार वर्ष बाद वही एक ऐसे भारतीय थे जिन्होंने बड़ी दिलेरी के साथ मजहबी कट्टरपन और अन्धविश्वास और आडम्बरों का खुलकर मुकाबिला किया और कदीमी रूढ़ियों की जड़ें हिला दीं। उन्होंने मजहब का सच्चा स्वरूप लोगों के सामने रखा और लोगों को झूठे मजहबी

ढोंगों के जाल से निकाल कर सच्चे मजहव के रास्ते पर चलना सिखाया।......
(क० अं०)

श्रीयुत नवाब सैयद एजाज़ रसूल के विचार

कबीर : एक महान इन्सान दोस्त

कबीर की ख्याति आमतौर से हिन्दी के सन्तकवि की हैसियत से है। वे भक्त काल के कवियों में एक बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं लेकिन उन्हें केवल एक कवि के रूप में देखना उनके साथ घोर अन्याय होगा। उनका व्यक्तित्व इससे कहीं अधिक ऊँचा था वे अपने जमाने के प्रखर सामाजिक नेता थे शायरी और भी जनता की आम बोलचाल की भाषा में वास्तव में जनसाधारण तक उनके सन्देश पहुँचाने का माध्यम थी।

कबीर का सन्देश उस युग के अन्य महान विचारकों की तरह व्यापक इन्सान दोस्ती का सन्देश है। उनके सन्देश की विशेषता इस बात में देखी जा सकती है कि उन्होंने हमेशा सत्य की खोज पर बल दिया है। इन्सान के बीच धार्मिक भेदभाव, घृणा और परस्पर विरोध को उन्होंने बराबर बुरा कहा, इसलिये आज ५०० वर्ष बाद भी उनका सन्देश जीवित है। बल्कि हमारे युग में उनके सन्देश की और अधिक आवश्यकता हो गयी है, इसलिये कि आजकल नैतिक अधःपतन, इन्सान दोस्ती की जगह परस्पर द्वेष, प्रेम की जगह घृणा, भाईचारे की जगह अलगाव, सत्य की जगह झूठ और समानता की जगह भेदभाव का बोलबाला है। इन विकारों की जगह बढ़ोत्तरी के सन्दर्भ में कबीर के सन्देश की उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है।

एक ओजस्वी सामाजिक नेता एवं विचारक की सबसे बडी विशेषता होती है कि उसका सन्देश युगों-युगों तक मानव जाति के लिये प्रेरक और उपयोगी बना रहे। कबीर के सन्देश में ये सारभौमिकता भारी मात्रा में मौजूद है।

कबीर की कविताओं में इन्सान दोस्ती कुछ नैतिकता सच्चे ज्ञान और अन्य स्वथ्य भावनाओं का सन्देश सामने आता है। यह सन्देश सत्यज्ञान एवं मानव प्रेम का ऐसा खजाना है जो सदा सत्र मानव जाति के लिये उपयोगी रहेगा।

हमारे आधुनिक युग की बहुत सी गूढ़ समस्याओं का हल भी हमें उनके सन्देश में मिलता है। कहना न होगा कि आज पूरी मानवता के लिए उनका सन्देश मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

कबीर अपने विचारों में धार्मिक भेदभाव जाति-पाँति, ऊँच-नीच और छूआछूत की अनैतिक और अमानवीय परम्पराओं के कट्टर विरोधी थे उन्होंने बार-बार अपनी कविताओं के माध्यम से इन कुरीतियों और मिथ्या विचारों पर करारी चोंट की है। वे एक सच्चे इन्सान दोंस्त के रूप में हर प्रकार की संकीर्णता के विरोधी थे। वे पूरी इन्सान बिरादरी को एक समझते थे और मानव प्रेम ही उनके सन्देश का सार था। वे हमेशा हर प्रकार की संकुचित मनोवृत्ति से ऊपर थे। (क० अं०)

श्रीयुत नजीरुल हसन अन्सारी के विचार

समय की ऐतिहासिक चुनौती

"""कबीर मार्टिन लूथर जैसे सुधारक नहीं बल्कि टामस मंजर जैसे विद्रोही थे। कबीरजी ने शोषकों, दलितों और पीड़ितों की आवाज उठाई।"""

"""""कबीर एक सच्चे मनुष्य थे। उन्होंने अपना जीवन सिर्फ सच्चाई की खोज में बिताया। और हर झूठी रूढ़ि को तोड़ा। उन्होंने हर थोथेपन का खुलकर मजाक उड़ाया, उसे आड़े हाथों लिया। उन्होंने आड़े, तिरछे, बेड़े और सीधे वार करके रूढ़ियों के पक्षधरों की जबान बन्द कर दी। ऐसे अटल विश्वास वाला आदमी हिन्दुस्तान में शायद ही कोई दूसरा और हुआ हो जिसने इस 'धर्मप्रधान देश' में अपने समय के दो महान समझे जाने वाले

धर्ममतों को चुनौती दी हो। उनके तीखे व्यङ्ग, निर्मम प्रहारों ने हर धार्मिक पाखण्ड की बुनियाद को ध्वस्त कर दिया।……

कबीर का ईश्वर सच्चाई की खोज के सिवा कुछ नहीं था। कबीर यह जानते थे कि सच्चाई की खोज का मार्ग बहुत कठिन और दुर्गम है और यह एक लम्बा सफर है। उन्होंने स्वयं कहा है सत्य की खोज का संघर्ष बहुत कठिन है। सती और सूरमा के मुकाबले इसके प्रण को निभाना ज्यादा कठिन है। सूरमा की लड़ाई दो-चार घण्टे चलती है, सती का संघर्ष एक पल में खत्म हो जाता है किन्तु सत्य की खोज करने वाले का संघर्ष दिन-रात जारी रहता है। इसकी लड़ाई जीवन की अन्तिम साँस तक जारी रहती है।……

……वह स्वयं अपने समय के हिन्दुस्तानी समाज के सामाजिक चेतना के प्रतिनिधि थे और अपने से पहले जमाने के तमाम प्रगतिशील विरासतों के पक्षधर थे।…

…विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि कबीर का सन्देश इस समय के हिन्दुस्तानी समाज को आलोकित करने और आगे की नयी मञ्जिल तक ले जाने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। वैज्ञानिक सच्चाइयों पर आधारित एक नये मानवीय समाज की रचना के क्रम में कबीर से हमें बराबर प्रेरणा मिल सकती है।

इतिहास ने यह काम नयी पीढ़ी को सौंपा है, और इसे ही कबीर के स्वप्नों को नये मानव समाज को रूप प्रदान करना है। सवाल यह उठता है कि क्या हमारी नयी पीढ़ी यह महान उत्तरदायित्व सभालेगी ? इस बात को भुलाया नहीं जा सकता कि ऐसा करके ही आज के हिन्दुस्तान को दूसरे प्रगतिशील देशों की पंक्ति में खड़ा किया जा सकता है। (क० अं०)

श्रीयुत किरन मिश्र जी के विचार

…यह कहा जाता है कि कबीर अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे लेकिन क्या इस बात को स्वीकार किया जा सकता है कि कबीर ने अनुभव की जो बातें

कहीं हैं वह बिना असाधारण ज्ञान अर्जित किये कही जा सकती है ? कदापि नहीं। क्या कुरान, वेद या पुराण की गहरी जानकारी प्राप्त किये बिना उनके थोथेपन की बात उतने अकाट्य और धारदार तरीके पर कही जा सकती है जितनी कि कबीर ने कही है ? क्या कोई कवि उस बेलागपन, निर्भयता और अद्वितीय साहस के साथ वे सब बातें कह सकता है जो कबीर ने कही हैं ? क्या किसी कवि को प्रस्तुत किया जा सकता है जिसने सीधी-सादी और जनता की बोलचाल की भाषा में उतनी गूढ़ तात्विक और अर्थयुक्त बातें कही हों जो कबीर ने कही हैं ? क्या कोई और कवि जनता के मन में उस सुविधा से उतर सका है जितना कबीर सुदूर गाँवों के किसानों और दूसरे लोगों के मन में उतर सके हैं—रामायण की बात दूसरी है जिसका आधार ही धार्मिक लीला और विश्वास है।

इन सब बातों के बावजूद शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों और सन्त के चाटुकार पण्डित धड़ल्ले से कबीर को अपढ़ और उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी' कह रहे थे तब उसके पीछे वाली भावना काम कर रही थी जो कि आज यह कहे जाने के पीछे हैं कि अमुक 'लोहियाइट' या अमुक 'कम्युनिष्ट' है—यानी उजड्ड उच्छृङ्खल है और उसकी बातों या कार्यों को गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया जाना चाहिये।...... (क० अं०)

'भविष्य'—जिसके जादू से बचना चाहिए

इतनी बात एकदम साफ है कि अगर कबीर के सन्देश को काली व अन्धी कोठरी में न डाल दिया गया होता, अगर कबीर की वाणी शोषक वर्ग के षड़्यन्त्र का शिकार न हुई होती तो भारत की संस्कृति, इसकी सामाजिक स्थिति और आर्थिक गतिविधियाँ आज से एकदम भिन्न होती और अब तक सम्भवतः हिन्दुस्तान की तस्वीर काफी खूबसूरत बन चुकी होती। आज भी कबीर के निर्भीक प्रखर ओजस्वी इरादों के साथ सामाजिक अन्याय, भ्रष्टाचार मूल्यहीनता के खिलाफ जोरदार संघर्ष करने की जरूरत है ताकि आनेवाली पीढ़ियाँ हम पर वही इल्जाम न लगायें जो आज हम पुरानी पीढ़ी पर लगा

रहे हैं। इस संवर्ष को हाथी दाँत की मीनारों में रहने वाले बुद्धिजीवियों की तरह सीर्फ महसूस कर लेना नाकाफी होगा—जरूरी है कि हम इस संघर्ष में हिस्सा लें—इस खुले सामूहिक संघर्ष में सच्ची निष्ठा के साथ शरीक हों। यह आज की अनिवार्यता है—इसे कल पर टालने का मतलब है—हमेशा के लिये भविष्य का दाँव हार जाना। भविष्य, जैसा कि हिन्दी की नयी पीढ़ी के एक कवि ने कहा है एक खतरनाक शब्द है और उसके जादू से बचना चाहिये। (क० अं०)

श्रीयुत राजबल्लभ ओझा जी के विचार

......इस क्रान्तिकारी साहित्यकार और उपदेशक ने भारत को ही नहीं बल्कि समस्त विश्व को उपदेश दिया था कि भेद-भाव की पूछ पकड़ने से मुक्ति नहीं मिल सकती। भेद-भाव का पथ अपनाने वालों को भूल सुधार कर मानव मात्र को एक दृष्टि से देखने की शिक्षा उन्होंने उस समय दी जब देश के भीतर जातियों और सम्प्रदायों के बीच कटुता और अलगाव की तीव्रभावना व्याप्त थी। सन्त राजनीतिज्ञ महात्मा गान्धी कवीर की शिक्षा से बहुत प्रभावित थे। रवि ठाकुर इनके ऋणी रहे और सच बात तो यह है कि सारा भारत उनका ऋणी है।......

कबीर को शुभ भविष्य में पूर्ण विश्वास था। उन्होंने यह घोषणा की थी कि ज्ञान की आँधी से "भ्रम की टाटी" उड़ जायेगी और सूर्य के प्रकाश से अन्धकार मिट जायेगा। आज जब मैं कल्पना के कबीर नगर में घूमने निकला हूँ तो इसी विश्वास के साथ कि नये भारत ने अपने महान सपूत के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की होगी। (क० अं०)

श्रीयुत गजानन्द श्रीवास्तव के विचार

.......धन्य है कबीर, जिन्होंने कवीन्द्र रवीन्द्र के मीठे गीतों को दर्शन का पुट दिया, साहित्य साधकों को अन्वेषण का विषय प्रदान किया, समाज-

सेवियों को प्रेरणा प्रदान को, जनता को मीठे गीत और खँजड़ी धुन दी तथा असंख्य असहयोग को अपनी जीविका अनुसरण कर स्मृद्धि-शाखी बनाया।···
(क० अं०)

श्रीयुत राम अग्रवाल जी के विचार

······पर क्या कबीर को हम भुला सकेंगे ? नहीं, कदापि नहीं। आज स्वतन्त्र भारत को कबीर की आवश्यकता है; क्योंकि उसी के उपदेश जाति··· पाखण्ड, परम्पराओं अन्धविश्वासों की जर्जर नीव को झकझोर सकेगा। उसी से नयी संस्कृति जन्म लेगी, उसी संस्कृति में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन, सभी धर्म समाहित हो जायेंगे, तभी विवाद सुलझेंगे, तभी मनुष्य में मनुष्यता आयेगी। तो आदर्श और नारों की थोथी परम्परा को त्यागकर क्यों न कबीर को जीवित करने का प्रयत्न किया जाय ?······कबीर जीवित हैं, हमारे विचारों में, उसे अब कर्म में प्रतिष्ठित होना है।··· (क० अं०)

श्रीयुत "शेखर" गोरखपुरी का गीत

काव्य-कल्लोलिनी कूल पर सन्त ने,
मुक्त स्वर में सँवारा नवल राग को।

रूढ़ियों की हिली नींव स्वर तान से, भित्ति पाखण्ड की गिर गयी ज्ञान से
अब असत की असित[1] साटिका[2] फ़ट गई, सत्य पर थी जमी धूल वह हट गई

भेद की भावनायें सिमटने लगीं,
भोग भगने लगा बल मिला त्याग को।

एक खजड़ी बजी स्वर पड़ा कान में, कुछ उल्टवाँसियाँ आगयीं ध्यान में
बात अति वक्र पर सोचने में सरल, देखने में कठिन जानने में तरल

१—अश्वेत, काला। २—आवरण।

लोग मुड़-मुड़ नयी धुनि समझने लगे,
भाव ऐसे जो देते जगा आग को।

सर्व कल्याणमय संत की साधना, वह अमर स्वर विमल काव्य आराधना
पथ प्रदर्शन को हर मार्ग में छा गयी, या स्वयं भारती[1] भूमि पर आ गयी

सत असत का विवेकी अमर हो गया
स्वर नया मिल गया सत्य अनुराग को
काव्य-कल्लोलिनी कूल पर सन्त ने
मुक्त स्वर में सँवारा नवल राग को

राजस्थान-विश्वविद्यालय के डा० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण' के विचार

कबीर की वाणी किसी एक प्रान्त या अंचल के आदर की वस्तु नहीं रही है। उसका अध्ययन पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण में, सब ओर हुआ है। मध्यकालीन सन्तों में कबीर का विशेष स्थान होने के कारण विद्वानों ने उनका अध्ययन विशेषता से किया है। उनकी वाणी में सांस्कृतिक परम्परा का एक ऐसा विकास दृष्टिगोचर होता है जिसमें अभारतीय संस्कृति का इतना मधुर पुट है कि उसकी अभारतीयता प्रतीत नहीं होती। कुछ लोगों का तो अब तक यह विश्वास रहा है कि कबीर अशिक्षित थे और इस कारण उनके दार्शनिक विचार निराधार, अपरिपक्व एवं असंबद्ध थे, किन्तु यह उनका भ्रम मात्र है। कबीर-पन्थ का अपना मौलिक एवं दृढ़ धरातल है और उसमें एक दार्शनिक भूमिका है जिसमें मौलिकता के पुट ने प्राचीनता को मार्जित एवं व्यवस्थित करने की चेष्टा की है।......

कबीर की कीर्ति पताका को धर्म-लोक में फहराती हुई देखकर पीपा और रैदास विस्मय से पुकार उठे—"कबीर नवखण्ड और त्रिलोक में प्रसिद्ध हैं"—

१—वाणी, सरस्वती।

नांव नवखण्ड परिसिध कबीरा। कवीर के आध्यात्मिक विचारों में वह सार है जिस पर भारतीय संस्कृति की आधारशिला रखी हुई है। भारतीय विचारधारा में जो कुछ वरिष्ठ है, कवीरपन्थ उस सवका तो सुमिश्रण है।...

मध्ययुगीन विचारकों में कवीर का विशेष स्थान है। उनके स्वतन्त्र चिन्तन में निष्पक्षता, प्रखरता, संयम और शालीनता के साथ तर्क और प्रभाव शक्ति भी है। भारतीय विचारधारा को कवीर की वाणी एक वरदान के रूप में प्राप्त हुई। भारतीय जनता पर उनका अमित आभार है। जनता में अपने सहज-धर्म द्वारा स्वतन्त्रचिन्तन की भावना को जाग्रत कर देना कवीर का ही काम था। स्वतन्त्रचिन्तन के साथ धर्म के प्रति आकर्षण पैदा करना कोई सरल काम नहीं है और इस दिशा में कवीर का प्रत्येक कदम दृढ़ एवं स्तुत्य था। वर्ग और सम्प्रदाय के वन्धनों को तोड़कर मानव को स्वतन्त्र वातावरण में श्वास लेने के लिये प्रेरणा देकर उन्होंने मानो बुद्ध के अधूरे काम को पूरा करने का प्रयत्न किया। कवीर का सुधार भी बुद्ध के सुधार की भाँति अनुभव की गोद में पला था किन्तु आस्तिक्यभाव का जो वल कवीर के सुधार को प्राप्त हुआ वह बुद्ध के सुधार को प्राप्त नहीं हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि कवीर ने भारत में जिस समाज-धर्म के ढाँचे को खड़ा किया उससे जनता को अमोघ वल मिला, उसके नैतिक जीवन में सुधार की प्रवृत्ति सजग हो उठी और सभी में अपने जीवन, अपने समाज और अपने धर्म के प्रति स्वतन्त्ररूप से विचार करने की प्रवृत्ति ने जन्म लिया।

साहित्य के किसी रूढ़िवादी दृष्टिकोण से कवीर का मूल्यांकन करना साहित्य के साथ अन्याय करना होगा। कवीर का साहित्य उनके हृदय की प्रेरणा और मस्तिष्क की धारा है। इन दोनों की सहज अभिव्यंजना कवीर की भाषा की विशेषता है। उसमें न तो शब्दों की जटिलता है, न अलंकारों का घटाटोप और न छन्दों की उछल-कूद।

......कवीर का जीवन छोटों-वड़ों के लिये आज तो एक बहुत वड़ी प्रेरणा है इसलिये जव कि एक मानव-धर्म की आवश्यकता है।......कहते हैं

कवि अमर होता है क्योंकि उसकी वाणी युग-युग के लिये सन्देश देती है। कबीर भी अमर हैं क्योंकि उनकी वाणी भी आज हमें सन्देश दे रही है। वह हमें धर्म और समाज की एकता सिखला रही है और नीति का मार्ग प्रशस्त कर रही है। (कबीर विमर्श : प्राक्कथन)

कबीर जागरूक, चिन्तक और निष्पक्ष आलोचक थे। ये गुण इतने मूल्यवान नहीं जितनी उनकी निर्भीकता है। उनकी वाणी में जो कर्कशता, रूखापन और भर्त्सना का भाव दिखाई देता है उनका कारण है—उनका मानव-प्रेम, दयालुता और ईमानदारी। वाह्याडम्बरों के प्रति उनकी वाणी ने जो प्रतिक्रियात्मक रूप ग्रहण किया, उसमें उनकी इमानदारी की ही प्रेरणा है। जिस वाणी में प्रतिक्रिया है उसी में क्रान्ति टँकी हुई होती है। उनकी निर्भीक अटूट शक्ति, देश, धर्म, समाज, दर्शन और साधना में क्रांति की धारा प्रवाहित करने में तत्पर प्रतीत होती है।

वेद और कुरान के अंध-पाठ में कबीर का बिलकुल विश्वास नहीं है। वे अंध-पाठ की निन्दा करते हैं, किन्तु उनके भीतर जो सत्य निहित है, जिस अनुभव की वे व्यंजना करते हैं, उसकी निन्दा उन्होंने कभी नहीं की। रोजा और व्रत में कबीर को दम्भ दिखता है। सच्चा रोजा और व्रत तो मन की पवित्रता है। तीर्थों के प्रति भी कबीर की आस्था नहीं है। इन सबमें कबीर को धर्म-साक्षात्कार नहीं होता। इन सबके मूल में जो रहस्य है, उसको पालना ही धर्म है। सत्संग, विवेक, मन की पवित्रता आदि में धर्मदर्शन हो सकता है।

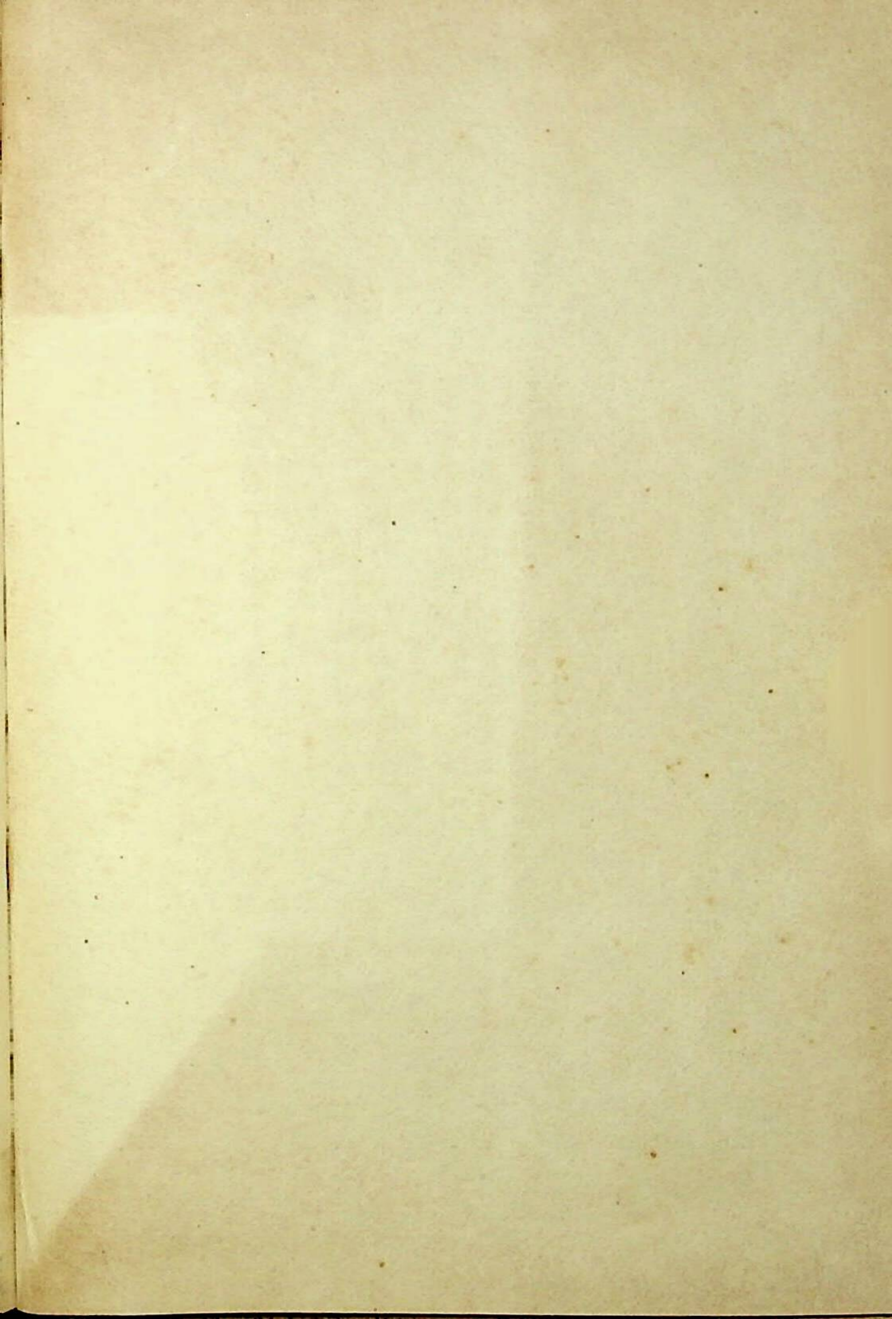
कबीर मस्त और मनमौजी थे। जो धुन समाई वही कह डाला। भावों का दबाना मानों उन्होंने कभी सीखा ही नहीं था। सत्य का पुजारी निर्भीक तो होता ही है, अदम्य भीं होता है। कबीर भी सत्य के पुजारी थे। उनके सत्य ने न तो कभी दबने का प्रयत्न किया और न उन्होंने कभी उसे दबाने का ही। सत्य उनका गुरु था और सत्य ही ब्रह्म भी। वे अपने को भी सत्य से भिन्न नहीं समझते थे। उनकी आत्मा सत्यरूप थी।

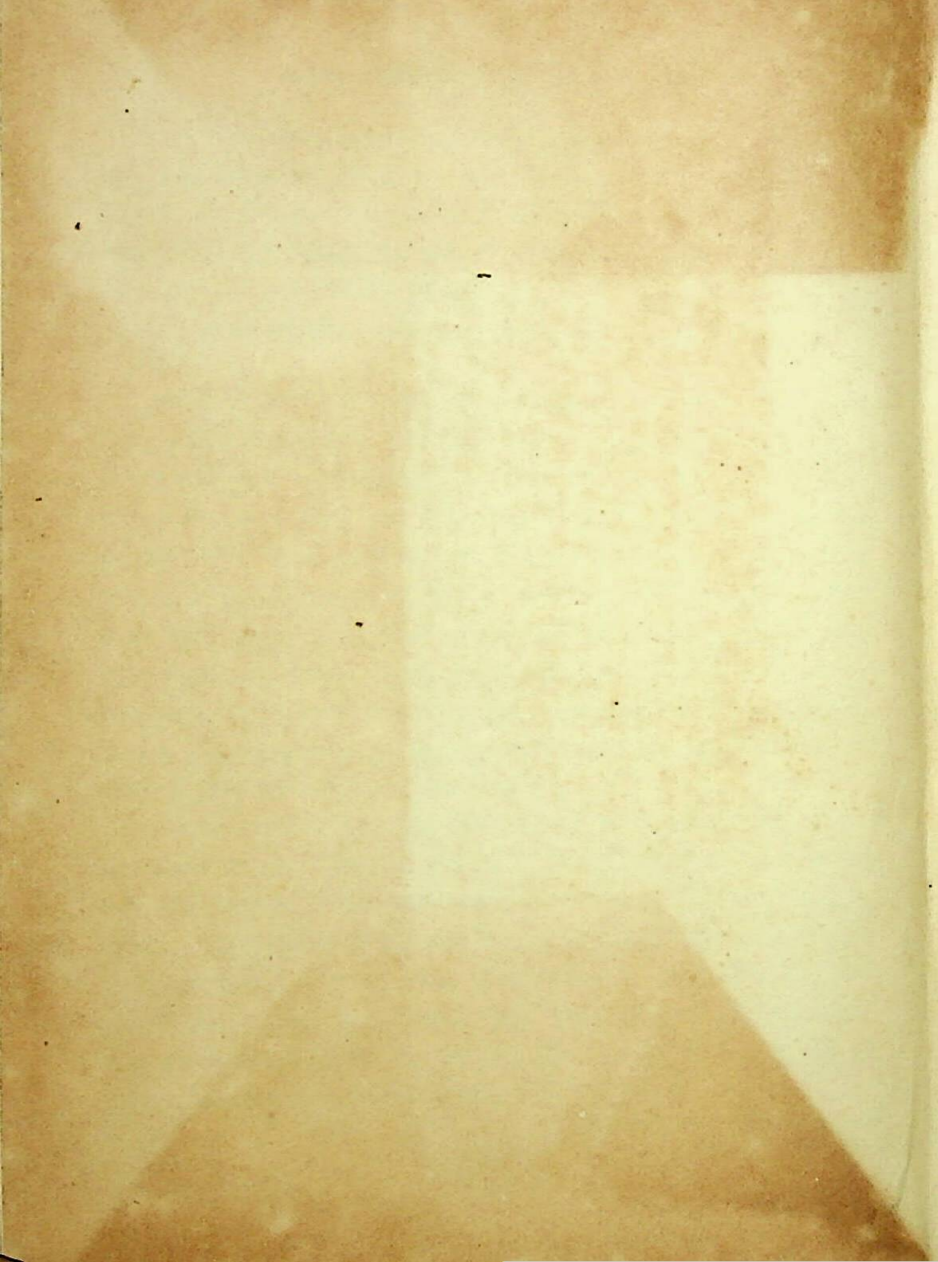
......सत्य के अन्वेषक के नाते वे पूर्वमान्यताओं को महत्व नहीं देते थे। बुद्धि और अनुभव की कसौटी पर सही उतरने पर कोई मान्यता कबीर से प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकती थी। किसी भी अप्रतिष्ठित मान्यता की वे धज्जियाँ उड़ाने में समर्थ थे। उनके पास बुद्धि थी और वाक्यशक्ति भी। उनके कण्ठ से जो आलोचना निकलती थी वह बड़ी स्पष्ट और तीव्र होती थी। उनकी बुद्धि अनुभव को स्वीकार करती थी, इसलिये शास्त्रचर्चा से वह कभी परास्त नहीं हुई।

कबीर को अपने समय का नेता कह सकते हैं! हाँ, नेता, एक आदर्श नेता; क्योंकि वे सत्य-प्रेमी, स्पष्टवादी, निर्भीक, अहिंसक, वक्ता और त्यागी थे। वे अलोलुप और आत्मविश्वासी थे, किन्तु निराभिमान भी थे। वे सरल विनम्र और सदाचारप्रिय थे। कबीर उद्योगी और कर्मनिष्ठ थे। विषयों से दूर और निंदकों से घिरे रहते थे। सर में के कमल के समान वे इस जगत में रहते थे। डा० त्रिगुणायत के थोड़े से शब्द कबीर के व्यक्तित्व की बड़ी स्पष्ट झाँकी प्रस्तुत करते हैं—"सत्य के उस अनन्य उपासक में दार्शनिक बुद्धिवादिता और चिन्ता, कट्टर क्रान्तिकारियों की क्रान्ति और कठोरता, अनन्य भक्त की विनम्रता और प्रेमानुभूति, सच्चे आलोचक की स्पष्टवादिता, सच्चे साधु की आचरणप्रियता आदर्शपुरुष की कर्तव्य परायणता, योगियों की अक्खड़ता तथा पक्के फकीर की साधना थी।"

ऐसा था कबीर का व्यक्तित्व जिसके निर्माण में समाज की परिस्थितियों और आत्मप्रेरणा का बहुत बड़ा हाथ था। वे कभी झिझके नहीं, कभी झुके नहीं, कभी अटके नहीं, कभी भटके नहीं। वे अपनी साधना के धनी, विश्वासों के राजा और अनुभूतियों के साहूकार थे। जो मार्ग उन्होंने दूसरों को दिखाया वे उसी पर चले थे और वही उनका मुक्ति-मार्ग था। बन्धन तोड़ने के लिए उन्होंने जो सरलता ढूंढ़ निकाली वही उनके मार्ग की विशेषता थी। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही तो कहा है कि "हजार वर्ष के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व-लेखक उत्पन्न नहीं हुआ।"

(कबीर विमर्श: व्यक्तित्व)





automa-
achine: h
or manufac-
profile of st
ls: impact ex
nufacture of ri
oes: and automat
machine for tr
rolling and beading
non-ferrous metals.

Big setback Congress unity

Continued from page 1 col

morning, Mr Patil met Mr Singh, Mr K. C. Pant, Mr Sidc Shankar Ray and Mr Moha Sukhadia who is understood to spoken for unity in the CWC ing later in the evening. Mr Mr Pant and Mr Ray called after the CWC meeting.

Among others who spoke Working Committee meeting we P. R. Das Munshi, president Youth Congress, Dr. Ram S Singh, Mr V. B. Raju, Mr Paswan Shastri, and Mr P. C. wati.

Mr Munshi, commenting on Gandhi's remarks at Bombay a said that she had accepted th Congress was fighting the Janata and also categorically expressed she had no faith in collective ship and internal democracy i party.

Briefing the Press, Mr Pant that the CWC had decided th Y. B. Chavan would look afte work of the Congress Presiden Swaran Singh, during the latter' abroad for a few weeks. Mr Ch designation for this period wou "officiating for the President." Swaran Singh would be kept inf on all important matters and also be available for consultati

Asked whether Mr Patil was berately not invited to the CWC g, Mr Pant said that it wa Mr Patil had attended th ing of the committee as a and was not a permane e denied that he ha Mr Swaran Singh ecause of reports th er was angry ove It was just a co ked.
sions taken attention o Party to l and study

paid-up on its part will be more than matched.

There are however no signs of any exceptional Soviet activity in the Indian Ocean, as Mr Mondale acknowledged during his visit. Western diplomatic sources are quoted as saying that there was a spurt in movements immediately after the Soviet navy was obliged to pull out of Berbera, presumably to shift men and materials out of the Somali port. But the activity has now "dropped back," as Mr Mondale put it.

to develop, produce and test nuclear weapons.

The export licences to South Africa and Pakistan were two of 12 nuclear licences held up by the State Department to allow "further review" of the licences. Export licences have also been held up for Bolivia, Yugoslavia, Iran, Malaysia, Bangladesh, India, Mexico, the Philippines, Taiwan and the People's Republic of China.

According to reports, the licences involving shipments to South Africa and Pakistan were the only two

pounds of high- bound for the S tor in South Af African request dates back more Filed during the tion, it is now nuclear licence the federal go

South Afric world's riches and is now own uraniu

The ex Pakistan of pluto for a re to be

Zia warns rivals against bid to frustrate p

NEW DELHI, May 20 (POT).

PRESIDENT ZIAUR REHMAN and lesser luminaries of the 'JAGODAL' front led by him have been increasingly talking about "anti-state and anti-democratic elements" trying to frustrate the June 3 Presidential election.

The President, indeed, has asked the people more than once to form "strong election committees" in all villages, unions and thanas to foil the attempts of these forces to scuttle the poll.

Mr Mashiur Rahman, another leader of the front, has blandly alleged that the Awami League-led Ganotantrik Oikya Jote (GOJ) is out to create a law and order situation.

In an interview with a news agency, he asked the GOJ leaders to "come to their senses and reali the gravity of the situation."

While tension seems to be bu ing up with the approach election date, it is becomi creasingly evident that Pr Zia and his front will deper and more on the constit the front like the Muslim and the Labour Party tasks as forming "elect mittees" in villages ar This is because the Mus is the only cadre-based all constituents of the Front that President

PERFECT HA

Currently, Preside Muslim League (wh

1977 would b means that re-introdu Banglade

The appear chang issues nati lead said flag ple coul

H mig rat c

क्तं
प्रभोः ॥ १ ॥
योऽभवत्
हस्मदक्षोणिपः ।
स्मालिकस्सालयोः
दूरात्कृतं बहितः ॥ २ ॥
रिपोरावाससंस्थापनं
कलया दर्पोपसम्मर्दनम् ।
अचलं संस्थाप्य धर्मं निजम्
मगहरे जातश्चरित्रं गुरोः ॥ ३ ॥



them